भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में आर्य समाज का विशेष (80%) योगदान

सह-लेखक

डॉ० नरेन्द्र कुमार (प्रधान)

आचार्य डॉ. उमेश यादव (मिनिस्टर ऑफ रेलिजन)

आर्य समाज (वैदिक मिशन) वेस्ट मिड्लैंड्स,
यूनाइटेड किंगडम

ओ३म्

आर्यसमाज आन्दोलन के समस्त सदस्यों के मन-मस्तिष्क में प्रतिष्ठित

महर्षि दयानन्द सरस्वती

'भारत के पितामह'

यह हमारा सौभाग्य है कि भारतीय स्वतंत्रता अमृतमहोत्सव के रूप में 75वाँ वर्षीय ऐतिहासिक समारोह मनाने तथा भारत को स्वतंत्र करने के लिए सभी वीर बलिदानियों को श्रद्धांजलि देने हेतु हम इस पुस्तक को प्रकाशित कर रहे हैं।

ओ३म्

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में आर्यसमाज का विशेष (80%) योगदान

लेखक

डॉ० नरेन्द्र कुमार

आचार्य डॉ० उमेश यादव

आर्य समाज (वैदिक मिशन) वेस्ट मिड्लैंड्स

321 Rookery Road, Handsworth, Birmingham

B21 9PR, UK

Publishers

आर्य समाज (वैदिक मिशन) वेस्ट मिड्लैंड्स, यू.के.

321 Rookery Road, Handsworth, Birmingham, B 21 9 PR, U K
website:arya-samaj.org ■ email:enquiries@arya-samaj.org
Tel. 0121 359 7727 (UK) ■ World : +44 121 359 7727

All Rights are Reserved with Publishers

Price

₹ 250/-

Edition

First, Year 2022

Printers

गोविन्दराम हासानन्द

4408, Nai Sarak, Delhi-110 006 (INDIA)
Tel. : 45512973, 8800854372
email:ajayarya16@gmail.com
Website:www.vedicbooks.com

Forthcoming Centenary Celebration Edition (1925-2024)

मेरे माता–पिता की पवित्र

स्मृति में

श्री मिश्रीलाल आर्य और श्रीमती रामप्यारी देवी

उनके अटूट प्रेम और भक्ति में

मैं यह पुस्तक समर्पित करता हूँ

डॉ० नरेन्द्र कुमार

पतंजलि विश्वविद्यालय
University of Patanjali

उत्तराखण्ड विधान मण्डल द्वारा पारित पतंजलि विश्वविद्यालय अधिनियम संख्या 4, वर्ष 2006
Established by Uttarakhand State Legislature Under the University of Patanjali Ac

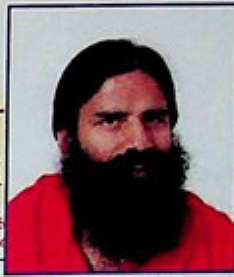

पत्रांक (Ref.) : ....   दिनांक (Date) : 30|09|202

शुभकामनाएं

भारत देश जिसे कभी आर्यावर्त अथवा ब्रह्मावर्त के नाम से जाना जाता था, ऋषियों, मुनियों और ईश्वर का साक्षात्कार करने वाले योगियों की परम पावन भूमि है। यहीं पर गौतम, कणाद, कपिल, पतंजलि, वाल्मीकि, व्यास सदृश महर्षियों ने ज्ञानामृत और योगामृत की गंगा प्रवाहित की थी। ब्रह्मा से लेकर जैमिनी पर्यन्त के इन ऋषियों की परम्परा को साकार रूप प्रदान किया उन्नीसवीं सदी में आदित्य ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द सरस्वती ने। परतन्त्र भारत में आध्यात्मिकता के साथ-साथ स्वतन्त्रता की मशाल जलाने वाले ऋषि ने गुरुकुलीय शिक्षा का श्रेष्ठ मार्ग दिखाया। स्वामी दयानन्द की प्रेरणाओं से अनुप्राणित होकर स्वामी श्रद्धानन्द, स्वामी दर्शनानन्द सदृश महापुरुषों ने बालक-बालिकाओं के अनेक गुरुकुल प्रारम्भ करके वेद विद्या और शिक्षा का द्वार सबके लिये खोल दिया। आज यह गुरुकुलीय परम्परा राष्ट्र के समक्ष आशा और विश्वास का दीपक बनकर नवचेतना का संचार कर रही है।

भारत की पावन मिट्टी और यहां की ऋषि परम्परा से जिनके जीवन का निर्माण हुआ, इंग्लैण्ड के बर्मिघंम महानगर में वैदिक संस्कृति एवं गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति की पताका फहराने वाले यशस्वी विद्वान् आचार्य उमेश यादव ने भारत के स्वाधीनता संग्राम में अपने प्राणों का उत्सर्ग करने वाले शहीदों का स्मरण करते हुए, गुरुकुलों का प्रेरणादायक स्वरूप इस पुस्तक के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

आचार्य उमेश अत्यन्त उर्जावान, विद्वान्, भारत माता के पुत्र हैं। इस उत्तम ग्रन्थ के लेखन एवं प्रकाशन की वेला पर मैं अपनी मंगल कामनायें एवं शुभाशीष प्रेषित करता हूं।

मंगलाभिलाषी

(स्वामी रामदेव)

कुलाधिपति

पतंजलि विश्वविद्यालय, हरिद्वार

शिविर कार्यालय : पतंजलि योगपीठ, दिल्ली-हरिद्वार राष्ट्रीय राजमार्ग, निकट बहादराबाद, हरिद्वार-249405, उत्तराखण्ड भारत
Camp Office : Patanjali Yogpeeth, Delhi-Haridwar National Highway, Near Bahadrabad, Haridwar-249405, Uttarakhand, India
(फोन) Phone : 01334-242526 (ई-मेल) E-mail : contact@uop.edu.in (वैब) Web : www.universityofpatanjali.com

Acharya Devvrat
Governor, Gujarat
Gandhinagar-382021

सत्यमेव जयते

संदेश

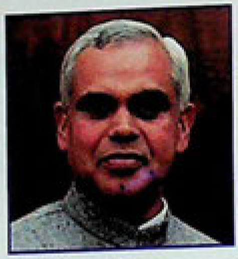

आचार्य देवव्रत
राज्यपाल, गुजरात
गांधीनगर-३८२०२१

15 SEP 2020

स्नेही श्री,

आचार्य डॉ. उमेश यादव जी,

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपके द्वारा 'भारतीय स्वतंत्रता में आर्य समाज का 80 प्रतिशत योगदान' विषयक पुस्तक लिखी जा रही है।

हम जानते हैं कि स्वामी दयानन्द सरस्वती के दर्शाये हुए पथ पर चलकर कई मनीषीयों ने देश के स्वतंत्रता आंदोलन में न केवल अपना बहुमूल्य योगदान दिया अपितु देश के लिए अपने प्राणों को भी न्यौछावर किया। मैं आशा करता हूँ कि ऐसे महान क्रांतिवीरों और देशभक्तों के कर्तृत्व को पढ़कर समाज और आनेवाली पीढ़ी को नई प्रेरणा मिलेगी।

पुस्तक के प्रकाशन के लिए हार्दिक शुभकामनाएं।

(आचार्य देवव्रत)

प्रति,
आचार्य डॉ. उमेश यादव जी
आर्य समाज, वेस्ट मिडलैंड्स,
321, रुकेरी रोड, हेन्डसवर्थ
बर्मिंघम, यूनाइटेड किंगडम

गंगा प्रसाद
GANGA PRASAD

राज्यपाल सिक्किम
GOVERNOR OF SIKKIM

राज भवन
गान्तोक - 737103
(सिक्किम)
RAJ BHAVAN
GANGTOK-737103
(SIKKIM)

ओ३म्

SKM/GOV/MESG/2020/
DATED: 24/09/2020

सन्देश

अत्यन्त प्रसन्नता का विषय है कि 'भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में आर्य समाज का 80% योगदान' पुस्तक का प्रकाशन होना सुनिश्चित हुआ है। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की शुरुआत 1857 से मानी गयी है, वास्तव में इसकी नींव रखने वाले प्रथम महापुरुष महर्षि स्वामी दयानंद सरस्वती थे, जिनकी **अमर ग्रंथ—सत्यार्थ प्रकाश'** रही है, जिसमें उन्होंने लिखा था—**'सर्वोपरि राज तो अपना स्वदेश ही होता है'** उसके पश्चात उनके कर्मयोगी, आर्यसमाजी शिष्यों ने आजादी की चिंगारी को जलाये रखा। इतिहास हमेशा अतीत की त्रुटियों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है, और ऐतिहासिक दस्तावेज हमें भविष्य में पुनः त्रुटियों को न दुहराने की सीख भी देता है। इतिहास के पन्नों में हालांकि आर्यसमाजी के कर्मयोगियों, देशप्रेमियों के नाम छूट गये हैं, किंतु अब इन महान विभूतियों ने स्वतंत्रता आंदोलन में अपना सर्वस्व न्योछावर किया है उन्हें अपना उचित स्थान प्राप्त होगा, उनके नाम स्वर्णिम अक्षरों में आपके पुस्तक में उल्लेखित रहेगा।

मेरी अपेक्षा है कि यह पुस्तक समाज एवं युवाओं के लिए सदुपयोगी एवं प्रेरणादायी हो। यह अत्यंत प्रशंसनीय कार्य है और आप आचार्य डॉ० उमेश यादव, मिनिस्टर ऑफ रिलीजन, आर्य समाज वेस्टमिड्लैंड्स, बर्मिंघम, यूनाइटेड किंगडम को इस पुनीत कार्य हेतु कोटि-कोटि साधुवाद!

पुस्तक के सफल प्रकाशन हेतु मेरी असीम शुभकामनाएं!

गंगा प्रसाद
(गंगा प्रसाद)

पतंजलि विश्वविद्यालय
University of Patanjali

डॉ. महावीर अग्रवाल
प्रति-कुलपति

Established by Uttarakhand State Legislature Under the University of Patanjali Act No. 4, Year 2006 & Recognized by UGC

मनस्यम्

मुझे यह जानकर अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि भारत से बहुत दूर यू.के. के महानगर बर्मिंघम में आचार्य उमेश यादवजी भारतीय संस्कृति, गुरुकुलीय शिक्षा, आध्यात्मिकता एवं सोलह संस्कारों का मनसा, वाचा, कर्मणा, पूर्ण शक्ति, योग्यता और निष्ठा से प्रचार प्रसार कर रहे हैं। आचार्य उमेश एक उच्च कोटि के उपदेशक और लेखक हैं। भारत के स्वतन्त्रता यज्ञ में अपने प्राणों की आहूति देने वाले वीरों के प्रति आपके हृदय में अथाह श्रद्धा है। गुरुकुलीय शिक्षा तथा गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली से विश्व में शान्ति, प्रेम, विश्वबन्धुत्व की स्थापना होगी। आज सारा संसार युद्धरूपी ज्वालीमुखी के बिल्कुल निकट है। वैश्विक महामारी ने सबका चैन और आनन्द छीन लिया है। यह सब सोचकर स्वतन्त्रता सेनानियों को श्रद्धांजलि रूप में तथा संपूर्ण विश्व को योग, आध्यात्मिकता एवं मानवता का सन्देश प्रदान करने वाले योगर्षि स्वामी रामदेव जी द्वारा संचालित वैदिक गुरुकुलम् और आचार्यकुलम् का दिव्य-भव्य एवं मनोहारी चित्र इस पुस्तक के माध्यम से आचार्य उमेश ने विश्व के समक्ष प्रस्तुत किया है।

मैं, आचार्य प्रवर का हार्दिक अभिनन्दन एवं वन्दन करते हुए अपमी मंगलकामनाएं समर्पित करता हूं। ईश्वर से प्रार्थना है कि आपको उत्तम स्वास्थ्य एवं दीर्घायु प्रदान करें, जिससे आप इसी प्रकार निरन्तर मानवता की सेवा करते रहें।

सादर!

विदुषां वशंवदः

24/09/2020

(डॉ. महावीर)

प्रति-कुलपति, पतंजलि विश्वविद्यालय, हरिद्वार
पूर्व कुलपति, उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय
पूर्व उपकुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

Camp Office : Patanjali Yogpeeth-I, Delhi-Haridwar National Highway, Near Bahadrabad, Haridwar, Pin-249405, Uttarakhand
Res. : Vedalok, 22, Nand Vihar, P.O. Gurukul Kangri, Haridwar, Pin-249404, Uttarakhand
Ph. : 01334-273000, Mob. : +91 9719004452, 9412918949, E-mail : mahavir_gkv@yahoo.co.in, provc@uop.edu.in, Website : www.uop.edu.in

|| ओ३म् ||

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार–249404

(नैक "A" ग्रेड प्राप्त एवं यू.जी.सी. एक्ट 1956 के सेक्शन 3 के अन्तर्गत समविश्वविद्यालय)

GURUKULA KANGRI VISHWAVIDYALAYA, HARIDWAR-249404

(NAAC "A" Grade Accredited Deemed to be University u/s 3 of UGC Act 1956)

प्रो० रूप किशोर शास्त्री
कुलपति
(पूर्व सचिव म.सा.रा.वे.वि.प्र., उज्जैन)
(मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार)

Prof. Roop Kishor Shastr
Vice-Chancello
(Ex. Secretary MSRVVP Ujjai
(Ministry of HRD, Govt. of India

क्रमांक / Ref. No. 1–2 / कु०का० / बा०पत्रा० /

दिनांक / Date 29.09.2020

शुभाशंसनीयम्

मुझे यह जानकर अति प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है कि आचार्य डॉ० उमेश यादव द्वारा प्रणीत **भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में आर्य समाज का 80 प्रतिशत योगदान** नामक पुस्तक का प्रकाशन किया जा रहा है, एतदर्थ आचार्य उमेश यादव को हार्दिक बधाई।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आर्य समाज ने स्वातन्त्र्य प्रवृत्ति का भाव जनमानस में कूट-कूट कर भरा, उसमें सर्वस्व बलिदान करने की भावना प्रबल रही, इन सबके प्रणेतृ-व्यक्तित्व मात्र दो रहे हैं एक महर्षि दयानन्द सरस्वती दूसरे इनके गुरुवर दण्डी स्वामी विरजानन्द सरस्वती। नितान्त अध्यात्म परायण एक सच्चे शिव की खोज से निकलने वाले तथा उसी की साधना करने वाले ब्रह्मचारी दयानन्द को इस देश की पद दलित, आकण्ठ आडम्बर निमग्न, कुरीतियों की दास, अशिक्षित एवं पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ी जनता को सर्वथा मुक्त कराने का अमृत गुरु ने क्या पिलाया दयानन्द ने समग्र क्रान्ति की अमृत पताका फहरा दी।

आज हम जिस सत्तालोलुप और आपाधापी के राजनैतिक विषाक्त वातावरण को भोग रहे हैं, जिस सांस्कृतिक वातावरण की चकाचौंध में चौंधिया रहे हैं अथवा जानबूझकर चौंधियाए जा रहे हैं, जिस सामाजिक परिवेश में जी रहे हैं, उसमें हम भूलते जा रहे हैं आजादी को, आजादी के उद्देश्य को, आजादी के इतिहास के लिए शहीद होने वाले वीरों और वीराङ्गनाओं को, कारावासों में भयंकर यातनाएं सहने वाले स्वतन्त्रता सेनानियों को, बलिदानों से पायी उसी आजादी को तथा वीरों द्वारा सौंपी गई उस अनमोल धरोहर को। उनकी वीरगाथाओं को याद कराना और जीवित रखना, आजादी की रक्षा की प्रेरणा देना व भरना बस यही इस पुस्तक का पावन राष्ट्रीय एवं देशभक्ति का पूर्ण उद्देश्य है।

सर्वस्व बलिदानी आर्य शिरोमणि कट्टर देशभक्तों के योगदान को जिस तरह उक्त पुस्तक में प्रतिपादन किया है वह आने वाली युवी पीढ़ी की ज्ञान सम्पदा में तो समृद्धि करेगी ही, वहीं इस इतिहास से सुस्पष्ट परिचय मिलेगा कि दयानन्द व आर्य समाज द्वारा भरी गई स्वराज चेतना के कारण ही इन बलिदानी राष्ट्रनायकों ने निस्वार्थ इतिहास के गौरवपूर्ण अध्याय लिखकर राष्ट्रिय अस्मिता को सदा-सदा के लिए अमर कर दिया। धन्य हैं वे लोग और धन्य हैं दयानन्द प्रदत्त समग्र क्रान्ति चेतना।

(प्रो० रूप किशोर शास्त्री)
कुलपति

आचार्य डॉ० उमेश यादव
मिनिस्टर ऑफ रिलीजन
आर्य समाज (वैदिक मिशन)
वेस्ट मिडलैण्ड (यू०के०)

पो०ऑ० गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार–249404, उत्तराखण्ड (भारत)
P.O. Gurukula Kangri, Haridwar-249404, Uttarakhand (INDIA)

Tel. : +91-73007-61329 (O), Fax: +91-133-424-6699, +91-133-424-5265, E-mail: vcoffice@gkv.ac.in, roopjishastri@yahoo.com, roopjishastri@gmail.com, Website: www.gkv.ac.in

आर्य समाज (वैदिक मिशन) वेस्ट मिड्लैंड्स, यू.के.

321 Rookery Road, Handsworth, Birmingham, B 21 9 PR, U K
website:arya-samaj.org ▪ email:enquiries@arya-samaj.org
Tel. 0121 359 7727 (UK) ▪ World : +44 121 359 7727

ट्रस्ट बोर्ड के सदस्य

डॉ. नरेन्द्र कुमार
चेयरमैन

आचार्य डॉ. उमेश यादव
मिनिस्टर ऑफ रिलिजन

श्री रविंदर रेनुकुंटा
कोषाध्यक्ष

डॉ. उमेशचन्द्र कथूरिया
ट्रस्टी

डॉ. पुरुषोत्तम दास गुप्ता
ट्रस्टी

श्रीमती बृज बाला दुग्गल
ट्रस्टी

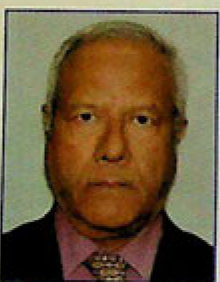

श्री जोगिन्दर पाल सेठी
ट्रस्टी

श्री विजय कुमार हर्फ
ट्रस्टी

श्री परिमल सोमानी
ट्रस्टी

श्री विनोद गुलाटी
ट्रस्टी

विषय-सूची

1. आशीर्वाद व शुभकामनायें
क. स्वामी रामदेव जी महाराज 7
ख. आचार्य देवव्रत-राज्यपाल, गुजरात 8
ग. श्री गंगाप्रसाद-राज्यपाल, सिक्किम 9
घ. डॉ. महावीर अग्रवाल-प्रति कुलपति, पतंजलि विश्वविद्यालय, हरिद्वार 10
ङ. प्रो. रूप किशोर शास्त्री-कुलपति-गुरुकुल कांगड़ी 11
ट्रस्ट-बोर्ड के सदस्य गण 12
विषय-सूची 13-22
2. आभार-डॉ. नरेन्द्र कुमार 23-24
3. एक निवेदन-डॉ. नरेन्द्र कुमार 25-30
4. भूमिका-आचार्य डॉ. उमेश यादव एवं डॉ. नरेन्द्र कुमार 31-38
5. स्वतन्त्रता आन्दोलन का मूल आधार-आर्य समाज या कांग्रेस-
श्री विमल वधावन योगाचार्य 39-52
6. आभार-आचार्य डॉ. उमेश यादव 53-56

प्रथम अध्याय

स्वामी पूर्णानन्द-गुरु विरजानन्द-स्वामी दयानन्द और उनकी राष्ट्रीयता 57
1857 का स्वतंत्रता संग्राम और राष्ट्रोद्धारक महर्षि दयानन्द सरस्वती 58
गुरु विरजानन्द द्वारा खाप-पंचायत 59
पत्र का प्रथम भाग 60
पत्र का द्वितीय भाग 61
श्री जयदेव सिंह सदस्य लोक सभा द्वारा प्रमाण 64
स्वामी दयानन्द को स्वामी पूर्णानन्द व गुरु विरजानन्द से मिलना, उनका
अध्ययन, गुरु से विदाई तथा राष्ट्र सेवा में जुड़ना 64
स्वराज्य के लिये ऋषि-विचार 66
ब्रिटिश सत्ता के उन्मूलन का संकल्प, तांत्या टोपे और
नाना साहब पेशवा से सम्पर्क 67
महर्षि का राष्ट्र-प्रेम के उदाहरण-स. प्र. 69
श्रीराम और कृष्ण दो महापुरुषों की प्रशंसा 70

महर्षि दयानन्द के वेद-भाष्य में राष्ट्रीयता 71
आर्याभिविनय पुस्तक में राष्ट्रीयता के प्रबल उदाहरण 71
कलकत्ता में महर्षि की वायसराय लॉर्ड नोर्थब्रुक से मेल 72
असहयोग आन्दोलन का प्रथम वीज 73
नोन व पौन रोटी पर कर का विरोध 74
गो-रक्षा आन्दोलन-कूका वीरों द्वारा 75
ब्रह्म समाज की समालोचना 76
गो-पालन का महत्व 76
महर्षि दयानन्द की मृत्यु रहस्यपूर्ण 76

द्वितीय अध्याय

महर्षि दयानन्द के सम्पर्क में कुछ महत्त्वपूर्ण राजागण 78
महाराजा सज्जनसिंह व अन्य 79
इन्दौर नरेश 80
बड़ौदा नरेश गायकवाड, कर्नल महाराजा प्रताप सिंह 81
श्री केशर सिंह बारहट, महाराणा फतह सिंह-सम्पर्क 82

तृतीय अध्याय

कांग्रेस का जन्म उद्देश्य तथा तत्कालीन प्रसिद्ध आर्य नेता 85
कांग्रेस के बारे में पं. गुरुदत्त के विचार 87
कांग्रेस-स्थापना के पीछे इसके संस्थापक मि. ह्यूम का मौलिक विचार 87
मेरठ गदर-1987-गो-चर्म से बना कार्तूस का विरोध 87
कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन 89
महादेव गोविन्द राणाडे 89
गोपाल कृष्ण गोखले 90
महात्मा गांधी 91
गांधी का स्वामी श्रद्धानन्द से मेल 92
पंजाब केसरी लाला लाजपत राय 94
बाल-पाल-लाल-विवेचन 95
लाला लाजपत राय के कुछ साहसिक कार्यों के उदाहरण 97
अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द 101
मि. गांधी को "महात्मा" की उपाधि-प्रमाण 102
स्वामी श्रद्धानन्द की दिलेरी 103
असहयोग आन्दोलन में म. गांधी को स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा तार 105
रौल्ट ऐक्ट का स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा विरोध 106
जामामस्जिद में स्वामी श्रद्धानन्द का व्याख्यान 106

अब्दुल रशीद द्वारा स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या
(स्वामी श्रद्धानन्द की) मृत्यु-रहस्य 109
कांग्रेस के कुछ महत्त्वपूर्ण अधिवेशन
(गांधी और स्वामी श्रद्धानन्द-लाला लाजपतराय आदि प्रकरणयुक्त) 110
चतुर्थ अध्याय
श्यामजी कृष्ण वर्मा (विदेशों में) भारतीय क्रांतिकारी संगठन के अग्रदूत व उनके प्रेरित क्रांतिकारी आर्यवीर 117
प्रारंभिक जीवन तथा उनकी शिक्षा 118
बम्बई में स्वामी दयानन्द से उनकी भेंट 118
प्रो. मोनियर विलियम से उनकी बम्बई में ही प्रथम भेंट 119
ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से उनकी लॉ ग्रेजुएशन (बी.ए.) उपाधि 119
विदेश रहते श्यामजी कृष्ण वर्मा को ऋषि दयानन्द द्वारा पत्राचार 120
श्यामजी कृष्ण वर्मा का विदेश व भारत में कार्य 122
लन्दन में श्यामजी द्वारा खरीदा हुआ "इंडिया हाउस" 123
भाई परमानन्द, मदनलाल ढींगड़ा, विनायक दामोदर सावरकार आदि की लन्दन में ही श्यामजी से मिलन 123
सावरकार जी को इंडिया हाउस सौंपकर श्यामजी द्वारा स्विटजरलैंड जाना 123
पं. जवाहर लाल नेहरू का उनसे स्विटजरलैंड में मेल 124
श्यामजी कृष्ण वर्मा के साहसिक कदम व उनकी क्रांतिकारी भावना 124
प्लेग काल में श्यामजी पूना में 125
चापेकर बन्धु-श्यामजी प्रकरण 126
आर्य समाज द्वारा स्वामी श्रद्धानन्द के साथ गुरुकुल कांगड़ी के लिये धन-संग्रह में सहयोग 126
1857 गदर शताब्दी-लन्दन में-लाला लाजपत राय-श्यामजी कृष्ण वर्मा की प्रेरणा 127
इंडिया हाउस लन्दन में वैदिक हवन, सत्संग व प्रेरक व्याख्यान की व्यवस्था
श्यामजी कृष्ण वर्मा व उनकी धर्मपत्नी श्रीमती भानुमति की (जिनोवा-स्विटरजलैंड) में अस्थियाँ 128
भारतवर्ष के वर्तमान प्रधान मंत्री श्री नरेन्द्र मोदी द्वारा उनकी अस्थियों को भारत लाना 129
इंडिया हाउस लन्दन की तरह "क्रांतितीर्थ" महल का निर्माण-मांडवी गुजरात में तथा श्री मोदी द्वारा दूसरी श्रद्धांजलि 132
क्रांतिकारी वीर विनायक दामोदर सावरकर 134

स्वतंत्रता संग्राम का वीजरूप अभिनव भारत सोसाइटी की स्थापना 135
नासिक में ब्रिटिश कलेक्टर ए.एम.टी. जैक्सन को गोली लगना 136
दामोदर सावरकर की मृत्यु और कारण सावरकर पर
आर्यसमाज का प्रभाव 137
अंडमान जेल और भीषण यातनायें 141
सावरकर का अभिनंदन 143
मदन लाल ढींगड़ा एवं उनका कर्जन वायली हत्या-प्रकरण, भाई परमानन्द,
श्री हरदयाल आदि आर्य नेता 144
पंचम अध्याय
भारतीय स्वाधीनता संग्राम में मर मिटने वाले अमर शहीद वीर भगत सिंह और
तद्‌वत अन्य भारतीय आर्यवीर 155
अमर शहीद वीर भगत सिंह का जन्म, वचपन व प्रारंभिक शिक्षा
(डी.ए.वी. विद्यालय लाहौर में) 157
भगत सिंह, राजगुरु, सहदेव, बटुकेश्वर दत्त-आर्य टोली 157
गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार में अजीत सिंह का भव्य स्वागत 160
वीर भगत सिंह और आर्य समाज 162
"इन्क्लाब-जिन्दावाद" का नारा बुलन्द किया 162
भगत सिंह का यज्ञोपववीत/उपनयन संस्कार आर्य विद्वान् पं. लोकनाथ
शास्त्री द्वारा एवं आर्यसमाज कलकत्ता और भगतसिंह का सम्बन्ध 163
यज्ञोपवीत से भगत सिंह पर आर्यत्व का अमिट प्रभाव-पिता को लिखा
पत्र-प्रमाण 165
1968 में भगत सिंह के नाम डाक-टिकत 168
भगत सिंह पर लाला लाजपत राय का राष्ट्रीय प्रभाव एवं साण्डर्स को
गोली मारना 170
सैट्रल असेम्बली में बम फेंकने की योजना व मकसद 172
फांसी चढ़ने से पूर्व छोटे भाई कुलतार सिंह को लिखा पत्र 173
आर्य वीर भगत सिंह और नास्तिकता का भ्रम-निवारण
"वे नास्तिक नहीं थे" इसके अनेक प्रमाण 174
वीर भगत सिंह के अन्य आर्य साथी
शहीद राजगुरु, शहीद सुखदेव 180
श्री यशपाल 182
हँसराज वायरलैस 184
धन्वन्तरी 185
पं. लेखराम वैद्य 186

पं. जयचन्द विद्यालंकार बहन पार्वती 187
श्री मुंशीराम शर्मे 'सोम' 188
पं. सत्यदेव विद्यालंकार 188
श्रीकृष्ण जी 188
ठाकुर यशपाल सिंह (सदस्य लोकसभा) 189
स्वामी भीष्म जी चन्द्र कवि 190
सुशीला देवी, दुर्गा भाभी श्रीमती चन्द्रवती चौधरी 191
अमर शहीद चन्द्रशेखर आजाद आदि 192
नेताजी का उद्‌बोधन-"आर्यसमाज तो हमारी माँ है।" 195
पाकिस्तान कैसे बना-एक प्रसंग 196
स्वामी आत्माराम (रावलपिंडी में) 199
पं. ओम प्रकाश महोपदेशक-वृत्तान्त 199
लंगड़ी आजादी-विचार 200
पष्टम अध्याय
आर्यवीर अमर शहीद राम प्रसाद बिस्मिल, उनके साथी तथा स्वाधीनता संग्राम की कुछ अन्य क्रांतिकारी घटनायें 201
राम प्रसाद बिस्मिल-परिचय 201
प्रारंभिक शिक्षा 201
आर्य समाज शाहजहाँपुर से जुड़ना तथा आर्य विद्वान् स्वामी सोमदेव जी से मेल 202
राम प्रसाद बिस्मिल से जुड़े कुछ संगठन व कांड 202
मैनपुरी योजना 203
पं. गेंदालाल दीक्षित 204
असहयोग आन्दोलन से जुड़े कुछ महत्त्वपूर्ण अधिवेशन 206
बमरौली-डकैती तथा काकोरी कांड 207
आर्य समाज की दृष्टि में राम प्रसाद बिस्मिल एवं उनका आर्य चरित्र 209
स्वामी सोम देव जी महाराज 210
बिस्मिल और सत्यार्थ प्रकाश 211
एक प्रश्न-क्या बिस्मिल भी कट्टर आर्य समाजी नहीं थे? 212
बिस्मिल की अंतिम इच्छा के पूछे गये प्रश्नों का उत्तर ही उपरोक्त प्रश्न का समाधान 213
फांसी से पूर्व लिखी हुई बिस्मिल की वीरतापूर्ण कविता 214
पुनर्जन्म व देश-प्रेम में बिस्मिल का विश्वास 215

स्वामी ओमानन्द (झझर-हरियाणा) बिस्मिल की बहन शास्त्री देवी
के भाई बने-रोचक दृष्टान्त तथा गुरुकुल में बिस्मिल के स्मृति चिह्न 216
ठाकुर रोशन सिंह, अभिलाशचन्द्र व विष्णु दुब्लिस
उत्तर प्रदेश, हरियाणा व पंजाब के कुछ आर्य समाजी वीर स्वतंत्रता
सेनानी के रूप में 219
काशी घटना 220
दिल्ली षडयन्त्र के कुछ आर्य क्रांतिकारी वीर तथा
शहीद भाई बालमुकुन्द जी 221
श्री प्रताप बारहट और उनकी माता 222
वीर युवा बलराज (महात्मा हँसराज के बड़े पुत्र) 223
पं. जगत राम हरियानवी 224
पं. सोहन लाल पाठक और आर्य वीर हरदयाल जी की भेंट 225
कोटा-कांड और आर्यवीर 226
देवता स्वरूप भाई परमानन्द 227
पं. इन्द्र विद्यावचस्पति 230
महाशय कृष्ण (जालन्धर-पंजाब) 231
महाशय वीरेन्द्र 233
डॉ. सत्यपाल, महाशय रत्नचन्द, जालियांवाला वाग-कांड
और आर्य समाज 234
महाशय खुशहाल चन्द (आनन्द स्वामी), श्री रणवीर (उनके बड़े पुत्र)
और श्री यश जी (उनके छोटे पुत्र) 236
लाला भीमसेन सच्चर 237
गोपी चन्द भार्गव-डॉ. गोकुल चन्द्र नारंग 237
महात्मा देवी चन्द एम.ए. 237
लाला राम प्रसाद 238
श्री प्रबोध चन्द्र 238
लाला जगत् नारायण 240
स्वामी आत्मानन्द जी महाराज 240
जालन्धर के रायजादा भगत राम 241
लाला देवराज 241
स्वतंत्रता संग्राम में आर्यसमाज का 80 प्रतिशत योगदान के प्रबल प्रमाण 242
पट्टाभिसीता रमैया आदि द्वारा प्रमाणित 243
महावीर त्यागी 248
अलगुराय शास्त्री 249

चौधरी चरण सिंह 249
श्री चन्द्रभान गुप्त 250
श्री गोविन्द बल्लभ पंत 250
पं. लाल बहादुर शास्त्री 250
श्री जयानन्द भारती 251
पं. शिवदयालु जी की हापुड़ में अध्यक्षता 251
वैद्य पं. शेर सिंह 252
स्वामी रामेश्वरानन्द जी महाराज 253
पं. नरदेव शास्त्री 'वेद तीर्थ 254
स्वामी अभेदानन्द जी महाराज 254
श्री घनश्याम सिंह गुप्त 254
लाला देश बन्धु गुप्त 254
पं. दामोदर सातवलेकर 254
श्री पं. महारानी शंकर 255
पं. प्रकाश चन्द्र 'कविरत्न' 255
श्री चन्द्रसिंह गढ़वाली 255
श्री रासविहारी तिवारी 256
पं. सत्यपाल विद्यालंकार 256
श्री ज्ञानी पिंडी दास जी 256
आचार्य भगवान् देव (स्वामी ओमानन्द जी महाराज) 257
आर्य कुंवर सुख लाल जी 257
स्वामी सत्यदेव परिव्राजक 258
पं. शिव दयालु जी 259
आर्य वीराँगनायें 260
श्रीमती चन्द्रावती लखनपाल 260
श्रीमती शारदा जी 261

सप्तम अध्याय

स्वाधीनता संग्राम में आर्य शिक्षा-जगत् की महत्त्वपूर्ण भूमिका 262
अंग्रेजों की कपटता (लार्ड क्लाइव और लार्ड मैकाले की सोच) 262
गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार 264
गुरुकुल कांगड़ी और कलकत्ता विश्वविद्यालय में मौलिक अन्तर 266
इन्द्र की निर्भीकता गुरुकुल काल में 268
सत्याग्रह और गुरुकुल के ब्रह्मचारी 270
आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर 271

गुरुकुल घरौंडा (करनाल-हरियाणा) 273
132 आर्य/वैदिक गुरुकुलों की सूची 275
गुरुकुल घटकेश्वर (हैदराबाद) 298
दयानन्द उपदेशक विद्यालय लवपुर/लाहौर (कालान्तर में परिणत नाम 298
दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय, हिसार) 299
आर्य गुरुकुल गुजरांवाला 299
वैदिक आश्रम अलीगढ़ 299
मुसाफ़िर महाविद्यालय आगरा 300
गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन (राजा महेन्द्र प्रताप-भूमि) 300
राजा महेन्द्र प्रताप के साथ हरिचन्द्र विद्यालंकार 302
पतंजलि गुरुकुलम्-आधुनिक गुरुकुलों के बढ़ते कदम 303
पतंजलि गुरुकुलम्-परिचय 304
पतंजलि गुरुकुलम् के दर्शन और योजनायें 307
गुरुकुल किशन गढ़ घासेड़ा (रेवाड़ी-हरियाणा) और उसकी विशेषतायें 311
पाठ्यक्रम और परीक्षा-व्यवस्था 317
डी.ए.वी शिक्षा-आन्दोलन 317
महात्मा हँसराज, लाला लाजपत राय और पं. गुरुदत्त विद्यार्थी 317
डी.ए.वी, के नैतिक शिक्षा संस्थान दयानन्द ब्राह्म महा विद्यालय हिसार और उपदेशक महाविद्यालय टंकारा 318
स्वाधीनता संग्राम में डी.ए.वी, का योगदान 319
कम वेतन पर काम करने की महात्मा हँसराज द्वारा प्रेरणा 322
1942 के आन्दोलन में डी.ए.वी. कॉलेज लाहौर 323
लाला लाजपत राय, भगत सिंह और भगवती भाई का जुड़ना 323
आर्य समाजियों के साथ ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा खुलं खुला दुर्व्यवहार के कुछ उदाहरण 324
स्वामी श्रद्धानन्द और कर्नल हाकोर्ट का संवाद 328
रोमा रोल्लैंड द्वारा आर्य समाज की प्रशंसा 329
"आर्य समाज स्वदेश के लिए हरदम मर मिटने को तैयार रहा।" 331

अष्टम अध्याय

स्वाधीनता संग्राम-कालीन कुछ महत्त्वपूर्ण घटनायें 332
पंजाबी अखबार लाहौर मुकदमा 332
रावलपिंडी-कांड 333
पटियाला-आयोग 335
इलाहाबाद-करांची-केश-सत्यार्थप्रकाश-अभियोग 336

नेपाल सरकार व आर्य वीर शुक्रराज शास्त्री 337
हैदराबाद-कर्नाटक-निज़ाम की मुक्ति में आर्य समाज का योगदान 338
स्वराज्य का प्रकाश फूटा 339
देश-विभाजन और निज़ाम 340
निज़ाम का भारतद्रोही प्रयास के कुछ उदाहरण 341
हैदराबाद में आर्य समाज का शुरूआत (1980 में) 343
हैदराबाद का अंतिम निज़ाम-उस्मान अली खाँ-विश्वविद्यालय अलीगढ़ का स्नातक 344
पं. नरेन्द्र जी और हैदराबाद निज़ाम तथा पं. विनायक राव विद्यालंकार का नेतृत्व 345
पं. नरेन्द्र जी का प्रारंभिक जीवन व उनकी शिक्षा 346
पं. नरेन्द्र जी का 1932 में स्वामी स्वतंत्रता नन्द जी के पत्र के साथ हैदराबाद आना 348
हैदराबाद में पं. नरेन्द्र और निज़ाम की लड़ाई 348
पं. नरेन्द्र के कुछ चुनौति पूर्ण प्रेरणात्मक कार्य 348
निज़ाम उस्मान द्वारा पं. नरेन्द्र से क्षमा याचना 350
पं. नरेन्द्र की सम्पत्ति-जब्त 351
पं. नरेन्द्र की जेल-यातनायें 352
हैदराबाद के आर्य नेता श्री घनश्याम जी और देशबन्धु गुप्त का नेतृत्व में आर्य सभायें 353
पं. नरेन्द्र की रिहाई 354
पं. नरेन्द्र के विभिन्न आर्य संस्थानों से सम्बन्ध तथा सम्मेलनों और सभाओं (1946-1976 तक) की अगुवाई 354
संन्यास धारण (स्वामी सोमानन्द सरस्वती) के बाद 24 सितम्बर, 1976 को पं. नरेन्द्र जी की मृत्यु 355
अमर हुतात्मा भाई श्याम लाल तथा भाई वंशी लाल 355
आजादी के बाद मिलिट्री एक्शन 356
अखंड भारत व सरदार पटेल नरेन्द्र आदि द्वारा बम फेंकना 357
आर्य नेता भाई वंशी लाल का दिल्ली में तत्कालीन गृहमंत्री सरदार बल्लभ भाई पटेल से मेल 360
मिलिट्री एक्शन पूरा हुआ 361
सरदार पटेल के साहसिक कदम 361
हैदराबाद सत्याग्रह के वीर बलिदानी-"सुनहरा सिंह आर्य"........ 363
गोवा-सत्याग्रह 365

कश्मीर-समस्या व जस्टिस मेहरचन्द महाजन 366
फिरोजपुर व गुरदासपुर को भारतवर्ष का हिस्सा बनाने में मेहरचन्द महाजन का योगदान 368
मेहरचन्द महाजन का सामाजिक और आध्यात्मिक पहलू 369
उपदेश विद्यालय टंकारा का आरंभ एवं जस्टिश मेहरचन्द महाजन अस्पताल 370
मेहरचन्द महाजन के नाम पर डाक-टिकट 370
महाराजा हरि सिंह द्वारा न्यायमूर्ति मेहरचन्द महाजन को जमीन-दान एवं मेहरचन्द की छाय माँ रंगदू 371
नवम अध्याय
इतिहास के नये पन्ने 373
स्वतंत्रता सेनानी बाबू मिश्री लाल आर्य का व्यक्तित्व 373
उनका जन्म और जीवन 374
विवाह-काल में ब्रिटिश सरकार द्वारा गिरफ्तारी का वारंट तथा निर्वासन-काल में ही विवाह-एक रोचक-वृतान्त 375
उनकी सब संतानें आर्य समाजी 377
श्री मिश्री लाल जी का स्वाधीनता-संग्राम में योगदान व उनकी जेल-यात्रा 379
श्री मिश्रीलाल आर्य के विभिन्न आर्य संस्थानों से जिम्मेवारीयुक्त सम्बन्ध और उनकी अगुवाई तथा मृत्यु राजकीय सम्मान व वैदिक रीति से अंत्येष्टि.कर्म 382
उनके निधन पर विभिन्न भावपूर्ण श्रद्धांजलियाँ 384
मृत्यु का पूर्वाभास 391
गोरखालैंड-आन्दोलन में कलकत्ता से दार्जलिंग तक पद-यात्रा 392
आर्य समाज कलकत्ता द्वारा श्री मिश्रीलाल आर्य का समारोहपूर्वक "भव्य अभिनन्दन" 407
श्रीराम आर्य-कलकत्ता का परिचय 408
श्री मिश्रीलाल आर्य इंटर कॉलेज-विवरण 408
आर्यसमाज टांडा का स्वाधीनता संग्राम में योगदान 410
आर्य समाज टांडा की विशेषतायें 411
स्वतंत्रता संग्राम और आर्य समाज टांडा 413
परिशिष्ट भाग 415
सहायक साहित्य-सूची 418

आभार

मैं उन सभी बुद्धिमान् आर्य लोगों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करना चाहता हूं जिन्होंने मुझे विचार दिया और आर्य समाज आंदोलन के इतने सारे नायकों के अंतिम बलिदानों की उचित मान्यता प्राप्त करने के लिए इस तरह की पुस्तक बनाने और लिखने में मेरी मदद की। उन बलिदानियों ने आरामदायक जीवन शैली, परिवारों, सुरक्षित नौकारियों और अपने व्यवसायों को त्याग दिया, अपनी प्यारी मातृभूमि भारतवर्ष (आर्यवर्त्त) की स्वतंत्रता के लिए अपनी आय और धन के सभी स्रोत छोड़ दिए। उन्हें इस बात की चिन्ता नहीं थी कि उनके जाने के बाद अपनों का क्या होगा।

सबसे पहले मैं श्री परमेश्वर नाथ मिश्रा, भारत के सर्वोच्च न्यायलय के अधिवक्ता को धन्यवाद देना चाहता हूँ कि उन्होंने मुझे आर्य समाज आंदोलन के सदस्यों के प्रमुख योगदान के बारे में इस तरह की एक किताब लिखने का विचार दिया, जिसमें इस दावे का समर्थन करने के लिए पर्याप्त सबूत उपलब्ध हों। मैं निम्नलिखित व्यक्तियों का बहुत आभारी हूँ जिन्होंने मुझे इस पुस्तक को लिखने में प्रासंगिक जानकारी प्रदान की।

– श्री आनंद कुमार आर्य
प्रधान-आर्य समाज टांडा (यूपी), भारत

– श्री राम जायसवाल
प्रधान, आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल, पूर्व प्रधान, आर्यसमाज कोलकाता, भारत

– श्री निगेल बकले
सहायक लाइब्रेरियन, बॉलियल कॉलेज, ऑक्सफोर्ड OX1 3BJ, यूके

– श्री गगन मनोचा
पतंजलि आयुर्वेद और पतंजलि योगपीठ

– स्वामी आर्यवेश और प्रो. विट्ठलराव आर्य
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली, भारत

– डॉ. ज्वलंत कुमार शास्त्री
सेवानिवृत्त विभागाध्यक्ष पोस्ट ग्रेजुएट संस्कृत महाविद्यालय, अमेठी

मैं वेस्ट मिडलैंड्स, बर्मिंघम में बोर्ड ऑफ ट्रस्टीज आर्य समाज के अपने सहयोगियों का बहुत आभारी हूँ कि उन्होंने इस पुस्तक को लिखने और इसे प्रकाशित करने के लिए पूर्ण समर्थन दिया। आर्य समाज की अंशकालिक प्रबंधक, मिस लिसा (राजी) चौहान की मदद के लिए पूरी तरह से सराहना करता हूँ, जिन्होंने प्रकाशकों को भेजने के लिए तैयार सभी लिखित सामग्री और तस्वीरें एक साथ रखने में मदद की। श्री अजय कुमार आर्य, गोविंदराम हासानन्द, वैदिक पुस्तकों के प्रकाशक, दिल्ली भारत को इस पुस्तक को छापने के लिए धन्यवाद देना चाहता हूँ। अजय जी को अपने कई फोन कॉलों में, मैंने उन्हें स्पष्ट रूप से इस बात पर जोर दिया कि इस पुस्तक को ईबुक के रूप में सिस्टम पर रखकर अधिक से अधिक इसका प्रचार हो सके ताकि लोग स्वतंत्र भारत के लिए स्वतंत्रता संग्राम के वास्तविक योद्धाओं को जान सकें।

अंततः मैं आचार्य डॉ. उमेश यादव, धर्माचार्य, आर्यसमाज, वेस्ट मिडलैंड्स, बर्मिंघम, यूके का आभारी हूँ कि उन्होंने मेरे साथ इस पुस्तक को लिखने के लिए सहमति व्यक्त की।

–डॉ. नरेंद्र कुमार

एक निवेदन

डॉ. नरेन्द्र कुमार

आर्यसमाजी स्वतंत्रता सेनानी पिता, स्वतंत्रता सेनानी परिवार तथा आर्य सिद्धान्तों से संस्कारित माता की संतान होने का मुझे सौभाग्य मिला। फलत: मुझे संस्कार में ही बचपन से जो शिक्षा और नैतिकता प्राप्त हुई वह आर्यावर्त्त के गौरवपूर्ण इतिहास के साथ, महर्षि दयानन्द की राष्ट्रीय चेतना भी थी। यद्यपि मैं एक मेडिकल डॉक्टर बना, परन्तु मेरा अब तक का जीवन आर्यसमाज के संस्कारों में ही फल-फूल रहा है। अनेकानेक आर्य विद्वानों के मुखारविन्दों से तथा उनकी पुस्तकें पढ़कर आर्यावर्त्त/भारतवर्ष की गरिमा को जाना। माता-पिता की तदनुरूप रुचि, तथा उसको और क्रियान्वित करने के लिए उनके कदमों को देखा इस कारण मैं अपने देश के प्रति स्वाभिमानी रहा और मुझे देश के लिए कुछ करने की प्रेरणा भी मिली। मैंने स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास को पढ़ा ख़ूब मनन-चिन्तन किया। फिर मुझे इस बात का बोध हुआ कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में आर्यसमाज से प्रेरित होकर आर्यसमाजियों का लगभग 80% योगदान रहा है।

कई वर्षों से मेरी आत्मा (जमीर) मुझे झकझोर रही थी कि आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती की राष्ट्रीय प्रेम की भावना की प्रेरणा से प्रेरित होकर भारत की स्वतंत्रता के लिए जिन आर्यसमाजी नेताओं तथा कार्यकर्त्ताओं ने लड़ाइयाँ लड़ीं, सत्याग्रह किया, जेल गए, पुलिस की लाठियाँ सहीं, जो फाँसी के फंदों पर हँसते-हँसते झूल गए और अन्तत: देश के लिए बलिदान हो गए, भारत के इतिहास में

उनका नाम तक नहीं आता, न ही सरकारी स्तर पर कहीं उनकी चर्चा होती है।

एक तरफ आर्यसमाज के 80% जमीनी बलिदानी और दूसरी तरफ केवल 20% ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी और ऑल इंडिया मुस्लिम लीग की मिलीभगत! भला विचार तो करें कि आर्यसमाज के बलिदानियों के साथ कितना न्याय हुआ? भारत के तथाकथित आधुनिक इतिहास की सारी गाथाएँ मोहनदास कर्मचन्द गांधी, जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल, मोहम्मद अली जिन्ना जैसे नेताओं के ही इर्द-गिर्द घूमती रही है और वही पढ़ी तथा सुनाई जाती है।

देश पर सर्वस्व लुटाने वाले बलिदानी आर्यसमाजी परिवारों की स्वतंत्र भारत की कांग्रेस सरकार द्वारा उपेक्षा किया जाना तो दु:स्वप्न जैसा ही साबित हुआ। सरल भाषा में कहें कि इन प्रभावित परिवारों के लिए स्वतंत्र भारत की सरकार ने कुछ नहीं किया। यह आर्यसमाजियों के साथ कैसा घोर अन्याय है?

इतिहास को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करने वाले चन्द इतिहासकारों ने आर्यसमाजियों के बलिदान को भुलाने का जो पाप किया है वह अक्षम्य है। लेकिन आर्यसमाज से जुड़े इतिहासकारों ने अपने प्रयासों द्वारा सच को प्रस्तुत करने का प्रयास भी किया है।

मैं इस विषय पर विचार करता हूँ, तो यह मेरी समझ से घोर अन्याय है कि, हमारे बच्चों को आर्यसमाज के योगदान के बारे में कुछ नहीं बताया जाता बल्कि इसका उलटा उन्हें यही पढ़ाया और रटाया जाता है कि भारत को आजादी केवल भारतीय राष्ट्रीय क़ांग्रेस पार्टी ने ही दिलाई।

यह तथ्य सच्चाई से कोसों दूर है। बच्चों को इस तरह का पाठ पढ़ाना अनैतिक होने के साथ-साथ उन्हें भ्रमित करना भी है। बिना 80% आर्यसमाजी नेताओं और कार्यकर्त्ताओं के सहयोग के गांधी जी और नेहरू जी से तो ब्रिटिश सरकार बात भी नहीं करती थी। यह सत्य है कि—
"जिस विपक्ष के पास कोई बड़ी सामूहिक जन-सहयोग व ताकत न हो, उसे कोई सरकार नहीं सुनेगी।" ("Any Goverment will not listen to oppostion which does not have a big majority support of masses.")

शुरू-शुरू में अंग्रेजी सरकार ने भी यही किया। तथाकथित कांग्रेसी नेता सरकार के आगे सिर पटकते रहे कि रौलेट एक्ट वापस ले लो पर किसी ने नहीं सुना। लेकिन जब इसके खिलाफ अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी ने दिल्ली चाँदनी चौक में जुलूस निकाला तो अंग्रेजी सरकार घबरा गई। गोरे सैनिकों ने जुलूस को रोकना चाहा लेकिन स्वामी श्रदानन्द ने अपना सीना तान दिया और गरज उठे गोरे सैनिकों पर-'चलाओ अपनी संगीनें मेरा सीना खुला है।' गोरे सैनिक निडर संन्यासी की सिंह गर्जना सुन दुबक गए। तब आन-बान-शान के साथ जुलूस बढ़ा जो आगे चलकर एक विराट सभा में परिवर्तित हो गया।

इसका प्रभाव अंग्रेजी सरकार पर पड़ा और वह वार्ता को तैयार हुई। अंग्रेजी हुकूमत को लगा कि आर्यसमाजी ताकत को दबाया नहीं जा सकता फिर उसने वार्ता शुरू की।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और ऑल इंडिया मुस्लिम लीग के नेताओं ने धर्म के नाम पर भारतवर्ष देश को आर्य नेताओं की मर्जी के खिलाफ बाँट दिया।

तथाकथित आधुनिक भारत के निर्माता की पुत्री तथाकथित आयरन लेडी ने मुस्लिमों तथा अपने प्रगतिशील कहलानेवालों तथा अपना वजूद कायम रखने के लिए श्रीमती इंदिरा गांधी ने सन् 1975 में भारत के संविधान में 'सेक्यूलर' शब्द जोड़ दिया जिसे 'धर्मनिरपेक्ष' समझा जाता है। प्रायः सरदार वल्लभभाई पटेल कहा करते थे कि ''महर्षि दयानन्द के सिद्धान्तों पर चलते तो देश का कभी बँटवारा नहीं होता।''

भला यह सब क्या आज के इतिहास में पढ़ाया जाता है? कदापि नहीं। कांग्रेसी नेताओं को लगा कि यदि इस तथ्य को इतिहास में जगह मिल गई तो हम कांग्रेसियों को कौन पूछेगा? बस इसी स्वार्थ ने कांग्रेसियों को मजबूर कर दिया कि वे आर्यसमाजियों को स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास में पैर न जमाने दे। अपनी ओर से उन्होंने भरसक कोशिश की पर सच तो चमकता सूरज होता है जो बादलों को छिन्न-भिन्न कर अपना प्रकाश फैला ही देता है।

जरा विचार करें—धर्मनिरपेक्ष = धर्म+निः+अपेक्ष अर्थात् धर्म की अपेक्षा नहीं। शास्त्र में धर्म के लक्षण बताए गए हैं—धैर्य, क्षमा, दम,

अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धि: (बुद्धि), विद्या, सत्य और अक्रोध। तो क्या राष्ट्र इन गुणों के बिना श्रेष्ठता को प्राप्त कर सकता है? राष्ट्र की उन्नति के लिए धर्म की अपेक्षा तो हमेशा ही रहेगी। राष्ट्र को सेक्यूलर कह कर धर्मविहीन बनाना राष्ट्र के चरित्र का हनन करना ही है अत: यह स्पष्ट है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती की दृष्टि से राष्ट्र को सेक्यूलर का दर्जा देना बिल्कुल गलत है।

हमें इस पर विचार करना ही होगा और इन गलतियों को सुधारने के लिए आर्यसमाज को सामूहिक प्रयास करना होगा। इसमें हमारा प्रमाद भी कम दोषी नहीं है। यदि उस समय आर्यसमाजी एकजुट होकर कांग्रेस तथा देश विभाजक ताकतों के सामने एकजुट खड़े हो जाते तो देश का बँटवारा नहीं होता और यदि होता भी तो इस तरह का नहीं जैसा कि कांग्रेसियों ने कराया। जब गलती हो ही गई है तो इसे सुधारने का फर्ज भी तो हमारा ही है। हम सरकार तक इस तथ्य को पहुँचाएँ कि देश को स्वतन्त्र कराने में आर्यसमाजियों का लगभग 80% योगदान रहा है। इस तथ्य को और कोई पहुँचाने आगे नहीं आएगा। अब तक हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे और सही तथ्य को सरकार तक नहीं पहुँचा सके। पर अब और नहीं रुक सकते। इसके लिए हमें दृढ़ संकल्प लेना होगा और भारत सरकार के संज्ञान में इस सत्य इतिहास को लाना होगा। यदि हम यह सत्य सप्रमाण सरकार के सामने रखें तो उसे इस तथ्य को स्वीकार करना ही पड़ेगा। हमें उसके लिए कठोर परिश्रम करने की जरूरत है। हम ऐसी दृढ़ता से डट जाएँ कि भारत सरकार को भी आर्यसमाज द्वारा बनाए इस सच्चे इतिहास की मान्यता देनी ही पड़े।

ऋषि-मुनियों का यह आर्यावर्त्त जो विश्व का गुरु था, हमारा देश गरिमामय आर्यावर्त्त था, है और रहेगा। वोटों के प्रलोभन से दूर हटकर हमें आज भी इसके लिए प्रयास करना होगा।

हम सब आर्यसमाजी कार्यकर्ताओं की सरकार से यह माँग है कि इस सत्य को इतिहास के पाठ्यक्रम में सम्मिलित करे और भारतवर्ष के बच्चे-बच्चे को पढ़ाया जाए कि भारत को आजाद कराने में आर्यसमाज का लगभग 80% योगदान है।

भारत-गमन पर मैं सुप्रीम कोर्ट (भारत) के वरिष्ठ वकील श्री

परमेश्वर नाथ मिश्रा से मिला। मैंने इस विषय पर चर्चा की, मैंने उनसे जानना चाहा कि इस महत्त्वपूर्ण इतिहास को भारत सरकार तक कैसे पहुँचाया जाए ताकि यह बच्चों के पाठ्यक्रम का हिस्सा बन सके?

उन्होंने कहा कि "सारे तथ्यों के साथ एक पुस्तक लिखी जाए और फिर यह पुस्तक प्रधान मंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी को दी जाए, तब यह कार्य सम्भव है।"

जनवरी 2020 में भारत-यात्रा से वापस ब्रिटेन आने पर इस बात को आर्यसमाज (वैदिक मिशन) वेस्ट मिड्लैंड्स, बर्मिंघम, यू.के. के धर्माचार्य डॉ. उमेश यादव जी से की। पुस्तक-लेखन का कार्य आचार्य जी ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। बस क्या था! हम दोनों इस महत्त्वपूर्ण कार्य को पूरा करने के निमित्त जुट गए। वर्षों की मेहनत रंग लाई। उसी के फलस्वरूप यह पुस्तक अब आपके हाथ में प्रस्तुत है।

भारतीय स्वतंत्रता की चेतना जगाने को और उसे कार्य-व्यवहार में लाने में आर्यसमाज द्वारा चलाए गए शिक्षा संस्थानों का अद्वितीय योगदान रहा है। इस कारण यहाँ आर्ष/आर्य गुरुकुलों, डी.ए.वी. शिक्षण संस्थानों (स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय) तथा यहाँ तक कि आधुनिक युग में भी इनकी प्रासंगिकता को सार्थक करने के पवित्र उद्देश्य से श्रद्धेय स्वामी रामदेव जी द्वारा चलाए जा रहे पतंजलि विश्वविद्यालय के अन्तर्गत वैदिक गुरुकुलों को भी 'गुरुकुल के बढ़ते कदम' के रूप में सम्मिलित किया गया है। कुछ आवश्यक सामग्री जुटाने में सहायता के लिए मैं श्रद्धेय स्वामी आर्यवेश जी, प्रधान, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली (भारत) और स्वामी रामदेव जी महाराज, पतंजलि योगपीठ/विश्वविद्यालय, हरिद्वार के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ। इन गुरुकुलों का विस्तृत विवरण आप इस पुस्तक में पढ़ेंगे।

प्रस्तुत पुस्तक में कुछ महत्त्वपूर्ण बातें इस प्रकार हैं—

1. श्री नरेन्द्र मोदी गुजरात के जब मुख्यमंत्री बने (वर्त्तमान प्रधान मंत्री, भारत) तो जिनिवा, स्विट्जरलैंड से महान् क्रांतिकारी श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा और उनकी धर्मपत्नी की अस्थियाँ अपने गृह-प्रदेश में ले आए। उन्होंने उनके नाम पर कच्छ, गुजरात के माँडवी स्थान में 'क्रांतितीर्थ' नामक ऐतिहासिक भवन बनवाया जो लन्दन, यू.के. में श्री

श्यामजी कृष्ण वर्मा के निवास 'इंडिया हाउस' का ही प्रतिरूप है। इस पुस्तक में इसका विस्तार से वर्णन किया गया है।

2. वीर भगतसिंह—कुछ नासमझ इतिहासकारों ने भगतसिंह को नास्तिक सिद्ध करने की कोई कसर नहीं छोड़ी जब कि उनका नास्तिक होना एकदम शत प्रतिशत (100%) असत्य है। इस पुस्तक में यह स्पष्ट किया गया है कि वीर भगतसिंह के बारे में यह सरासर गलत भ्रम फैलाया गया कि वह नास्तिक थे। इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि वह तो जन्म से ही आर्यसमाजी परिवार में पले, आस्तिक भाव रखने वाले वैदिक संध्या, हवन करने वाले तथा आर्यसमाज के सत्संगों में जाने वाले थे। जीवनपर्यन्त वे सच्चे ईश्वरभक्त और निष्ठावान आर्यसमाजी रहे।

3. जम्मू-कश्मीर—आज जम्मू-कश्मीर अगर भारतवर्ष का महत्त्वपूर्ण अभिन्न अंग है तो इसमें सर्वाधिक श्रेय स्वर्गीय जस्टिस मेहरचन्द महाजन जी और महाराजा हरि सिंह जी को जाता है, न कि किसी और को।

4. हैदराबाद-निजाम-खात्मा—हैदराबाद-निजाम को पराजित करने और उस रियासत को भारतवर्ष में मिलाने के लिए जमीनी कार्यवाही क्षेत्रीय आर्यसमाज के क्रांतिकारी आर्यवीरों तथा क्रांतिकारी आर्य वीर पं. नरेन्द्र जी की कर्मठतापूर्ण अगुवाई में हुई। सरदार वल्लभभाई पटेल ने इस कार्य में आर्यसमाजी वीरों के पुरुषार्थ को सफल बनाने में मदद की। तब हैदराबाद भारत संघ का अंग बन सका।

इस तरह पाठकगण पाएँगे कि इस पुस्तक में आर्यसमाजी वीरों के बलिदान तथा साहसिक कार्यों का विस्तार से वर्णन किया गया है। निश्चय ही यह पुस्तक नयी पीढ़ी के लिए प्रेरणा बनेगी; हमें ऐसी पूर्ण आशा है।

इस दिशा में अभी भी बहुत सारे अनछुये अंश बाकी हैं—आगे भी कार्य करने की जरूरत रहेगी।

विनीत

—डॉ. नरेन्द्र कुमार

एम.बी.बी.एस, एम.एस (ट्रौमा एंड आर्थोपीडिक), एफ.आर.सी.एस.

प्रधान (चेयरमैन)

आर्यसमाज (वैदिक मिशन) वेस्ट मिड्लैंड्स

(बर्मिंघम), यूनाइटेड किंगडम

भूमिका

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में आर्यसमाज का विशेष (80%) योगदान

लगभग 600 वर्ष मुगलराज तथा 200 वर्ष ब्रिटिशराज के शिकंजों में जकड़ी भारतमाता की पीड़ा को कनखल (हरिद्वार) रहते हुए स्वामी पूर्णानन्द ने अपने जीवन काल में ही अनुभव कर लिया था। 1855 ई. में जब स्वामी दयानन्द उनसे मिले तो उन्होंने अपनी हृदय की राष्ट्रीय व्यथा जिज्ञासु दयानन्द के सामने रखते हुए उनके अन्त:करण में भी स्वदेश की भावना प्रबल कर दी। अपनी वृद्ध-अवस्था के कारण उन्होंने स्वामी दयानन्द को अपने शिष्य स्वामी दंडी विरजानन्द के पास मथुरा जाने को कहा। उन्होंने स्वामी दयानन्द को परामर्श दिया कि पहले वैदिक व्याकरण को अच्छी तरह पढ़ो तभी वेद-ज्ञान को सम्यग् समझा जा सकता है वैदिक ज्ञान का प्रचार-प्रसार होने से ही अपने आर्यावर्त्त की मौलिक रक्षा सम्भव है।

स्वामी पूर्णानन्द के सद्‌विचारों का स्वामी दयानन्द पर प्रबल प्रभाव पड़ा। उसी समय से स्वामी दयानन्द के अन्त:करण में विदेशी राज्य के प्रति विरोध की अग्नि भड़कने लगी। वह गुरु विरजानन्द के पास न जाकर, मराठी नेता नाना साहब पेशवा आदि से मिले। उन्होंने साधु- संन्यासी-तपस्वियों के अन्दर राष्ट्रीय चेतना जगाकर ब्रिटिश राज्य के विरोध के लिए संगठन बनाने की कोशिश की। बैराकपुर सैन्यावास (बंगाल) में भी गए वहाँ बंगाल के प्रथम क्रांतिकारी मंगल पांडे नामक सैन्य ने स्वामी दयानन्द से आशीर्वाद माँगा और स्वाधीनता के लिए मरमिटने का संकल्प लिया। पर तत्कालीन प्रयास विफल होता देख स्वामी दयानन्द यह समझ गए कि भारतीय लोग वैदिक सिद्धान्त

तथा मर्यादा को शुद्धरूप से जब तक नहीं समझ और अपना लेते तब तक वे अपने राष्ट्र को स्वतंत्र कराने के लिए जी-जान से एकजुट नहीं हो सकते।

अज्ञानतावश भारत की जनता स्वार्थ आदि दोषों का शिकार होने से अंग्रेजों से लड़ने की ताकत नहीं जुटा पा रही थी। इस समय तक स्वामी दयानन्द भी वैदिक ज्ञान से पूरी तरह अवगत नहीं हो सके थे। इसके लिए व्याकरण का ज्ञान प्राप्त करना उनके लिए अपरीहार्य अनिवार्य था। फलत: 1860 ई. में स्वामी दयानन्द स्वामी पूर्णानन्द के आदेशानुसार मथुरा निवासी व्याकरण के सूर्य प्रज्ञाचक्षु दंडी विरजानन्द के पास पहुँचे। यहाँ उन्होंने व्याकरण का विधिवत् अध्ययन किया। असाधारण प्रतिभा के धनी स्वामी दयानन्द केवल 2½ वर्ष की अल्पावधि में व्याकरण के साथ-साथ अन्य शास्त्रों में पारंगत हो गए। इस योग्य हो गए थे कि वे वेदों का भाष्य स्वयं कर सकें। स्वामी दयानन्द सर्वस्व त्यागी थे। गुरुदक्षिणा में वह अपने गुरु दंडी विरजानन्द को क्या देते? लोकाचारवश जैसे-तैसे कुछ लौंग लेकर उनके चरणों में उपस्थित हुए और गुरुदक्षिणा के रूप में लौंग अपने गुरु के सामने रखकर हाथ जोड़ खड़े हो गए। विरजानन्द जी महाराज को लौकिक वस्तु नहीं चाहिए थी। वह तो स्वामी दयानन्द से गुरुदक्षिणा में कुछ ओर ही चाहते थे। बोले—"दयानन्द मैंने वेदों की गुत्थी को सुलझाने की जो चाबी दी है—"व्याकरण का ज्ञान" उससे पूरे देश में वैदिक ज्ञान का प्रचार-प्रसार करो। अंधविश्वास में डूबे भारतवर्ष को जगा दो। बस मेरी यही गुरुदक्षिणा है।" स्वामी दयानन्द ने गुरु के चरणों में माथा नवाया और ऐसा ही करने का वचन देके वहाँ से विदा हुए।

संसार के कल्याणार्थ उन्होंने वैदिक ग्रंथों का प्रचार-प्रसार-संकल्प के साथ जगोपकार में लगकर सर्वत्र अज्ञानता, गुलामी, चाटुरता, स्वार्थ आदि दोषों में फँसे भारतीयों को स्वाधीनता का पाठ पढ़ाया। वह भारतीयों को स्वदेश, स्वभाषा, स्वदेशी वस्तु, स्वसंस्कृति तथा स्वसभ्यता की शुद्ध गरिमा से अवगत कराने में जुट गए। 1857 के संग्राम का शंखनाद महर्षि दयानन्द ने अपनी वाणी और व्यवहारों से ही नहीं, अपितु अपने ग्रंथों में भी सर्वत्र फूँक दिया।

भारत में विदेशी राज्य के विरोध में भभकती आग को देखकर जब ब्रिटेन की रानी यह कहने लगी कि वह भारतीयों को अपनी संतान की तरह रखेगी, तब महर्षि दयानन्द ने अपनी कालजय पुस्तक सत्यार्थप्रकाश के 8वें समुल्लास में यह लिखकर भारतीय वीरों के खून को गरम कर दिया—''**कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है, अथवा मत-मतान्तर के आग्रह रहित, अपने और पराए का पक्षपात शून्य, प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।**''

भारत की दुर्दशा पर अपनी पीड़ा को व्यक्त करते हुए ऋषिवर लिखते हैं—''**विदेशियों के आर्यावर्त्त में राजा होने के कारण आपसी फूट, बाल्यावस्था में अस्वयम्वर विवाह, विषयासक्ति, मिथ्याभाषण आदि कुलक्षण, वेद विद्या का अप्रचारादि कर्म है, जब आपस में भाई-भाई लड़ते हैं तभी तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है।**''

—*सत्यार्थ प्रकाश, समुल्लास 10*

अनेक ब्रह्मसमाजी अंग्रेजों की चाटुकारी करते थे। उन्हें अपने राष्ट्र की स्वाधीनता हेतु अंग्रेजों के सामने बोलने में दम फूलता था। उनकी समालोचना में महर्षि दयानन्द के ये वाक्य स्वदेश की शिक्षा हेतु सबके लिए प्रभावी सिद्ध हुए—

''देखो! अपने देश के बने हुए जूतों को ऑफिस और कचहरी में जाने देते हैं, इस देशी जूते को नहीं, इतने में ही समझ लो कि अपने देश के बने हुए जूतों का भी (वे) कितना मान प्रतिष्ठा करते हैं? उतना भी अन्य देशस्थ मनुष्यों का नहीं करते।'' —*सत्यार्थ प्रकाश, समुल्लास 11*

इसी प्रसंग में महर्षि ने लिखा—''ईसाई आदि अंग्रेजों की प्रशंसा ये (ब्रह्म समाजी) भरपेट करते हैं, ब्रह्मादि महर्षियों का नाम भी नहीं लेते, ब्रह्मा से लेकर आर्यावर्त्त में बहुत से विद्वान् हो गए हैं, उनकी प्रशंसा न करके यूरोपियन की स्तुति में उतर पड़ना पक्षपात और खुशामद के बिना क्या कहा जाए।'' —*सत्यार्थ प्रकाश, समुल्लास 11*

आर्याभिविनय में एक मंत्र की व्याख्या राष्ट्र प्रेम परक होने से उसके भाव में ऋषिवर का स्वदेश के लिए यह उद्‌गार राष्ट्रप्रेमियों के

अन्दर महौषधि के रूप में राम बाण है—

"हे महाधनेश्वर! हमारे शत्रुओं के बल पराक्रम को (आप) सर्वथा नष्ट करें, आपकी करुणा से हमारा राज्य और धन सदा वृद्धि प्राप्त हो।"

—*आर्याभिविनय 1.43*

महर्षि दयानन्द राष्ट्रीय प्रेम की भावना के प्रबल अग्रदूत थे। उनके इस प्रसंग से आप स्वयं उनकी स्वदेश की प्रेम-भावना का अनुमान लगा सकते हैं—

16 दिसम्बर, 1872 से मार्च 1873 तक महर्षि कलकत्ता में राजा ज्योतीन्द्र मोहन टैगोर के प्रमोद कानन में वेद प्रचार की अवधि में ठहरे। वहीं वायसराय लॉर्ड नॉर्थ ब्रुक उनसे मिले तब उन्होंने स्वामी जी से कहा—"हमारे राज्य में सुख और न्याय है जहाँ आप बिना रोकटोक अपना प्रचार करते हैं अत: आप हमारे राज्य की यहाँ पर चिरस्थिरता के लिए ईश्वर से प्रार्थना कर दिया करें।"

इस पर महर्षि ने जो उत्तर दिया, वह उनकी स्वदेश के प्रति सीमातीत प्रेम का परिचायक है। बिना कोई हिचक भारत के तथाकथित भाग्यविधाता तथा भारत में स्थित ब्रिटिश सत्ता के सर्वेसर्वा उस वायसराय को अत्यन्त स्वाभिमानपूर्वक उत्तर दिया—**"राजन्! मैं तो प्रतिदिन प्रात: उठकर अपने परमपिता परमेश्वर से यही प्रार्थना करता हूँ कि शीघ्रातिशीघ्र यह राज्य भारत से उठ जाए, मैं तो शीघ्र ही वह दिन देखना चाहता हूँ, जब कि भारत का शासन सूत्र हम भारतीयों के हाथ में हो।"**

ऋषि के उपरोक्त उत्तर से वायसराय चकित रह गए और इंडिया ऑफिस को भेजे गए अपने दस्तावेजों में उन्होंने नोट लिख दिया कि इस विद्रोही फकीर पर कड़ी नजर रखी जाए।

—वीर अर्जुन, दिल्ली 9.4.61 लेख श्रीयुत दीवान अलखधारी

इस तरह महर्षि दयानन्द के हृदय में स्वदेशप्रेम की अग्नि के प्रकाश से भारतवर्ष के राजस्थानी महाराणा सज्जन सिंह आदि जैसे राजाओं में स्वदेश के प्रति मन्द पड़ी अग्नि फिर से भभक उठी। इन्दौर नरेश सियाजी राव, कर्नल महाराजा प्रताप सिंह (जोधपुर आर्यसमाज) के प्रधान, बड़ौदा नरेश गायकवाड़, कपूरथला नरेश, उदयपुर नरेश राजा

फतह सिंह जो सज्जन सिंह के बाद उत्तराधिकारी बने, राजस्थानी केशर सिंह बारहट परिवार, मथुरा-वृन्दावन नरेश महेन्द्रप्रताप सिंह आदि तमाम भारतीय राजाओं को महर्षि ने देश की आजादी के लिए दहकता हुआ अंगारा बना दिया।

स्मरण रहे कि महर्षि दयानन्द सरस्वती ने बुधवार 7 अप्रैल 1875 ई. में आर्यसमाज की प्रथम स्थापना गिरिगाँव मुम्बई में की जो वि० संवत् 1932 चैत्र शुदा प्रतिपदा के अनुसार यह तिथि है। आर्यसमाज ने अपने धुआँधार प्रचार-प्रसार से अंग्रेज सरकार की नींद हराम कर दी। स्वदेशी की लौ उसकी आँखों को चुँधियाने लगी। कुछ इतिहासकार तो यहाँ तक मानते हैं कि आर्यसमाज के बढ़ते प्रभाव से भयभीत होकर कुछ अंग्रेज अधिकारियों ने अपने कुछ भारतीय पिट्ठुओं के संग मिलकर कांग्रेस की स्थापना कर दी। जनता को दिखाने के लिए मि. ए.ओ. ह्यूम को उसका संस्थापक घोषित कर दिया। पर उसके पीछे का खेल अंग्रेज अधिकारी कुछ भारतीयों के साथ मिलकर खेल रहे थे।

यह अंग्रेजों की सोची समझी चाल थी कि इससे वे भारतीय लोगों को बाँध कर रखना चाहते थे। प्रारम्भ में कुछ स्वदेश प्रेमी महर्षि दयानन्द के शिष्य भी उसमें शामिल हुए यह सोचकर कि हम इसे अपने नियन्त्रण में लेकर अपनी राष्ट्रीय भावनाओं और सिद्धान्तों के अनुसार राजनीति को आगे बढ़ा पाएँगे। इसमें पहला नाम मराठी नेता जस्टिस महादेव गोविन्द राणाडे का आता है। उनके शिष्य गोपाल कृष्ण गोखले और गोखले के शिष्य बने महात्मा गांधी।

स्वामी श्रद्धानन्द के साथ मोहनदास कर्मचंद गांधी मिले तो उन्होंने 8 अप्रैल 1915 को पहले गुरुकुल काँगड़ी की यज्ञशाला में सामान्य परिचय के साथ और फिर आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर के वार्षिकोत्सव में स्वामी श्रद्धानन्द ने गांधी को 'महात्मा' की उपाधि से विधिवत् सम्मानित किया। कालान्तर में राजनीतिक मजबूरी से महात्मा गांधी ने आर्यसमाज से दूरी बना ली, यद्यपि महात्मा गांधी के गुरुकुल काँगड़ी आने पर स्वामी श्रद्धानन्द ने उनकी राष्ट्रीय भावना को और कूट-कूट कर मजबूत बनाया था। पर जो भी हो, आर्यसमाज स्वाधीनता की लड़ाई वह (श्रद्धानन्द) में कभी पीछे नहीं हटा। बाल गंगाधर तिलक, विपिन

पाल और लाला लाजपत राय ने तो पंजाब, बंगाल व पूरे भारत में स्वाधीनता-संग्राम की नयी चेतना भर दी। पंजाब के सरदार अजीत सिंह का बलिदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

महर्षि दयानन्द से प्रेरित श्यामजी कृष्ण वर्मा, वीर सावरकर, लाला हरदयाल, देवतास्वरूप भाई परमानन्द, मदनलाल ढींगरा आदि गरम दल के नेताओं का गर्म खून ने समग्र तथा सशस्त्र क्रांति को जन्म दे दिया।

कोई इस भ्रम में न रहे कि भारत को आजादी गांधी की अहिंसावादी नीतियों से बिना ढाल व तलवार से मिली बल्कि वास्तविकता तो यह है कि अंग्रेज सरकार देश के गिने-चुने क्रांतिकारियों की ललकार से काँप उठी थी। सरदार भगतसिंह (पौत्र स. अजीत सिंह—पूर्ण आर्यसमाजी परिवार—राष्ट्रसमर्पित), राजगुरु और सुखदेव की एक साथ फाँसी, उत्तर प्रदेश के रामप्रसाद बिस्मिल, रोशन लाहड़ी, चन्द्रशेखर आजाद आदि द्वारा साहसी प्राण त्यागना आदि आर्य क्रांतिकारी नेताओं के बलिदान ने देश की सोई जनता को झकझोर दिया। देश का बच्चा-बच्चा देश की आजादी के लिए तड़प उठा। आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने, इन्हीं की प्रेरणा से ये क्रांतिकारी देश की आजादी के लिए उठ खड़े हुए।

भारतीय स्वतंत्रता का मूल आधार महर्षि दयानन्द की दी हुई राष्ट्रीय प्रेरणा व सत्यार्थ प्रकाश की मूल शिक्षा ही है जिसने क्रांतिकारियों के उत्साह को हर पल बढ़ाया। अनेक प्रमाणों के आधार पर हम कह सकते हैं कि आजादी की सम्पूर्ण क्रांति में आर्यसमाज का लगभग 80% विशेष योगदान निर्विवाद सम्मिलित था जिसकी पहचान आज की सरकार भी करे। ठोस प्रमाण के लिए निम्न प्रकरण पढ़ें—विशेषकर छठा अध्याय देखें।

इन्हीं सब आर्य वीरों के कारण आज हैदराबाद, जम्मू एंड कश्मीर तथा गुरुदासपुर (पंजाब) का रियासत भारत संघ में मिला। भारत के स्वतंत्र हो जाने पर भी निज़ाम द्वारा हैदराबाद को एक स्वतंत्र इस्लामी राज्य घोषित कर दिये जाने पर, स्थान-स्थान पर हिन्दुओं तथा आर्यसमाजियों पर विभिन्न अत्याचार किए जाने लगे। ऐस में आर्यसमाजी नेता भाई बंशी लाल ने दिल्ली आकर तत्कालीन गृहमंत्री सरदार पटेल से

मिलकर खुले रूप से कहा कि मिलिट्री भेजें या हमें आदेश दें, इसका इलाज हम स्वयं अपनी सेना बनाकर कर लेंगे।

सरदार पटेल ने आश्वासन दिया कि वक्त आने पर हम कार्यवाही करेंगे। और ऐसा ही हुआ जब सरदार पटेल ने भारतीय सेना को हैदराबाद के लिए रवाना कर दिया और आर्य नेताओं को कहा कि आप सबके साहस पर विश्वास करके हम सरकारी सेना भेज रहे हैं।

उधर पं. नरेन्द्र जी और अन्य आर्यवीर सब डटे हुए थे। सबके प्रयास से हैदराबाद भारत संघ में मिल गया, मरते समय निजाम का राजा उस्मान अली खाँ ने पं. नरेन्द्र जी को बुलाकर अपने क्रूर व्यवहारों के लिये उनसे माफी माँगी। इसी तरह आर्यसमाजियों के पुरुषार्थ से गोवा को भी पुर्तगाली सरकार से बचाया गया। *—विस्तृत देखें—आठवाँ आध्याय*

जस्टिस मेहरचन्द महाजन—भारत के अंतिम वायसराय माउंट बेटन को जस्टिस महाजन ने रेडक्लिफ पार्टिशन ऑफ इंडिया अवार्ड कमिटि की मिटिंग में अपने तर्कपूर्ण वार्त्ता से समझा कर उन्हें गुरदासपुर को भारत का हिसा बनाने के लिए सहमत कर लिया। अगर ऐसा न होता, तो गुरदासपुर के पाकिस्तान में चले जाने पर भारतीय सड़क व रेलवे मार्ग ही बन्द हो जाता। वायसराय बेटन यह समझ गए और गुरदासपुर को भारत में विलय की स्वीकृति दे दी।

जस्टिस महाजन, मार्च 1948 में जम्मू एंड कश्मीर के प्रधानमंत्री पद से इस्तीफा दे दिया, तब नेहरू और गांधी जी के आशीर्वाद से वहाँ के प्रधानमंत्री शेख अब्दुला जी बन गए।

विदित हो कि महाजन जी बाद में 1948 से 1953 तक भारतीय सर्वोच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति रहे तथा 1954 में मुख्य-न्यायाधीश बने।

जस्टिस मेहरचन्द महाजन पक्के आर्यसमाजी थे। इन्होंने आर्यसमाज के आन्दोलन के लिए लाखों रुपये इकट्ठे किये और 1938 से 1943 तक डी.ए.वी. कॉलेज प्रबन्ध कर्तृ सभा के प्रधान भी रहे। सच में ऐसे महान आर्य नेता पर हमें गर्व है। *—विस्तृत देखें—आठवाँ आध्याय*

बहुत ही स्पष्ट है कि महर्षि दयानन्द ने विदेशी राज्य को भारत से

पूर्णतः समाप्त करने की भावना भारतीयों में भरी। मानते हैं कि इंडियन नेशनल कांग्रेस ने कुछ देश-प्रेमी अच्छे-अच्छे नेता तथा कार्यकर्त्ता दिये, पर उनके मूल में हम पाते हैं कि ऐसे लोगों में अधिकतर वे हैं जिनका प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से आर्यसमाज से लगाव रहा है। स्वामी श्रद्धानन्द ने गुरुकुलीय शिक्षा तथा स्वयं इंडियन नेशनल कांग्रेस का मजबूत अंग बनकर रौलेट एक्ट के खिलाफ जुलूस निकाला, शुद्धि-आन्दोलन चलाया तथा वैदिक शिक्षा का प्रचार-प्रसार कर भारतीयों में देश की स्वाधीनता के लिए साहस बढ़ाया, आर्य नेता लाला लाजपत राय आदि ने साइमन कमीशन का विरोध किया और अंग्रेजों की लाठियाँ खाकर वे शहीद हो गए। इसका नतीजा यह निकला कि सरदार भगतसिंह, बी.के. दत्त आदि ने क्रांति की मशाल को और धधका दिया। उन्होंने सशस्त्र क्रांति को जन्म देकर स्वाधीनता संग्राम को आगे बढ़ाया। इस तरह आर्यवीर भगतसिंह आदि युवक के बलिदान और इन सबकी राष्ट्रीय प्रेरणा से सम्पूर्ण आर्य जगत् ही सत्याग्रह, सम्मेलन, जेल भरो अभियान और बलिदान के सतही/मूल कार्यों में सबसे आगे रहा।

डॉ. नरेन्द्र कुमार
आचार्य डॉ. उमेश यादव

स्वतंत्रता आन्दोलन का मूल आधार—
आर्यसमाज या कांग्रेस ?

विमल वधावन योगाचार्य

आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती के कार्यों, विचारों और व्यवहारों में देशभक्ति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। उनके जीवन का प्रत्येक कार्य और उनके मुख से निकला प्रत्येक शब्द देश और समाज के कल्याण के अतिरिक्त कहीं भी केन्द्रित नहीं था। अपने समस्त कार्यों और विचारों का आधार बेशक उन्होंने वेदों को बनाया था, परन्तु लक्ष्य देश और देशवासियों की स्वतंत्रता पर ही केन्द्रित था। व्यापक रूप में इस स्वतंत्रता का स्वरूप पूरे राष्ट्र को विदेशी दासता से मुक्ति के रूप में था तो व्यक्तिगत रूप में इस स्वतंत्रता का अभिप्राय अपनी आत्मा के तंत्र को ईश्वरीय सत्ता से सीधा जोड़कर रखने पर केन्द्रित था।

इसके लिए उन्होंने ईश्वर और जीव के सम्बन्ध के बीच किसी भी प्रक्रिया या माध्यम को निरर्थक निर्भरता अर्थात गुलामी मानते हुए उससे मुक्ति के लिए देशवासियों को सचेत किया। इस व्यक्तिगत आध्यात्मिक स्वतंत्रता के लिए उन्होंने प्रत्येक जीव को स्वाभाविक रूप से सीधा परमात्मा की साधना के लिए प्रेरित किया और प्रतीकात्मक पूजा-पद्धतियों को गुलामी का प्रतीक बताया; क्योंकि उनका विश्वास था कि इन बाहरी पूजा पद्धतियों में खोया व्यक्ति अक्सर परमात्मा से पूर्णरूपेण जुड़ने से पूर्व ही अपना जीवन खो बैठता है।

हमारे इस लेख का प्रयोजन महर्षि दयानन्द सरस्वती और उनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज के उन कार्यों एवं आन्दोलनों पर केंद्रित है, जो स्वतंत्रता आन्दोलन का प्रबल आधार बने रहे।

[स्वतंत्रता आन्दोलन के महान सेनानी श्री वीर सावरकर जब अण्डमान जेल में बन्द थे, तो अंग्रेज सरकार ने स्वतंत्रता सेनानियों की एक माँग को स्वीकार करते हुए जेल में पुस्तकालय उपलब्ध कराने का मार्ग प्रशस्त किया। श्री वीर सावरकर को यह दायित्व सौंपा गया कि वे पुस्तकालय के लिए वांछित पुस्तकों की सूची तैयार करके सरकार को दें। इस सूची में उन्होंने प्रथम नम्बर पर 'सत्यार्थ प्रकाश' का नाम लिखा। पुस्तकालय के उद्‌घाटन समारोह में अपने विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने 'सत्यार्थ प्रकाश' को प्रथम स्थान पर सुशोभित करने का विशेष कारण बताते हुए कहा—**"सत्यार्थ प्रकाश की विद्यमानता में कोई देशद्रोही अपनी शेखी नहीं बघार सकता।"**)

इसका अभिप्राय यह हुआ कि सत्यार्थ प्रकाश में देशभक्ति को पैदा करने और उसके संवर्द्धन के लिए पर्याप्त सामग्री थी।

'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना वर्ष 1873 ई० में पूर्ण हो चुकी थी। इसके दो वर्ष बाद अर्थात 1875 ई० में आर्यसमाज की स्थापना का लक्ष्य भी यही समझा जाना चाहिए कि सत्यार्थ प्रकाश रूपी शास्त्र को विदेशी दासता से मुक्ति का शस्त्र बनाकर उस मुक्ति-संग्राम का संगठन खड़ा किया गया। आर्यसमाज की स्थापना स्वयं महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने अपनी उपस्थिति में दूरदर्शिता के बल पर की थी।

आर्यसमाज की स्थापना के 10 वर्ष बाद 1885 ई० में एक विदेशी अंग्रेज श्री ए०ओ० ह्यूम के द्वारा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की गई, जिसकी प्रारम्भिक दौर की बैठकों और उनमें पारित प्रस्तावों से यह स्पष्ट होता है कि इस संगठन का मुख्य उद्देश्य देश के पढ़े-लिखे युवाओं को ब्रिटिश सरकार की नौकरियों का आश्वासन देकर उन्हें ब्रिटिश शासन की मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास मात्र था।

स्वाभाविक रूप से शिक्षित युवा वर्ग ने इस प्रयास से जुड़ने में ही अपना और समाज का कल्याण समझा। जब कांग्रेस का यह संगठन अपनी बैठकों में युवाओं की समस्याओं पर चर्चा करता था, तो

स्वाभाविक रूप से उन चर्चाओं में सामाजिक कुरीतियों और हर प्रकार की सामाजिक समस्याओं पर चर्चा होना भी स्वाभाविक होता था।

कांग्रेस के प्रारम्भिक दौर का दर्शन करने के लिए गत वर्ष मैं दिल्ली के नेहरू म्यूजियम स्थित नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय का सदस्य बना। मुझे इस अध्ययन की प्रेरणा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के पूर्व उप प्रधान श्री आनन्द कुमार आर्य तथा उनके छोटे भ्राता डॉ. नरेन्द्र कुमार आर्य जी ने की। डॉ. नरेन्द्र जी यूनाइटेड किंगडम के बर्मिंघम शहर में स्थापित आर्यसमाज वेस्ट मिड्लैंड्स के प्रधान हैं और आर्यसमाज के इतिहास पर प्रामाणिक सामग्री एकत्र करने में उनकी विशेष रुचि है। इस अभियान में मैंने दर्जनों पुस्तकों के अतिरिक्त वर्ष 1885 से आगे उपलब्ध कांग्रेस की बैठकों का विशेष अवलोकन रुचिपूर्वक किया। कांग्रेस का उद्‌गम काल वास्तव में आर्यसमाज का यौवन काल था। आर्यसमाज की स्थापना बेशक 1875 ई० में हुई थी, परन्तु महर्षि दयानन्द सरस्वती इस स्थापना से भी लगभग दो दशक पूर्व से एक हाथ में वेदों के प्रचार का गुरुतर दायित्व निभाने में लगे हुए थे तो दूसरे हाथ में 'ओम ध्वज' को स्वराज की पताका के रूप में फहराते चले जा रहे थे।

स्वराज का आन्दोलन वास्तव में महर्षि दयानन्द ने 1854 ई० से ही बड़े उग्र रूप में प्रारम्भ कर दिया था। उनके भीतर एक आध्यात्मिक और वैदिक विद्वान् रूपी युगपुरुष विद्यमान था तो दूसरी तरफ उनके जीवन में स्पष्ट रूप से एक योद्धा की झलक मिलती थी। इसीलिए उस काल में उन्हें एक देशभक्त संन्यासी के रूप में समझा जाने लगा। उनकी मार्मिक प्रेरणाओं ने तात्या टोपे और लक्ष्मी बाई जैसी आत्माओं को प्रेरणाओं से सराबोर कर दिया, जिसका परिणाम 1857 की प्रथम स्वतंत्रता-क्रान्ति के रूप में सामने आया।

ऐसे देशभक्त संन्यासी के अनुयाई किस प्रकार देश की उस वक्त गुलामी की जंजीरों के प्रबल शत्रु न बनते। यह तो होना ही था, और हुआ भी। महर्षि दयानन्द सरस्वती का निर्वाण 1883 ई० में हो गया, परन्तु उससे पूर्व उनके भीतर प्रज्वलित स्वराज्य ज्योति कोटि-कोटि आर्य जनों के हृदय को प्रज्वलित कर चुकी थी। देश में चारों तरफ वेद मन्त्रों की

ध्वनियाँ गूंजने लगी थीं, सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध अभियान प्रारम्भ हो चुके थे। इन सारे कार्यों की शक्ति उस वक्त के आर्य जनों में दिखाई देने लगी थी। इन परिस्थितियों में जब कांग्रेस की स्थापना हुई तो यह संगठन शिक्षित युवाओं में फैलते हुए केवल कमरों में बन्द होकर नौकरियों की चिन्ता तक सीमित रह ही नहीं सकता था। बाहर सारे देश में सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ शिक्षित आर्यों के आन्दोलन की चर्चा और उनका प्रभाव कांग्रेस की बैठकों में उपस्थित शिक्षित लोगों के बीच भी होने लगी।

बाहर सामाजिक आन्दोलनों पर चारों तरफ आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द सरस्वती के विचारों का प्रबल प्रभाव दिखाई दे रहा था। इस कारण जब कांग्रेस की बैठकों में इन सामाजिक आन्दोलनों की चर्चा होती थी, तो वहाँ पर भी स्वाभाविक रूप से आर्यों का प्रभाव बढ़ता गया। इसका साक्षात् परिणाम यह निकला कि कांग्रेस का नौकरी-आन्दोलन सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध विचारों के माध्यम से कुछ ही दशकों में सीधा ब्रिटिश साम्राज्य से स्वराज्य की तरफ अग्रसर होने लगा।

नेहरू म्यूजियम में स्थित पुस्तकालय में अनेक तत्कालीन पुस्तकों के अतिरिक्त कांग्रेस की बैठकों का अध्ययन करने के साथ-साथ मैंने जंतर-मंतर मार्ग स्थित सरदार पटेल-पुस्तकालय में भी कांग्रेस के उस काल से सम्बन्धित बैठकों की कार्यवाहियों तथा कुछ ग्रन्थों का अध्ययन किया। स्वराज्य का संग्राम वास्तव में एक प्राकृतिक कार्य था। वर्ष 1929 में कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य की माँग रखते हुए अपने मूल नौकरी-आन्दोलन का लगभग त्याग ही कर दिया। जब कांग्रेस भारतीय जनमानस के आन्दोलित स्वरूप को देखने के बाद इस पूर्ण स्वराज्य के मार्ग पर अग्रसर होने लगी तो विश्व के अन्य हिस्सों से भी कांग्रेस को समर्थन मिलने लगे। अब कांग्रेस को प्रचार के लिए केवल देशवासियों के समर्थन की ही नहीं अपितु विदेशों से भी समर्थन की आस जगने लगी। वर्ष 1930 में ही चीन को भी पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त हुई तो कांग्रेस ने अपने एक प्रस्ताव में चीन के लोगों को बधाई सन्देश भेजा। इसी प्रकार कांग्रेस को भी विदेशों से अनेक समर्थन पत्र प्राप्त होते थे। अमेरिका, इंग्लैण्ड, अरब देशों, बर्लिन, कोलम्बो, न्यूजीलैण्ड, चीन, फ्रांस आदि देशों से जब भी

ऐसे समर्थन पत्र आते थे, तो कांग्रेस की बैठकों में हर छोटे-बड़े पत्रों पर चर्चा होती थी और अनेक पत्रों को तो बैठकों में यथावत प्रकाशित ही कर दिया जाता था। फ्रांस से रोमा रोलैण्ड ने भी दिसम्बर 1928 को ऐसे ही एक समर्थन पत्र में 1880 के युग का उल्लेख करते हुए राजा राममोहन राय के सुधार आन्दोलन का भी उल्लेख किया।

रोमा रोलैण्ड ने भारतवासियों को आत्म ब्रह्म की प्रेरणा देते हुए स्वतंत्रता आन्दोलन के लिए प्रेरित किया। विदेशी समर्थन पत्रों के अतिरिक्त कांग्रेस की बैठकों में भारत के मुस्लिम संगठनों का भी धन्यवाद किया जाता था, जब कोई बिरला मुस्लिम संगठन कांग्रेस के किसी सुधार आन्दोलन का समर्थन करता था। जब कि वास्तव में वह सुधार-आन्दोलन मूलत: आर्यसमाज के होते थे। वर्ष 1920 की नागपुर बैठक में कांग्रेस ने गौ-हत्या-बन्दी की माँग के समर्थन में कुछ मुस्लिम संगठनों के समर्थन को विधिवत अपनी बैठकों की कार्यवाही में स्थान दिया। इसी प्रकार कांग्रेस ने शिक्षा को एक राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान करने के लिए अपनी बैठकों में आवाज उठाई।

फरवरी 1922 की एक बैठक में दलितों के उद्धार तथा शराबबन्दी जैसे सामाजिक आन्दोलनों के समर्थन में प्रस्ताव पारित किये। यहाँ तक कि सामाजिक एकता को बनाए रखने के लिए लोगों को समाज सेवा के प्रति प्रेरित करने के भी प्रस्ताव पारित किये गए। मई 1923 की एक बैठक में एक स्वावलम्बन राष्ट्रीय पाठशाला को कांग्रेस की तरफ से 5000/- रुपये की अनुदान राशि भी भेजी गई। दिसम्बर 1924 की बेलगांव कांग्रेस बैठक में अकालियों के आन्दोलन का भी समर्थन किया गया। समाज- सेवा के कार्यों के लिए कांग्रेस की अगस्त 1931 में आयोजित बम्बई- बैठक में तो हिन्दुस्तानी सेवा-दल की स्थापना भी इसी उद्देश्य से की गई थी कि यह संगठन बाहर समाज में सामाजिक कार्यों का दायित्व सँभालेगा।

आज यही संगठन कांग्रेस सेवा-दल के नाम से प्रसिद्ध है। सारे देश में चल रही समाज-सुधार-आँधी वास्तव में आर्यसमाज के कंधों पर चल रही थी, परन्तु कांग्रेस की बैठकों में कहीं आर्यसमाज का उल्लेख सामने नहीं आया। उसका मुख्य कारण यह था कि ब्रिटिश सरकार आर्यसमाज को अपना बड़ा दुश्मन मानती थी। ब्रिटिश हुकूमत को इतना डर कांग्रेस

से नहीं था, जितना आर्यसमाज के देशव्यापी सुधार-आन्दोलनों से था; क्योंकि सुधार-आन्दोलनों को बहुतायत जनता का खुला समर्थन मिलता था।

कांग्रेस की बैठकों में नि:सन्देह ब्रिटिश साम्राज्य से मुक्ति पर ध्यान केन्द्रित होता था, परन्तु वास्तविक समाज-सुधार-आन्दोलनों से कांग्रेस का कोई सीधा नाता नहीं था। कांग्रेस इन सुधार-आन्दोलनों के बहाने केवल सामाजिक समर्थन की आस लगाए रहती थी। जब कि आर्यसमाज के समाज-सुधार-आन्दोलनों से लेकर वेद-प्रचार तक के आन्दोलन पूरी तरह बौद्धिक आन्दोलन थे। इस सारे बौद्धिक अभियान में महर्षि दयानन्द का मौलिक सूत्र कार्य करता हुआ दिखाई दिया, जिसके अनुसार भारत अर्थात् पूर्व काल का आर्यावर्त्त आध्यात्मिक रूप से विश्व गुरु था और भौतिक सम्पन्नता के नाम पर इसे सोने की चिड़िया कहा जाता था।

समस्त सामाजिक कुरीतियों का केन्द्र सामान्य जनों की अज्ञानता को बताया जाता था और कुछ विशेष वर्गों के स्वार्थों को भी उजागर किया जाता था।

इस प्रकार विचारों की यह गति सीधा अज्ञानता और गुलामी से मुक्ति तक पहुँच जाती थी। इन विचारों के बल पर जब स्वराज्य और स्वदेशी का सूत्रपात हुआ, तो कांग्रेस के बड़े नेताओं से लेकर गली, मुहल्लों और गाँवों के लोगों में भी स्वतंत्रता की ज्योति जलने लगी। तीन-चार दशकों के भीतर तो कांग्रेस शिक्षित युवाओं को ब्रिटिश नौकरियाँ दिलवाने के स्थान पर समूचे देशवासियों को स्वराज्य दिलवाने वाले संगठन के रूप में स्थापित हो चुकी थी।

जब सारे देश में स्वराज्य की आँधी चलने लगी, तो उस समय भी अंग्रेज सरकार का कोप कांग्रेस से अधिक आर्यसमाज को सहन करना पड़ा। आर्यसमाज एक बहुआयामी संगठन है। वेद की परम्पराओं के अनुसार आध्यात्मिक जीवन की स्थापना, बाहरी पूजा-पद्धतियों का खण्डन और सामाजिक कुरीतियों से लेकर ब्रिटिश सरकार के अस्तित्व को ही चुनौती देने तक के अनेक कार्य आर्यसमाज के दैनिक कार्य थे। ब्रिटिश सत्ता के साथ-साथ ईसाई मिशनरी भी आर्यसमाज के विरोध में

स्वर उठाने लगे। हिन्दू और मुसलमान कट्टरपंथी लोग भी आर्यसमाज का विरोध करने से पीछे नहीं रहे।

ब्रिटिश सरकार ने तो आर्यसमाज को 'एक अत्यन्त खतरनाक संगठन' घोषित कर ही दिया था। 1905 ई० के दौर में की गई इस घोषणा के साथ ब्रिटिश सेनाओं में इस आशय के परिपत्र जारी होने लगे कि आर्यसमाज से सम्बन्धित लोगों को फौज में भर्ती न किया जाए। आर्यसमाज के लोगों को एक अपराधी की तरह समझा जाने लगा। पहले से सरकारी नौकरियों में भर्ती अधिकारियों का आर्यसमाज संगठन से यदि कोई मेल सिद्ध हो जाता था, तो उन्हें माफी माँग कर आर्यसमाज से अलग रहने के लिए मजबूर किया जाता था या वे लोग नौकरी छोड़ने के लिए विवश हो जाते थे। यहाँ तक कि 1914 से 1918 ई० तक चलने वाले प्रथम विश्व-युद्ध में भी आर्यसमाजियों को फौज में भर्ती करने की अनुमति नहीं मिली। आर्यसमाज के किसी भी विद्वान या नेता को ब्रिटिश सरकार को द्वारा दिये जाने वाले नागरिक सम्मानों जैसे रायजादा, राय बहादुर आदि के योग्य कभी समझा ही नहीं गया। आर्यसमाज के विरुद्ध अनेक लेख सरकारी पत्रिकाओं और यहाँ तक की सरकारी गजटों में भी छापे जाने लगे।

महात्मा मुंशीराम ने वर्ष 1902 ई० में हरिद्वार में माँ गंगा के पावन तट पर कांगड़ी ग्राम में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की स्थापना की, इसके कुछ समय के बाद अंग्रेज सरकार गुरुकुल के खिलाफ सीधी कार्यवाही पर उतर आई। वे गुरुकुल को लेकर इतने सजग हो गए, जैसे किसी अन्य देश पर हमले की तैयारी होती है। इस हमले से पूर्व कई छानबीन समितियाँ गठित की गईं और अनेक अधिकारियों को नियुक्त किया गया। 21 अक्टूबर, 1916 को भारत के तत्कालीन वायसराय लार्ड चेम्सफोर्ड स्वयं गुरुकुल कांगड़ी का निरीक्षण करने पहुँचे, परन्तु महात्मा मुंशीराम स्वामी श्रद्धानन्द के रूप में विश्वविख्यात संन्यासी के दिव्य रूप के सामने स्वयं वायसराय को भी नतमस्तक होना पड़ा।

आर्यसमाज के समस्त कार्यों का सूत्र एक ही था—'भारत केवल भारतीयों का'। आर्यसमाज के इसी सूत्र को कांग्रेस ने अन्ततः वर्ष 1929

में 'पूर्ण स्वराज्य' की माँग के रूप में प्रस्तुत किया। स्वामी श्रद्धानन्द तथा लाला लाजपतराय के साथ-साथ शहीद भगतसिंह को स्वतंत्रता आन्दोलन के महान बम के रूप में सारे विश्व ने स्वीकार किया। इन महान् नेताओं के अनुयायियों की संख्या असीमित थी। इनके नेतृत्व का प्रभाव स्वाभाविक रूप से कांग्रेस की बैठकों में पारित प्रस्तावों पर भी दिखाई देता था।

कांग्रेस और आर्यसमाज के बीच सदैव कुछ मौलिक अन्तर स्पष्टतया दिखाई देते रहे। कांग्रेस नागरिकों को अपने अधिकार माँगना सिखाती थी तो आर्यसमाज देश के एक-एक व्यक्ति को अपना दायित्व निभाना सिखाता था।

कांग्रेस ब्रिटिश सरकार की गलतियाँ निकालने पर जोर देती थी, परन्तु महर्षि दयानन्द के अनुयाई भारतीय जनमानस को अपनी गलतियाँ सुधारकर एक मजबूत समाज के रूप में संगठित होने पर जोर देते थे क्योंकि वे जानते थे कि केवल मजबूत समाज ही ब्रिटिश सरकार को चुनौती दे सकता था।

कांग्रेस लोगों का कल्याण सरकार की उदारता और दयालुता से चाहती थी, परन्तु आर्यसमाज मानता था कि जब देशवासियों का अपना चरित्र सुदृढ़ हो जाएगा, तो उन्हें किसी की दया की नहीं, अपितु स्वयं अपने देश के संचालन की योग्यता प्राप्त होगी। कांग्रेस चाहती थी कि ब्रिटिश शासकों का व्यवहार भारतीयों के लिए सुधर जाए, परन्तु आर्यसमाज के लोग इस सिद्धान्त का प्रचार करते थे कि लोकतंत्र में मजबूत प्रजा ही मजबूत राज्य का निर्माण कर सकती है।

आर्यसमाज के इन मौलिक सिद्धान्तों के सामने घुटने टेकते हुए अन्ततः कांग्रेस को भी पूर्ण स्वराज की माँग करने तथा उसके लिए सड़कों पर आन्दोलन और जेल-यात्राओं के मार्ग खोजने पड़े। आर्यसमाज के अनुयायियों को अब कांग्रेस के अभियान में जुड़कर खुला सहयोग देना उचित लगा।

इसी का परिणाम निकला कि वर्ष 1930 ई० से लेकर वर्ष 1947 ई० तक की अवधि में जितने भी सामाजिक आन्दोलन और ब्रिटिश दमन हुए उनमें बहुतायत आर्यसमाजियों ने ही भाग लिया। स्वयं कांग्रेस के

इतिहासकारों ने यह स्वीकार किया है कि स्वतंत्रता आन्दोलन की जेल यात्राओं में लगभग 80% आर्यसमाजियों ने भाग लिया।

वर्ष 1947 ई० में भारत की लगभग 528 रियासतों को मिलाकर एक राष्ट्र के रूप में संगठित करने का गुरुतर दायित्व युग-पुरुष सरदार पटेल की ही करामात थी, परन्तु जवाहरलाल नेहरू के हस्तक्षेप से दो प्रमुख रियासतें इस महान संगठन के निर्माण से अलग खड़ी दिखाई दे रही थीं—जम्मू कश्मीर तथा हैदराबाद प्रान्त। जम्मू-कश्मीर पर महाराजा हरी सिंह का वर्चस्व था। वे पहले तो इस विलय के लिए तैयार नहीं थे, परन्तु पाकिस्तान की करतूतों से विवश होकर वे विलय के लिए तैयार हो गए। उनके तैयार होने के बाबजूद जवाहर लाल नेहरू ने शेख अब्दुल्ला के साथ अपनी मित्रता निभाने की मजबूरी में जम्मू कश्मीर के विलय पर अनुच्छेद 370 का ग्रहण लगा दिया। संविधान समिति के कर्ता-धर्ता श्री भीमराव अंबेडकर भी इस प्रावधान से नाराज हो गए, परन्तु नेहरू जी की जिद चल गई और जम्मू कश्मीर का अधूरा विलय हो गया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के लगभग 72 वर्ष के बाद देश को सरदार पटेल जैसे महान नेता का एक महान अनुयाई नरेन्द्र मोदी के रूप में प्रधानमंत्री मिला और उनके साथ अमित शाह जैसा साहसी नेता गृह मंत्री तो अनुच्छेद 370 को समाप्त करने का मार्ग प्रशस्त हो पाया।

इसी प्रकार हैदराबाद राज्य के उस निजाम को महात्मा गांधी का सहयोग प्राप्त हुआ, जिसने भारत की सभी रियासतो के साथ एक संगठित भारत में सम्मिलित होने से इन्कार कर दिया। हैदराबाद राज्य का विलय 1947 में नहीं हो पाया। सरदार पटेल ने गृह मंत्री के रूप में अपने अधिकारों का खुलकर परन्तु गुप्त रूप से ऐसा प्रयोग किया कि सितम्बर 1948 ई० में हैदराबाद के निजाम के विरुद्ध पुलिस हमले से उसे भारत की संगठित सत्ता के सामने झुकने के लिए मजबूर कर दिया गया। इस हैदराबाद प्रकरण में आर्यसमाज की महान् भूमिका एक महान् इतिहास बन चुकी है।

स्वतंत्रता से कुछ वर्ष पूर्व 1938-39 में आर्यसमाज द्वारा निजाम के

विरुद्ध एक जबर्दस्त सत्याग्रह किया गया था। इस सत्याग्रह का मूल कारण यह था कि निजाम ने हिन्दू-मन्दिरों में घंटे बजाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। हांलांकि यह आर्यसमाज का विषय नहीं था, परन्तु फिर भी मुस्लिम शासन के अत्याचारी तरीकों के विरुद्ध आर्यसमाज ने यह आन्दोलन किया और निजाम को ऐसे प्रतिबन्ध वापिस लेने के लिए मजबूर कर दिया।

यह आर्यसमाज आन्दोलन सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के नियन्त्रण में समूचे भारत के आर्यों द्वारा किया गया था। इस आन्दोलन से पूर्व हैदराबाद में वन्दे मातरम रामचन्द्र राव जी का नाम एक सुविख्यात स्वतंत्रता सेनानी के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका था। इस आन्दोलन में भी उनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही।

इस पृष्ठभूमि के बाद जब 1947 में सरदार पटेल द्वारा सारे देश की रियासतों को एक संगठित भारत के रूप में शामिल कर लिया गया, परन्तु निजाम हैदराबाद ने भारत सरकार को आँखें दिखानी प्रारम्भ कर दीं, तो वन्दे मातरम रामचन्द्र राव जी ने सरदार पटेल जी से मिलकर उन्हें सीधी कार्यवाही के लिए सुझाव दिये।

मेरा श्री वन्दे मातरम रामचन्द्र राव जी के साथ वर्ष 1989 से बड़ा घनिष्ठ मेल-जोल रहा। इन्हीं वर्षों में मैं स्वर्गीय श्री स्वामी आनन्द बोध सरस्वती जी के साथ भी सम्पर्क में आया था। इन दोनों महानुभावों ने मेरे साथ स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व काल के अनेक व्यक्तिगत कार्यों तथा देश की परिस्थितियों पर अपनी-अपनी जानकारियों पर चर्चायें की थीं।

इन चर्चाओं में श्री वन्दे मातरम रामचन्द्र राव जी ने मुझे बताया कि वे निजाम शासन की अनेक गुप्त जानकारियाँ अपने तत्कालीन युवा आर्य साथियों के माध्यम से एकत्र करके सरदार पटेल जी को उपलब्ध कराते रहे। इन जानकारियों में निजाम की पुलिस, सेना, हथियारों आदि के संग्रहण से सम्बन्धित अनेक तथ्य शामिल होते थे।

वर्ष 1948 में कांग्रेस ने निजाम शासन के विरुद्ध सत्याग्रह प्रारम्भ कर दिया, परन्तु कुछ ही दिनों के बाद महात्मा गांधी ने इस सत्याग्रह को समाप्त करने की घोषणा कर दी। इस बीच कांग्रेस के कुछ कार्यकर्ता जेलों में भर्ती कर दिये गए। स्वाभाविक रूप से इस कांग्रेस-सत्याग्रह में

हैदराबाद, महाराष्ट्र, कनार्टक आदि निकटवर्ती प्रान्तों के अनेक आर्य युवक भी भाग ले रहे थे।

महात्मा गांधी जी के द्वारा सत्याग्रह वापिस लेने की घोषणा के बाद कांग्रेसी सत्याग्रही माफीनामा लिखकर जेल से बाहर आने लगे, परन्तु कांग्रेसियों के बीच शामिल आर्यसमाजी सत्याग्रहियों ने माफीनामा लिखने से इन्कार कर दिया। दूसरी तरफ सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने तत्काल यह निर्णय लिया कि इस सत्याग्रह को आर्यसमाज जारी रखेगा।

इस घोषणा के होते ही आर्यसमाज दीवान हाल, दिल्ली को सत्याग्रह का केन्द्र बनाया गया। देश भर से हजारों आर्य इस सत्याग्रह में भाग लेने के लिए आने लगे। निजाम की जेलें भर गईं, तो उसने स्कूलों को जेल के रूप में प्रयोग करना शुरू कर दिया। सत्याग्रहियों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही थी। उधर सरकार ने अर्थात् सरदार पटेल ने निजाम के विरुद्ध सीधी पुलिस कार्यवाही का मन बना लिया, परन्तु जवाहरलाल नेहरू इस पुलिस एक्शन के लिए तैयार नहीं थे। परिणामतः सरदार पटेल को गुप्त रूप से यह पुलिस एक्शन प्रारम्भ करना पड़ा। एक तरफ सीधी पुलिस कार्यवाही और दूसरी तरफ आर्यसमाज के प्रचण्ड सत्याग्रह से दुःखी निजाम को टूट कर सरदार पटेल के सामने झुकना ही पड़ा। इस प्रकार अगस्त 1947 की स्वतंत्रता के बाबजूद हैदराबाद प्रान्त का संगठित भारत में विलय 17 सितम्बर, 1948 को ही सम्भव हो पाया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के 25 वर्षों बाद वर्ष 1972 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी जी ने स्वतंत्रता सेनानियों के लिए सम्मान पेंशन योजना घोषित की। इस योजना में 1948 का हैदराबाद सत्याग्रह शामिल नहीं था; क्योंकि महात्मा गांधी ने वह सत्याग्रह प्रारम्भ होते ही वापिस ले लिया था। इस कारण कांग्रेस ने उसे स्वतंत्रता-आन्दोलन का हिस्सा ही नहीं समझा। वास्तव में उस हैदराबाद सत्याग्रह को बाद में केवल आर्यसमाज ने संचालित किया था। परन्तु स्वामी आनन्द बोध सरस्वती जी तथा वन्दे मातरम रामचन्द्र राव जी की प्रेरणा के बाद आर्यसमाज के 1948 वाले सत्याग्रह को भी स्वतंत्रता-आन्दोलन के रूप में मान्यता दी गई और उस सत्याग्रह में भाग लेने वाले आर्यों को सम्मान पेंशन का हकदार माना गया।

आर्य सत्याग्रहियों का सम्पूर्ण रिकार्ड एक तरफ सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के पास सुरक्षित था, तो दूसरी तरफ सम्बन्धित जेलों में भी उनका रिकार्ड उपलब्ध था। इसके अतिरिक्त कुछ लोग भूमिगत रह कर भी इस आन्दोलन में महत्त्वपूर्ण कार्य करते रहे, जिससे गुप्त सूचनाएँ सरदार पटेल तक पहुँचती रहीं। सरकार ने आर्य सत्याग्रहियों के इन सभी विवरणों को एकत्र करने तथा पेंशन की संस्तुति करने के लिए आर्यसमाज के वरिष्ठ नेताओं तथा सरकारी उच्चाधिकारियों की एक मिली-जुली समिति गठित कर दी।

स्वामी आनन्द बोध सरस्वती इस समिति के अध्यक्ष थे, जिसमें वन्दे मातरम रामचन्द्र राव जी भी सदस्य थे। इतना सब कुछ होने के बावजूद निःसन्देह हजारों लोगों को पेंशन मिली, परन्तु कई वर्षों तक उनकी प्रार्थनाएँ लम्बित रहने के बाद उनकी बकाया राशि नहीं दी गई। कई लोगों के पास जेल रिकार्ड होने तथा स्वामी आनन्द बोध सरस्वती समिति की सिफारिश के बाबजूद पेंशन नहीं दी गई।

संसद में एक दिन किसी सांसद ने यह प्रश्न उठाया कि आर्यसमाज समिति के द्वारा अयोग्य लोगों को भी पेंशन दिलवाई जा रही है। तब संसद में तत्कालीन गृह मन्त्री श्री एस०बी० चह्वाण ने केवल इतना मात्र कह दिया कि वे इसकी जाँच करेंगे, इस प्रेस वक्तव्य को अखबारों में पढ़कर श्री वन्दे मातरम रामचन्द्र राव जी आगबबूला हो उठे, क्योंकि उन्हें अपनी सत्यता और निष्पक्षता पर लेशमात्र भी आरोप बर्दाश्त नहीं था। उसी दिन वे प्रातःकाल श्री एस०बी० चह्वाण से मिलने पहुँचे और उनके हाथ में स्वामी आनन्द बोध सरस्वती जी के द्वारा हस्ताक्षरित समिति का त्यागपत्र था।

इस अवसर पर मैं स्वयं उनके साथ उपस्थित था। उन्होंने जिस गुस्से से गृहमंत्री जी से उस दिन बात की, उसे देखकर मुझे यह साक्षात् लग रहा था कि जो व्यक्ति सरदार पटेल के साथ अपनी जान की बाजी लगाकर सहयोग करता रहा, वह सरदार पटेल की मृत्यु के 40 वर्ष बाद बने गृह मंत्री को क्या समझेगा। उन्होंने गृहमंत्री से यहाँ तक कह डाला कि आप संसद में इस आरोप का सीधा उत्तर क्यों नहीं दे पाए कि स्वतंत्रता सेनानियों की सिफारिश करने वाले लोग आग में तपे हुए सत्यनिष्ठ

स्वतंत्रता सेनानी ही हैं, जिन्होंने स्वयं सरदार पटेल के साथ मिलकर इस सत्याग्रह और निजाम के घुटने तोड़ने का साहसिक कार्य किया है। गृहमंत्री के बार-बार मना करने पर भी उन्होंने गुस्से में अपना त्यागपत्र उन्हें सौंप ही दिया और चलते बने।

इस घटना के बाद सत्याग्रहियों को पेंशन मिलने का शेष कार्य अधर में लटक गया। मैं उस समय दिल्ली उच्च न्यायालय तथा सर्वोच्च न्यायालय में वकालत प्रारम्भ कर चुका था। स्वामी आनन्द बोध सरस्वती जी ने मुझे कहा कि वन्दे मातरम जी ने गुस्से में इस समिति का त्यागपत्र तो भिजवा दिया, अतः अब स्वतंत्रता सेनानियों की समस्याओं का समाधान तुम्हें अदालतों के माध्यम से करवाना पड़ेगा। इस प्रकार उच्च न्यायालय तथा सर्वोच्च न्यायालय में मैंने स्वयं रिट याचिकाओं का कार्य प्रारम्भ कर दिया। वर्ष 1990 के बाद मैंने अनुमानतः 1500 से भी अधिक स्वतंत्रता सेनानियों के मुकदमें अदालत में प्रस्तुत किये। इनमें अधिकतर मुकदमें बकाया राशियों के होते थे तो बहुत से मुकदमें जेल रिकार्ड तथा आर्यसमाज सत्याग्रह रिकार्ड के आधार पर पेंशन प्रारम्भ करवाने के भी होते थे। सत्य पर आधारित इस अभियान में सफलता तो मिलनी ही थी।

आर्य सत्याग्रहियों की सेवा का यह कार्य मेरे जीवन के लिए एक ऐतिहासिक कार्य बन गया, जिस पर मुझे सदैव गर्व रहेगा।

इस लेख का केन्द्रीय विषय यह सिद्ध करना था कि भारत की स्वतंत्रता का समूचा आन्दोलन केवल मात्र कांग्रेस का ही आन्दोलन नहीं था, अपितु इसमें आर्यसमाज की भूमिका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण थी। मेरा स्पष्ट मानना है कि यदि महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के समाज-सुधार आन्दोलनों से लेकर सत्यार्थ प्रकाश के माध्यम से पूर्ण स्वराज्य की नींव न रखी होती, तो कांग्रेस का आन्दोलन केवल मात्र शिक्षित युवकों को रोजगार उपलब्ध करवाने वाले एक क्लब के रूप में ही सीमित रह जाता। केवल और केवल आर्यसमाज के कारण ही कांग्रेस का संगठन स्वराज्य के लक्ष्य की ओर अग्रसर होने लगा। 1947 की स्वतंत्रता भी अधूरी थी यदि हैदराबाद का विलय करवाने के लिए आर्यसमाज कांग्रेस के स्थगित सत्याग्रह को जारी न रखता।

हैदराबाद प्रांत हमारे देश के नक्शे पर बिल्कुल केन्द्र में एक स्वतंत्र और मुस्लिम राष्ट्र बनकर इस प्रकार खड़ा होता जैसे भारत माता के पेट में कैंसर। निःसंदेह सरदार पटेल जी के महान् व्यक्तित्व ने महर्षि दयानन्द सरस्वती जी द्वारा लगाए गए महान् वृक्ष आर्यसमाज की सहायता से उस कैंसर का आपरेशन करके उस रोग को पहले कदम में ही समाप्त कर दिया।

भारत सरकार सहित समस्त भारतीयों को इस छिपे हुए इतिहास का ज्ञान होना चाहिए कि भारत का स्वतंत्रता-संग्राम महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के अनुयायियों द्वारा ही पूर्ण निःस्वार्थ एवं त्याग भाव से अपने जीवन के बलिदानों से सम्पन्न किया गया था। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में यदि आर्यसमाज को स्थान न दिया गया, तो यह आर्यों की बलिदानी अग्नि का अपमान तो होगा ही, साथ ही कांग्रेसियों की कृतघ्नता भी मानी जाएगी।

–श्री विमल वधावन

ऐडवोकेट, भारतीय सर्वोच्च न्यायालय पूर्व कार्यकारी प्रधान एवं
पूर्व महामन्त्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नयी दिल्ली

आभार

आचार्य डॉ. उमेश यादव

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में आर्यसमाज का लगभग (80%) योगदान हम सुनते आ रहे थे, कभी-कभी आर्यसमाज के मंचों पर विभिन्न आर्य विद्वानों द्वारा उक्त विषय को अत्यन्त शौर्यशाली मुद्रा में अनेक बार भाषण सुने, मगर इस तरफ कुछ लिख सकूँ, इसका ध्यान कभी नहीं गया। नवम्बर 2019 में जब मान्य डॉ. नरेन्द्र कुमार भारत-यात्रा से वापस आए, तो उन्हें सुप्रीम कोर्ट के योग्य बैरिस्टर श्री परमेश्वर नाथ जी से प्रेरणा मिली कि इस विषय पर कोई नयी पुस्तक लिखी जाए और यह पुस्तक भारतवर्ष के वर्त्तमान यशस्वी प्रधान श्री नरेन्द्र मोदी जी को भी भेंट की जाए।

सरकार को आर्यसमाज, आर्यसमाज के द्वारा राष्ट्रीय चेतना व स्वतंत्रता आन्दोलन में आर्यसमाज के द्वारा किये गए सर्वाधिक योगदान के बारे में अद्यतन जानकारी मिल सके। इसी प्रेरणा से इन्होंने यह लेखन-कार्य की जिम्मेदारी मुझे दी। यद्यपि इस विषय में कुछ पुरानी पुस्तकें भी प्राप्त हैं तथापि आधुनिक चेतना को भारतीय युवा-मन में जागृत करने के उद्देश्य से यह कार्य मैंने ले लिया।

इस पुस्तक के प्रस्तावित नाम में ही इसके महत्त्व की व्यापकता निहित है अत: पुस्तक के अन्त: भाग को यहाँ उपस्थित करना मैं भूमिका के कलेवर को बढ़ाना ही समझता हूँ। पाठकगण को स्वयं इसके अन्त: पृष्ठों में अपनी पैनी नजर दौड़ाने के लिए उनकी सेवा में छोड़ता हूँ।

आशा है, पाठक मित्र गण मेरे इस पावन भाव को समझ सकेंगे।

प्रारंभ में इस चुनौती को पूरा करने में थोड़ा मानसिक भार महसूस किया; क्योंकि यह विषय मेरी दिनचर्या की रुचि से बाहर का था। संस्कारों की सम्पन्नता, विभिन्न वैदिक विषयों पर व्यावहारिक व्याख्यान तथा प्रवचन एवं ऐसे ही विषयों पर सामान्यतया लेखन कार्य में भी रुचि रही जिसके कारण पूर्व की 1. पारिवारिक यज्ञ-प्रेरणा 2. याजुष मन्त्रों में अध्यात्म भावना (मेरे शोध-प्रबन्ध) 3. संतति-निर्माण 4. अध्यात्म के शिखर पर 5. वैदिक संस्कार विधि (विधियों की व्यावहारिक सरल व वैज्ञानिक व्याख्या) ये पाँच पुस्तकें मेरी लेखनी से लिखित होकर प्रकाशित हो चुकी हैं। वैदिक संस्कार विधि को पूरा करने में भी डॉ. नरेन्द्र कुमार जी की ही मौलिक प्रेरणा रही। संभवत: इसी कारण इन्होंने यह कार्य भी पूरा करने की योग्यता मुझमें समझी और इस नयी पुस्तक जो राष्ट्रीय प्रेम तथा उस ओर आर्यसमाज के द्वारा कृत योगदान को पुस्तकबद्ध नये सिरे से करने का भार मुझ जैसे कमजोर कन्धों पर दे दिया। पर मुझे यह कहना है कि मान्य डॉ. नरेन्द्र कुमार, प्रधान जी, आर्यसमाज वेस्टमिड्लैंड्स की इस ओर उत्कट इच्छा, लगन एवं प्रेरणा से मुझमें इस पुस्तक के लेखन-कार्य को आगे बढ़ाने की भावना बढ़ती गई और उसका ही परिणाम है कि आज हमारे संयुक्त प्रयास से यह महत्त्वपूर्ण पुस्तक प्रिय पाठकवृन्द के समक्ष उपस्थित है।

इस चुनौतिपूर्ण कार्य को पूरा करने में विषयगत जहाँ पुराने लेखक पं. इन्द्र विद्यावचस्पति (सुपुत्र स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती), पंजाब केसरी लाला लाजपत राय आदि जैसे महापुरुषों को पढ़ने का सुअवसर मिला, अमर शहीद वीर भगतसिंह की भतीजी डॉ. श्रीमती वीरेन्द्र सन्धु की पुस्तक भी पढ़ी। पर मैं सबसे अधिक अपने आचार्य प्रवर पं. सत्यप्रिय शास्त्री, भूतपूर्व प्राचार्य दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय, हिसार (हरियाणा) का हृदय से आभारी हूँ जिनकी लिखी 'भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम में आर्यसमाज का योगदान' नामक पुस्तक हाथ लगी। इस पुस्तक का एक-एक अक्षर मेरे इस प्रयास का प्रेरक रहा, मैं कह सकता हूँ कि यही पुस्तक मेरे लिये एक तीव्र रोशनी देने वाला प्रकाश-स्तंभ सिद्ध हुआ। मैं इन आचार्यवर्य का इसलिये भी ऋणी हूँ कि मैंने इनके श्रीचरणों में

बैठकर ढाई वर्ष वैदिक शिक्षा हिसार में ली और सौभाग्यवश कालान्तर में मुझे भी वहीं दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय हिसार का प्राचार्य नियुक्त होकर 10 वर्ष (मार्च 1995-जनवरी 2005) सेवा करने का मौका मिला।

यद्यपि ये सभी लेखक अब भौतिक शरीर में नहीं है, तथापि इनके ये स्वर्णिम कार्य ऐतिहासिक रूप से सबके लिए प्रेरक रहेंगे। इन सबको सादर नमन।

जैसे-जैसे मैं उक्त विषय के अन्दर प्रवेश करता गया, मेरी रुचि लगातार बढ़ती गई, कई नयी-नयी जानकारियाँ मिलती गईं, बस क्या था, अब यह विषय मन का भार न रहकर मेरी रुचि का अंग बन गया। इस नये विषय की ओर प्रेरणा देने के लिए मैं अपने यशस्वी प्रधान डॉ. नरेन्द्र कुमार जी का हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ। मैं अपनी धर्मपत्नी श्रीमती शांति कुमारी का धन्यवाद कैसे न करूँ जो लेखन-कार्य में लगे रहने में आन्तरिक रूप से साथ निभाते हुए उत्साहित करती रहीं, अतः उनका भी हार्दिक धन्यवाद।

इस पुस्तक को लिखते हुए मुझे ऐसा ज्ञान हुआ कि आर्यसमाज के नेता तथा कार्यकर्त्ताओं ने भारत का बँटवारा कभी नहीं चाहा था, पर तत्कालीन कांग्रेसियों द्वारा कुछ इस्लाम परस्त स्वार्थी नेताओं के दबाव में और इससे भी घटिया बात कि धर्म के नाम पर इस देश का बँटवारा कर दिया गया। मतनिर्पेक्षता भाव को धर्मनिरपेक्ष (सेक्यूलर) घोषित कर दिया गया। आज तक भारतवर्ष की जनता इस शब्द से गुमराह हो रही है। यह पुस्तक इस भाव को समझने और समझाने में सहायक हो सकेगी, मुझे ऐसा प्रतीत होता है।

यह पुस्तक आज की अवस्था में देशप्रेमी लोगों को यत्किंचित् भी प्रेरणा देने में सहायक होती है, तो मैं अपना सौभाग्य समझूँगा। इस कार्य में आगे भी काफी कुछ कार्य करने की आवश्यकता है। अभी भी बहुत ऐसे बलिदानी वीरपुरुषों/महिलाओं के नाम नहीं आ पाए हैं जिनकी समय-समय पर खोज बनी रहेगी। विद्वान् मित्रों की लेखनी चलती रहे; ऐसा मेरे हृदय की पवित्र भावना है।

इस पुस्तक को प्रकाशित करने की आर्थिक जिम्मेदारी बोर्ड ऑफ ट्रस्ट, आर्यसमाज वैस्टमिड्लैंड ने ली, इसके लिए मैं इस आर्यसमाज का

आन्तरिक मन से साधुवाद देता हूँ। साथ ही इसके सम्पादक व सह लेखक की गरिमा प्राप्त करने वाले डॉ. नरेन्द्र कुमार का एवं इसके प्रकाशन 'गोविन्दराम हासानन्द' का हृदय से आभार प्रकट करता हूँ। इस पुस्तक को पृष्ठबद्ध नियमित करने में प्राप्त सहयोग के लिए हमारे कार्यालय-प्रबन्धक कुमारी लीशा चौहान का भी स्नेहभरा धन्यवाद।

अन्तत: मैं इन सब आदर एवं श्रद्धा के योग्य महान व्यक्तित्व के धनी महापुरुषों का हार्दिक सम्मान करता हूँ जिन्होंने अपना बहुमूल्य आशीर्वाद देकर कृतार्थ किया है—

1. योगर्षि श्रद्धेय स्वामी राम देव जी महाराज
2. महामहिम आचार्य देवव्रत जी, गवर्नर, गुजरात
3. महामहिम श्री गंगा प्रसाद, गवर्नर, सिक्किम
4. डॉ. रूपकिशोर शास्त्री, उपकुलपति, गुरुकुल काँगड़ी विश्व विद्यालय, हरिद्वार
5. डॉ. महावीर अग्रवाल, भूतपूर्व उपकुलपति, गुरुकुल काँगड़ी एवं संस्कृत विश्वविद्यालय उत्तराखण्ड तथा वर्त्तमान प्रति कुलपति, पतंजलि विश्वविद्यालय, हरिद्वार
6. विमल वधावन योगाचार्य, ऐडवोकेट, भारतीय सर्वोच्च न्यायालय, पूर्व कार्यकारी प्रधान एवं पूर्व महामन्त्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नयी दिल्ली

विदुषामनुचर
आचार्य डॉ. उमेश यादव
एम.ए. (हिन्दी एवं संस्कृत), पी-एच.डी.
पूर्व प्राचार्य, दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय, हिसार (हरयाणा); वर्तमान
मिनिस्टर ऑफ रेलिजन, आर्यसमाज वेस्टमिड्लैंड्स (बर्मिंघम) यू.के.

प्रथम अध्याय

स्वामी पूर्णानन्द, गुरु विरजानन्द, महर्षि दयानन्द और उनकी राष्ट्रीयता

भारतीय स्वतंत्रता की लड़ाई में आर्यसमाज की सहभागिता का प्रारंभ—महाभारत काल के पूर्व से ही भारत बिखर रहा था। तत्कालीन राजनीति-कुशल महान योद्धा योगिराज श्रीकृष्ण का आगमन हुआ। कृष्ण का सच्चा परिचय भी महाभारत से ही मिलता है। आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द ने अपने अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' में श्रीकृष्ण की महिमा इस प्रकार की है—

"श्री कृष्ण का जीवन आप्त पुरुषों के सदृश है—देखो, श्री कृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। कोई अधर्म का आचरण श्री कृष्ण जी ने जन्म से मरण पर्यंत बुरा काम कुछ भी किया हो, ऐसा नहीं लिखा और इस भागवतवालों ने अनुचित मनमाने दोष लगाए हैं जिसको पढ़-पढ़ा, सुन-सुना के अन्य मतवाले भी कृष्ण जी की बहुत-सी निन्दा करते हैं। जो यह भागवत न होता तो श्री कृष्ण जी के सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्योंकर होती।"

—11वाँ समु., सत्यार्थ प्रकाश

श्री कृष्ण ने देखा कि समस्त आर्यावर्त्त/भारत छोटे-छोटे राज्यों में बँटा है और वहाँ के राजा भी मनमानी ढंगों से प्रजा पर अत्याचार कर रहे हैं। आर्य जाति का गौरव नष्ट हो रहा है। वैदिक संस्कृति धीरे-धीरे क्षीण हो रही है। कुशल ब्राह्मण नहीं, योग्य राजा/क्षत्रिय नहीं। ब्रह्म शक्ति और क्षात्र शक्ति के बिना राज्य की समुचित व्यवस्था करना मुश्किल है। वेद में

सही उक्ति है—

"यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह"

यजु-20.25

परोपकारी कुशल नेतृत्व के धनी, सदाचारी, ब्रह्म शक्ति और क्षात्र शक्ति ही राष्ट्र की सही रक्षा करती है। श्रीकृष्ण ने बहुत ही समझदारी से बिखरे राज्यों को एक सूत्र में बाँधकर एक महाभारत बनाया और आर्य जाति को फिर से आगे बढ़ने की एक स्वस्थ और नयी दिशा दी।

"अन्यायपूर्ण अधर्म का नाश हो और न्याययुक्त धर्म का सर्वत्र आधिपत्य हो।"—ऐसी मान्यता लेकर ही श्रीकृष्ण जी ने भारत को महाभारत का रूप दिया जिसमें आर्य संस्कृति की गरिमा सर्वत्र मिलती है। परंतु कालान्तर में आर्य संस्कृति पर मत-मतान्तर का प्रभाव बढ़ने लगा, इसके प्रभाव से यहाँ लगभग छ सौ (600) वर्ष इस्लामिक राज और दो सौ (200) वर्ष अंग्रेजी-राज का साम्राज्य हुआ। निःसंदेह इस काल में आर्य संस्कृति पर जोरदार कुठाराघात हुआ। सर्वत्र आर्य संस्कृति कराहने लगी। अन्तः और बाह्य दोनों उपायों से शुद्ध वैदिक गौरव पर कुप्रभावों ने अपना अड्डा जमाना शुरू कर दिया।

हमारा भारत फिर से विदेशियों के हाथ लुटने लगा और यहाँ के मूल निवासी टूटने लगे। इतने में आर्यत्व का शंखनाद फूँकने वाले वीतराग संन्यासी वेदों का धुरन्धर विद्वान्, राष्ट्र सुचेता, आर्य गौरव, अखण्ड ब्रह्मचारी, राष्ट्रोद्धारक महर्षि दयानन्द का आगमन हुआ।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी भारत की लगभग वैसी ही दुर्दशा देखी जैसी श्रीकृष्ण ने देखी थी, बल्कि उससे भी अधिक बेबस, गरीबी, अज्ञानता, अन्याय, दासता थी जब महर्षि दयानन्द ने अपने स्वर्णतुल्य महान् आर्यावर्त्त की गरिमा को समझते हुए इस परिवर्तित पतित भारत की दुर्दशा देखी। भारत को जगाने का संकल्प लिया और अपने कार्यों से सोये भारत को जगाया भी।

अंग्रेजी राज को समूल समाप्त करने का शंख नाद 1857 के गदर में ही फूँक दिया था। आगे हम इसको विस्तार से समझेंगे।

1857 ई० का स्वतंत्रता संग्राम और राष्ट्रोद्धारक महर्षि दयानन्द सरस्वती—मथुरा के दण्डी विरजानन्द के गुरु स्वामी पूर्णानन्द

हरिद्वार के कनखल में रहा करते थे। ज्ञान व योग विद्या के पिपासु स्वामी दयानन्द 1855 ई० में स्वामी पूर्णानन्द जी से मिले। उन्होंने जिज्ञासु दयानंन्द को कुछ योग-विद्या बताते हुए राष्ट्र की भावनाओं से भी प्रेरित किया। उन्होंने अपनी वृद्धावस्था का हवाला देते हुए कहा कि मथुरा में रहने वाले मेरे योग्य शिष्य दण्डी विरजानन्द के पास जाओ। उनकी आज्ञा मानकर स्वामी दयानन्द ने राष्ट्र की वर्त्तमान दुर्दशा से परिचित हो जाने पर मथुरा जाने का विचार किया। पर वह राष्ट्र-सुधार के ख्याल से ही कनखल से सीधे मथुरा न जाकर उत्तराखण्ड से होते हुए कानपुर तथा नर्मदा क्षेत्र में चले गए।

गुरु विरजानन्द द्वारा खाप-पंचायत

सर्वखाप पंचायत—सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम को सार्थक-रूप देने के लिए मथुरा में एक बैठक हुई। इसमें श्री मुस्ताक मिरासी सर्वखाप पंचायत के प्रतिनिधि बनकर सम्मिलित हुए थे। तब मथुरा रियासत भी पुरातन हरयाणा प्रांत का हिस्सा हुआ करती थी और वह मुलतान से मन्दसौर (मध्यप्रदेश) तक विस्तृत था। यह पंचायत सम्पूर्ण हरयाणा के लिए एक ग्रामीण संगठन था जिसके पास 85 हजार पहलवान योद्धाओं की एक विशाल सेना थी। इसी सेना ने सिकन्दर को भारत से लौटने को विवश कर दिया था। यह अपने आप में तत्कालीन हरयाणा का अलग ही महत्त्वपूर्ण इतिहास है।

यह सेना सदैव विदेशी ताकतों से लड़ने का साहस रखती थी। सर्वखाप पंचायत की गुप्त बैठकें होती रहती थीं। मीर मुस्ताक मिरासी ने एक बैठक का आँखों देखा हाल एक पत्र में लिखा जो पत्र चौ० कबूलसिंह जी महामंत्री सर्वखाप पंचायत सोरम, जिला मुजफ्फरनगर उत्तर प्रदेश के माध्यम से आर्यजगत् को प्राप्त हुआ। यह पत्र उर्दू-फ़ारसी भाषा में लिखा गया था पर इसका हिन्दी-अनुवाद करवाकर 'आर्य मर्यादा' आदि आर्य पत्रों में छपवाया गया था। इसकी प्रतियाँ 'आर्य मर्यादा' 15, हनुमान रोड, नई दिल्ली-1 के कार्यालय में श्रीयुत् जगदेवसिंह शास्त्री सिद्धान्ती सम्पादक आर्य मर्यादा के पास उपलब्ध था।

आचार्य सत्यप्रिय जी शास्त्री ने अपनी पुस्तक के 174-176 पर इसका उल्लेख किया है। उक्त बैठकों की अध्यक्षता सर्व-सम्मानित

स्वामी विरजानन्द ने की थी, यह प्रमाणित हो चुका है। संवत् 1913 अर्थात् सन् 1856 ई० में मथुरा में आयोजित पंचायत की बाखूबी अध्यक्षता करने के लिए उनका नाम दर्ज है इसमें स्वामी जी ने समस्त भारतीयों को अपने मतभेदों को भुलाकर विदेशी राज्य के विरोध में साहसिक कदम उठाने हेतु एकजुट होकर आगे बढ़ने की प्रेरणा दी। स्वामी जी को उस पंचायत में भाग लेने के लिए पालकी में लाया गया था। सब हिन्दू-मुसलमान लोगों द्वारा उनका स्वागत किया गया था। उन्हें सम्मान में कुछ अशर्फियाँ भी भेंट की गई थीं। सबने उन पर विश्वास जताया और उनकी बातें ध्यान से सुनीं और उस पर अमल करने की आवाज भी बुलन्द की गई।

पंचायत में उपस्थित लोगों को मीरासी जी द्वारा बताया गया कि इन महात्मा संन्यासी का नाम स्वामी विरजानन्द है, जो बहुत वर्षों से मथुरा में रहते हैं और संस्कृत की तालीम/शिक्षा देते हैं और अल्लाह ताला (ईश्वर) के मोहतकिद/भक्त हैं।

इस प्रकार के कुछ पत्रों का देवनागरी लिपि में अनुवाद यहाँ ज्यों का त्यों प्रस्तुत किया जा रहा है ताकि पाठक स्वयं उक्त तथ्यों की प्रामाणिकता को सही-सही समझ सकें—

1. पत्र का प्रथम भाग—सन् 1856 बमुताबिक सम्वत् 1913 को एक पंचायत मथुरा के तीर्थगाह पर मुन अकिद हुई, उसमें हिन्दू, मुसलमान और दूसरे मजहब के लोगों ने शिरकत की थी। इस पंचायत में एक नाबीना हिन्दू दरवेश (स्वामी विरजानन्द) को पालकी में बिठाकर लाया गया था। उनके आने पर सब लोगों ने उनका अदब किया। जब उन्हें एक चौकी पर बैठाया गया, तब हिन्दू-मुसलमान फकीरों ने उनकी कदम बोसी (पैर धोना) की। इसके बाद हाजरीन पंचायत के लोगों ने उनका अदब किया। सबके अदब के बाद नानासाहब पेशवा, मौलवी अज़ीमुल्ला खान, रंगू बाबू, और शहंशाह बहादुरशाह के शाहजादा इन सबने अदब में उन्हें कुछ अशर्फियाँ पेश कीं। इसके बाद एक हिन्दू और एक मुसलमान फकीर ने कहा कि हमारे उस्ताद साहिबान की जबान मुबारिक से जो तकरीर होगी, उसे तसल्ली के साथ सब साहिबान सुनें और वह इस मुल्क के लिए बहुत मुफीद (सार्थक) साबित होगी और यह वली

अल्लाह साधु बहुत जबानों/भाषाओं का आलिम/जानकार हमारा मुल्क का बुजुर्ग है। खुदा की महरबानी से ऐसे बुजुर्ग हमें मिले, यह खुदा का हम पर बड़ा अहसान है।

पत्र का दूसरा भाग—दरवेश (पूज्य स्वामी जी) की तकरीर का आगाज/उद्‌बोधन—

''सबसे पहले उन्होंने खुदा की तारीफ की, उर्दू में उसका तरजुमा किया। इस बुजुर्ग ने यह कहा था कि आजादी जन्नत/स्वर्ग है और गुलामी दोजख/नरक है। अपने मुल्क की हकूमत गैरमुल्क की हकूमत के मुकाबले में हजार दर्जे बहतर है। दूसरों की गुलामी हमेशा बेइज्जती और बेशरमों का बायस है। हमें किसी कौम से या किसी मुल्क से कोई नफरत नहीं है। हम तो खल्के खुद की बहबूदी के लिए खुदा से रोज दुआ माँगते हैं मगर हुकमरा कौम खासकर फिरंगी जिस मुल्क में हकूमत करते हैं, उस मुल्क के बाशिन्दों के साथ इन्सानियत का बरताव नहीं करते और कितनी ही अपनी अच्छाई की तारीफ करे मगर उस मुल्क के बाशिन्दों के साथ मवेशियों से गिरा हुआ बरताव करते हैं। खुदा की खलकत में सब इन्सान भाई-भाई हैं मगर गैर मुल्की हुकमरा कौम उन्हें भाई न समझकर गुलाम समझती है। किसी भी मजहब की किताब में ऐसा हुक्म नहीं है कि अशरफुल्मखलूकात के साथ दगा की जावे और अल्लाह के हुक्म के खिलाफ बरजी की जावे, इश वास्ते मातहत लोगों का न कोई ईमान है, न कोई धर्म मगर सियासी मसले में आकर वह अपने कौल फेल समझ कर फौरन बदल जाते हैं और हमारी अच्छाई और नेक सलाह को फौरन ठुकरा देते हैं। इसकी असल बजूहात यह है कि हमारे मुल्क को वह अपना वतन नहीं समझते। हमारे मुल्क का बच्चा-बच्चा उनकी खैर ख्वाही का दम भरे फिर भी अपने वतन के कुत्ते को हमारे इन्सानों से अच्छा समझते हैं, यही सब कमी का बायस है, इन्हें अपने ही वतन से मुहब्बत है, इसलिए मैं (स्वामी विरजानन्द) बाशिन्दगान हिन्द से इलतजा करता हूँ कि जितना वह अपने मजहब से मुहब्बत करते हैं उतना ही इस मुल्क के हर इन्सान का फर्ज है कि वतन-परस्त बनें और मुल्क के हर बाशिन्दे को भाई-भाई जैसी मुहब्बत करे तब तुम्हारे दिलों के अन्दर वतन परस्ती आ जाएगी तो इस मुल्क की

गुलामी खुद व खुद जुदा हो जाएगी। हिन्द के रहने वाले सब आपस में हिन्दी भाई हैं और बहादुरशाह हमारा शहंशाह है।''

2. दूसरे पत्र का एक मुख्य हिस्सा—''सम्वत् 1913 विक्रमी में (सन् 1856 ई०) यह पंचायत दूर दराज जंगल में की गई थी और शुरू भादों का यह माह था। यह पंचायत चार रोज तक मतवातर होती रही। पहले दिन आने वाले सब महमानों की एक-दूसरे से मुलाकात कराई गई थी। दूसरे दिन हजरत आदम से लेकर हजरत अलेह व सलम तक सवाने उमरी सुनाई गई। तीसरे दिन राम, कृष्ण, महात्मा बुद्ध, शंकराचार्य और महावीर स्वामी अनेक ऋषि और मुनि और राजा-महाराजाओं की जिन्दगी के दास्तानों पर रोशनी डाली गई और चौथे दिन नाबीना संन्यासी महात्मा बिरजानन्द जी और मुसलमान साईं मियांरममदून शाह ने शुरू में बिरजानन्द जी की तकरीर से पहले शुरुआत की।

आज दिन की तकरीर में खास खां लोगों की ही जमायत थी और खुफिया (और) सरकारी आदमी इसमें नहीं था। नाबीना महात्मा की तकरीर बहुत ही पुरजोर थी और हर मजहबी इल्म से ताल्लुक रखती थी और डेढ़ घंटे तक तकरीर होती रही। मैंने (मीर मुश्ताक मीरासी) इनकी तकरीर के खास-खास इलफाज तहरीर किये हैं, बाकी उन्होंने हर पहलुओं पर रोशनी डाली थी।

जब महात्मा बिरजानन्द को पालकी में बिठाकर लाया गया, उस वक्त हिन्दू-मुसलमान फकीरों ने इनकी खुशी में शंख, घड़ियाल, नागफणी, नक्कारा (नगाड़ा), तुरही और नरसिंघे बजाए थे और खुदा परस्ती और वतन परस्ती के गीत गाए थे। यह नाबीना शाधु (साधु) हर इल्म के समझने की ताकत रखता था और खुदा का जलवे जुलाल इसकी जबान से जाहित होता था। मैंने (मीर मुश्ताक मीरासी) भी अपनी रुह के तकाजे के मुताबिक 5 फूल उनके सामने पेश किये और उनकी कदम बोसी (स्पर्श) की और खुदा से दुआ माँगी कि खुदा ऐसी नेक रुहों को खलकत की भलाई के लिए हमेशा पैदा कीजिए।

उपरोक्त पत्रों से स्पष्टत: स्वामी दण्डी गुरु विरजानन्द का स्वदेश प्रेम झलक रहा है और उन्होंने अपने स्वदेश की स्वतंत्रता के लिए जो यहाँ आवाज उठाई, वह अपने आप में मार्मिक है और एक मजबूत सत्य

इतिहास है। इसी प्रेरणापूर्ण आवाज को उनके शिष्य महर्षि दयानन्द ने अपने प्रवचन तथा अपने अमूल्य ग्रंथों में स्थान-स्थान पर और अनेक रूपों में उठा कर भारतीय वीरों की क्रांतिकारी स्वदेश-चेतनाओं का आधार बनाया, साथ में वैदिक ग्रंथों के सटीक प्रमाणों से आर्यों में भीतर स्वदेश गरिमा का शंखनाद फूँका। आगे के प्रकरणों से पाठक स्वयं उक्त तथ्यों की पुष्टि कर सकेंगे।

उस क्षेत्र में स्वतंत्रता संग्राम की योजना जोर-शोर से बन रही थी। लगता है, स्वामी दयानन्द ने इस रहस्य को भी स्वामी पूर्णानन्द से ही सुन लिया हो और उस आन्दोलन का जल्दी ही हिस्सा बनना चाहते हों।

स्वामी वेदानन्द सरस्वती लिखित 'विरजानन्द चरित', पृ. 118-119

स्वतंत्रता संग्राम का बीजारोपण-तत्कालीन संग्राम के बीजारोपण में स्वामी पूर्णानन्द एवं दण्डी विरजानन्द का नाम सर्वोपरि माना जाता है। उसी समय देश की आजादी का बिगुल बज चुका था। क्रान्तदर्शी वैदिक ज्ञान एवं व्याकरण के धुरन्धर प्रज्ञाचक्षु दण्डी संन्यासी विरजानन्द ने स्पष्टत: यह जान लिया था कि भारत की भयंकर दुर्दशा के दो मूल कारण हैं—1. अनार्य ग्रन्थों का पठन-पाठन और 2. विदेशी राज्य/अंग्रेजी राज्य। विरजानन्द जी यह विचार अपने तत्कालीन प्रिय राजाओं को बताया करते थे, ऐसे ही स्वामी पूर्णानन्द जी भी थे। उस समय इन गुरु-शिष्यों के शिष्यगण भी अनेक दिशाओं में बिखरे हुए थे जो राष्ट्रीय भावनाओं से भरपूर प्रेरित थे। सबके प्रयास से लगभग सभी सम्प्रदायों के साधु-संत, गुरु-फ़कीर और अन्य मनीषी गण अटक से कटक तक और कश्मीर से कन्या कुमारी तक फैले सभी भारतीयों में संग्राम-बिगुल की ध्वनि गुंजायमान होने लगी। फलत: सबने विदेशी राज्य/जजीरों को उखाड़ फेंकने का मन बना लिया था।

चारों ओर यह क्रान्ति आग की तरह बढ़ने लगी। तब लगभग 31 (वर्षीय) नौजवान बाल ब्रह्मचारी स्वामी दयानन्द राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत हो, भीतर ही भीतर उबलने लगा पर गंगोत्री, बद्रीनाथ, बनारस, गढ़वाल, रुहेलखण्ड, दोआब एवं काशी के प्रदेशों में 1857 तक घूमता रहा। तब तक क्रांति की तैयारियाँ भी चारों ओर हो गई थीं। 1857

से नवम्बर, 1860 तक का समय उनका अज्ञात सा हो गया। प्रतीत होता है कि स्थान-स्थान पर अज्ञातरूप से घूम-घूम कर अलग-अलग विभिन्न क्रान्तिकरियों से मिलकर कुछ विशेष योजना बनाते रहे।

इसी सन्दर्भ में यह उल्लेख करना जरूरी है कि तभी स्वामी दयानन्द का समवयस्क नाना धोंधो पंतराव भारत का पेशवा बन गया और वह भी तीव्रगति से इस क्रांति-यज्ञ का हिस्सा बना। उससे स्वामी दयानन्द जी भी मिलने चल पड़े। यह 1856 की घटना है जब वह कानपुर आदि क्षेत्रों में रहकर स्वयं नाना और उनके शिष्यों की सारी तैयारी देखने के लिए बनारस, मिर्जापुर और फिर चुनार होकर नर्मदा के स्रोत को देखने के लिए दक्षिण प्रदेशों की ओर निकल पड़े।

इस सन्दर्भ में **श्री जगदेव सिंह सदस्य लोकसभा** ने आर्योदय साप्ताहिक देहली-2.9.1965 में अपने एक लेख—'मेरी दक्षिण भारत यात्रा' के पृ. 8, कॉलम 2 में लिखा था—1857 में योजनायुद्ध में संस्कारित होते हुए नाना धोंधो पन्त की सुरक्षा के लिए मौरवी के सामन्त को ऋषि दयानन्द ने एक पत्र भी लिखा था।

इससे पता चलता है कि तब तक स्वामी दयानन्द ने कुछ राजाओं से सम्पर्क करके अपनी निकटता बढ़ा ली थी। उन्होंने उनके मन-मस्तिष्क में अपने देश भारत की भारतीयता एवं उसकी स्वतंत्रता हेतु संकल्प यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित कर दी थी।

स्वामी दयानन्द का गुरु विरजानन्द से मथुरा में मिलना, अध्ययन, गुरु से विदाई व राष्ट्र-सेवा में जुड़ना

जैसा कि उल्लेख कर आए हैं कि स्वामी विरजानन्द के गुरु स्वामी पूर्णानन्द जी कनखल से स्वामी दयानन्द पूर्व ही राष्ट्र की प्रबल भावना से 1855 में ही ओत-प्रोत हो चुके थे। सत्य ज्ञान प्राप्त करने के लिए आर्ष ग्रन्थों का पठन-पाठन आवश्यक समझकर विरजानन्द जी के पास मथुरा जाकर अध्ययन करने की प्रेरणा इन्हें स्वामी पूर्णानन्द जी से ही मिली। स्वामी दयानन्द को स्वामी पूर्णानन्द ने इस सम्बन्ध में मार्गदर्शन भी किया था। फिर भी दयानन्द सीधे मथुरा न जाकर, स्वतंत्रता-संग्राम की योजना

से जुड़ गए। वह 1859-60 तक सारे भारत में इधर-उधर घूम कर सबको विदेशी राज्य को उखाड़ फेंकने की प्रेरणा देते रहे।

राष्ट्रवादी स्वामी दयानन्द वैसे ही चुपचाप बैठने वाले नहीं थे 1857 के बाद वह नवम्बर 1860 तक कहाँ रहे, इसका पता नहीं चलता। केवल अनुमान लगाया जा सकता है कि वह तत्कालीन गदर के प्रेरणास्रोत बनकर ही वह भ्रमण करते रहे होंगे। पर अनार्य ग्रन्थों के पठन-पाठन से भारत की जनता अपने स्वाभिमान एवं गौरव को पहचान नहीं पा रही थी और यत्र-तत्र बिखरी हुई थी। देशवासियों को एकजुट करने में वैचारिक मुश्किलें आ रही हैं—ऐसे विचार स्वामी दयानन्द जी के मन में घर कर गए। इसी विचार से प्रेरित हो और स्वामी पूर्णानन्द के वचन एवं आशीर्वाद स्मरण कर नवम्बर 1860 में मथुरा आए और गुरु विरजानन्द से वैदिक व्याकरण का ज्ञान प्रदान करने के लिए निवेदन किया। तब स्वामी दयानन्द 36 वर्ष के थे और दण्डी विरजानन्द लगभग 80 वर्ष के थे पर ज्ञान तथा बुद्धि से अभी भी सबल थे। मई 1863 ई० तक यानी 2.5 वर्ष तक पूर्णरूप से वैदिक व्याकरण तथा वैदिक ग्रन्थों का लगन से गुरु विरजानन्द के चरणों में बैठ विद्या प्राप्त की। मेधावी स्वामी दयानन्द आर्ष ग्रन्थों के पठन-पाठन में पारंगत हो गए। गुरु से विदा लेने का समय आया तो वह गुरुदक्षिणा के रूप में थोड़े से लौंग लेकर गुरु के चरणों में जा पहुँचे और उन्हें लौंग भेंट कर दिए। लेकिन स्वामी विरजानन्द ने कहा—**''दयानन्द! देश में आर्ष विद्या का प्रचार-प्रसार करो। वैदिक ज्ञान से सबको आलोकित कर दो। इसके लिए मैं तुम्हारा जीवन माँगता हूँ। बोलो, क्या मझे यह दक्षिणा में दोगे।''** स्वामी दयानन्द ने गुरु के चरणों में नतमस्तक होकर इस वचन को निभाने की प्रतिज्ञा की। इस प्रकार वह वेदों तथा आर्ष ग्रन्थों के प्रचार-प्रसार के किये अपने गुरु से आशीर्वाद एवं प्रेरणा लेकर विदा हुए और फिर वह जगोपकार तथा भारतीय परतंत्रता की बेड़ी को काटने की उत्कट इच्छा से अपने लक्ष्य को पूर्ण करने में लग गए। यत्र-तत्र-सर्वत्र घूमते-घामते स्वामी दयानन्द 1865 ई० में फिर कानपुर क्षेत्र में पधारे और तब से लेकर लगभग 1870 तक यह अनुमान लगाया जाता है कि वह पुनः अज्ञातरूप से भारत के वासियों, राजाओं तथा क्रांतिकारियों में स्वतंत्रता संग्राम में जुटे रहने का

आह्वान करते रहे। इसी क्रम में 1871-72 में कलकत्ता पहुँचे और वहाँ गण्मान्य सामाजिक बुद्धिजीवी लोगों से मिले और सर्वत्र वैदिक ज्ञान का प्रचार-प्रसार किया।

स्वराज्य के लिए ऋषि-विचार

भारतीयों पर अंग्रेजी शासन द्वारा हो रहे अत्याचारों की दारुण कथा स्वामी पूर्णानन्द जी से ही ऋषि दयानन्द ने काफी कुछ सुन रखी थी। उनके हृदय में विदेशी शासन के प्रति विद्रोह और स्वदेश के प्रति प्रेम का भाव जागृत हो चुका था।

लाहौर के एक वयोवृद्ध समाजसेवी तथा अनुभवी पत्रकार श्री वासुदेव का एक निबन्ध जो दैनिक हिन्दुस्तान 12.08.1969, पृ. 3 कॉलम 3 के अनुसार—

''ब्रिटिश सत्ता के उन्मूलन के लिए 1857 ई० में जो राज्य-क्रांति हुई थी उसमें ऋषि दयानन्द ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की थी।''

स्वामी पूर्णानन्द से ब्रिटिश अत्याचारों की हृदयद्रावक कथा सुनकर किस प्रकार ऋषि दयानन्द ने तांत्या टोपे और नाना साहब से निकट सम्पर्क स्थापित किया और किस प्रकार योजनाबद्ध होकर क्रान्ति के इन नेताओं ने विभिन्न रियासतों तथा आम जनता को संगठित करने का प्रयत्न किया। इस पर एक गोष्ठी चल रही थी.................परिषद की ओर से आयोजित की गई थी उसकी अध्यक्षता प्रबुद्ध वैदिक विद्वान् क्षितीश वेदालंकार कर रहे थे। उन्होंने कुछ नये प्रमाण प्रस्तुत किये और स्पष्ट किया—''नाना साहब पेशवा सन् 57 की राज्य क्रांति विफल हो जाने के पश्चात नेपाल चले गए थे। फिर भावनगर (सौराष्ट्र) के पास सिहौर नामक स्थान में साधु के रूप में रहे और मौरवी में उनका स्वर्गवास हुआ जहाँ उनकी समाधि बनी हुई है। नाना साहब पेशवा ने स्वयं यह रहस्य तत्कालीन कुछ मित्रों के सामने उद्घाटित किया था जिनसे श्री क्षितीश वेदालंकार जी को यह पता चला था। इन तथ्यों के खुलासे में और भी जानें—

कलकत्ता के श्री दीनबन्धु जी वेद शास्त्री द्वारा लिखित 'महर्षि की अज्ञात जीवनी' लेख जो सार्वदेशिक साप्ताहिक दिल्ली के 12.1.1969 में प्रकाशित हुआ था। उसके अनुसार—

"दयाराम (दयानन्द) ने साधु-संन्यासी, तपस्वियों के अन्दर संगठन के लिए कोशिश की थी, देश की बुरी हालत मिटाने के लिए साधुओं को तत्पर होने के लिए कोशिश की थी, उन्होंने सिपाही-विद्रोह आन्दोलन के साथ भी संयोग स्थापन किये थे, मराठी नेता नाना साहब भी महर्षि दयानन्द से विचारविमर्श करने के लिए आए थे—प्रधान सैन्यावास में भी आया-जाया करते थे, बैराकपुर सैन्यावास (बंगाल) में भी आए थे, मंगल पांडे नामक सैन्य ने उनसे आशीर्वाद माँगा था।"

मेरे पूजनीय गुरु आचार्य सत्यप्रिय शास्त्री के उद्गार—देखें उनकी पुस्तक 'भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम में आर्यसमाज का योगदान' में पृ. 5, 3 कॉलम। वह लिखते हैं—"यह एक बुद्धि ग्राह्य तथ्य है कि भारत के इस प्रथम विशाल स्वातंत्र्य संग्राम के आयोजन एवं नेतृत्व में स्वामी पूर्णानन्द, विरजानन्द तथा दयानन्द इन तीनों साधुओं का गहरा हाथ रहा, चाहे वह सशस्त्रक्रांति युक्त न होकर वचनमात्र ही रहा हो।"

इन तथ्यों से विदित है कि महर्षि दयानन्द ने अपनी वाणी, लेखन तथा विभिन्न आयोजनों से भारतीय राजाओं तथा प्रजाओं में आजीवन राष्ट्र प्रेम भरा पर तत्कालीन स्वदेशीय देश-द्रोही वर्गों द्वारा भारत के साथ विश्वासघात किया गया। उनके द्वारा अंग्रेजी शासकों को साथ दिये जाने के कारण ब्रिटिश शासन इस क्रांति-यज्ञ में भाग लेने वाले आयोजकों को अपने बल से बुरी तरह निर्दयतापूर्वक कुचलते रहे जिसके परिणाम से यह क्रांति विफल हो गई। तब भी महर्षि दयानन्द अपने सब प्रयासों से हरदम भारतीयों को जगाते रहे और उन्हें गोरांगों के अत्याचार से लड़ने के लिए सदैव प्रेरित करते रहे। महर्षि दयानन्द की ओजस्वी वाणी व लेखन कालान्तर की सुषुप्त चेतना को जगाने में अत्यन्त सहयोगी सिद्ध हुए। मुर्दों की धमनियों में भी गर्म लहू का संचार हो जाया करता जब भारत की प्रजा महर्षि के तर्क व प्रमाणयुक्त भारत-गौरव का उद्बोधन सुना करते थे। भारत के जन-मन में उसके पश्चात् जो भी राजनैतिक प्राणशक्ति का विकास हुआ उसमें महर्षि दयानन्द की देन सर्वोपरि है। एक इतिहासकार के शब्दों में इसे समझें—

"दयानन्द का जन्म मौरवी रियासत के टंकारा गाँव में समृद्ध ब्राह्मण गृहपति करसन जी के यहाँ सन् 1824 में हुआ था, यों भारत की

स्वाधीनता के लिए मरमिटने और उसमें फिर से राष्ट्रीयता जगाने वाले ये दोनों महापुरुष समसामयिक और समवयस्क भी थे, इनमें से जब एक नव युवक (नाना धोंधो पंतराव पेश्वा) शस्त्र का आश्रय लेकर राष्ट्र की स्वाधीनता की ज्योति को प्रज्वलित रखने के लिए अपना सर्वस्व होमकर भी असफल रहा, तब दूसरे (दयानन्द) ने उसके स्फुलिंगों को एक प्रकार से फिर से जगाने की विधि निकालने के लिए शास्त्र का आश्रय ग्रहण किया।'' *—हमारा राजस्थान-पृ. 266*

इन्द्र विद्यावाचस्पति अपनी पुस्तक 'भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास' पृ. 22 और 24 पर क्रमश: लिखते हैं कि—

''सन् 1857 की क्रान्ति के पश्चात् के उन महापुरुषों की सूची में जिन्हें हम उस क्रांति के मानसिक, सामाजिक और सांस्कृतिक उत्तराधिकारी कह सकते हैं तो पहला नाम महर्षि दयानन्द सरस्वती का है।''

''राजनीति में स्वामी दयानन्द की नवीन राष्ट्रीयता का अग्रदूत कहें, तो अत्युक्ति न होगी। उन्होंने अपने मुख्य ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में स्वराज्य, स्वदेशी, स्वभाषा और स्वदेश के पक्ष में जो स्पष्ट विचार प्रकट किये थे, वह भारत की राजनीति में 1901 से पहले व्यक्तरूप से नहीं आए थे, व्यावाहारिक रूप में उनका प्रयोग तो बंगविच्छेद के पश्चात् ही हुआ।'' श्री सत्यदेव विद्यालंकार ने भी अपनी पुस्तक 'राष्ट्रवादी दयानन्द'-पृ. 32 में भी इस तथ्य की पुष्टि की है—''इस देश में अंग्रेजी राज्य के स्थापित होने के बाद वे पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने देशवासियों के हृदय में स्वाभिमान और स्वदेशाभिमान के दीपक को बुझते-बुझते बचाया।''

महर्षि दयानन्द ने जीवनभर इस तरह के कार्य किए जिससे कि समस्त भारतीयों के मन में स्वदेश के प्रति प्रेम और विदेशी राज्य के प्रति नफरत पैदा होने लगी।

उनके राष्टवादी विचार जब उनकी पुस्तकों में अपनी अमिट छाप लेकर अवतरित हुए तो उनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज भी उन विचारों को आगे-आगे बढ़ाता रहा। महर्षि के इस उद्‌गार को जरा समझें कि उनके मन में अपने देश भारत के लिए किस कदर प्रेम था—

''कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है, अथवा मतमतान्तर के आग्रहरहित, अपने और पराए का पक्षपातशून्य प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।''

सत्यार्थ प्रकाश, समुल्लास 8,

उनके इन विचारों से उनके हृदय की पीड़ा समझें—

''विदेशियों के आर्यावर्त्त में राजा होने के कारण आपस की फूट, मतभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विद्या न पढ़ना-पढ़ाना, बाल्यावस्था में अस्वयंवर विवाह, विषयासक्ति, मिथ्याभाषण आदि कुलक्षण वेद विद्या का अप्रचार आदि कर्म हैं, जब आपस में भाई-भाई लड़ते हैं तभी तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है।''

— सत्यार्थ प्रकाश, समु. 10

महर्षि दयानन्द के ब्रह्मसमाज की विदेशी चाटुकारिता पर विचार को पढ़ें। महर्षि दयानन्द एक स्पष्ट राष्ट्रवादी विचार के अडिग लौहपुरुष थे। जहाँ भी उन्होंने कोई कमी देखी, वहीं वाक्प्रहार किया। सत्यार्थ प्रकाश, समुल्लास 11 का अध्ययन हमें स्पष्ट कर रहा है कि ब्रह्मसमाज के लोग ब्रिटिश सरकार के भक्त थे। स्वदेश के प्रति कम भावना थी और अंग्रेजी राज्य के प्रति अनुराग अधिक था। उन्हें हम अंग्रेजों के पीट्टू कह दें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। महर्षि का यह कथन ब्रह्मसमाजियों के प्रति फटकार एवं उनकी भर्त्सना से कम नहीं है—

''इन लोगों में स्वदेश भक्ति बहुत न्यून है, ईसाइयों के आचरण बहुत से लिए हैं, अपने देश की प्रशंसा वा पूर्वजों की बढ़ाई करनी तो दूर रही,उसके बदले भरपेट निन्दा करते हैं, ब्रह्मादि महर्षियों का नाम भी नहीं लेते, ब्रह्मा से लेकर आर्यावर्त्त में बहुत से विद्वान् हो गए हैं, उनकी प्रशंसा न करके यूरोपियन की ही स्तुति में उतर पड़ना पक्षपात और खुशामद के सिवा क्या कहा जाए ?''

इसी प्रसंग में ब्रह्मसमाजियों को चेताते हुए वह निर्भीक होकर लिखते हुए कहते हैं कि अंगेजी ऑफिसर विदेशी जूतों व सूटों को ही अपने ऑफिसों में महत्त्व देते हैं, भारत की बनी वस्तुओं व भारतीय वेशभूषा को हेय दृष्टि से देखते हैं।

''देखो, अपने देश के बने हुए जूतों को ऑफिस और कचहरी में जाने देते हैं, इस देशी जूते को नहीं, इतने में ही समझ लो कि अपने देश के बने हुए जूतों का भी कितना मान-प्रतिष्ठा करते हैं उतना भी अन्य देशस्थ मनुष्यों का नहीं करते।''

— सत्यार्थ प्रकाश, समुल्लास 11

यहाँ महर्षि के एक-एक शब्द राष्ट्र के प्रति महान तथा अटूट श्रद्धा के प्रतीक सिद्ध हो रहे हैं। जो अंग्रेजी ऑफिसर भारत में रहकर भारतीयों को अपने जूतों से भी कम समझते थे, ऐसे अन्यायी और क्रूर राज्य को भला महर्षि दयानन्द कैसे बर्दाश्त कर सकते थे। संवत् 1914/1857 ई० की लड़ाई में ही अंग्रेजों ने यत्र-तत्र मन्दिरों की मूर्तियाँ तोड़कर उखाड़ फेंकी थीं, इस दुर्दशा को जान महर्षि दयानन्द ने वीर योद्धा आर्यावर्त्त के सपूत योगिराज कृष्ण को याद किया और लिखा—

''प्रत्युत बाघेर लोगों ने वीरता की, और लड़े, शत्रुओं को मारा परन्तु मूर्ति एक मक्खी की टांग भी न तोड़ सकी, जो श्री कृष्ण के सदृश कोई होता तो इनके धूर्रे उड़ा देता और ये भागते-फिरते।''

सत्यार्थ प्रकाश, समुल्लास 11

उपरोक्त वाक्य दो बातों का दिग्दर्शन करते हैं—1. मूर्ति में शक्ति नहीं है, अतः मूर्तिपूजा ईश्वरीय उपासना के लिए सटीक नहीं है। 2. मूर्तिपूजा आदि अन्धविश्वासों में फँसे लोग अज्ञानता, आलस्य एवं मजहबी मतभेदों में बँटे होने के कारण इतने कमजोर हैं कि वे अपनी प्रतिष्ठा भी बचाने में असमर्थ हैं। अतः हमें एकेश्वर में विश्वास कर जो सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सर्वाधार, सर्वेश्वर एवं सर्वव्यापक है, उसकी उपासना कर एकजुट हो जाएँ और शुद्ध वैदिक मान्यताओं को अपना कर मजबूत हो जाएँ ताकि कोई बाहर की ताकत हमें अपनी आस्था से कभी डिगा न सके।

श्री राम और कृष्ण—आर्यावर्त्त के श्री राम और कृष्ण ऐसे ही महापुरुष थे जिन्होंने अपने पुरुषार्थ से सर्वत्र अन्याय, अभाव, अशिक्षा एवं भेदभाव मिटाकर सम्पूर्ण राष्ट्र को सशक्त बनाया था। ये दोनों महापुरुष अपने-अपने समय के आर्य श्रेष्ठ एकेश्वरोपासक महान योद्धा राजा थे। समुल्लास 11 में महर्षि दयानन्द ने आर्यावर्त्तीय राजाओं की ऐतिहासिक वंशावली विस्तार से प्रस्तुत की है जो अपने पूर्वजों के प्रति उनकी अगाध

निष्ठा प्रदर्शित करती है। यह है स्वदेश गौरव जिसे महर्षि ने प्रकट किया था।

महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य में राष्ट्रीयता

महर्षि दयानन्द ने यजुर्वेद 38.4—'क्षत्राय पिन्वस्व' का अर्थ एवं भाव विस्तार इस प्रकार किया—''हे महाराजाधिराज परब्रह्मन्! अखण्ड चक्रवर्त्ती राज्य के लिए शौर्य, धैर्य, नीति, विनय, पराक्रम और बलादि उत्तमगुणयुक्त कृपा से हम लोगों को यथावत् पुष्ट कर, अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी न हों तथा हम लोग पराधीन कभी न हों।''

महर्षि व्याख्या में लिखते हैं—

''मनुष्यैर्द्वाभ्यां प्रयोजनाभ्यां प्रवर्तितव्यमेकमत्यन्त पुरुषार्थशरीरा-रोग्याभ्यां चक्रवर्त्तीराज्यश्रीप्राप्तिकरणम्, द्वितीयं सर्वा विद्याः सम्यक् पठित्वा तासां सर्वत्र प्रचारी करणम्।''

अर्थात् मनुष्यों को दो प्रयोजनों की पूर्ति के लिए सदा पुरुषार्थपूर्वक व्यवहार करना चाहिए—1. शरीर से रोगमुक्त हो, बलवान हो और चक्रवर्त्ती राज्य श्री को प्राप्त करने वाला हो 2. सब विद्याओं को अच्छी तरह पढ़कर उनका सर्वत्र प्रचार करने वाला हो।

अपनी महत्त्वपूर्ण प्रार्थनामूलक पुस्तक 'आर्याभिविनय' के कुछ प्रसंग—वस्तुतः आर्याभिविनय भी महर्षि दयानन्द द्वारा रचित एक ऐसी स्तुति-प्रार्थनोपासना की पुस्तक है, जिसमें लगभग चारों वेदों से चुने हुए कुछ महत्त्वपूर्ण मंत्र हैं जिनकी व्याख्या सरल भाषा में की है। यत्र-तत्र स्वराष्ट्र की भावनाओं को उन्होंने अपने मन में उभारा और सर्वशक्तिमान परमेश्वर के आगे रख दिया। इन सन्दर्भों से उनका स्वराज्य, स्वराष्ट्र, स्वदेशाभिमान तथा प्रेम को सीधा तथा स्पष्ट समझा जा सकता है।

उदाहरण के लिए महर्षि दयानन्द द्वारा 'आर्याभिविनय' के इस मन्त्रार्थ को देखें—''**हे न्यायकारिन्, जो कोई हम धार्मिकों से शत्रुता करता है, उसको आप भस्मीभूत करें, और विद्या, शौर्य, धैर्य, बल, पराक्रम, चातुर्य, विविधधन, ऐश्वर्य, विनय, साम्राज्य, सम्मति, सम्प्रीति तथा स्वदेशसुखसम्पादनादि गुणों से युक्त करके हमको सब देहधारियों में उत्तम बनाएँ और सबसे अधिक आनन्दभोग**

करने, सब देशों में इच्छानुकूल विचरने, और आरोग्य देह, शुद्ध मानसबल तथा विज्ञान आदि की प्राप्ति के लिए हमको सब विद्वानों के मध्य प्रतिष्ठायुक्त करें।''
आर्याभिविनय-1.16

''हे महाधनेश्वर! हमारे शत्रुओं के बल पराक्रम को (आप) सर्वथा नष्ट करें, आपकी करुणा से हमारा राज्य और धन सदा वृद्धि प्राप्त हो।''
आर्याभिविनय-1.43

इस प्रकार अनेक स्थानों पर महर्षि दयानन्द ने अपने भाष्यों में प्रकरणानुसार ईश्वर को जगदीश्वर, राजा, राजेश्वर, साम्राज्य प्रसारक, राज्य विधायक, सम्राट् तथा महाराजाधिराजेश्वर आदि राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत श्रेष्ठ सम्बोधनों से पुकारा है। महर्षि चाहते थे कि प्रार्थना आदि आध्यात्मिक प्रक्रियाओं में भी भारत की प्रजा स्वराष्ट्र के प्रति स्वाभिमानी बने।

वायसराय लॉर्ड नोर्थ ब्रुक से मेल—16 दिसम्बर, 1872 महर्षि दयानन्द कलकत्ता पहुँकर प्रचार के विचार से राजा ज्योतीन्द्र मोहन टैगोर के प्रसिद्ध प्रमोद कानन/वन/बाग में वह मार्च 1873 ई० तक वैदिक विचारों के माध्यम से राष्ट्र-गौरव का वहाँ प्रचार-प्रसार करते रहे। नगर के बड़े पदों पर आसीन ऑफिसर, राज-परिवार और प्रतिष्ठित जन महर्षि के विचार सुनने आया करते थे। उसी क्रम में तत्कालीन वायसराय लॉर्ड नोर्थ ब्रुक महर्षि के विचारों से प्रभावित होकर एक दिन स्वयं महर्षि दयानन्द से मिले और काफी समय तक सम्मानपूर्वक वार्त्तालाप किया। तभी वायसराय ने महर्षि से निवेदन किया कि—**''देखो हमारे राज्य में कितना सुख एवं न्याय है कि आप जैसे लोगों को बेखटक दूसरों के विचारों का खण्डन करते हैं, किसी से भी भय वा खतरा नहीं है, अतः आप प्रतिदिन ईश्वर से भारत में हमारे राज्य की चिरकालपर्यन्त स्थिरता के लिए प्रार्थना कर दिया करें।''**

महर्षि का उत्तर—उस समय दिया गया महर्षि दयानन्द का उत्तर निश्चय ही स्वराष्ट्र-प्रेम का परिचायक ही नहीं, अपितु समस्त भारतीयों के अन्दर स्वदेश के लिए एक अमिट प्रेम गंगा बहाने में सक्षम है। निर्भीक संन्यासी तथा भारत के गौरव महर्षि दयानन्द ने भारत में स्थापित ब्रिटिश

सत्ता के सर्वोच्च पदाधिकारी उस वायसराय को तपाक से कहा—**''राजन्! मैं तो प्रतिदिन प्रात:काल उठकर अपने परमपिता परमेश्वर से यही प्रार्थना करता हूँ कि शीघ्रतातिशीघ्र यह राज्य भारत से उठ जाए, मैं तो शीघ्र ही वह दिन देखना चाहता हूँ जबकि भारत का शासनसूत्र हम भारतीयों के हाथ में हो।''**

वायसराय को महर्षि के ऐसे निर्भयता तथा वीरतायुक्त उत्तर की उम्मीद न थी। स्वामी जी का उत्तर सुनकर वह चकित रह गया। उस वायसराय ने इण्डिया ऑफिस को भेजे गए एक पत्र में यह लिखा कि इस 'विद्रोही फकीर पर कड़ी नजर रखी जाए।'

दैनिक वीर अर्जुन दिल्ली
9.4.61 में प्रकाशित श्री दीवान अलखधारी जी का लेख,
पृ. 9—भारतीय स्वातंत्र्य में आर्यसमाज का योगदान
—आचार्य सत्यप्रिय शास्त्री, हिसार-द्रष्टव्य

कालान्तर में महर्षि के इन्हीं विचारों से भारत का बच्चा-बच्चा जग गया। इस कारण इसी वायसराय को लन्दन हाउस में सिफारिश करनी पड़ी कि अब हमें भारत को छोड़ देना चाहिए। जॉर्ज पंचम ने भी इसके लिये सहमति दे दी। उनके इस परामर्श पर भारत से ब्रिटिश राज्य हटा लेने का प्रस्ताव पारित हो गया। इसी कारण ब्रिटिश-प्रशंसा में राष्ट्रीय गीत आज तक भारत में गाया जाता है—**''जन गण मन....भारतभाग्य विधाता''** असली भाग्यविधाता तो महर्षि दयानन्द थे जिन्हें हम आज **'राष्ट्रपितामह'** कहें तो अतिशयोक्ति न होगी।

असहयोग आन्दोलन का बीज—विदेशी राज्य पर महर्षि दयानन्द को कभी विश्वास न था। भारत की सम्पदा को विदेशी लूट रहे थे। भारतीयों के प्रति प्राय: न्याय में पक्षपात दिखता था। तभी तो परोपकारिणी सभा के स्वीकारनामे में भी महर्षि लिखते हैं—''जहाँ तक हो सके, न्यायप्राप्ति के लिए सरकारी अदालत का दरवाजा न खटखटाया जाए। बस असहयोग आन्दोलन का बीज महर्षि ने यहीं बो दिया जिसका प्रभाव कालान्तर में दिखा। *भारतीय स्वातन्त्र्य में आर्यसमाज का योगदान,*
आचार्य सत्यप्रिय शास्त्री-पृ.9

ब्रिटिश अदालतों पर अविश्वास का भाव महर्षि दयानन्द के इन वाक्यों से और अधिक स्पष्ट हो जाता है—**''अनुमान होता है इसीलिए ईसाई लोग ईसाइयों का बहुत पक्षपात कर किसी गोरे ने काले को मार दिया हो तो भी बहुधा पक्षपात से निरपराधी कर छोड़ देते हैं।''**

सत्यार्थ प्रकाश, समुल्लास 13 पृ.77

नोन तथा पौन रोटी पर कर—महात्मा गांधी ने नमक कानून की बात 1930 के सत्याग्रह में कही, पर महर्षि दयानन्द ने 1875 में ही सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम संस्करण पृ. 384-385 पर लिखा कि नमक तथा पौन रोटी पर जो टैक्स अंग्रेजी सरकार लगाती है, वह उचित नहीं है। इससे गरीबों को अत्यन्त कष्ट होता है। गरीब घास काटते हैं व लकड़ी का बोझ बनाते हैं उस पर भी सरकार नमक तथा पौन रोटी पर कर लगाती है सो निश्चित ही गरीबों के लिए कष्ट का कारण है। जो कमाए उस पर एक रोटी में पौन रोटी तो सरकार ही ले ले तो गरीब कैसे अपना भरण-पोषन करेंगे?

यह चिन्ता महर्षि दयानन्द को थी अत: नोन तथा पौन रोटी-कर का विरोध किया। इसी तरह कागज पर सरकार महँगा दाम लेती थी वह भी भारतीयों के लिए दु:खदायक था, सत्यार्थ प्रकाश में इसका भी डटकर विरोध किया। इस तरह हम यह देखते हैं कि जिन मूलभूत भारतीय लोगों की समस्याओं को महर्षि दयानन्द ने उठाया था उन्हें ही बाद में गांधी आदि ने भी उठाया। यह अच्छी बात है पर आवश्यकता इस बात की है कि महर्षि दयानन्द की राष्ट्रीय भावनाओं को सब लोग उचित रूप से जानें।

महर्षि दयानन्द का दृष्टिकोण—अंग्रेजी राज्य को जड़ से खत्म करने में आर्यसमाज की विचारधारा पूर्णरूप से सक्षम है—11वाँ समु. आर्यसमाज-विषय—देखें-

''इसलिये जो उन्नति करना चाहो तो'' आर्यसमाज के साथ मिलकर उनके उद्देश्यानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिये नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा। क्योंकि हम और आपको अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना; अब भी पालन होता है; आगे होगा; उसकी उन्नति तन-मन-धन से सब जने मिलकर प्रीति

से करें। इसलिये जैसा आर्यसमाज आर्य्यावर्त्त देश की उन्नति का कारण है वैसा दूसरा नहीं हो सकता। यदि इस समाज को यथावत् सहायता देवो तो बहुत अच्छी बात है क्योंकि समाज का सौभाग्य बढ़ाना समुदाय का काम है; एक का नहीं।''

महर्षि अपने इन स्पष्ट मान्यताओं के आधार पर ही अंग्रेजी राज्य में भी आर्यसमाजों की स्थापना उन स्थानों पर जानबूझकर अवश्य की जहाँ अंग्रेजी सरकार का मुख्य सेना-कार्यालय हुआ करता था जैसे—बम्बई, मेरठ, लाहौर, सहारनपुर, पटना आदि। आर्यसमाज के विचार सेनाओं तक जाएँ और भारतीय मूल के सेनाओं में स्वदेश की भावना जागे ताकि वे अपने देश के लिए अंग्रेजों से लड़ने में साहस ला सकें।

महर्षि दयानन्द 1855 से 1860 ई० तक और फिर 1863 से 1871 ई० तक खूब घूम-घूम कर सबको सब जगह भारत के स्वतंत्रता की प्रेरणा देते रहे, कभी ज्ञात रूप तो कभी अज्ञात रूप होकर इसका प्रभाव 1857 ई० के युद्ध काल में मंगल पांडे, तांत्या टोपे, नाना साहब पेशवा, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, बिहार के वीर कुंवर सिंह आदि पर सीधा पड़ा इन सब वीरों ने अंग्रेजों को छक्के छुड़ा दिए। यद्यपि अंगेजी शासन फिर भी चलता रहा और आंदोलन भी बढ़ता रहा। धीरे-धीरे भारत के वीर-वीरांगनाएँ इस संग्राम में एक पर एक जुड़ते गए, इस तरह महर्षि दयानन्द का आर्यावर्त्तीय वैदिक प्रभाव सब पर अमिट रूप से पड़ा।

गौ-रक्षा एवं कूका वीर-आन्दोलन—सन् 1857 में ही एक नामधारी गुरु बाबा रामसिंह के नेतृत्त्व में लगभग 200 कूका वीरों ने अंगेजों के विरुद्ध गौरक्षा हेतु आन्दोलन छेड़ दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि अंग्रेजी सरकार ने उन्हें कालापानी, फाँसी एवं तोप से उड़ाकर समाप्त कर देने का दण्ड दे दिया। ऐसे कठिन समय में महर्षि दयानन्द ने अंग्रेजों का डटकर विरोध किया। इतना ही नहीं, उन्होंने गौरक्षा का दायित्व भी अंग्रेजी सरकार पर डालते हुए हर जगह से **हस्ताक्षर अभियान** चलाया। इस प्रकार उन्होंने भारतवासियों के हृदय में गौ-रक्षा की जागृति भर दी। जनवाद तो यह भी है कि सेवानिवृत एक अंग्रेज ऑफिसर की विदाई समारोह में जाकर स्वामी जी ने उसे प्रेरित भी किया कि वह इंगलैंड जाकर वहाँ की महारानी को कहे कि गौ-रक्षा हेतु भारत

में सरकार एक विशेष कानून बनाए, वरना इसके लिए भारत में फिर से सर्वव्यापी क्रान्ति हो सकती है जो अंगेजी सरकार को बहुत भारी पड़ेगी।

ब्रह्मसमाज की समालोचना–महर्षि की इस निर्भीकता ने राष्ट्रीय स्वाधीनता के क्षेत्र में नया जोश भर दिया। इसे कोई भी इतिहासकार अस्वीकार नहीं कर सकता। जहाँ ब्रह्मसमाजी, यहाँ तक कि **मदनमोहन मालवीय, राजाराम मोहन राय, पं. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे समाज सुधारक** भी ब्रिटिश न्याय के आश्रय में ही जाते रहे और उनका डटकर विरोध न कर सके, तब भी महर्षि दयानन्द के वैदिक आर्ष विचार अंग्रेजों के विरोध में ही आम जनता तथा वीरों को जगाते रहे। नतीजा यह हुआ कि महर्षि दयानन्द पर अंग्रेजी ऑफिसरों की कड़ी नजर गड़ गई। फलत: महर्षि दयानन्द को अंग्रेजों की कूटनीति का शिकार होना पड़ा और भारत की बलिवेदी पर उन्हें अपने प्राण भी गँवाने पड़े। गौ–रक्षा की पवित्र भावना को सार्थक रूप देने हेतु महर्षि दयानन्द ने एक छोटी–सी परन्तु अत्यन्त मार्मिक एवं सार्थक **'गोकरुणानिधि'** नामक पुस्तक लिखी जो भारत की अस्मिता बनाए रखते हुए गौ माता के पालन–पोषण तथा उससे यथार्थ लाभ लेने के लिए एक उच्चतम प्रेरणा का स्रोत–सूत्र है।

गोपालन–महत्त्व–महर्षि ने एक सुनिश्चित गणित देकर बताया कि एक गाय के जीवन से उसके बछड़े–बछड़ियों को देखें तो लगभग 4,44020 लोगों का भरण–पोषण मिलता है तथा एक गाय के दूध से ही लगभग 25740 लोगों की तृप्ति होती है जो राष्ट्र को सम्पन्न बनाने में अत्यन्त सहायक है। अत: गौ–रक्षा राष्ट्र समृद्धि का एक सुदृढ़ एवं पवित्र कारण है। महर्षि दयानन्द के द्वारा किये गए ये सब प्रयास राष्ट्रीय स्तर पर अंग्रेजों को चुभते रहे जिसका दुष्परिणाम महर्षि को भुगतना पड़ा। इस विषय में तत्कालीन कुछ प्रत्यक्षदर्शियों के विचार प्रमाणरूप में यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

महर्षि दयानन्द की मृत्यु के रहस्यात्मक कारण—जोधपुर नरेश श्री जसवन्त सिंह के सौजन्य से स्वामी दयानन्द जोधपुर गए और स्वामी जी ने उस क्षेत्र में सर्वत्र राष्ट्र–विचारों से भारतीयों को जगाते रहे। पर एक दिन नन्ही जान वेश्या की पालकी को कंधा देते जोधपुर नरेश को स्वामी

जी ने देखा तब बड़ी निर्भीकता से स्वामी जी ने राजा के इस कार्य की भर्त्सना की और कहा कि "**सिंहों के आसन पर कुतिया का राज्य!**" बस इतना कहना था कि नन्ही जान स्वामी जी के प्राणों की दुश्मन बन गई। उधर स्वामी जी अंग्रेजी सरकार के विरोध में स्थान-स्थान पर नाना प्रकार की योजनाओं को सार्थक रूप देते जा रहे थे जिससे अंग्रेजी ऑफिसर भारत से लेकर लंदन तक उन पर अपनी तीखी नजर गड़ाए हुए थे। ऐसा समझा जाता है कि नन्ही जान और अंग्रेजी सरकार की मिलीभगत से ही स्वामी जी को अनेक बार जहर/संखिया दिया गया। सरकारी डॉक्टर ने सही इलाज नहीं किया। जब तक स्वामी जी का इलाज प्राइवेट डॉक्टर कर रहे थे तब तक स्वामी जी ठीक चल रहे थे, पर अंग्रेजों के दबाव से, सरकारी डॉक्टर अली मर्दान खाँ का इलाज चला, तब से उनकी तबीयत और बिगड़ती गई। इससे यह अन्दाजा लगाना मुश्किल नहीं है कि उस सरकारी डॉक्टर ने इलाज में लापरवाही बरती। अंग्रेजी सरकार के प्रभाव से जोधपुर नरेश भी कुछ कर न सके। सरकार, डॉक्टर तथा नन्ही जान तीनों शक्तियाँ स्वामी दयानन्द के विरुद्ध काम कर रही थीं। फलत: स्वामी जी का दुर्भाग्यपूर्ण देहावसान 30 अक्टूबर, 1883 को हो गया।

प्रमाण रूप में स्वामी दयानन्द के खिलाफ अंग्रेजों के कार्यालयों से कुछ ऐसे संदिग्ध पत्र प्राप्त हुए हैं जिनसे बहुत ही आसानी से यह सब अनुमान लगाया जा सकता है कि अंग्रेजों के इशारे के बिना स्वामी जी की ऐसी मृत्यु नहीं हो सकती थी। 'आर्यसमाज का इतिहास' पृ.321-322 इन्द्र विद्यावाचस्पति, तत्कालीन श्री पी०डी० जौहरी और एक आर्यसमाजी 70 वर्षीय वृद्ध की बातचीत, पं. भागराम अजमेर निवासी के द्वारा अंग्रेजी लन्दन ऑफिस के पत्रों का खुलासा, पं. भगवद्दत्त जी खोजपूर्ण निबन्ध तथा श्री फिरोजचन्द जी एम०ए० द्वारा लिखित भारतीय स्वाधीनता के इतिहास में उल्लिखित वर्णन से स्पष्ट पता चलता है कि स्वामी दयानन्द की भयानक मृत्यु में अंग्रेजों का हाथ सहज ही था। विस्तार वर्णन देखें—भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम में आर्यसमाज का योगदान, पृ. 13-15 लेखक-आचार्य सत्यप्रिय शास्त्री, हिसार।

द्वितीय अध्याय

महर्षि दयानन्द के सम्पर्क में कुछ महत्त्वपूर्ण राजागण

स्वामी पूर्णानन्द के शिष्य दण्डी विरजानन्द और दण्डी विरजानन्द के शिष्य स्वामी दयानन्द जो महर्षि दयानन्द कहलाने लगे, इन तीनों ही संन्यासियों की एक मूल धारणा बन चुकी थी कि जब हम राजाओं को सुधार लेंगे तब उनके द्वारा प्रजाओं को सुधारने का काम पूरा होगा। उस समय बहुत से भारतीय राजा भी अंग्रेजों के चंगुल में बुरी तरह फँसे हुए थे। कुछ तो स्वार्थवश और कुछ मजबूरी एवं अज्ञानतावश। इन संन्यासियों ने राजाओं को सुधारने एवं उनमें स्वदेश भक्ति जगाने के निमित्त अपनी विचारधारा को एक प्रायौगिक रूप दिया। महर्षि दयानन्द ने उन सभी राजाओं को पहले साधा जो विशेषकर गुरु दण्डी विरजानन्द के सम्पर्क में थोड़ा-बहुत रहा करते थे। महर्षि दयानन्द को राजाओं में वैदिक विचारों को प्रचारित-प्रसारित करने में सफलता मिली इसका नतीजा यह निकला कि 1857 ई० की लड़ाई विफल होने पर भी कुछ भारतीय राजाओं में महर्षि दयानन्द की राष्ट्रीय चेतना उनके रगों में खून बनकर दौड़ती रही।

''1857 में अंग्रेजों से जमकर मुकाबला करने वाले हाथरस, मुरसान आदि के जमींदारों से तथा अलवर, भरतपुर, करौली, ग्वालियर, जयपुर आदि के राजाओं से उनका (स्वामी विरजानन्द जी का) घनिष्ठ सम्बन्ध था, उनमें से एक-दो को उन्होंने राजनीति, धर्म तथा दर्शन का अध्ययन कराके प्रबोध यथार्थ से अवगत कराने का भी जतन किया था।''

—*हमारा राजस्थान, पृ.270*

वस्तुतः महर्षि दयानन्द के ये सब प्रयास वर्त्तमान भारतीय इतिहास से ओझल हैं। इसको उजागर करना हमारा धर्म है। ऐसे प्रसंग हमारे लिये प्रेरणात्मक स्रोत हैं।

महाराजा सज्जनसिंह एवं अन्य तत्कालीन देशभक्त राजा

'हमारा राजस्थान' पुस्तक के 297 पृष्ठ पर इतिहासकार लिखता है कि "दयानन्द ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश का दूसरा संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण भी उदयपुर में रहकर ही पूरा किया, उसके छठे राज्य धर्म सम्बन्धी सम्मुलास में निबद्ध विचारों का चिन्तन सम्भवतः (उदयपुर नरेश) महाराणा सज्जनसिंह को दिये गए राजनीति और धर्म सम्बन्धी पाठों के सिलसिले में ही हुआ।"

'हमारा राजस्थान' के लेखक श्री पृथिवी सिंह मेहता (विद्यालंकार) ने आगे लिखा है कि महाराणा सज्जनसिंह महर्षि दयानन्द के अनन्य

शिष्य बनकर भारतीय संस्कृति की रक्षा हेतु विश्वासपात्र बन गए थे। कहते हैं कि 1875 ई० में युवराज एडवर्ड जब भारतभ्रमण के लिए आया तब उसके स्वागत समारोह में भारत के स्वाभिमानी सज्जन सिंह अंग्रेजों के लाख समझाने पर भी नहीं सम्मिलित हुआ। 1881 ई० में अंग्रेजी सरकार उन्हें के.सी.ई. नामक सर्वोच्च उपाधि देना चाहती थी पर महाराणा सज्जन सिंह ने उसे ठुकरा दिया और भारत माता का स्वाभिमान सुरक्षित किया जिससे समस्त भारतीयों का वह गौरव ही नहीं बना, अपितु महर्षि दयानन्द के मन में भी उसका सम्मानजनक स्थान बना। परन्तु अंग्रेजी सरकार उन्हें किसी तरह भी अपने पक्ष से दूर नहीं करना चाहती थी क्योंकि वह उस समय का सर्वाधिक वर्चस्वी राजा बना हुआ था। इस कारण एक रेलवे लाईन के उद्घाटन समारोह के बहाने उन्हें आमन्त्रित

करने उनके निवास पर जाकर लॉर्ड रिपन ने राणा को वह उपाधि दे दी। इन सब कारणों से राजस्थान की स्वतंत्रता व स्वदेश का स्वाभिमान बनकर राणा सज्जनसिंह उभरे। निश्चय ही उसमें राष्ट्र के प्रति यह उज्ज्वल और उच्चतम भाव महर्षि दयानन्द के सम्पर्क से ही आया था। उसका परिणाम यह हुआ कि महर्षि दयानन्द ने उन पर सर्वाधिक विश्वास कर उन्हें अपने अंतिम समय पर लिखित उत्तराधिकारी पत्र में परोपकारी सभा का प्रधान मनोनीत कर दिया था।

इन्दौर नरेश—ये भी महर्षि दयानन्द के राष्ट्रीय स्वाभिमान भरे विचारों से अत्यन्त प्रभावित थे। 1877 ई० में एक बार उन्होंने कुछ अन्य राजाओं को दिल्ली आमन्त्रित किया और उसमें महर्षि दयानन्द को भी क्षात्र धर्म पर एक प्रबल प्रेरणात्मक उपदेश देने के लिए बुलाया। वहाँ पहुँचकर महर्षि दयानन्द ने भी अपना कर्त्तव्य निभाया और अपने ओजस्वी प्रामाणिक विचारों से प्रभावित करना चाहा; इसके लिए आवश्यक सम्पर्क बनाना चाहा, परंतु अंग्रेजी सरकार को किसी तरह पता चल गया। इस कारण उसने अपनी साम-दाम-दंड-भेद आदि नीतियों से उनमें फूट डालकर उन सभी राजाओं को महर्षि दयानन्द के निकट फटकने न दिया।

वस्तुत: महर्षि दयानन्द सदैव अंग्रेजों की आँखों में खटकते थे। इस कारण अंग्रेजी सरकार महर्षि दयानन्द को कभी आगे आने नहीं देती थी। महर्षि दयानन्द फिर भी अपने अदम्य साहस, अद्‌भुत् वैदुष्य तथा अकाट्य प्रमाणों से कभी पीछे न हटे और स्वदेशी अभिमान को आजीवन सर्वत्र जगाते ही रहे। उनसे प्रभावित कई राजाओं ने महर्षि दयानन्द का अपने राज्य में स्वागत किया। इन्दौर नरेश सयाजी राव का नाम आगे आता है। मसूदा नरेश ने भी भरपूर देशभक्ति दिखाई और स्वामी जी का स्वागत किया।

इन्दौर नरेश सयाजी राव

'हमारा राजस्थान' से ये प्रमाण उपस्थित किये जाते हैं जिन्हें पढ़कर राजस्थान में महर्षि दयानन्द अच्छी प्रकार से समझ में आ जाते हैं—

राजस्थान में महर्षि दयानन्द के अन्य शिष्य राजागण

'हमारा राजस्थान' पृ. 289-296 के अनुसार—इस आन्दोलन में आरम्भ से भाग लेने वालों में शाहपुरा का **केसरसिंह** था जो बारहट किशनसिंह का पुत्र था, वह महर्षि दयानन्द का शिष्य तथा महाराणा सज्जन सिंह के साथ यह भी अनेक राजाओं की तरह विश्वासपात्र बन गया था।

कर्नल महाराजा प्रताप सिंह कहा करते थे कि ''स्वामी दयानन्द ने हमको आदमी (मनुष्य) बना दिया है। उन्हें इस बात का दु:ख था कि स्वामी दयानन्द की मृत्यु जोधपुर में विष देने से हुई। वह परोपकारिणी सभा के प्रधान थे। जोधपुर आर्यसमाज के भी प्रधान थे।''

—हमारा राजस्थान, पृ. 295-96

आर्यसमाजी विद्वान् के सम्पर्क में बड़ौदा नरेश गायकवाड़

इन्दौर नरेश के सान्निध्य से बड़ौदा नरेश गायकवाड़ को उनके मानसिक गुरु स्वामी नित्यानन्द जी महाराज तथा राज्य रत्न पं. आत्माराम अमृतसरी की योजनाएँ प्राप्त थीं जिनसे वे वैदिक राष्ट्रवाद की शिक्षाओं से प्रेरित हुए। ये दोनों विद्वान् आर्यसमाजी थे।

तत्कालीन कुछ जानकार लोगों से यह जानकारी मिली थी जिसे इतिहासकार ने इसे लिपिबद्ध किया। आर्यसमाज के त्यागी तपस्वी संत नामक पुस्तक का पृ. 30 इसका प्रमाण है।

बड़ौदा नरेश गायकवाड़

महर्षि दयानन्द द्वारा लिखित 3 जनवरी, 1877 के पत्रानुसार भी यह सिद्ध हो जाता है कि इन्दौर नरेश तथा बड़ौदा नरेश गायकवाड़ महर्षि दयानन्द के विश्वासपात्र शिष्यों में थे। यह पत्र दिल्ली दरबार के समय दिल्ली से रामगढ़ (सीकर) रि. जयपुर निवासी पं. कालूराम को लिखा गया था।

पं. हरिश्चन्द रचित 'ऋषि चरित'

पृ. 266 के अनुसार अनेक राजागण महर्षि दयानन्द के शिष्य बने परन्तु सबका नाम नहीं आता, उनमें इन्दौर के राजा, बड़ौदा के राजा, कपूरथला (पंजाब) के राजा के नाम विशेषरूप से उल्लिखित हैं। यद्यपि महर्षि दयानन्द का तमाम राजस्थानी राजाओं पर अमिट प्रभाव था तथापि अन्य राज्यों के राजाओं पर भी तथावत् प्रभाव लगातार बनता रहा, तभी तो स्वतंत्रता संग्राम का बिगुल एक साथ चारों ओर से बज उठा। बड़ौदा नरेश भी राष्ट्रभक्त बन गए थे।

'वीर अर्जुन' समाचार पत्र के अनुसार स्वदेश के लिए लड़ रहे एक क्रांतिकारी योद्धा श्री अन्नप्रज्ञकामेश्वर राव को उन्होंने 30,000 हजार रु. और एक कार देकर अपने पुलिस अधीक्षक द्वारा एक सुरक्षित स्थान पर भेजवा दिया था। यह उनकी राष्ट्रभक्ति तथा महर्षि दयानन्द के द्वारा राष्ट्र भक्ति के संस्कारों का प्रभाव जन्मजात था। यहाँ तक कि बम्बई राज्य की सरकार मानती थी कि बरौदा नरेश की देखरेख में उनके राज्य के मकरपुरा और बिल्ली मोरा में बम बनते हैं जो अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध काम में लाए जाते थे। उन्होंने जार्ज पंचम की अवज्ञा भी की थी फलत: उन्हें पदभ्रष्ट करने की धमकी दी गई पर बड़ौदा नरेश गायकवाड़ अपनी राष्ट्र भक्ति से टस से मस न हुए। इसका ही परिणाम था कि उन्होंने 1931 में आयोजित एक गोलमेज कॉन्फ्रेंस में सर्वप्रथम निडर होकर यह घोषणा की थी कि अगर अंग्रेज सरकार भारत को स्वराज्य दे, तो मैं अपना राज्य भारत में मिला दूँगा। इतना ही नहीं उन्होंने लन्दन के टॉउन हॉल में 1935 में आयोजित बैठक में अपने एक भाषण में कहा कि भारत को स्वशासन आज नहीं तो कल देना ही पड़ेगा। उनका यह भाषण न केवल उनके साहस का प्रतीक है, बल्कि महर्षि दयानन्द से प्राप्त राष्ट्र-प्रेम की शिक्षा का अनुपम उदाहरण भी है।

महाराणा फतहसिंह

उदयपुर के राजा सज्जनसिंह की मृत्यु के बाद उनके उत्तराधिकारी महाराणा फतहसिंह बने। वे भी महर्षि दयानन्द की राष्ट्रीय भावना एवं शास्त्र-प्रमाण युक्त सटीक शिक्षाओं से अत्यन्त प्रभावित थे। एक रोचक घटना है। सन् 1903 में महारानी विक्टोरिया के देहान्त के बाद सप्तम

महाराणा फतहसिंह

एडवर्ड का भारत के सिंहासन पर राज्याभिषेक होना था उसके अभिषेक समारोह में उपस्थित होने के लिए महाराणा फतहसिंह को भी दिल्ली से निमंत्रण मिला। राज्य के नियमानुसार वह समारोह में सम्मिलित होने के लिए दिल्ली की ओर चल पड़े। परन्तु बीच में ही ससेरी नामक स्टेशन पर उन्हें एक व्यंग्यभरा पत्र मिला। यह पत्र एक स्वदेशप्रेमी दयानन्द-भक्त श्रीकृष्ण सिंह के पुत्र शाहपुर नरेश श्री केशरसिंह बारहट द्वारा लिखा गया था। पत्र में उन्होंने व्यंग्यभरी कविता लिखी थी जिसका शीर्षक था—'चेतावणीरा चूगंट्य' कविता इस प्रकार थी—

कठिन जमानो कौल बाधें नर हिम्मत वीणा (यो)
वीरा हन्दो बोल पातल दसागो पेखियो।
मानमोद सीसोद राजनीति बल राखणो (पण)
गवरमिन्टरी गोद, मीठा फल दी ठा फतां।

अर्थात् जमाना कठिन है। ऐसे कठिन समय में ही मनुष्य हिम्मत बाँधता है। वीरों के इस वचन को प्रताप और साँगा ने पहचाना था। सिसोदिया का मजा राजनीति में बल रखने से था। परन्तु हे फतहसिंह! तुझे क्या हो गया? अब गवर्नमेंट की गोद में मीठे फल नजर आ रहे हैं।'

बस क्या था! यह कविता पढ़कर वह दिल्ली जाकर भी उक्त समारोह में सम्मिलित नहीं हुए। उनका स्वाभिमान जाग उठा और मानो महर्षि दयानन्द की दी हुई शिक्षाओं का असर दिख गया। इसी तरह 1910 ई. में भी जब जॉर्ज पंचम भारत आए, तो सभी भारतीय नरेशों के साथ ये भी निमन्त्रित हुए, पर उसमें भी लड़के की बीमारी के बहाने से नहीं पधारे। उधर बड़ौदा नरेश सयाजी राव गायकवाड़ ने भी उस समारोह में अंग्रेजों की निर्धारित शिष्टता के व्यवहार की अवहेलना कर दी। इससे अंग्रेजी सरकार का मजाक उड़ा और उनकी खुशी में किरकिरापन आ

गया जिससे अंग्रेज नाराज भी हुए।

महाराणा फतहसिंह ने अनेक बार स्वाधीनता से जुड़े अनेक देशभक्तों को शस्त्र आदि साधनों तथा अन्यान्य से वचन की सुरक्षा प्रदान कर उनकी रक्षा की और अपनी स्वाभिमानभरी राष्ट्र-भक्ति का सफल परिचय दिया। पूरे राजस्थानी राजाओं में देशभक्ति की सिंहगर्जना महर्षि दयानन्द ने की और सबको राष्ट्र रक्षा हेतु तन-मन-धन से लड़ने के लिए पूर्णतया तैयार कर दिया जिसका पूरा प्रभाव क्रमशः बढ़ता हुआ देखा गया और आर्यसमाज ही इस लड़ाई में सदैव जुड़ा हुआ पाया गया। स्वामी श्रद्धानन्द, श्यामजी कृष्ण वर्मा, लाला लाजपत राय, वीर भगतसिंह, रामप्रसाद बिस्मिल, चन्द्रशेखर आजाद आदि तमाम राष्ट्रभक्त क्रांतिकारियों पर महर्षि दयानन्द के विचारों का प्रभाव स्पष्ट देखा गया।

तृतीय अध्याय

कांग्रेस का जन्म, उद्देश्य तथा प्रसिद्ध आर्य नेता

भारत में कांग्रेस की स्थापना (Mr Alan Octavian Hume) मि. ऐलेन ऑक्टिवन ह्यूम द्वारा की गई। अंग्रेजी सरकार को लॉर्ड डफ्रिन ने सलाह दी कि भारतीय ताकतों को कमजोर करने तथा उनमें फूट डालने के लिए हमें एक ऐसी संस्था बनानी होगी जो भारतीय लोगों में फूट डाले और राज करे। परिणामतः 28 दिसम्बर, 1885 ई. को इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना हुई इसमें प्रमुख अधिकारी अंग्रेज ही थे और कुछ भारतीयों को भी मिलाया गया था इसमें चाफेकर बन्धु, सावरकर बन्धु, वारीन्द्र कुमार घोष तो थे भी नहीं। देखा जाए तो यह अंग्रेजों की एक चाल थी कि भारतीयों को कुछ नौकरियों तथा अन्य पदों पर प्रलोभन देकर उन्हें अपने नियन्त्रण में रखेंगे और इस तरह भारत-प्रेमियों की शक्ति को कमजोर बनाएंगे।

यह भी उल्लेख कर देना उचित है कि इसी भाव से उन्होंने पहले ही भारत में लॉर्ड मैकाले के सहयोग से शिक्षा-पद्धति में परिवर्त्तन कर दिया तथा गुरुकुलीय शिक्षा-तंत्र को मैकाले शिक्षा-पद्धति में परिवर्तित कर भारतीय इतिहास को भी यत्र-तत्र बदल दिया। दूसरा राष्ट्रीय अधिकारों का नारा लगाकर भारतीयों को प्रलोभन से बाँधने की कोशिश की। इसमें बहुत से अधिकारी और भारतीय फँसते चले गए। कांग्रेस तो अंग्रेजीनुमा हिन्दुस्तानियों का मजमा था अर्थात् इससे अंग्रेज अपनी ही नीति बुलन्द कर रहे थे। अंग्रेजी साम्राज्य के विरोध में जो नारे लगाए और कुछ भी कार्य करे, उन पर कांग्रेस कड़ी नजर रखती थी। परन्तु धीरे-धीरे

यह नीति भारतीयों के समझ में आने लगी। महर्षि दयानन्द के विचारों को आम जनता समझने लगी थी और लाला लाजपत राय, गुरुदत्त विद्यार्थी, महात्मा हंसराज आदि महान् आर्य नेताओं ने महर्षि दयानन्द के राष्ट्रप्रेम को समझा और कांग्रेस के अधिवेशनों में जाने लगे। धीरे-धीरे वे अंग्रेजों के सामने स्वराज्य, स्वदेश, स्ववस्तु तथा स्वभाषा की आवाज उठाने लगे इससे अंग्रेजों का पक्ष कांग्रेस में भी कमजोर पड़ने लगा। कांग्रेस को राष्ट्रद्रोही संस्था न मानकर भारतीय राष्ट्र-भक्तों ने उसे अपना हथियार बनाया और उसी की ओट में अपने मिशन को पूरा करने में जुट गए। यह आर्यसमाजी लोगों के आगे आने से ही हुआ कि अब कांग्रेस की बैठकों में राष्ट्रीयप्रेम को लेकर विचार-विमर्श होने लगा। तब आर्यसमाज का प्रचार-प्रसार लाहौर और भारत के कई महत्त्वपूर्ण शहरों में फैल चुका था। बड़े-बड़े शहरों में तो स्वयं महर्षि दयानन्द के हाथों ही आर्यसमाजों की स्थापना हो गई थी। धीरे-धीरे देखते ही देखते पूरे देश में इसका प्रभाव बढ़ने लगा, विशेष कर पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान तथा दिल्ली क्षेत्र में तो आर्यसमाज की लहर आग की तरह फैलने लगी जो विदेशी शक्तियों को जलाने में अत्यन्त सहयोगी सिद्ध हुई।

1883 ई. में लाहौर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इसकी स्वागतकारिणी सभा में लाला लाजपत राय के अतिरिक्त बहुत से प्रमुख आर्य समाजियों को बुलाया गया। (तब तक नेशनल कांग्रेस का विधिवत् गठन नहीं हुआ था) इस समय तक कांग्रेस कोई राजद्रोही संस्था नहीं मानी जाती थी। वह ऐसे देशभक्तों की संस्था थी जो सरकारी नौकरियों के द्वारा सभा की सदस्यता या हाईकोर्ट के जजों से ऊपर कोई पद नहीं माँगती थी। इस कारण बहुत से उच्च पदासीन सरकारी नौकर भी इसमें सम्मिलित हो जाते थे। ***आर्यसमाज का इतिहास, प्रथम भाग पृ. 222-23***

इसके आगे पृ. 224 पर देखें इतिहासकार का विचार—''**कांग्रेस की नींव उन लोगों ने डाली है, जो अंग्रेज थे और अंग्रेज अपने देश के हितैषी हैं। इसलिये कभी सम्भव नहीं है कि कांग्रेस भारतवर्ष के लिए राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने में सफल हो।**''

अत: कांग्रेस तब भारतीय स्वतंत्रता की कमजोर कड़ी थी जो भारतीयों को कुछ नौकरियाँ एवं कुछ पद ही देकर उनके मुँह बन्द रखने

में सफल हो रही थी। कुछ लोग नौकरी तथा पदों को पाना ही अपना देशाभिमान तथा अधिकार समझते थे। लेकिन महर्षि दयानन्द की शिक्षा का प्रभाव जिन लोगों पर पड़ा उनमें ऐसे पदलोलुपों से कहीं आगे तक राष्ट्र-भक्ति थी और वे देश से अंग्रेजी सरकार को उखाड़ फेंकना चाहते थे, इसके लिए वे सदा प्रयत्नशील रहे। इस सन्दर्भ में पं. गुरुदत्त विद्यार्थी जो महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त थे; का विचार जानने योग्य है।

कांग्रेस के प्रति पं. गुरुदत्त के विचार—किसी ने **पं. गुरुदत्त से पूछा**—''पंडित जी (श्री पं. गुरुदत्त विद्यार्थी) नेशनल कांग्रेस के बारे में आपकी क्या राय है?''

पंडित जी चलते-चलते खड़े हो गए और बोले—''नेशनल कांग्रेस के बारे में मेरी क्या राय है? अच्छा एक बड़े मैदान में लकड़ियों का एक बहुत बड़ा ढेर लगाइये और उसमें आग लगा दीजिए। उस ढेर के चारों ओर ऊँचे मीनारों पर पानी के नल लगा दीजिए। फिर एक ओर तो भड़की हुई आग में ईंधन डालते जाइये और दूसरी ओर पानी के नलकों में से सीधी धारा उस ज्वाला पर छोड़ते जाइये। यह है नेशनल कांग्रेस जिसका उद्देश्य कांस्टीट्यूशनल एजीटेशन (वैध आन्दोलन) है। पहले स्वयं आग लगाना और फिर बुझाने का नाटक करना ताकि आम जनता मूर्ख बनती रहे। *—कल्याण मार्ग का पथिक, पृ. 164*

कांग्रेस के संस्थापक मि. ह्यूम के बारे में निम्न पंक्तियों को पढ़कर जानिये कि **कांग्रेस की स्थापना के पीछे उनका मौलिक विचार** क्या था?

मेरठ गदर 1857 गोचर्म कारतूस-यह घटना 10 मई 1857 की है, जब ब्रिटिश सरकार ने भारतीय सिपाहियों को गाय की चमड़ी से बने कारतूसों को दाँतों से खोलने पर मजबूर कर दिया था। बंगाल के भारतीय युवा क्रांतिकारी मंगल पांडे ने कारतूसों के प्रयोग का विरोध किया, तो अम्बाला आदि ब्रिटिश शासकीय केन्द्रों पर तथा अन्य केन्द्रों पर सब ओर भारतीय सिपाहियों ने भी इसका विरोध किया। इससे मंगल पांडे को इसके खिलाफ बगावत करने की अपार शक्ति मिली। फलत: 10 मई, 1857 को मेरठ में इसके विरोध में भारतीय सिपाहियों द्वारा एक गदर छेड़ा गया। इससे पूर्व ही इसी के विरोध में ब्रिटिश सरकार ने 85 भारतीय

सिपाहियों को 10 वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई। इस कारण उन्हें कारावास में डाल दिया गया था। उन्हें ही छुड़ाने का आन्दोलन अत्यन्त गुप्त रूप से भारतीय सिपाहियों, कुछ क्रांतिकारी वीरों और कुछ भारतीय ग्रामीण लोगों द्वारा किया गया। उन्होंने '**फिरंगियों को मारो**' नारा बुलन्द करते हुए भीषण आन्दोलन छेड़ दिया तब मि. ह्यूम इटावा में एक अधिकारी थे। मेरठ के इस गदर से डरकर इटावा की सुरक्षा के लिए चारों ओर सिपाहियों की एक टुकड़ी तैयार कर दी गई थी। जब उन्हें पता चला कि कुछ विद्रोही मंदिर में छिपकर योजना बना रहे हैं तो वे अपने एक साथी डेनियल के साथ उन्हें पकड़ने इटावा के मंदिर में जा पहुँचे। लेकिन वहाँ इकट्ठे हुए वीरों ने भारतीय सिपाहियों के साथ मिलकर उन पर ही आक्रमण कर दिया। उन भारतीय सिपाहियों में कुछ ब्रिटिश शासक के चाटुकार भी थे। उन लोगों के सहयोग से ही मि. एलन ओ ह्यूम ने भारतीय स्त्री के वेश में भाग कर अपनी जान बचाई। मि. ह्यूम कभी भी भारतीयों के हितैषी नहीं रहे, बल्कि जहाँ-जहाँ अधिकारी रहे, वहाँ-वहाँ भारतीय कर्मचारियों से भेदभावपूर्वक ही व्यवहार किया। उसी प्रकरण को लेकर यह प्रमाण उपस्थित है—

"इटावा के कलेक्टर एलन ओ. ह्यूम ने जब मेरठ का समाचार सुना, तो उसने इटावा के चारों ओर की सड़कों पर पहरा देने के लिए एक टुकड़ी तैयार की....यह समाचार सुनकर ह्यूम और डैनियल कुछ सिपाहियों के साथ उन्हें पकड़ने उस मन्दिर में पहुँचे....यह देखकर ह्यूम साहब वहाँ से भाग खड़े हुए....सिपाहियों की इस उदारता का लाभ उठाकर क्लेक्टर ह्यूम ने भी भारतीय स्त्री के वेष में किसी तरह भाग कर जान बचाई। इन्हीं ह्यूम साहब ने आगे चलकर कांग्रेस की स्थापना में मुख्य भाग लिया।

'अठारह सौ सत्तावन' लेखक श्री निवास बाला जी राव हर्डीकर पृ. 78-79

उपरोक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि मि. ह्यूम अंग्रेजी सरकार के चाटुकार थे और अंग्रेजों की चाटुकारिता कर सरकारी पदों एवं अधिकारों का लाभ लेते थे। अत: उन्होंने भारत की शान में नहीं, अपितु भारत को कमजोर करने के इरादे से ही अंग्रेजी शासन को मदद करने और भारतीयों में फूट डालने हेतु स्वार्थवश कांगेस की स्थापना की थी।

कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन—यह 1885 में बम्बई (मुंबई) में हुआ इसकी अध्यक्षता श्री डब्ल्यू. सी. बनर्जी ने की। उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा—

"मैं सब उपस्थित जनों के मत को प्रकट कर रहा हूँ, जब मैं कहता हूँ कि अंग्रेजी सरकार को मेरी और यहाँ बैठे मेरे मित्रों की अपेक्षा से गहरे और पक्के राजभक्त व्यक्ति मिलना असम्भव है।"

भारतीय स्वातंत्रता संग्राम का इतिहास, पृ. 86

इस तरह श्री बनर्जी जैसे कई भारतीय अधिकारी भी अंग्रेजों के चाटुकार बने हुए थे, इसको मि. ह्यूम अच्छी तरह जानते थे और ऐसे लोगों से पूरा फायदा भी उठाया।

इसी तरह 1886 ई. के द्वितीय अधिवेशन में कलकत्ता में दादा भाई नारौजी ने भी अपने अध्यक्षीय भाषण में अंग्रेजी सरकार की तारीफ की और कहा—"हमें इंग्लैंड की अन्तरात्मा पर विश्वास रखना चाहिये।"

भारतीय स्वातंत्रता संग्राम का इतिहास, पृ. 86

आर्यसमाज का इतिहास भाग 1 पृ. 301 इन्द्र विद्यावाचस्पति को पढ़ने से पता चलता है कि तत्कालीन आर्यसमाजी नेता एवं कार्यकर्त्ताओं ने अंग्रेजों की इस चाल को भी समझ लिया और अन्दर ही अन्दर भारतीय अधिकारियों को मजबूत करना शुरू कर दिया। यह कार्य तब तक चला जब तक भारतीय अपनी स्वदेशभावना से मजबूत नहीं हो गए।

महादेव गोविन्द रानाडे

श्री महादेव गोविन्द रानाडे एक प्रमुख जज थे। परंतु महर्षि दयानन्द के प्रभाव में आकर वह उनके शिष्य बन गए थे। वे उस समय के कांग्रेस के प्रमुख व्यक्तियों में एक थे। 1875 ई. में उन्होंने महर्षि दयानन्द को पूना में आमन्त्रित किया और उनके 15 महत्त्वपूर्ण वैदिक व्याख्यानों को सफलता-पूर्वक करवाने में आवश्यक भूमिका निभायी। वे परोपकारिणी सभा के

भी सदस्य थे। पूना में महामहिम श्री रानाडे के प्रयास से महर्षि दयानन्द की सवारी निकाली गई। कुछ विरोधियों ने कीचड़ भी फेंके। कुछ कीचड़ रानाडे पर भी पड़े और कुछ अन्य शिष्यों पर भी फिर भी उनके संकल्प ढिले नहीं हुए। विस्तार ज्ञान के लिए देखें—'आर्यसमाज का इतिहास', पृ.97, इन्द्र विद्यावाचस्पति।

यह निश्चित है कि महर्षि दयानन्द के अनन्य शिष्य होने के नाते ही जस्टिस रानाडे ने कांग्रेस को राष्ट्रभक्ति के रंग में रंग दिया। यद्यपि वे सरकारी पद पर थे फिर भी कांग्रेस को आधार बना कर भारतीय भावनाओं से ओतप्रोत होकर अनेक कांग्रेसियों को देशहित में काम करने के लिए प्रेरित किया। इस तरह उन्होंने ह्यूम की चाल को नाकाम कर दिया। साथ-साथ अनेक आर्यसमाजी कार्यकर्त्ता कांग्रेस के साथ जुड़े। श्री रानाडे की अगुवाई में आर्यावर्त्त की मूल वैदिक भावनाओं को जगाने में कांग्रेस आगे बढ़ी। यह महर्षि दयानन्द की ही देन थी जो महादेव रानाडे के रूप में राष्ट्रभक्ति को जनता में लाने का आधार कांग्रेस बना।

गोपालकृष्ण गोखले

श्री गोपाल कृष्ण गोखले महर्षि दयानन्द के विचारों के अनुयायी बने, परन्तु मूलतः वह श्री महादेव रानाडे के ही शिष्य थे। श्री रानाडे के सम्पर्क में आने पर श्री गोखले आर्यसमाज के सिद्धान्तों पर चले। उन्हीं के प्रभाव से गोखले ने कांग्रेस की बागडोर भी पकड़ी। जस्टिस महाशय गोविन्द रानाडे की शिष्यता ने उन्हें (गो.कृ. गोखले को) त्यागमार्ग का राही बना दिया।

—भारतीय स्वानन्त्र्य संग्राम का इतिहास, पृ 100

महात्मा गांधी

पं इन्द्र विद्यावचस्पति की इसी पुस्तक के पृ. 100 पर ही महात्मा गांधी की भी चर्चा की है। लेखक के इन शब्दों पर जरा ध्यान दिया जाए—

''ऋषि की देश-प्रेम की इस शिष्य-परम्परा में गोखले के पश्चात् यदि कहीं पर दृष्टि अटकती है, तो वे महात्मा गांधी ही हैं। महात्मा गांधी गोखले को अपना राजनैतिक गुरु कहते हैं, यह उचित ही था।''

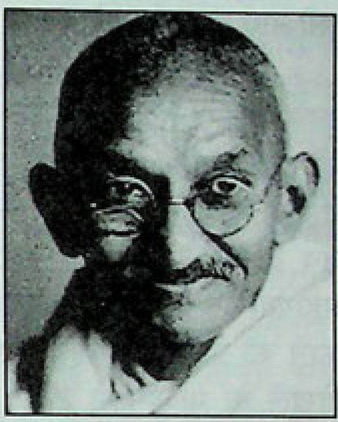

महात्मा गांधी

उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि भारतीय कांग्रेस में जुड़ने से पहले वे दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों की सेवा में जुड़े जरूर थे, लेकिन भारत में आकर जैसे ही वह कांग्रेस से जुड़े, तो उनको राजनीति में लाने का काम श्री गोपाल कृष्ण गोखले ने किया।

गोखले श्री रानाडे के शिष्य होने के कारण आर्यसमाज की राष्ट्रीय भावनाओं तथा सिद्धान्तों से भी पूर्ण परिचित थे और उसी तरह उन्होंने कांग्रेस को गति भी दी।

गांधी का स्वामी श्रद्धानन्द से मेल—श्री गोखले ने अपने इस नये साथी गांधी जी को भी महर्षि दयानन्द के राष्ट्र प्रेम के अनुसार शिक्षा दी और महर्षि दयानन्द के विचारों से ही उनको भरपूर राष्ट्रवादी बना दिया। इससे पूर्व मिस्टर गांधी दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटने पर जब गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार आकर वहाँ के तत्कालीन आचार्य महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती) से मिले तो वहाँ का दृश्य देख वह हैरान रह गए। स्वामी श्रद्धानन्द जी की भारत के प्रति निष्ठा जानकर आर्यसमाज के राष्ट्रीय विचारों से और अधिक प्रभावित हुए। उसी दौर में ज्वालापुर आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय के वार्षिकोत्सव पर मिस्टर गांधी को 'महात्मा' की उपाधि विधिवत् दी थी और भरी सभा में उन्हें **'महात्मा गांधी'** कहकर सम्बोधित भी किया। तब से ही उन्हें मिस्टर

गांधी के बजाय महात्मा गांधी कहा जाने लगा। आज पूरी दुनिया में वह इसी नाम से जाने जाते हैं।

महात्मा गांधी अपने प्रति स्वामी श्रद्धानन्द जी का यह स्नेह देखकर उनके श्रद्धालु हो गए। कालान्तर में दोनों ने मिलकर कांग्रेस में देशभक्ति को आगे बढ़ाया। दोनों भाई और नजदीकी मित्र की तरह राष्ट्र की सेवा में लगे रहे। इसी सन्दर्भ में यह भी बताना उचित होगा कि मिस्टर गांधी जब दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के हित में कार्यरत थे, तो उनको सहायता देने के निमित्त स्वामी श्रद्धानन्द ने अपने ब्रह्मचारियों को मजदूरी करने की प्रेरणा दी एवं ब्रह्मचारियों को मजदूरी से मिले 1500 रुपये श्री गोखले के माध्यम से उन्हें भेजवा दिये। स्वामी श्रद्धानन्द जी के इस उदारतापूर्ण कार्य से मिस्टर गांधी अत्यन्त प्रभावित हुए। उधर श्री गोपालकृष्ण गोखले का सान्निध्य और समय-समय पर उनके द्वारा मि० गांधी को महर्षि दयानन्द की राष्ट्रीय शिक्षाओं की दी गई प्रेरणाओं ने गुरुकुल कांगड़ी और उसके संस्थापक स्वामी श्रद्धानन्द के प्रति गांधी जी के हृदय में श्रद्धाभाव पैदा कर दिया था। फलतः मिस्टर गांधी दक्षिण अफ्रीका से लौटने पर सीधा गुरुकुल कांगड़ी ही गए। उनका मन शांति निकेतन के आचार्य श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर से भी मिला हुआ था अतएव वे वहाँ भी जाकर खुश रहते थे।

अस्तु! यह कहना अत्यन्त सहज है कि इस प्रकार महात्मा गांधी पर भी प्रारम्भ में महर्षि दयानन्द का रंग चढ़ा, पर दुर्भाग्यवश महात्मा गांधी महर्षि दयानन्द के साहित्य को भलीभाँति पढ़ न पाए। यत्र-तत्र आर्यसमाज के विचारों से प्रभावित जरूर रहे। लेकिन वह वैदिक सिद्धान्तों को पूर्णतया हजम न कर पाए नतीजा यह निकला कि कांग्रेस के साथ स्वामी श्रद्धानन्द

द्वारा कई महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय अभियान सफलतापूर्वक चलाए जाने पर गांधी जी ने स्वयं को फीका पड़ता देख स्वामी श्रद्धानन्द का साथ छोड़ दिया।

उदाहरण के तौर पर स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा चांदनी चौक (दिल्ली) में अंग्रेजों के सामने सीना खोलकर अंग्रेजी ऑफिसर को ललकारा कि पहले मेरे सीने पर गोली मारो आदि, मुस्लिम एवं ईसाई भाइयों को घर वापस आने का आह्वान 'शुद्धि सभा' के द्वारा उसे कार्यरूप देना और अंग्रेजों के अत्याचार से डरे भारतीयों में फिर निर्भयता का मन्त्र फूँककर जालियां वाला बाग कांड को लेकर अमृतसर में आयोजित विराट सभा की प्रधानता करना आदि गांधी जी ने देखा। पर उनकी प्रसिद्धि को महात्मा गांधी हजम न कर सके। काश! गांधी जी महर्षि दयानन्द के इस अनन्य सिपाही की राष्ट्रीय भावना का सम्मान करते और महर्षि दयानन्द के साहित्यों का भी पूर्णरूप से अध्ययन करते तदनुरूप कांग्रेस को बढ़ाने में स्वामी श्रद्धानन्द जी महराज का सहयोग करते, तो देश का विभाजन भी नहीं होता और हमारा देश विश्व में शिरोमणि बन जाता। स्वामी श्रद्धानन्द जैसे भारतीय ईमानदार, कर्मठ, शुद्ध आर्य हिन्दू, धर्मावलम्बी, मानवता के सिपाही कालान्तर में कांग्रेस से नहीं जुड़े रह सके। फलतः स्वामी श्रद्धानन्द जी के कांग्रेस से अलग हो जाने पर कांग्रेस में गिरावट शुरू हो गई। महात्मा गांधी ने काम बहुत किया पर कांग्रेस को कमजोर बना दिया। कांग्रेस फिर से 'फूट डालो और राज करो' की नीति पर बढ़ती रही। वह गांधी और नेहरू के ईर्द-गिर्द ही घूमती रही। इसका नतीजा सबके सामने है। इतिहास गवाह है कि जिस स्वामी श्रद्धानन्द ने मिस्टर गांधी को महात्मा बनाकर उनके व्यक्तित्व को प्रतिष्ठित किया था उसी संन्यासी की छलपूर्वक हत्या करने वाले मुसलमान अब्दुल रशीद को महात्मा गांधी ने भाई अब्दुल कहकर कोर्ट में सम्बोधित किया और उसे फाँसी से बचाने का हर सम्भव प्रयास किया। यह हिन्दू भाइयों के प्रति गांधी जी की कृतघ्नता दृष्टिगोचर होती है। इसे हम क्या कहें? अगर ऐसा नहीं भी हो, तो भी स्वामी श्रद्धानन्द के प्रति उनकी कृतज्ञता पर प्रश्न तो उठता ही है।

पंजाब केसरी लाला लाजपत राय

लाला लाजपत राय

अब बारी आती है कांग्रेस में आने वाले लाला लाजपत राय की वह महर्षि दयानन्द के विचारों, संस्कारों तथा वैदिक सिद्धान्तों के जीवन में उतारने वाले व्यावहारिक प्राण थे। तब भारतीय राजनीति में उतरे शेरदिल पंजाब केसरी कहलाने वाले लाला लाजपत राय थे। इनसे पहले के कांग्रेसी महर्षि दयानन्द के राष्ट्रीय विचारस्रोतों से प्रभावित थे। लाला लाजपत राय ने आर्यसमाज के व्यावहारिक सिद्धान्तों व संस्कारों को जीवन में उतारा था अत: वे अत्यन्त वीरता, व्यावहारिकता तथा राजनैतिक कुशलता के शेरदिल सदैव दहाड़ते दिखे। अदम्य साहसी एवं कभी पीछे न हटने वाले वीरपुरुषों में से एक थे।

इतिहासकार लिखते हैं कि महर्षि दयानन्द की कृपा से देश को लाला लाजपत राय जैसा एक ऐसा नरकेसरी मिला जिसकी दहाड़ से लन्दन पार्लियामेंट की दीवारें भी थर्राया करती थीं। इतिहासकार के शब्दों में जानें तो—भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास, पृ.100 के अनुसार— ‘‘आर्यसमाज में वह (लाला लाजपत राय) डी.ए.वी. कॉलेज के संस्थापकों में गिने जाते थे और चिरकाल तक उनके स्तम्भ रहे।’’

लाला लाजपत राय, पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी और महात्मा हंसराज तीनों कॉलेज में इकट्ठे ही पढ़ा करते थे। इस कारण इनकी दोस्ती भी उत्तम कोटि की थी। जब दयानन्द कॉलेज लाहौर का वार्षिकोत्सव हुआ करता था, तो धन की अपील अधिकतर लाला लाजपत राय ही किया करते थे। पं. गुरुदत्त विद्यार्थी तथा महात्मा हंसराज का भी उद्‌बोधन हुआ करता था। कॉलेज की स्थापना में भी इन्हीं तीनों का नाम आगे रहा। तब लाहौर में आर्यसमाज की स्थापना हो चुकी थी। उसमें भी ये अग्रणी हुआ करते थे।

एक बार लाला जी ने कहा कि महर्षि दयानन्द के सीने में दो दिल हैं—एक मोम की तरह नरम और दूसरा फौलादी जो सत्य के मार्ग पर कठिन परिस्थितियों में भी कभी न झुकने वाला, न ही टूटने वाला वही दिल स्वयं में भी बैठा लिया। अर्थात् लाला लाजपत राय भी मानवता के प्यार में मोम की तरह और राष्ट्रीय उत्थान के कार्य में चट्टान की तरह खड़े रहते थे। वह महर्षि दयानन्द के सपनों को साकार करने तथा भारतवर्ष को आगे बढ़ाने में जुट गए थे। तब कांग्रेस कमिटी के अन्दर उन्होंने अपना मजबूत स्थान बना लिया था।

एक बार कांग्रेस कमिटी ने लाहौर आर्यसमाज के भवन में ही बैठक आयोजित की। सभा में व्याख्यान देने लाला लाजपत राय वहाँ पधारे। उस समय कांगेस का अपना कोई भवन न था पर श्री रामचन्द्र मनचन्दा कांग्रेस तथा आर्यसमाज के भी प्रधान थे अतः आर्यसमाज में ही कांग्रेस की सभा हुई। जिसमें लाला लाजपत राय ने महर्षि दयानन्द के मन्तव्यों के अनुसार भारतवर्ष की विशेषता तथा ब्रिटिश राज के खिलाफ जोरदार व्याख्यान दिया। ब्रिटिश सरकार उनसे खुश नहीं थी। फलतः 1818 ई. के एक पुराने नियम के अनुसार उन्हें और सरदार अजीत सिंह (वीर भगतसिंह के चाचा) को कैद कर इंग्लैंड के किसी अज्ञात स्थान पर भेज दिया। लाला लाजपत राय एक अच्छे लेखक भी थे। इंग्लैंड में रहते हुए ही उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'आर्यसमाज' लिखी।

बाल-पाल-लाल—लाला लाजपत राय ने अपने परिश्रम, अनोखे व्यक्तित्व, राजनैतिक सूझबूझ तथा तत्कालीन प्रसिद्ध आर्य महानुभावों के सहयोग से कांग्रेस में अपना एक विशेष स्थान बना लिया था और तब तीन महान व्यक्तित्व उभर कर आगे आए थे जो 'बाल-पाल-लाल' से जाने गए। इन तीनों ने मिलकर भारतीयों को स्वतंत्रता का सही मार्ग बताया और ब्रिटिश सरकार को उखाड़ फेंकने हेतु आन्दोलन करने तथा लड़ने के लिए अनवरत उत्साहित किया। ये तीनों वीरपुरुष—महाराष्ट्र के स्वनामधन्य बाल गंगाधर तिलक, बंगाल के बिपिनचन्द्र पाल और पंजाब के केसरीपुरुष लाला लाजपत राय स्वदेशी राज के लिए एक ही दिशा में मिलजुल कर काम कर रहे थे। 1907 से 1918 तक का समय इन योद्धाओं के लिए अत्यन्त कठिन था परन्तु इन तीनों की आपसी

समझबूझ और तालमेल से स्वतंत्रता संग्राम के महायुद्ध की तैयारी में अत्यन्त उपयोगिता सिद्ध हुई।

लाला लाजपत राय ने महर्षि दयानन्द के बताए वैदिक धर्म को ही राजनीति का महत्त्वपूर्ण हिस्सा बनाया और उसी चेतना से आगे बढ़ते रहे। चाहे लाहौर हो या अम्बाला या कहीं भी कांग्रेस की सभा हो या आर्यसमाज की, सर्वत्र लाला लाजपत राय अपने अद्‍भुत व्याख्यान शैली में महर्षि दयानन्द का राष्ट्रीय दृष्टिकोण अवश्य प्रस्तुत किया करते थे। इससे उपस्थित श्रोतागण वैदिक धर्मानुसार राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत हो राजनैतिक पहलुओं से स्वाभाविक रूप से जुड़ जाया करते थे। आर्यसमाज के इतिहास तथा तत्कालीन विभिन्न लेखकों के अनुसार लाला जी भारत के एक जागरूक प्रहरी साबित हुए। महामान्य बाल गंगाधर तिलक और बिपिन चन्द्र पाल का पूरा सहयोग इन्हें मिला और इन्होंने भी उन दोनों को पूरा सहयोग दिया। फलत: उस समय इन तीनों की एक टोली बन गई थी और इसी कारण ये बाल-पाल-लाल नाम से भारत की सम्पूर्ण राजनीति में प्रसिद्ध हुए।

'गदर पार्टी का इतिहास' के लेखक श्री प्रीतमसिंह पंछी के अनुसार लाला लाजपत राय, भाई परमानन्द और सरदार अजीतसिंह का तालमेल का पता चलता है जिन्होंने एकजुट होकर राष्ट्र को एक ऊर्जावान नयी चेतना दी। उन दिनों भारत के स्वाधीनता प्रेमियों ने अलग से 'बान्धव समाज' नामक गुप्तरूप से एक संस्था बनाई थी जिसे इन तीनों ने बाहर-बाहर ही खूब सहायता की। लाला लाजपत राय इस संस्था को स्वदेशी राज के हित में समझते थे।

लाला लाजपत राय ने आर्यसमाज की गतिविधियों को हर जगह जीवित रखा, बल्कि यह कहा जाए कि अपनी राजनीति का राष्ट्रीय गौरव का मूल आधार आर्यसमाज के विचारों को ही रखा, तो उनका गौरव और भी बढ़ जाता है।

जब लाला जी हिसार रहने लगे, तो हिसार नागौरी गेट आर्यसमाज की स्थापना हुई थी। उसके अगुआ लोगों में वह स्वयं भी एक थे। उस समय उस आर्यसमाज के मंत्री पद पर कार्य कर रहे थे—श्री चन्दुलाल जी, पं. लखपत राय जी और लाला लाजपत राय की आर्यसमाज के हर

विकास-कार्य के लिए समर्पित योजना एवं सहमति हुआ करती थी। डी.ए.वी. संस्थान से जुड़े होने के कारण वह समाज भी डी.ए.वी. के सह संस्थान प्रादेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली के अन्तर्गत रखी गई। उस आर्यसमाज के वर्षों तक लाला लाजपत राय प्रधान तथा सिरस्थ रहे। अब तो उस आर्यसमाज नाम भी बदलकर 'लाला लाजपत राय चौक आर्यसमाज' रख दिया गया है यानी नागौरी गेट की बजाय उस चौक का नाम लाला जी के नाम पर कर दिया गया और उस आर्यसमाज का नाम भी उनके साथ जोड़ दिया गया है। ऐसा होना आर्यजगत् के लिए गौरव की बात है। ऐसे महान् महर्षि दयानन्द के पदचिह्नों पर अपने राजनैतिक कार्य को ले जाने वाले महापुरुष वीर नरव्याघ्र लाला लाजपत राय का नाम आर्यसमाज से जुड़ा। आज उस आर्यसमाज के प्रधान चौधरी हरीसिंह सैनी हैं जो स्वयं भी राजनीति और आर्यसमाज के कार्य में सदा सत्य का आश्रय लेने वाले आर्य के रूप में वर्षों से उनकी पहचान बनी हुई है। वह वर्षों से आर्यसमाज के प्रति समर्पित सक्रिय कार्यकर्ता हैं।

लाला लाजपत राय के साहसिक कार्य के कुछ प्रमाण— सन् 1909 में आर्यों ने लाला लाजपत राय और सरदार अजीत सिंह के नेतृत्व में पंजाब में एक महा सम्मेलन आयोजित करने का विचार किया। इसमें 1857 के स्वातंत्र्य संग्राम की 'आर्य शताब्दी समारोह' को मनाने का निश्चित हुआ जिसमें ब्रिटिश सरकार का खुलकर विरोध-प्रदर्शन करना तय था। उधर अंग्रेजी ऑफिसरों को इसकी भनक लग गई, क्योंकि लाला लाजपत राय पंजाब के अनेक स्थानों पर जाकर इसकी मुनादी कर रहे थे। वह सैनिक अड्डों पर भी गए। रावलपिंडी सैनिक अड्डे को सरकार बचाना चाहती थी। पर लाला जी के तूफानी दौरे ने अंग्रेजों को परेशान कर रखा था। लाला जी के व्याख्यानों का प्रभाव रावलपिंडी पर भी पड़ने लगा। कार्यक्रम 10 मई को होना था, आनन-फानन में अंग्रेजी सरकार ने भावी संकट से बचने के लिए 9 मई को ही इन दोनों आर्य नेताओं को गिरफ्तार करके बिना कोई मुकदमा चलाए किसी अज्ञात स्थान को भेज तो दिया, लेकिन 10 मई की रात बिताना उनके लिए भारी पड़ रहा था। भयंकर कत्लेआम के भय से रावलपिंडी में ही पास के किले में सब अंग्रेज छिप गए और वहीं पास के एक स्टेशन पर एक सवारी रेल गाड़ी सारी रात

धुआँ छोड़ती तैयार खड़ी रही ताकि विपत्ति आने पर सभी अंग्रेज उसमें सवार होकर वहां से भाग जाएँ। ब्रिटिश शासन में ऐसा डर पैदा करने वाले वीरपुरुष और कोई नहीं, बल्कि पंजाब केसरी आर्य नेता लाला लाजपत राय ही थे।

लेखक अलगू राय शास्त्री द्वारा लिखित पुस्तक 'लाला लाजपत राय' पृ. 144-145 के अनुसार लाला जी जब निर्वासन काल में थे, तो उन्हें एक यूरोपियन अधिकारी ने बताया कि अंग्रेज आपसे डरे हुए हैं और आपको सेनाओं की राजभक्ति में हस्ताक्षेप करने के कारण दूसरा नाना साहब समझते हैं। 1857-1907 चपातिये 5 पर्चे मिशन में नाना साहब की तरह ही लाजपत राय जाने गए। अंग्रेजों ने ऐसा समझा कि लाला लाजपत राय का निर्वासन अंतिम मुगल सम्राट रूपी ब्रह्मा का निर्वासन जैसा ही है।

इसी पुस्तक के पृ.129 से पता चलता है कि लाला जी को इतना भयंकर समझा गया कि 1878 ई. के कानूनी धारा 3 के अनुसार पकड़ लिया गया और बिना मुकदमा चलाए ही उन्हें बर्मा के माण्डला के किले में अनिश्चित काल के लिए बन्द कर दिया गया। उन्हें माण्डला ले जाते हुए कोई भयंकर काण्ड न हो जाए, इस भय से लाला जी जब वह बाहर निकले तो पंजाब से अवध-रुहेल खण्ड के इलाके में जाकर ही डब्बे की खिड़कियाँ खोलने की इजाजत दी गई। अंग्रेजों के अन्दर इतना डर पैदा करने का श्रेय महर्षि दयानन्द के अनन्य शिष्य लाला लाजपत राय को ही जाता है।

इतिहासकार लिखते हैं कि अंग्रेजों ने 1872 में नामधारी सिखों एवं कूकों के गुरु भाई रामसिंह को भी देशभक्ति के अपराध में ऐसी ही सजा दी थी।

सन् 1910 में सर वैलण्टाईन शिरोल नामक अंग्रेज ने 'भारतीय असंतोष' नामक एक पुस्तक प्रकाशित करवाई जिसका उद्देश्य आर्यसमाज को कुचलना था। उसमें स्पष्ट लिखा हुआ है कि लाला लाजपत राय और सरदार अजीत सिंह दोनों विद्रोही आर्यसमाजी हैं। इसी तरह एक आलाराम नामक व्यक्ति ने भी लाला जी और अजीत सिंह की जोड़ी को कहा जो स्वयं भारतवासी ही था, अगर वह अंग्रेजों का चाटुकार

होता तो उन्हें देशभक्त आर्यसमाजी कहता। खैर कुछ भी हो निसंदेह हमें गौरव होता है कि महर्षि दयानन्द के क्रान्तिकारी विचारों ने ऐसे साहसी-वीरों को पैदा किया जिन्हें अंग्रेज स्वयं विद्रोही आर्यसमाजी, खतरनाक आदि अनेक नामों से बुलाकर स्वयं उनसे काँपते थे। अंग्रेज सरकार के खिलाफ जोरदार निर्भीक आवाज उठाने वाला कोई महर्षि दयानन्द का ही शिष्य हो सकता है। अंग्रेजों के विरोध में ऐसे साहसी कदम उठाने के कारण उन्हें देशनिकाला भी भुगतना पड़ा पर उन्होंने भारत देश को गौरवान्वित ही किया क्योंकि अंग्रेजों में दम नहीं था कि उन दोनों वीर आर्य नेताओं को भारत में रख सकें। हर पल उन्हें इन आर्यसमाजी नेताओं का भयंकर डर ही बना रहता था कि इनके यहाँ रहने से कोई भयंकर काण्ड न हो जाए।

एक पुस्तक है 'बन्दी जीवन' उसके भाग 3, पृ. 216 के अनुसार लाला लाजपत राय ने एकबार ऑल इण्डिया पोलिटिकल सफरर्स कॉन्फ्रेन्स के अध्यक्षीय भाषण देते हुए गर्जना के साथ कहा था— **''राजबन्दियों में ऐसे भी आदमी हैं जिनके जूते के फिते खोलने लायक यहाँ के लॉट साहब भी नहीं।''** यह कॉन्फ्रेन्स सन् 1920 में मुक्त राजबन्दियों के विषय में स्वातंत्र्य संग्राम के अमरसेनानी श्री सचीन्द्रनाथ सान्याल के प्रयत्नों द्वारा रखी गयी थी जिसके सभापति होने का सौभाग्य लाला लाजपत राय को मिला था। लाला जी के उक्त उद्‌बोधन से भारतीयों में उत्साह भरी लहर दौड़ पड़ी, पर अंग्रेजों में लाला जी के लिए विद्रोह पैदा हो गया।

अपने जीवन की अनेक विकट स्थितियों में लाला जी ने कभी भी महर्षि दयानन्द के सत्य सिद्धान्त को नहीं छोड़ा। ऋषि का वह साहसी शिष्य ने केवल जुबान से ही नहीं, अपितु आर्यसमाज तथा भारत देश की सेवा दान देकर भी की। आवश्यकता के अनुसार महर्षि दयानन्द की स्मृति में जब डी.ए.वी. कॉलेज की स्थापना होने लगी तो, अपनी उदारता से इस दानवीर ने अपने पास से उस समय **(सन् 1886) 50 हजार रुपये की धनराशि का दान** देकर अपने गुरु दयानन्द के प्रति अपार निष्ठा का परिचय दिया। इस प्रकार राष्ट्रीय क्षेत्र में पंजाब बैंक, स्कूल, कॉलेज आदि अनेक संस्थाओं का निर्माण में अपना धन लगाया। इस

प्रकार जहाँ राष्ट्र के प्रति वे समर्पित थे, वहीं आर्यसमाज तथा महर्षि दयानन्द के विचारों को प्रचारित-प्रसारित करने में भी सर्वदा समर्पित रहते थे। दयानन्द के निष्ठावान् समर्पित भाव वाले इस महापुरुष का अन्त में कांग्रेस से तालमेल नहीं बैठा या यों कहें कि कांग्रेस के सिरस्थ कार्यकर्त्ताओं तथा अधिकारियों के साथ हाँ में हाँ वह न मिला सके। फलत: 1926 में कांग्रेस की दुरंगी नीतियों के कारण अलग हो गए और एक ' नेशनल पार्टी' की स्थापना की। कांग्रेस के विरुद्ध चुनाव लड़ा। कश्मीर में भारतीयों की आँखों में धूल झोंकने के इरादे से जब साइमन को भेजा गया तब भी लाला लाजपत राय ने साइमन के खिलाफ बड़े-बड़े आयोजन एवं प्रदर्शन कर विशाल जन-समुदाय का नेतृत्व किया। लाखों की संख्या में स्त्री-पुरुष अंग्रेजों के खिलाफ इनके साथ काले झंडे लेकर लाहौर रेलवे स्टेशन की ओर चले।

लाला जी का उक्त साहसिक कदम देखकर लाखों लोगों ने जब कमीशन की ट्रेन को लाहौर स्टेशन पर देखा तो एक स्वर से स्टेशन गूँज उठा—(30 अक्तुबर 1928) **'साइमन कमीशन गो बैक'** उधर फिरंगियों की पुलिस बेरहमी से भारतीय स्त्री-पुरुषों पर लाठियाँ बरसाने लगी। नन्हे-मुन्ने बच्चों को उनकी गोद से छीनकर तारकोल की सड़कों पर पटका जाने लगा। जनता इधर-उधर भी नहीं हो पा रही थी। सबके अन्दर अपने वृद्ध परम वीर नेता लाला लाजपत राय को बचाने का ध्यान आ रहा था पर पुलिस ने उनके ऊपर भी लाठियाँ बरसानी शुरू कर दी। इस कारण भारतीय जन का आराध्य नेता बुरी तरह जख्मी होकर गिर पड़ा। उनके मुख से निकला—**'मेरे पीठ पर लगी एक-एक लाठी से निकले खून के कतरे विदेशी राज का ताबूत बनेगा।'** यह उत्साह तो था पर फिरंगियों की पुलिस की लाठियों की मार को अपनी छाती पर लिये अपमान, ग्लानि एवं दुःख के घावों को लिये ही 17 नवम्बर, 1928 को भारत की स्वातंत्र्य वेदी पर अपने प्राणों की पूर्णाहुति देकर वह शेरपुरुष अमरपथ का राही बन गया। आगे उनका वलिदान भारत की भावी आजादी के लिए सर्वत्र प्रेरणा बनकर भारतीयों में उभरी जिसका वर्णन यत्र-तत्र आगे आप देख सकेंगे।

अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द

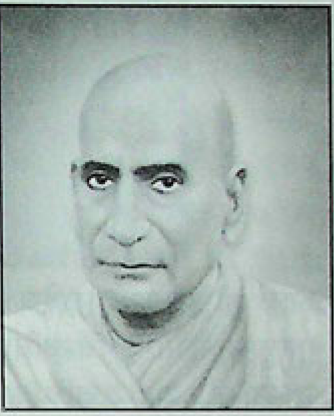
स्वामी श्रद्धानन्द

इससे आगे की पंक्ति में आर्य जगत् के लौह पुरुष स्वामी श्रद्धानन्द का ही आता है। तब स्वामी श्रद्धानन्द ने गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना हरिद्वार में कर दी थी। उसके प्रथम शिष्य ब्रह्मचारी उनके ही पुत्र इन्द्र एवं हरिश्चन्द्र थे और कालान्तर में भारत के लगभग हर कोने से छात्र गुरुकुल में आने लगे। उधर तत्कालीन आर्यसमाज का एकक्षत्र नेतृत्त्व उन्हें प्राप्त था। कांग्रेस में भी उनकी उच्चस्तरीय पैठ बनी हुयी थी।

उनका शुद्धि-आन्दोलन जोरों पर था। स्वेच्छा से जो मुस्लिम, ईसाई या अन्य कोई आर्य हिन्दू धर्म में लौटना चाहते थे, उन्हें शुद्धि-यज्ञ द्वारा संस्कारित करके इसका एक प्रमाण-पत्र देकर उनका सम्मान भी किया जाता था। कांग्रेस की अगुआई भी स्वामी श्रद्धानन्द के हाथ में आ गई थी। उनके प्रयासों से सर्वत्र आर्यसमाज में राष्ट्रवाद की ज्वाला पूर्णतः धधक चुकी थी। इस कारण अंग्रेजी सरकार समस्त आर्य समाजियों को विद्रोही समझने लगी थी। सरकार के विरुद्ध कोई आयोजन करना एवं किसी भी प्रकार उसके विरोध में आवाज उठाना तब मानो मृत्यु को आमन्त्रण देने जैसा होता था। फिर भी महर्षि दयानन्द का फौलादी शिष्य स्वामी श्रद्धानन्द हर जगह स्वदेश के हर पहलु को अपने विचारों से उभारता रहा और आर्यसमाज तथा कांग्रेस के अधिवेशनों के माध्यम से भारतीय स्वतंत्रता की आवाज को बुलन्द करता रहा। उनकी दूरदर्शिता के कारण ही महात्मा गांधी उन्हें बड़ा भाई मानने लगे थे।

दक्षिण अफ्रीका से भारत आने पर महात्मा गांधी सीधे गुरुकुल कांगड़ी आए और अत्यन्त श्रद्धापूर्वक स्वामी श्रद्धानन्द जी से मिले। वहीं एक यज्ञशाला में आयोजित एक साधारण अधिवेशन में स्वामी श्रद्धानन्द जी ने मिस्टर गांधी को '**महात्मा गांधी**' कहकर उनका सम्मान किया तब से मिस्टर गांधी सर्वत्र 'महात्मा गांधी' के नाम से प्रसिद्ध हो गए।

हरिद्वार में मिली गांधी जी को महात्मा की उपाधि

आज भी इसका दस्तावेज यानी तत्कालीन अखबार में प्रकाशित विवरण गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय की दिवारों पर लगा हुआ देखा जा सकता है। यह उपाधि उन्हें 8 अप्रैल, 1915 को आर्ष महाविद्यालय ज्वालापुर के एक समारोह में गुरुकुल काँगड़ी के आचार्य महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द का तत्कालीन नाम) ने अपने ब्रह्मचारियों के साथ उपस्थित होकर विधिवत् दी थी।

मैं यहाँ यह बताना चाहूँगा कि आर्यसमाज वेस्टमिड्लैंड, बर्मिघम यूनाइटेड किंगडम के माननीय प्रधान डॉ. नरेन्द्र कुमार सन् 2019 में भारत गए तो इसी अभिलाषा से गुरुकुल काँगड़ी हरिद्वार भी गए और वहाँ के कुलपति डॉ. रूप किशोर शास्त्री से 4 फरवरी 2019 को मिले और गुरुकुल का पुस्तकालय, वेद विभाग, यज्ञशाला आदि कई स्थान देखे, वहाँ उन्हें वह अखबार का दस्तावेज भी दिखाया गया जिसमें मिस्टर गांधी को स्वामी श्रद्धानन्द ने '**महात्मा गांधी**' की उपाधि दी थी। यह संवाद मुझे (आचार्य डॉ. उमेश यादव को) डॉ. नरेन्द्र कुमार, प्रधान जी ने भारत से लौटकर सुनाया और वहाँ की कुछ तस्वीरें, अखबार की कटिंग आदि भी दीं।

स्वामी श्रद्धानन्द का स्वयं के पिता के प्रति व्यंग्य–वह उदारदिल शेरनाद करने वाले स्वामी श्रद्धानन्द सब जगह स्वदेश के लिए सब भारतीयों को उद्बोधित करते थे। तभी तो उस समय राजद्रोही और आर्यसमाज पर्यायवाची हो गए थे। अंग्रेजों को आर्यसमाजी खटकने लगे थे। फिर स्वामी श्रद्धानन्द तो उन सब भारतीयों पर जो अंग्रेजी सरकार के अधिकारी थे और जो अंग्रेजों के पिट्ठू थे; उनका भी वे उपहास करते थे

ताकि उनका मनोबल अंग्रेजों को साथ न दे और वे स्वदेश के लिए जागें। यहाँ तक कि उस राष्ट्रप्रेमी वीर ने अपने पिता पर भी व्यंग्य कसा कि वे अंग्रेजी सरकार की ताकत मजबूत करने में जुटे थे। अपनी पुस्तक 'कल्याण मार्ग का पथिक' पृ. 3-4 में उनके द्वारा अपने पिता के बारे में लिखी इन पंक्तियों को देखें—''एक सिख सरदार (उनके पिता) भी 200 सवारों का दस्ता (दल) लेकर उस सरकार (अंग्रेजी सरकार) की जड़ें भारतवर्ष में दृढ़ करने जा रहा था, जिसने कुछ वर्ष पहले की पंजाब को दास बना लिया था।''......आगे लिखते हैं—''पिता जी हिसार के बागी कोतवाल की जाल किरच सम्भालकर बागियों को फाँसी दिलाने के शुभ काम पर तैयार हुए।'' ......और आगे देखें—तीन महीनों में सहारनपुर के सारे जिले के हथियार ले, उसके और जिले के गले में सदा के लिए गुलामी का तौक (ताज) पहना नेपाल की तराई में लालघाटी की लड़ाई पर जा छापा मारा।'' अपने पिता की ऐसी बातों को महर्षि दयानन्द का कोई पक्का शिष्य ही प्रकट कर सकता है। उन्होंने अपने पिता का स्वदेश विरोधी उक्त कृत्य को व्यंग्य भरे शब्दों में कटु आलोचना की। यह उनकी सत्यप्रियता को दर्शाता है। यावज्जीवन उन्होंने सच का साथ दिया। यहाँ तक कि वह ऐसे ही मुकदमे की पैरवी करते थे जो सच्चे होते थे। उन्होंने झूठे मुकदमों की कभी पैरवी नहीं की। फलत: उनकी आमदनी कम हो गई। लेकिन उन्होंने अपने कदम पीछे नहीं हटाए। हाँ, अपनी आवश्यकताओं को जरूर उन्होंने कम कर दिया।

स्वामी श्रद्धानन्द की दिलेरी—1857 के बाद का समय अंग्रेजों द्वारा किये जा रहे दमन चक्र का यौवनकाल था। देशभक्तों को आदर देना, उनकी प्रशंसा करना अथवा उन्हें विचार प्रकट करने की सुविधा प्रदान करना यह सब अंग्रेजों को खटकता था। इस कारण देश में ऐसा महौल बन गया था मानो उक्त कार्यों में हिस्सा लेना जैसे मौत को निमंत्रण देना है। अंग्रेजों द्वारा पटियाला रियासत में आर्यसमाज का दमन किया जाने लगा तो किसी की हिम्मत नहीं हो रही थी कि उसे रोक सके। ऐसे में निडर स्वामी श्रद्धानन्द ही सिंहनाद करते आगे आए और आर्यसमाजियों को साथ लेकर अंग्रेजों का डटकर प्रतिकार किया। इस विषय का विस्तार तो आगे मिलेगा। बस यहाँ उनकी साहसिक कदम की गिनती मात्र करते हैं।

उसी दौर में शेरेपंजाब लाला लाजपत राय जब निर्वासन समाप्ति के बाद बर्मा के माण्डला जेल से स्वदेश आए तब उनके स्वागत में स्वामी श्रद्धानन्द की अगुआई में जन सभा आयोजित की गई। स्वागत स्थल लाहौर की आर्यसमाज बच्छोवाली था वहाँ उनका भव्य स्वागत किया और निडरता पूर्वक स्वामी श्रद्धानन्द जी ने लाला लाजपत राय की आर्यसमाजी तथा राष्ट्रभक्त होने की खुलकर इन शब्दों में प्रशंसा की— **''लाला लाजपत राय सदा से आर्यसमाज का अंग रहे हैं—संसार की कोई शक्ति इन्हें आर्यसमाज से अलग नहीं कर सकती।''**

वहाँ पर लाला जी का व्याख्यान भी करवाया गया।

1919 सन् में जब पंजाब के अमृतसर में जलियांवाला बाग में एकत्रित जनसमूह को जनरल डायर ने गोलियों से भून डाला, तब चारों ओर हाहाकार मच गया। लोग डर गए, पर भारतीय वीरों में खून खौल रहा था। उस समय अंग्रेजों के सामने आकर इस नृशंस हत्याकांड का विरोध करने की किसी की हिम्मत नहीं हो रही थी। ऐसे में आर्य जगत् के वीर पुरुष स्वामी श्रद्धानन्द आए, अत्यन्त साहस के साथ उन्होंने एक जनसभा का आयोजन किया और स्वागताध्यक्ष बने। उन्होंने सभा का अध्यक्ष अपने बाल सहपाठी मोती लाल नेहरू को बनाकर अपने विलक्षण साहस का परिचय दिया। उस आयोजन को सफल बनाकर आर्यसमाज व अन्य सब जुड़े भारतीयों में नयी जान फूँक दी। उस कांग्रेस सभा को उन्होंने अंग्रेजी में सम्बोधित किया, पर जलियांवाला बाग में आयोजित जनसभा में अपना स्वागताध्यक्षीय भाषण हिन्दी में देकर राष्ट्रभाषा हिन्दी के महत्त्व को प्रकट करते हुए अपनी भाषा के प्रति प्रेम दिखाया।

अधिवेशन के बाद भी पंजाब की जनता में भय बना हुआ था। उस वातावरण में जनरल डायर की गोलियों की आवाज के स्मरण मात्र से ही लोग सहम जाते थे। किसी नेता में इतना साहस नहीं था कि वह उस भयावह वातावरण में घूम-घूम पंजाब की जनता के डर रूपी घावों पर मरहम लगाए। तब वीर आर्य संन्यासी पीड़ित जनता को आश्वस्त करने निकल पड़े और सबसे मिल-मिल कर सान्त्वना दे-दे कर सबके बीच पहुँचकर सबकी यथा-योग्य सहायता की। 'भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम का

इतिहास', पृ. 21 की ये पंक्तियाँ अत्यन्त भावपूर्ण हैं—''स्वामी श्रद्धानन्द के नेतृत्व में आर्यकर्त्ताओं ने मिलकर घायल पंजाब को सान्त्वना देने और मार्शल ला पीड़ितों को सहायता पहुँचाने का जो समयोचित कार्य किया, वह पंजाब के इतिहास में स्मरणीय रहेगा।''

असहयोग आन्दोलन में महात्मा गांधी को तार—1920 में महात्मा गांधी असहयोग आन्दोलन का नारा बुलन्द करने में जुटे हुए थे। वह भारतीयों को उत्साहित कर रहे थे कि वे विदेशी सरकार का बहिष्कार करें। गांधी जी को सहयोग देने के लिए आर्य जगत् के इस वीर सेनानी ने महात्मा गांधी को एक तार लिखा जिसमें लिखा था—''मैंने अभी सत्याग्रह के प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये हैं। इस धर्म-युद्ध में सम्मिलित होने से मैं बहुत प्रसन्न हूँ।'' यह विवरण 'भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास', पृ. 204 पर अंकित है।

स्वामी श्रद्धानन्द के हृदय में स्वदेश के लिए असहयोग आन्दोलनरूपी यज्ञ के प्रति सर्वस्व आहुति का पवित्र भाव उभरा। तभी तो उन्होंने उस आन्दोलन को नाम दिया 'स्वदेश का धर्मयुद्ध'। सही माने में धर्म कर्त्तव्य का बोधक है, तो वह आन्दोलन स्वामी श्रद्धानन्द के लिए एक 'सच्चा कर्त्तव्य युद्ध' था। उन्होंने उसमें सच्चे हृदय से सहयोग देने हेतु महात्मा गांधी के सत्याग्रह के प्रतिज्ञा पत्र पर सहर्ष हस्ताक्षर कर दिया। इस आन्दोलन में स्वामी श्रद्धानन्द के कूदने से समस्त आर्यजगत् में एक बिजली सी लहर दौड़ गई। जो आर्यसमाजी इस आन्दोलन से जुड़ने में अब तक कतरा रहे थे अब उनमें भी साहस आ गया था, वे भी इस राजनैतिक आन्दोलन के सहभागी बन गए। अगर हम यह कह सकते हैं कि तब आर्यसमाजी इतने उत्साहित हुए कि वे सबसे अगले मोर्चे पर जाकर इस राजनीति में खड़े हो गए। 'आर्यसमाज का इतिहास', भाग-2, पृ.110 से पता चलता है कि देश के उत्तर भाग के आर्यसमाजी युद्ध की सबसे अगली पंक्ति में शामिल होकर लड़ते रहे। उस समय जितनी महिलाएँ भी उस आन्दोलन में भाग लेने उतरीं उनमें अधिकतर महिलाएं आर्यसमाजी थीं। निश्चित ही यह स्वामी श्रद्धानन्द की प्रेरणा से हो रहा था जिसका स्रोत महर्षि दयानन्द की वैदिक राष्ट्रीय शिक्षा उनका राष्ट्रीय एवं प्रेम था।

रौलट एक्ट का विरोध—21 मार्च 1919 को रौलट ऐक्ट पास हुआ। परन्तु भारतीय नेताओं द्वारा इसके विरोध की आवाज उठने लगी। सर्वप्रथम पंजाब के आर्यसमाजी नेताओं ने इसके विरोध में आवाज बुलन्द की। इस एक्ट के विरोध में 30 मार्च को दुकानें बन्द रखने तथा कारखानों में हड़ताल रखने का निर्णय लिया गया। लगभग 80% आर्यसमाजी वकीलों ने सरकारी अदालतों का विरोध किया। किन्हीं कारणों से 30 मार्च का हड़ताल को स्थगित कर दिया गया, उसकी जगह 6 अप्रैल का दिन निश्चित कर दिया गया। परन्तु इसकी सही सूचना न मिलने से दिल्ली में 30 मार्च को ही विशाल जुलूस निकला जिसका मार्गदर्शन तथा अगुवाई आर्यनेता स्वामी श्रद्धानन्द कर रहे थे। चाँदनी चौक से गुजरते समय जुलूस को अंग्रेजी शासन द्वारा रोका गया, इतना ही नहीं अंग्रेज ऑफिसर ने गोली भी चला दी। इससे जनता थोड़ा डर गई, पर आर्य वीर स्वामी श्रद्धानन्द ने आगे बढ़कर अंग्रेजी ऑफिसर के सामने अपनी छाती के बटन खोल दिये और जोर से बोले—"तुमने गोली क्यों चलायी?" अंग्रेज ऑफिसर डर गया तब स्वामी श्रद्धानन्द ने उसे ललकारते हुए कहा कि हिम्मत है, तो मेरे सीने पर पहले गोली चलाओ।

इस वीर पुरुष के इस साहस को देखकर फिर से सब जनता आगे बढ़ी। कांग्रेस नेता डॉ. पट्टाभिसीतारमैया द्वारा लिखित 'कांग्रेस का इतिहास' नामक पुस्तक में लिखे इन शब्दों को पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है—

"वहाँ 30 मार्च को ही जुलूस निकला और हड़ताल हुई। उस दिन के जुलूस का नेतृत्व स्वामी श्रद्धानन्द जी कर रहे थे। उन्हें कुछ गोरे सिपाहियों ने गोली मारने की धमकी दी। इस पर उन्होंने अपनी छाती खोल दी और कहा—"लो मारो गोली।" बस गोरे की धमकी हवा में उड़ गई। इस जुलूस के परिणाम से हिन्दू तथा मुसलमान वर्ग में दूध पानी का सा मिलाप हो गया।"

जामा मस्जिद में स्वामी जी का व्याख्यान–फलत: स्वामी श्रद्धानन्द को जामा मस्जिद में राष्ट्रीय एकता के लिए आयोजित विशाल जनसभा में व्याख्यान के लिए आमन्त्रित किया गया।

जामा मस्जिद की उस सर्वोच्च वेदी पर मि. जिन्ना जैसे कट्टर

मुस्लिम लीगी व्यक्ति को भी कभी चढ़ने का अवसर नहीं मिला, न ही महात्मा गांधी को परन्तु आर्य नेता दोनों पक्ष के लोकप्रिय संन्यासी स्वामी श्रद्धानन्द को वह सुअवसर मिला। वहाँ उन्होंने यजुर्वेद (30.3) **'ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव, यद्भद्रं तन्न आसुव।' एवं त्वंहि नः पिता वसो"** मंत्रों का उच्चारण किया। ''हिन्दू-मुस्लिम मिलकर भाईचारे की भावना से स्वदेश के लिए काम करें।'' उनके इस महत्त्वपूर्ण व्याख्यान से हिन्दू-मुस्लिम में एकता के मजबूत भाव से अंग्रेज तो सहम गये पर गांधी जी ने असहयोग आन्दोलन से अलग हो कर स्वामी श्रद्धानन्द को कमजोर कर दिया। स्वामी जी के लाख समझाने पर भी गांधी टस-से-मस न हुए और विशुद्ध राष्ट्रीय असहयोग आन्दोलन पर प्रश्न खड़े कर दिये। यहीं से महात्मा गांधी स्वामी श्रद्धानन्द के विरोधी बन गए। अंग्रेजों ने भी कूटनीति से हिन्दू-मुस्लिम के मेल को तोड़ने का काम शुरू कर दिया।

1924 में ईद के अवसर पर दिल्ली के पहाड़ी धीरज क्षेत्र में हिन्दू-आबादी अधिक थी। ईद पर गायों को निकालने की छूट न थी, पर अंग्रेजों ने एक कूटनीति के तहत गायों को निकालने की छूट दे दी। इससे हिन्दू-मुस्लिम दंगा हो गया। दंगा स्थल पर पुलिस देखती रही और बीच-बचाव कुछ नहीं किया। उलटा दोनों पक्षों के कुछ लोगों को गिरफ्तार कर लिया गया। जेल से लौटने के बाद महात्मा गांधी बम्बई के जुहू में विश्राम कर रहे थे, वहीं कुछ कट्टर साम्प्रदायिक मुस्लिम नेता जिसमें अली बन्धु भी विशेष रूप से सम्मिलित थे, गांधी जी से मिले और आर्यसामाजियों की भरपूर निन्दा की और उनके कान भर दिये कि दंगे का मूल कारण आर्यसमाजी ही हैं।

28 मई 1924 को गांधी जी ने बिना सोचे-समझे एक पक्षीय विचारों के आधार पर 'यंग इंडिया' में एक लेख लिख मारा जिसमें आर्यसमाज, महर्षि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द और सत्यार्थप्रकाश पर निराधार एवं तीखी आलोचना की। इसे कोई भी बुद्धिजीवी उचित नहीं कह सकता था। कुछ दिनों के बाद में गांधी जी को इसके लिए पछतावा भी हुआ। यत्र-तत्र माफी भी माँगी पर वह दोष मिट न सका। छूटा हुआ तीर वापस नहीं आता, कहीं न कहीं घाव करता ही है। इन्द्र विद्यावाचस्पति जो पक्के

गांधीवादी थे, उन्होंने भी 'आर्यसमाज का इतिहास' पृ. 368 पर लिखा—

''इस कारण महात्मा जी ने पीछे से कई लेखों और नोटों द्वारा उसका (अपने दोषों का) मार्जन करने की चेष्टा की। परन्तु उस लेख से बोये हुए सब काँटे सिमट न सके। उस लेख के दूरवर्त्ती परिणामों में हम स्वामी श्रद्धानन्द और महाशय राजपाल की हत्याओं की गिनती कर सकते हैं।''

शुद्धि आन्दोलन और गाय के निकलने से हुए दंगों के कारण हिन्दू नेताओं ने मुस्लमानों पर कुछ मुकदमे कर दिये थे ताकि उन्हें न्याय मिले। जिससे अपने विचार एवं शुद्धि-आन्दोलन को जारी रखा जाए। इसमें भी गांधी जी ने दिल्ली में अनशन शुरू कर दिया और उन्होंने मुसलमानों का एक तरफा पक्ष लेते हुए कहा कि हिन्दू मुस्लमानों पर से मुकदमे हटा लें। तब राष्ट्रीय नेताओं ने 'एकता-सम्मेलन' का आयोजन किया। इसमें स्वामी श्रद्धानन्द तथा लाला लाजपतराय आर्यसमाज की ओर से पहुँचे। सम्मेलन में स्वामी जी ने जोरदार शब्दों में अपना पक्ष इस तरह मजबूत किया—

''अपने सिद्धान्तों के प्रचार एवं मत परिवर्त्तन का प्रत्येक को अधिकार है।'' इसके साथ ही यह भी बोला—''यदि मुसलमान मौलवी तबलीग का काम बन्द कर देंगे, तो आर्यसमाज भी परिस्थितियों को देखते हुए उतने समय के लिए शुद्धि का कार्य बन्द कर देगा।''

इस पर मुस्लिम नेताओं ने कोई आश्वासन नहीं दिया। कागजी प्रस्तावों पर लीपापोती कर सम्मेलन समाप्त हो गया। परन्तु मुसलमानों ने आर्यसमाज को ही दंगों का कारण समझकर आपसी फूट की दीवार पैदा कर ली। अंग्रेज भी तो यही चाहते थे।

असगरी बेगम की शुद्धि व स्वामी जी की मृत्यु—इस बीच एक और घटना घटी—कराची की एक मुस्लिम महिला 'असगरी बेगम' की स्वेच्छा से निवेदन करने पर स्वामी जी ने उसे शुद्ध कर उसका नाम शांति देवी रख दिया। कूटनीतिज्ञ अंग्रेजी शासकों ने जानबूझकर इस घटना को मजहबी रंग देते हुए मुसलमान नेताओं को भड़का दिया। महात्मा गांधी ने भी मुसलमानों का ही साथ दिया। उसका नतीजा यह

हुआ कि तबलीगी जमाती मुसलमान युवक अब्दुल रशीद ने खाँसी-ज्वरादि रोग से पीड़ित विश्राम करते हुए स्वामी श्रद्धानन्द का समाचार पूछने के बहाने से उन पर तीन गोलियाँ दाग दीं। इससे वीर सेनानी आर्य नेता भारत की बलि वेदी पर 23 दिसम्बर सन् 1926 को अपना बलिदान देकर सदा के लिए अमर हो गए। भारत की राजधानी दिल्ली में जब उनकी शवयात्रा निकाली गई तो बड़े-बड़े नेता देखते ही रह गए। स्वामी श्रद्धानन्द की अन्तिम विदाई का दृश्य देखकर नेता क्या, जनता क्या सभी यह मान रहे थे कि ऐसी विदाई तो मानो सम्राटों को भी नसीब नहीं। स्वामी जी की ऐसी विदाई का किसी को अनुमान नहीं था कि शवयात्रा में इतने लोग सम्मिलित होकर अपने प्रिय राष्ट्र भक्त आर्य नेता को श्रद्धांजलि देंगे। उस अरथी के साथ लगभग **ढाई लाख लोग** चल रहे थे। इसी से उनकी राष्ट्रीय लोकप्रियता को समझा जा सकता है।

मृत्यु-रहस्य—इन्द्र विद्यावाचस्पति (सुपुत्र स्वामी श्रद्धानन्द) द्वारा लिखित 'आर्यसमाज का इतिहास' भाग-2 पृ.155 के अनुसार स्वामी जी की मृत्यु का षड्यन्त्र निश्चित ही मुस्लिम तबलीगी जमातियों की धर्मान्धता, कुछ अंग्रेजों से मिले लोगों की स्वार्थपरायणता व अंग्रेजों की आर्य नेता स्वामी श्रद्धानन्द के प्रति बेरुखी सब साथ-साथ क्रियाशील थीं। 1857 के गदर में आर्यसमाजियों की स्वदेशी भावनाओं व कार्यों को देखकर अंग्रेजों के कान खड़े थे। वे कभी नहीं चाहते थे कि यह आर्य नेता स्वामी श्रद्धानन्द हिन्दू-मुस्लमान एकता का एक छत्र नेता बने क्योंकि महर्षि दयानन्द के अनुयायियों से अंग्रेज हमेशा डरते थे। अत: हिन्दू और मुसलमानों के बीच सदैव फूट डालने के नये-नये रास्ते खोजते रहते थे। मुसलमानों के पक्ष में आकर महात्मा गांधी भी इनके विरोधी तो बन ही गए थे। स्वामी जी के हत्यारे अब्दुल रशीद को बचाने के प्रयास में मुस्लिम नेता तो थे ही, कोर्ट में महात्मा गांधी ने भी अब्दुल रशीद के मुकदमे को हल्का करने के प्रयास में उस हत्यारे को 'भाई' शब्द कह कर सिफारिश की थी।''

इतिहासकार के विचारों को पढ़ें—''यह एक खुला रहस्य है कि अब्दुल रशीद को बचाने का प्रयास करने वालों में मौ. शौकत अली, मौ. मोहम्मद अली और देहली के मौ. अब्दुल्ला चूड़ी वाले थे। उन्हीं दिनों

अब्दुल रशीद के मकान के पास की गली में पड़ा हुआ कागजों का एक बण्डल मिला था। जो सम्भवत: तलाशी का खतरा होने पर अब्दुल रशीद के सम्बन्धियों ने खिड़की से बाहर फैंक दिया था। उस बण्डल में बड़े-बड़े प्रसिद्ध मुसलमान मौलवियों के इस आशय के खत भी थे कि स्वामी श्रद्धानन्द काफिर है और मुसलमानों को मुरतिद (हिन्दू बनाना) बनाता है। इसलिए इसे मारना मुसलमानों का फर्ज है।

वह बण्डल एक सी.आई.डी. के आदमी ने श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति और लाला देश बन्धु गुप्त को दे दिया। उन दोनों ने वह बण्डल लाला लाजपत राय को दे दिया। लाला जी ने उसे स्वयं उस समय के होम मेम्बर मि. बिन्सैंट स्मिथ के पास पहुँचा दिया। बिन्सैंट स्मिथ ने यह कहकर ले लिया कि हम इसकी तहकीकात कराएँगे। बस वहाँ जाकर खतों का वह बण्डल ऐसा गुम हुआ कि फिर न निकला।''

एक जिम्मेदार सरकार के पदाधिकारी द्वारा वह बण्डल दबाया जाना निश्चित ही एक रहस्यपूर्ण दस्तावेज को छिपाकर षड्यन्त्र को हवा देना हुआ। उधर महात्मा गांधी भी तो यही समझने लगे थे कि स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा चलाया हुआ शुद्धि-आन्दोलन उचित नहीं है। इससे हिन्दू और मुसलमानों में वैमनस्य का बीज बोया जा रहा है, जो स्वाधीनता की प्राप्ति में बाधक है। वह ऐसा ही प्रचार भी करने लगे, जिससे मुसलमान स्वामी श्रद्धानन्द के खिलाफ एकजुट होने लगे। गांधी जी ने शुद्धि आन्दोलन को साम्प्रदायिक बता दिया और हत्यारे अब्दुल रशीद को फाँसी से बचाने का उन्होंने प्रयास भी किया। पाठकवृन्द इससे समझ सकते हैं कि गांधी जी की स्वामी श्रद्धानन्द के प्रति क्या भावना थी। स्वामी श्रद्धानन्द साम्प्रदायिक बिलकुल नहीं थे। वे स्वदेशी भावनाओं के अनुसार हिन्दू आर्य धर्म के हितैषी थे और मुसलमानों के भी दुश्मन नहीं थे। स्वेच्छा से कोई हिन्दू बनना चाहता था तो उसे ही कानून के अनुसार शुद्धि कर वापस लाते थे। इसका प्रमाण देखें—

1. सन् 1926 के अन्त में कांग्रेस का अधिवेशन गोहाटी में होना था। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अपनी मृत्यु से एक दिन पूर्व अपनी शुभकामनाएँ गोहाटी तार द्वारा भेज दी थीं।

तार में लिखा था—''इन हिन्दू-मुस्लिम यूनिटि एलोन लाइज

इण्डिया'ज् साल्युशन।''**(In Hindu-Muslim-unity alone lies India's solution)**

अर्थात् भारत के स्वाधीन होने की आशा केवल हिन्दू-मुस्लिम एकता पर ही निर्भर है।

भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम का इतिहास पृ.250
लेखक—पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति

उपरोक्त प्रमाण से स्पष्ट होता है कि स्वामी श्रद्धानन्द ने कभी मुसलमानों का बुरा नहीं सोचा। उन्होंने हमेशा चाहा कि दोनों को स्वेच्छा से जीने का अधिकार मिले। आपस में प्रेम हो और दोनों समानरूप से स्वदेश के लिए अपना भाव रखें और मिलकर अपने देश के लिए लड़ें। पर उधर कांग्रेसी छुट भैयों के साथ महात्मा गांधी अलग गोटी खेलते रहे। मुसलमानों के पक्ष में अधिक बोलने के कारण हिन्दुओं का नुकसान होता रहा और इस कारण हिन्दू-मुस्लिम एक न हो सके। गांधी मुस्लिम के मेल की नदी बहाते रहे पर हिन्दुओं के नुकसान की उपेक्षा की।

कुआँ ही क्यों न खुद जाए; बस ऐसे ही कार्य कर जनसमुदाय के साथ तथा भावी भारत के साथ भी अन्याय ही करते रहे। यही कारण है कि जामा मस्जिद से गांधी बोलने के लिए तरसते ही रहे, पर दोनों पक्षों के प्रति समान भाव रखने वाले आर्य सेनानी वीर पुरुष स्वामी श्रद्धानन्द को यह सौभाग्य मिला था। मुझे यह लिखते हुए दुःख हो रहा है कि गांधी जी के इस तरह के अपरिपक्व विचार से कांग्रेस नीति जो आगे बढ़ी, उससे आज तक भी हिन्दू-मुस्लिम की खाई को भरा नहीं जा सका।

2. सन् 1923 ई. में जब कोकनाडा में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ तो एक अली बन्धु ने कहा—''हिन्दू तथा मुसलमान हरिजनों को आधा-आधा क्यों न बाँट लें?'' यह सुनकर स्वामी श्रद्धानन्द ने गरजते हुए कहा—''**ये कोई भेड़ बकरियाँ नहीं हैं जो इन्हें आधा-आधा बाँटने पर तुले हो।**''

स्वामी श्रद्धानन्द का हर वर्ग के प्रति अगाढ़ प्रेम था और वह सबको समान अधिकार और प्यार मिले; इसके पक्षधर थे। अगर अलीबन्धु का वह प्रस्ताव पास हो जाता तो आप कल्पना करें कि आज भारत में हरिजन वर्ग का क्या हाल होता? उन्हीं दिनों कांग्रेस के अध्यक्ष मौलाना मोहम्मद

अली का एक भाषण अखबारों में छपा, उसमें कहा गया था—"**मैं एक फाजिर (व्याभिचारी) और फासिद (दुश्चरित्र) मुसलमान को भी महात्मा गांधी से अच्छा मानता हूँ।**" इस समाचार से पंजाब के हिन्दुओं में बौखलाहट बढ़ना स्वाभाविक था। महात्मा गांधी हिन्दू थे इस कारण उनका भड़कना स्वाभाविक था पर इस विषय को सभा के बहस में लाया गया तो अन्ततः मौलाना यद्यपि अड़ा रहा कि मैंने ठीक कहा है पर उहापोह करते-कराते गांधी जी ने इसे प्रस्तावित नहीं होने दिया। ऐसा कहकर टाल दिया कि यह गाली तो मेरे लिये है और मैं इसे नहीं लगाता। एक पुस्तक ' मेरी कौन सुनेगा' लेखक महावीर त्यागी पृ.17-20 को पढ़ने से पता चलता है कि इस विषय को गांधी सामना न कर सके। लेखक और गांधी जी की बार्ता समझें— ' गांधी जी—तुम्हें (श्री महावीर त्यागी जो उस समय ऑल इण्डिया कांग्रेस कमिटी के सदस्य थे और तब पं. जवाहर लाल नेहरू उसके सेक्रेटरी थे) इस प्रस्ताव के पास हो जाने की आशा है, कितने वोट मिलेंगे ?

तब मैंने (महावीर त्यागी) कहा—"दो वोट तो पक्के हैं।" पास हो या न हो, कम से कम यह तो रेकार्ड पर आ जावेगा कि कांग्रेस के अध्यक्ष (मौ. मोहम्म्द अली) की तकरीर पर कुछ लोगों को आपत्ति थी। तब महात्मा जी बोले—"ऐसी बात को लाने से कांग्रेस का रेकार्ड अच्छा होने के बजाय और काला बनेगा, हिन्दू-मुसलमान को साथ रखना है, तो दूसरे के खोट को निभाना पड़ेगा। तुम जानते हो मित्रता किसे कहते हैं ? मैंने (त्यागी जी) कहा एक-दूसरे को प्यार करने को मित्रता कहते हैं। बापू ने कहा—नहीं, यह तो बदमाशी है। मित्रता का अर्थ तो एक दूसरे के खोट को निभाना है, जो ऐसा नहीं करता, वह मित्र नहीं अतः यह प्रस्ताव ठीक नहीं। इस तरह उस प्रस्ताव को आगे नहीं आने दिया और यह समझाया गया कि इस प्रस्ताव के आने से हिन्दू-मुस्लिम में दंगा बढ़ जाएगा।

इस प्रस्ताव को रखने के लिए श्री नरदेव शास्त्री भी सहमत थे। लेखक होने के साथ-साथ श्री नरदेव शास्त्री आर्य विचारधारा के व्यक्ति थे। वे समझते थे कि अध्यक्ष मौ. मोहम्म्द का महात्मा गांधी पर ऐसा घिनौना आरोप लगाना उचित नहीं है, यह हिन्दुओं को नीचा दिखाना सा है। हो सकता है मौलाना का ध्येय भी ऐसा कहकर हिन्दुओं को भड़काना ही रहा

हो, पर गांधी जी में अपने ऊपर लगे आरोप का सामना करने की हिम्मत नहीं जुटा। वह प्रस्ताव का खुलकर सामना करते और उसका मुँहतोड़ जबाब देते, तो हिन्दुओं का सीना चौड़ा होता और मुसलमानों में भी सही संदेश जाता कि गांधी सही हैं। गांधी जी द्वारा उस प्रस्ताव को आगे न लाने से संदेहजनक प्रश्न खड़ा होता है और गांधी जी की आत्मिक कमजोरी ही प्रकट होती है। गांधी जी तो हिन्दुओं की ओर से श्रेष्ठ नेता जाने जाते थे, पर मुसलमानों को खुश रखने के लिए वह उनके खोट/गाली को भी सहन करते थे, जो हिन्दुओं की शान को कम करता रहता था। यहाँ अगर स्वामी श्रद्धानन्द या लाला लाजपत राय या कोई अन्य महर्षि दयानन्द का दीवाना होता, तो कांग्रेस अध्यक्ष मौ. मोहम्म्द अली द्वारा लगाए गए ऐसे घिनौने आरोप का डटकर सामना करता और अपने उत्तम चरित्र को सिद्धकर हिन्दू-मुसलमान सबके बीच अपने को सुरक्षित रखता। इतने कमजोर थे महात्मा गांधी, जो नेहरू और मुस्लिम की दासता से कभी बाहर निकल ही नहीं सके। शायद इसी दासता ने उन्हें बापू/राष्ट्रपिता की टोपी पहनाई हो। बेशक कोई उन्हें राष्ट्रपिता कहे, पर राष्ट्रप्रेम, स्वदेशगरिमा, स्ववस्तुप्रयोग, स्वभाषाभिमान तथा स्वसंस्कृति की अमर चेतना भरकर भारतीयों में अंग्रेजों से लड़ने व आजादी का बिगुल बजाकर उस पर आगे बढ़ने की प्रेरणा सर्वप्रथम 1855 से ही महर्षि दयानन्द ने देनी शुरू कर दी थी। उन्हीं की दी गई प्रेरणा से 1947 में आजादी प्राप्त की गई। इसलिए सही माने में तो महर्षि **दयानन्द 'राष्ट्रपितामह'** थे जिनकी राह पर लाला लाजपत राय, स्वामी श्रद्धानन्द, भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद, रामप्रसाद बिस्मिल, भाई परमानन्द आदि तमाम आर्य नेता चले और इस लड़ाई में अपनी लगभग 80% सहभागिता दर्ज करायी।

गांधी जी तो हिन्दुओं को सत्य और अहिंसा के उपदेशों से ही संतुष्ट रखने में व्यस्त रहे। चाहे हिन्दू जगत् का कितना भी नुकसान क्यों न हो उन्हें इसकी चिन्ता नहीं हुई। उन्होंने मुसलमानों को सत्य और अहिंसा का सबक नहीं सिखाया होता तो स्वामी श्रद्धानन्द का बलिदान न होता और न ही हिन्दू-मुस्लिम दंगे। और सबसे बड़ी बात देश का बँटवारा भी नहीं होता और न ही वह खुद गोलियों का शिकार बनते। धर्मान्ध मुसलमानों का तुष्टिकरण और हिन्दू भाइयों को सत्य तथा

अहिंसा का उपदेश देते रहे और अपने सिर पर राष्ट्रपिता की टोपी वह अपनी शान समझते रहे। देखा जाए, तो उस समय कांग्रेस में हिन्दुओं को न्याय दिलाने के लिए सदैव तत्पर जो रहते थे वे थे भारत के प्रथम राष्ट्रपति महामहिम डॉ. राजेन्द्र प्रसाद। इसी गुण ने उन्हें प्रथम राष्ट्रपति बनाया।

सत्य देश-भक्ति—सरदार पटेल के बड़े भाई विठ्ठल भाई की मृत्यु भी लन्दन में हुई। उनसे अंतिम क्षण में अंतिम इच्छा पूछी गई, तो उनका उत्तर मिला कि मेरा शव मेरी प्यारी मातृभूमि भारत में ले जाकर अगर न जलाई जा सके, तो कम-से-कम मेरी राख यहाँ से ले जाकर भारत की गंगा-यमुना में प्रवाहित कर देना जिससे मैं अपनी जन्मभूमि में मिलकर सुख-शान्ति प्राप्त कर सकूँ।

इसी तरह की भावना श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा की भी थी जो अपने देश की गरिमा बनाए रखने में महान थी। हम उनकी देशभक्ति पर आगे विस्तार से प्रकाश डालेंगे।

देश की शिक्षा एवं सत्य संस्कृति के विकास के लिए स्वामी श्रद्धानन्द ने हरिद्वार में गंगा तट पर गुरुकुल की स्थापना की थी। प्राय: वहाँ बाढ़ आती रहती थी। इस कारण इसे स्थानन्तरित कर दिया गया। आज वह विकसित वटवृक्ष की भाँति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के रूप में स्थित है। जो विश्व के लोगों को वैदिक आर्य एवं भारत की मूल संस्कृति की रक्षा करता हुआ वेद तथा विज्ञान की शिक्षा का केन्द्र है। यह संस्था निश्चित रूप से स्वामी श्रद्धानन्द की देश को अपूर्व देन है। जो आज भी निरन्तर उन्नति के पथ पर अग्रसर है। इसकी विस्तृत जानकारी आगे आपको मिलेगी।

इनके साथ ही देवता स्वरूप भाई परमानन्द जिनका सम्पर्क इंग्लैंड में भारतीय क्रान्तिकारी नेता श्यामजी कृष्ण वर्मा से भी हुआ और जिन्हें उत्साह तथा प्रेरणा मिली, पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति, पंजाब के आर्य नेता महाशय कृष्ण, महाशय वीरेन्द्र, महाशय रत्नचन्द, सरदार भगतसिंह उनके दादा सरदार अर्जुन सिंह, लाला लाजपत राय आदि के स्वदेशीय स्वाधीनता की लड़ाई में योजनाओं के सहगामी थे। इस तरह इन सब क्रान्तिकारियों के साथ-साथ सारा आर्यजगत् पूर्णरूप से सक्रिय था। तभी

तो इतिहासकार के अनुसार 70-80% आर्य नेताओं तथा आर्यसमाजी लोगों ने समय-समय पर जेल की यातनाएँ सही। इस तरह वे कहीं से भी कमजोर न पड़े।

'आर्यसमाज का इतिहास' भाग-2 के पृ. 111 में प्रकाशित निम्नलिखित उद्धरण को देखें—

इतिहास के इन ज्वलन्त प्रमाणों की उपस्थिति में जो यद्यपि स्थालीपुलाक न्याय (पतीले में पक रहे चावलों में से दो-तीन चावलों को चखकर पता चलता है कि चावल पक गए हैं या नहीं) से लिखे गए हैं अपनी ओर से और अधिक कुछ कहना पुस्तक का कलेवर बढ़ाना मात्र होगा। जब देश की स्वाधीनता के लिए ये आर्यवीर ब्रिटिश सरकार की नारकीय जेलों में दु:ख झेल रहे थे, तब अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी ने ऐसे मामलों की जाँच के लिए पं. मोतीलाल नेहरू को नियुक्त किया। देश की सारी जेलों के निरीक्षण के पश्चात् उन्होंने कमिटी के सामने अपनी जो रिपोर्ट उपस्थित की थी, उसमें आर्यसमाज के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा था। जिसका आशय यह था कि आज महात्मा गांधी के आदेशानुसार स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए जेल के शिकंजों में बन्द बैठे जो सत्याग्रही कष्ट सह रहे हैं, उनमें लगभग 70% आर्यसमाज की विचारधारा रखने वाले हैं। साथ ही जिन वकीलों ने अदालतों का बहिष्कार किया है, उनमें भी सबसे अधिक संख्या आर्यसमाजियों की थी।

पाठकवर्ग! आपसी विचार भेद होने पर भी आर्यसमाजी आजादी के आन्दोलन, त्याग व बलिदान में किसी से पीछे न रहा। कांग्रेस तथा गांधी जी से मतभेद होने तथा ईमानदार आर्यसमाजियों की घोर उपेक्षा होने पर भी आर्यसमाजियों ने न केवल आरम्भिक वर्षों में, अपितु स्वतंत्रता प्राप्त होने तक इसमें महत्त्वपूर्ण भाग लिया। परन्तु दु:ख की बात यह है कि स्वतंत्रता मिलने के पश्चात् अपनी सरकार के होते हुए भी जब लेखकों की लेखनियाँ भारतीय स्वाधीनता संग्राम का उल्लेख करती हैं, तब आर्यसमाज के प्रशंसनीय तथा साहसिक तप, त्याग एवं बलिदानों की चर्चा तक नहीं होती। यह सरासर आर्यसमाज की अनदेखी है। अब तो वर्त्तमान सरकार जागे और स्वतंत्रता संग्राम में आर्यसमाजी बलिदानियों के योगदान को समझे। इसका प्रमाण श्री पट्टाभि सीतारमैय्या द्वारा लिखित

'कांग्रेस का इतिहास' नामक पुस्तक में भी उपलब्ध है। श्री सीतारमैय्या उस समय कांग्रेस के उच्च पद पर थे और कर्मठ कार्यकर्ता के रूप में जाने जाते थे। अपनी आँखों से आर्यसमाजी नेताओं तथा आर्य जनता को देश को स्वतन्त्र करने में बढ़-चढ़कर भाग लेते हुए देखा था। उनके अनुसार लगभग 80% आर्य जनता भारतीय स्वाधीनता संग्राम में डटी थी। उसी कड़ी में आगे श्यामजी कृष्ण वर्मा भी आते हैं जिनका उल्लेख आगे किया जा रहा है।

चतुर्थ अध्याय

श्यामजी कृष्ण वर्मा-विदेशों में क्रांतिकारी संगठन के अग्रदूत व उनके प्रेरित क्रांतिकारी आर्यवीर

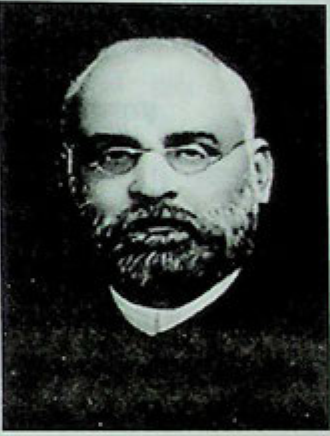

श्यामजी कृष्ण वर्मा

आर्यसमाज में एक ऐसी भी स्थिति आई कि आर्यसमाज के पदाधिकारीगण राजनीति से अलग हटने की कोशिश करने लगे। उनके अन्दर यह विचार आने लगा कि आर्यसमाज एक धार्मिक संस्था है। भारतीय राजनीति में दो तरह के लोग—'नरम दल और गरम दल' के नाम से प्रसिद्ध हो रहे थे। नरम दल वाले अधिक गांधीवादी थे और गरम दल वाले सशस्त्र क्रांतिकारिता में विश्वास रखते थे लेकिन अकारण खून-खराबा करने की बात सोचते तक नहीं थे। 1857 ई. की क्रांति में झाँसी की रानी, बाबू कुँवर सिंह आदि और आगे चलकर लाला लाजपत राय, सरदार अजीत सिंह (दादा-भगतसिंह) आदि गरम दल के क्रांतिकारी नेता माने गए। सरदार भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद, रामप्रसाद बिस्मिल आदि को इसी दल का योद्धा माना जाता है। इसी क्रम में सशस्त्र क्रांतिकारी जो विदेशों में भी जाकर अंग्रेजी शासन के विरुद्ध जोरदार आवाज उठाते रहे उनमें सर्वप्रथम नाम आता है श्यामजी कृष्ण वर्मा का। उन्होंने स्वदेश प्रेम का पाठ स्वामी दयानन्द सरस्वती से पढ़ा था। इसी क्रम में भाई परमानन्द, वीर सावरकर, मदनलाल ढींगरा आदि भी आते हैं।

इस अध्याय में हम उन्हीं भारतीय आर्यवीरों की चर्चा करेंगे जो सशस्त्र क्रांतिकारिता के पक्षधर रहे और निडर होकर लड़े, भले ही कुछ लोगों द्वारा आतंकवादी, मनचले या आजादी में बाधक जैसे व्यंग्यात्मक शब्दों के शिकार भी हुए हों, तथापि महर्षि दयानन्द की राष्ट्रीय चेतना एवं उनके आशीर्वाद से प्रभावित ये वीर कभी भी अपने उद्देश्य से नहीं भटके और विदेशी शासन के विरुद्ध लड़े, नानाविध यातनाएँ सहीं। फिर भी वे घबराए नहीं। जंगलों में छिप कर रहना, परिवार से अलग रहकर अंग्रेजी शासन के विरुद्ध योजनाएँ बनाना, जेल जाना, काला पानी आदि की सजा पाना भी उन्हें क्रान्ति के रास्ते से नहीं हटा सका। सच मानिये, इन्हीं क्रांतिकारियों के कारण अंग्रेजों को भारत छोड़ना पड़ा। अब हम स्वनाम धन्य श्यामजी कृष्ण वर्मा पर कुछ प्रकाश डालते हैं।

श्यामजी कृष्ण वर्मा का प्रारम्भिक जीवन

4 अक्तूबर, 1857 ई. में कच्छ (गुजरात) के माण्डवी गाँव में श्री करसनजी भणशाली नामक एक साधारण वैश्य परिवार में आपका जन्म हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती गोमती बाई था। जब श्यामजी 11 वर्ष के थे, तभी उनकी माता जी का देहान्त हो गया। उनकी दादी ने उनके पालन-पोषण की जिम्मेदारी उठायी। वह बचपन से ही मेधावी थे।

प्रारम्भिक शिक्षा—पहले कच्छ की राजधानी भुज में पढ़ाई की। फिर हाई स्कूल के लिए पिता के पास बम्बई में जाकर विल्सन हाई स्कूल में पढ़े। साथ-साथ पं. विश्वनाथ शास्त्री की पाठशाला में संस्कृत की पढ़ाई भी जारी रखी। उन्होंने रुचि एवं परिश्रम से संस्कृत-व्याकरण तथा साहित्य में प्रवीणता प्राप्त कर ली। 1875 ई. में उनका विवाह बम्बई के एक धनाढ्य सेठ छबीलदास लल्लूभाई की सुपुत्री भानुमती से हो गया। सेठ जी ने उनकी योग्यता प्रतिभा-कर्मठता-सच्चरित्रता आदि को देखकर ही अपनी सुपुत्री का विवाह उनसे कर दिया।

महर्षि दयानन्द से भेंट-यह वर्ष उनके लिए अत्यन्त प्रेरणास्रोत रहा। इसी वर्ष उनकी भेंट आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द से बम्बई में हुई। उनकी संस्कृत में रुचि जानकर और उनकी प्रतिभा से

प्रभावित होकर महर्षि दयानन्द ने भी उन्हें व्याकरण (अष्टाध्यायी) आदि पढ़ाया और इस दिशा में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित भी किया। चैत्र शुदा प्रतिपदा संवत् 1932 (7 अप्रैल, सन् 1875 बुधवार) (चैत्र शुक्ला) को जब आर्यसमाज की स्थापना हुई, तो उनके अटूट विश्वास तथा वैदिक धर्म के प्रति उनकी रुचि देखकर उनको महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज का सदस्य भी बना दिया था। वह प्रथम आर्यसमाज के प्रथम दर्जे के सदस्यों में से एक थे।

प्रो. मोनियर विलियम से भेंट-सौभाग्य से बम्बई में ही ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के प्रो. मोनियर विलियम से 1876 ई. में उनकी मुलाकात हुई। उन प्रोफेसर से ही श्यामजी कृष्ण वर्मा को ऑक्सफोर्ड आने की प्रेरणा मिली। वे 25 अप्रैल 1879 में ऑक्सफोर्ड गए और प्रो. मोनियर विलियम के साथ संस्कृत के सहायक प्रोफेसर बनकर बैलियल कॉलेज ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत पढ़ाने लगे। वहाँ उन्होंने कानून की शिक्षा भी ग्रहण की, यह सब कार्य उन जैसे मेधावी छात्र के लिए ही पूरा करना सम्भव था। इनर टेम्पल में लॉ/बैरिस्टर की शिक्षा प्राप्त की। तब तक नि:संदेह वह संस्कृत भाषा के विद्वान् एवं प्रसिद्ध वक्ता बन चुके थे। फलत: वह जगह-जगह संस्कृत में भाषण के लिए आमन्त्रित होने लगे। इस कारण विदेशों में उनकी प्रतिष्ठा बढ़ती गई। 1881 ई. में ब्रेलिन में आयोजित प्राच्यविद्याओं के महासम्मेलन में भाग लेने के लिए निमन्त्रित किए गए। वहाँ भारत में संस्कृत भाषा की जीवित अवस्था का पुरजोर समर्थन किया। साथ ही साथ ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से ही उन्होंने लॉ (कानून) की भी पढ़ाई की और वह 1883 में लिटेरी ह्यूमेनियरस एण्ड जूरिस्प्रूडेंस (Literae Humanisres and Juriprudence) विषय से बी.ए. की डिग्री पाने वाले प्रथम भारतीय थे। 1885 ई. में वह पूर्ण बैरिस्टर बनकर भारत लौटे और बम्बई हाईकोर्ट में उन्होंने वकालत शुरू कर दी। वहाँ उनका मन नहीं लगा; क्योंकि उनसे देशी राज्य उनकी प्रतिभा का अवैधानिक लाभ उठाने लगे। अत एव बम्बई छोड़कर रतलाम, उदयपुर और जूनागढ़ राजाओं के मन्त्रिमंडल में रहकर कुछ वर्षों तक काम किया, किन्तु स्वतंत्रप्रवृत्ति, स्वाभिमानी तथा

भारतीय अस्मिता के धनी श्यामजी कृष्ण वर्मा को इन देशी राजाओं की सेवा दासतुल्य प्रतीत हुई, फलतः उन्होंने यह कार्य भी त्याग दिया और फिर 1895 में अपनी मातृभूमि को छोड़ इंग्लैंड चले गए।

महर्षि दयानन्द की प्रेरणा—1875 में श्यामजी कृष्ण वर्मा का स्वामी दयानन्द से सम्पर्क हुआ। आर्यसमाज की स्थापना होना और उन्हें स्वामी दयानन्द द्वारा उसका प्रथम सदस्य बनाया जाना, स्वामी जी का उन्हें स्नेह, सहयोग तथा आशीर्वाद प्राप्त होना यह सब उनके लिए एक अचूक प्रेरणा थी जिसने उन्हें आर्यसमाज, वैदिकधर्म एवं राष्ट्रप्रेम की दिशा में आगे बढ़ने के निमित्त आन्तरिक बल प्रदान किया। 12 जून 1875 को रामानुज सम्प्रदाय के आचार्य पं. कमलनयन के साथ स्वामी दयानन्द का 'मूर्तिपूजा' विषय पर शास्त्रार्थ हुआ। श्यामजी कृष्ण वर्मा भी शास्त्रार्थ सुन रहे थे। स्वामी दयानन्द के अकाट्य तर्क तथा वैदिक वाङ्मय में पारंगतता को देख वह स्वामी जी के परम शिष्य बन गए और आर्यसमाज की सदस्यता ग्रहण कर ली। स्वामी दयानन्द के निर्देश से 1877 ई. में उन्होंने धर्म प्रचार के निमित्त एक कार्यक्रम (प्रचार-यात्रा) बनाया। इसके अन्तर्गत उन्होंने नासिक में संस्कृत में भाषण दिये। ये भाषण आर्यसमाज की मान्यताओं को लेकर थे। मई में पूना और अहमदाबाद, जून में बड़ौदा, भड़ौंच, भुज तथा माण्डवी में आर्यसमाज का प्रचार किया और फिर 1878 ई. में लाहौर में प्रचार किया। इनके संस्कृत भाषण एवं वैदिक साहित्य की पारंगतता को लेकर सर्वत्र धूम मच गई।

सन् 1877 में ही वे काशी आदि क्षेत्रों में भी संस्कृत भाषण के लिये गये और वहाँ के संस्कृत पंडितों में अपना धाक जमाया। श्यामजी प्रथम व्यक्ति थे जो ब्राह्मणेतर परिवार में जन्में काशी पंडितों द्वारा **पंडित की उपाधि** पा सके।

स्वामी दयानन्द का इन पर इतना विश्वास था कि उन्होंने 1877 ई. में ही वेद-भाष्य के प्रकाशन एवं वितरण का कार्य उन्हें सौंप दिया। परोपकारिणी सभा का सदस्य बनाकर उन पर कुछ जिम्मेवारियाँ सौंपी। विदेश जाने से पूर्व तक इन कार्यों को वह बाखूबी निभाते रहे।

ऋषि दयानन्द द्वारा पत्राचार-उल्लेखनीय है कि श्यामजी कृष्ण वर्मा 1879 से 1883 ई. तक ब्रिटेन के ऑक्सफोर्ड में शिक्षा प्राप्त कर रहे

थे तब भी उनसे स्वामी दयानन्द पत्र-व्यवहार करके वहाँ की स्थिति के बारे में पूछते रहते थे। परस्पर पत्र व्यवहार संस्कृत में ही हुआ करता था। कुल 17 पत्र लिखे जिसमें पहला पत्र 15 जुलाई, 1878 अमृतसर से लिखा था और इसी तरह अलग-अलग स्थानों—दिल्ली, अजमेर, नसीबाबाद, मेरठ, हरिद्वार आदि से वह लिखते रहे। 16वाँ पत्र मेरठ से 13 जुलाई 1880 को लिखा। 25 दिसम्बर, 1880 को अंतिम पत्र लिखा था। इसमें 22 पद्य हैं और सभी पद्य अलग-अलग छन्दों में निबद्ध हैं। इस पत्र में स्वामी जी ने प्रेरणा दी कि वहाँ पार्लियामेंट में जाकर आवाज उठाओ कि ब्रिटिश सरकार भारत में भारतीयों के प्रति कैसा अन्याय कर रही है। विशेषकर मुंशी इन्द्रमणि के मामले में ब्रिटिश शासक मुसलमानों का पक्षपात और हिन्दुओं की अनदेखी करने की बात को जोर से लन्दन के पार्लियामेंट में उठाने की प्रेरणा दी।

स्वामी जी के इन पत्रों से श्यामजी कृष्ण वर्मा पर अटूट प्रभाव पड़ा। इन्द्रमणि मुरादाबाद के एक माथुर वैश्य थे। वे उर्दू-फारसी के सिद्धहस्त लेखक थे। जब हिन्दुओं की तौहिनी में कोई मुसलमान कुछ कहता या लिखता तो उसका मुँहतोड़ जवाब इन्द्रमणि जी दिया करते थे। जब 1879 ई. में स्वामी दयानन्द मुरादाबाद पहुँचे, तो स्वामी जी के व्याख्यान एवं व्यक्तित्व से वह प्रभावित होकर पौराणिक से आर्यसमाजी बन गए और मुरादाबाद आर्यसमाज के स्थापित होने पर वह उसके पहले प्रधान चुने गए। हिन्दुओं की प्रतिष्ठा तथा मुसलमानों के सिद्धान्तों के विरुद्ध इन्द्रमणि जी की तीन महत्त्वपूर्ण पुस्तकें छपीं। मुसलमानों द्वारा उन्हें धमकियाँ मिलीं कि उन्हें जान से मार दिया जयेगा। मामला कोर्ट में गया पर अंग्रेजी शासकों एवं मुसलमानों की मिलीभगत के कारण उचित न्याय न हुआ। 500 रुपये का जुर्माना लगाया गया। स्वामी जी के प्रयास से अपील की गई कि 400 रुपये माफ कर केवल 100 रुपये ही जुर्माना रखा जाए, तब भी न्याय नहीं मिला। उन पर अत्याचार तथा दबाव जारी था। इसी मामले को ब्रिटिश पार्लियामेंट में उठाने के लिए स्वामी दयानन्द ने श्यामजी कृष्ण वर्मा को 22 श्लोकों का पत्र लिखा। इनमें 18 से 21 श्लोकों तक विस्तार से इन्द्रमणि के मामले की चर्चा थी। अंतिम श्लोक में स्वामी जी ने परोपकारिणी सभा की स्थापना की सूचना दी थी और

उन्हें उसका सभासद् बनाए जाने की भी सूचना थी। उसकी एक प्रति भी साथ में ही भिजवाई गई थी। इन्द्रमणि के मामले वाले पत्र में ही स्वामी जी ने अंग्रेजी राज्य को 'म्लेच्छों का राज्य' कहा था। उसका हर हाल में विरोध किया जाए, ऐसी प्रेरणा थी।

स्वामी दयानन्द ने कांग्रेसी नेताओं को एक और प्रेरणा दी थी कि ब्रिटिश सरकार से अपनी माँगों एवं प्रस्तावों को स्वीकार करवाने के लिए एक राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) की स्थापना की जाए। यह सभा 1885 में बनी थी। श्यामजी इसमें भी सक्रिय रहे। इस प्रकार श्याम जी द्वारा भारत को स्वतंत्र करने-कराने के विचार से किये गए उपर्युक्त कार्य-कलापों से स्पष्टत: ज्ञात होता है कि आजीवन स्वामी जी के आदेशों-निर्देशों का पालन करते रहे। उनके कुछ महत्त्वपूर्ण राष्ट्रोचित कार्यों से हमें ज्ञात हो जाएगा कि उन्होंने भारतीय स्वाधीनता संग्राम की योजनाओं में यावज्जीवन सक्रियता दिखाई।

जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है कि श्यामजी कृष्ण वर्मा 1885 से 1896 ई. तक भारत में रहकर अलग-अलग जगहों पर वकालत तथा राज्य के मंत्रियों के साथ कार्यालयों के काम सँभालते रहे। परन्तु स्वाभिमान को ठेस पहुँचने के कारण वह 1897 में पुन: इंग्लैंड चले गए। राष्ट्रीय उद्देश्यों की पूर्ति को ही ध्यान में रखकर वे इंग्लैंड गए थे इस अवधि में उन्होंने अपने भारतीय राजनैतिक मित्रों से प्रगाढ़ सम्बन्ध बनाए रखा और समय-समय पर उनके सम-सामयिक परामर्श लेते रहे। यहाँ यहीं के एक प्रसिद्ध **दार्शनिक हर्बर्ट स्पैंसर** का उन पर विशेष प्रभाव भी पड़ा। उन्होंने उनके तथा अपने धर्मगुरु स्वामी दयानन्द के नाम से दो छात्रवृत्तियाँ प्रारम्भ की तथा ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में हर्बर्ट स्पैंसर स्मारक व्याख्यान माला का भी आयोजन किया।

1905 ई. गोरी सरकार ने अपने राजनैतिक लाभ के लिए बंगाल का विभाजन कर दिया। इससे देशवासियों को गहरा आघात पहुँचा। वे समझ गए कि गोरी सरकार इस कदम से भारतवासियों में मतभेद पैदा कर आजादी की लड़ाई को कमजोर करना चाहती है। श्यामजी ने इंग्लैंड में **'इण्डियन होमरूल सोसाइटी'** का निर्माण किया। इसका उद्देश्य था भारत को स्वाधीन कराने में सहायता देना। इसको सार्थक रूप देने के

लिए उन्होंने '**इण्डियन सोशियालोजिस्ट**' नामक पत्र निकाला। इसमें स्वाधीनता प्राप्त करने के निमित्त प्रेरणा देने वाले क्रांतिकारी विचार प्रकाशित होने लगे। तब दादाभाई नौरोजी, श्री गोपाल कृष्ण गोखले, महात्मा गांधी आदि नरम दल के नेता थे। लोकमान्य तिलक, लाला लाजपत राय आदि गरम दल के नेता थे। श्यामजी भी गरम दल के साथ थे और पत्राचार से अपनी राजनैतिक गतिविधियों को विस्तार देते रहते थे। इंग्लैंड मे रहने वाले अनेक युवा क्रांतिकारी उनके विचारों से प्रभावित होकर भारतीय स्वाधीनता संग्राम के अभियान में जुट गए। श्यामजी ऐसे भारतीय युवाओं के प्रेरणास्रोत बने। वह उनके मित्र तथा मार्गदर्शक बने। सभी युवाओं ने उन्हें एक दार्शनिक के रूप में स्वीकार किया। इस तरह वे एक साथ सबके मित्र, दार्शनिक एवं पथप्रदर्शक बने। अपनी आय से श्यामजी ने लन्दन में एक बड़ा घर खरीदा। भारत से आने वाले विद्यार्थी तथा क्रान्तिकारी उसी में ठहरा करते थे। उस घर का नाम '**इण्डिया हाउस**' रखा। दक्षिण अफ्रीका से भारतीय दल के साथ एक बार महात्मा गांधी वहाँ गए। क्रांतिकारी भाई परमानन्द, मदनलाल ढींगड़ा आदि अनेक भारतीय राजनेता तथा युवा क्रांतिकारी वहाँ ठहरते थे और राजनैतिक गतिविधियों पर श्यामजी से विचार-विमर्श करते थे।

लन्दन में वीर सावरकर आदि श्यामजी से मिले-उन्हीं दिनों देशभक्त युवक विनायक दामोदर सावरकर कानून की पढ़ाई करने इंग्लैंड आए हुए थे। वह श्यामजी से मिले। श्यामजी उनके स्वदेश प्रेम एवं क्रान्तिकारी विचारों को सुन बहुत प्रभावित हुए। धीरे-धीरे दोनों में निकटता बढ़ती गई। अंततः उनके प्रभाव से श्यामजी ने 'इण्डिया हाउस' का कार्यभार उन्हें ही सौंप दिया। उन दिनों उनकी राजनैतिक गतिविधियों के बढ़ जाने से ब्रिटिश सरकार घबरा गई। फलतः वह बहाने-बहाने से उन पर मनमाने आरोप लगाकर उन्हें प्रताड़ित करने लगी। अतः उन्होंने इंग्लैंड छोड़ दिया और फ्रांस की राजधानी पेरिस चले गए। मूल कारण यह था कि 1857 ई. के स्वाधीनता संग्राम की स्मृति में 1907 ई. लन्दन में स्वर्णजयन्ती मनाई गई। उसी समय लाला लाजपत राय इंग्लैंड में देश-निर्वासन की सजा काट रहे थे। जेल में उन पर अत्याचार हो रहे थे। इसके खिलाफ अत्याचारों को लेकर इंगलैंड

में श्यामजी ने एक लेख में अंग्रेजी सरकार के अत्याचारपूर्ण कार्यवाही की कटु आलोचना की। फलतः गोरी सरकार की नजरें उन पर टेढ़ी हो गईं जिससे वहाँ रहना इनके लिए कठिन प्रतीत होने लगा। तभी वह पेरिस गए थे। परन्तु फ्रांस की सरकार को भी ये खटकने लगे तो वह स्विट्जरलैंड के जेनेवा नगर में रहने लगे। उन्हीं दिनों लोकमान्य तिलक जेल से रिहा हुए, तो श्याम जी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने 'तिलक स्मारक योजना' बनाकर तिलक व्याख्यान-माला आरम्भ करने के लिए **10 हजार रुपये** प्रदान किये।

काल के आगे सब विवश हैं। काल वश श्यामजी भी वृद्धावस्था में आ गए तो उनकी राजनैतिक गतिविधियाँ भी कम हो गईं। उधर भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में महात्मा गांधी का वर्चस्व बढ़ने से भारतीय राजनैतिक स्वरूप बदलने लगा। सत्याग्रह एवं असहयोग आन्दोलन जैसे कार्यक्रमों से क्रांतिकारियों का जोश कम पड़ने लगा फलतः 1923 ई. में उन्होंने अपना पत्र 'इण्डियन सोशियालोजिस्ट' का प्रकाशन बन्द कर दिया। जब **1927 ई. में पं. जवाहरलाल नेहरू स्विट्जरलैंड गए तो श्यामजी से मिलने उनके निवास पर भी गए। उस समय नेहरू जी ने उन महापुरुष को 'वृद्ध सिंह' कह कर उनके भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में योगदान को सराहा था।**

श्यामजी की मृत्यु-1930 ई. के आरम्भ में श्यामजी कृष्ण वर्मा अस्वस्थ रहने लगे। उनकी धर्मपत्नी भानुमती उनके साथ थीं। उनकी कोई सन्तान नहीं थी। 31 मई, 1930 को अपनी धर्मसंगिनी श्रीमती भानुमती की उपस्थिति में इस पुरुषसिंह ने अपने प्राण त्याग दिये।

श्यामजी कृष्ण वर्मा के साहसिक कदम एवं क्रांतिकारी भावना के प्रमाण

यह तो निश्चय है कि अपने आचार्य महर्षि दयानन्द की प्रेरणा से उन्होंने सर्वप्रथम राष्ट्रीयता के इस कंटकाकीर्ण मार्ग को चुना था। महर्षि दयानन्द ने ही उन्हें धर्म प्रचार तथा उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए इंग्लैंड जाने की प्रेरणा दी थी। श्यामजी कृष्ण वर्मा के हृदय में स्वाधीनता तथा

स्वाभिमान की भावना महर्षि दयानन्द के सम्पर्क में आने से ही कूट-कूटकर भर गई थी। श्यामजी के ऑक्सफोर्ड आने पर भी महर्षि दयानन्द समय-समय उन्हें पत्र लिखकर स्वदेश प्रेम, देश की स्वाधीनता, वैदिक धर्म का प्रचार-प्रसार करने के लिए उत्साहित करते ही रहते थे। उन पत्रों से प्रेरित होकर श्यामजी का मन पूर्ण रूपेण स्वामी दयानन्द के प्रेरणापूर्ण कार्यों को पूरा करने में लगा रहता था। इंग्लैंड की आबो-हवा, प्रथा, संस्कृति, अध्ययन-अध्यापन पद्धति आदि के साथ वहाँ की राजनैतिक गतिविधियों में रुचि लेने की प्रेरणा महर्षि दयानन्द के पत्रों द्वारा श्यामजी को प्राय: मिला करती थी। लन्दन जाकर कभी पार्लियामेंट देखने के लिए उत्साहित करना आदि श्यामजी के हृदय में भारतीय स्वाधीनता की भावना ही भरना उद्देश्य था। 'जब पठन-पाठन से समय मिले, तो कभी-कभी वैदिक धर्म का प्रचार अपने भाषणों से करना'—इस तरह स्नेहपूर्वक महर्षि दयानन्द उन्हें जगाते रहे, सद्प्रेरणाएँ देते रहे। यह चर्चा कर दी गई है कि महर्षि दयानन्द ने उन्हें 17 पत्र लिखे और सब संस्कृत में ही लिखे गए थे; क्योंकि श्यामजी का संस्कृत भाषा एवं भाषण पर सराहनीय अधिकार था। इसी कारण श्यामजी हमेशा स्वदेश तथा स्वदेशवासियों के लिए जीवन भर अंग्रेजों से लड़ते रहे।

1897 में पूना में प्लेग फैला। उस समय श्याम जी भारत में ही थे। महर्षि दयानन्द के प्रभाव से उन्हें कहीं नौकरी मिलने में दिक्कत तो नहीं हुई परन्तु जिन रियासतों में वह कार्यरत थे, वहाँ अंग्रेज सरकार का दवाब होने से वह स्वाभिमान की रक्षा नहीं कर पा रहे थे। इसलिए उन्होंने भारत छोड़ने का मन बना लिया था। इसी बीच पूना में फैले प्लेग में अंग्रेज शासकों द्वारा भारतीय रोगियों का उचित रख-रखाव व देखभाल न देखकर अत्यन्त दु:खी हुए। एक दिन एक मराठी युवक ने देखा क़ि अंग्रेज भारतीय रोगियों से जबरन प्रदेश खाली करवा रहा है। इससे वह क्षुब्ध हो गया और उसने मि. रेण्ड को गोली मारकर हत्या कर दी। 'हमारा राजस्थान' पृ. 286 के लेखक के अनुसार उस हत्या में गुप्तरूप से श्यामजी ने उस युवक को प्रेरित किया था। निम्न उद्धरण पढ़ें—

''श्यामजी कृष्ण वर्मा का हाथ भी इस काण्ड के पीछे था, अत: वह सपरिवार भारत से लन्दन खिसक गया। 1905 तक वह अज्ञात रहते हुए वहाँ

पढ़ने जाने वाले भारतीय युवकों में स्वाधीनता की भावना जगाने और भारत में स्वाधीनतावादी आन्दोलन संगठित करने का यत्न करता रहा।''

मि. रेण्ड को मारने वाले दो युवक थे—**दामोदर चापेकर तथा बालकृष्ण चापेकर**। इस युग्म को इतिहास में चापेकर बन्धु नाम से भी जाना जाता है। दामोदर तो पकड़े गए जिनको अंग्रेजी शासन ने फाँसी पर चढ़ा दिया। बालकृष्ण बचकर दक्षिण हैदराबाद में आर्यसमाजियों के सहयोग से छिप कर बच गए। स्वाधीनता संग्राम की कड़ी में किसी क्रान्तिकारी ने पहली बार किसी अंग्रेज अधिकारी को गोली मारी थी इसके प्रेरणास्रोत वीर श्यामजी माना गये।

हैदराबाद निजामों का राज्य था। फिर भी बालकृष्ण चापेकर को लोकमान्य तिलक का सहयोग मिला। सात हजार रुपये देने पर भी दामोदर चापेकर फाँसी की सजा से नहीं बच सके।

श्यामजी और लोकमान्य तिलक एक ही विचार के यानी गरम दल के नेता थे। बालकृष्ण के पास खाने को भी कुछ नहीं था, तो लोकमान्य ने नरम दल के नेता श्री गोखले के अनुयायी हैदराबाद के मुख्य न्यायाधीश केशवराव कोरटकर के जरिये बालकृष्ण को सहायता भिजवायी थी। यद्यपि कोरटकर भी नरमदल के ही पोषक थे परन्तु इस मामले में श्री लोकमान्य तिलक के आदेश को वह टाल न सके।

जस्टिस कोरटकर लिखते हैं—''मुझको बड़ा आश्चर्य हुआ जब मुझे लोकमान्य तिलक का पैगाम प्राप्त हुआ, पर मैंने उनका कहा हुआ कार्य कर दिया।''

गुरुकुल काँगड़ी के दान-संग्रह-क्यों न ऐसा होता? जस्टिस केशवराव कोरटकर हैदराबाद में आर्यसमाज का बीजारोपण तथा उसकी स्थापना करने में अग्रणी थे। स्वामी श्रद्धानन्द के अनन्य भक्त थे। गुरुकुल काँगड़ी की आर्थिक सहायता करने के लिए उन्होंने अपने राज्य में स्वामी श्रद्धानन्द को निमन्त्रित किया और दान-संग्रह में सहयोग दिया। अपने पुत्र विनायकराव को भी गुरुकुल कांगड़ी में पढ़ाया जो आगे चलकर पं. विनायकराव विद्यालंकार के नाम से प्रसिद्ध हुए। आर्यसमाज का प्रचार-प्रसार करने के साथ-साथ देश की स्वाधीनता के निमित्त अनेक आन्दोलनों में भाग भी लिया। निजाम के खिलाफ आर्यसत्याग्रह में वह

जेल भी गए। राष्ट्रीय स्तर पर भारत के लिए उन्होंने अनेक कार्यक्रमों में भाग लिया।

यह तो आप पढ़ ही चुके हैं कि लन्दन में श्यामजी ने 'इण्डिया हाउस' की स्थापना की जहाँ भारतीय छात्रों को रहने की सुविधा थी। वहाँ रहने वाले या उनके सम्पर्क में आने वाले छात्रों को श्यामजी स्वाधीनता के ऐसा पाठ पढ़ाते कि वे इनके प्रभाव में आ जाते थे और सरकारी नौकरी न कर राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए कार्य करने को सहज ही तैयार हो जाते थे। उन्होंने भारतीय गरीब छात्रों के लिए **5 छात्रवृत्तियाँ शुरू की** थीं। जिनमें एक स्वामी दयानन्द के नाम पर थी। एक छात्रवृत्ति विदेशी दार्शनिक स्पैंसर हर्बर्ट के नाम पर थी। वीर सावरकर, हरदयाल, मदनलाल ढींगड़ा आदि इनसे यहीं इण्डिया हाउस में ही मिले थे।

1857 गदर अर्द्ध शताब्दी लन्दन में–लाला लाजपत राय के निर्वासन काल में श्यामजी की प्रेरणा से लगभग 1000 भारतीयों की उपस्थिति में 1857 ई. की क्रान्ति अर्द्धशताब्दी मनाई गई। इस समारोह में 1857 ई. के गदर को (जो अंग्रेजों तथा उनके चाटुकार लेखकों के नाम दिया था) स्वाधीनता समर बताते हुए बलिदानी देशभक्तों की प्रशंसा में खूब पर्चे बाँटे गए। रौल्ट कमिटी का अनुमान था कि इसमें श्यामजी कृष्ण वर्मा की ही मुख्य भूमिका थी। इस कारण सरकार उन पर कड़ी दृष्टि रखने लगी।

श्यामजी इण्डिया हाउस में हर रविवार को एक सभा किया करते थे। इसमें भाग लेने वाले युवा छात्रों को 1857 ई. के संग्राम में भाग लेने वाले देशभक्तों की वीर गाथाएँ सुनाई जाती थीं। उन्हें सावधान रहने के लिए कहा जाता था। साथ ही विदेशी बर्बर शासकों को ठिकाने पर लगाने के लिए प्रेरित किया जाता था। वहाँ बम आदि बनाने का प्रशिक्षण भी दिया जाता था। ऐसी गतिविधियों की भनक सरकारी गुप्तचर पुलिस को थी जिससे इन पर हर पल उनकी कड़ी नजर रहा करती थी।

भा.क्रां.आ. का इतिहास पृ. 24 के अनुसार—ऐसा कहते हैं कि 1908 में लन्दन विश्वविद्यालय में एक छात्र ने बम बनाने तथा उससे सुरक्षित रहने के उपायों पर व्याख्यान दिया था। यह भी कहा कि सुनने वाले युवकों में कोई जान पर खेलने को तैयार होगा तो उन्हें पूरा विवरण

दिया जायेगा। ऐसा व्याख्यान देनेवाले श्यामजी ही हुआ करते थे। लन्दन सरकार इन पर बराबर ध्यान रखने लगी।

वह लन्दन छोड़कर फ्रांस चले गए पर 1914 में प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ गया जिससे फ्रांस की सरकार उन्हें अनुकूल नहीं लगी और वे स्विटजरलैंड जिनोवा में बस गए। वहीं 1930 में वह स्वर्ग सिधार गए।

यह सारी जीवनी पूर्व में बताई जा चुकी है। कहते हैं कि श्यामजी मृत्यु के लगभग दो वर्ष पहले ही वह महर्षि दयानन्द के राजनैतिक विचारों को विस्तार से लिखना चाहते थे, कहा करते थे कि अभी महर्षि दयानन्द के बारे में पूरा नहीं लिखा जा सका है। उनके पास पर्याप्त सामग्री है जिसे वह लिखना चाहते थे। वह महर्षि का 'यथार्थ जीवन चरित्र' लिखना चाहते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि श्यामजी महर्षि दयानन्द के स्वदेश के प्रति विचारों को लेकर जो उनके राजनैतिक प्रयास रहे, उसी पक्ष को सार्वजनिक करना चाहते थे। हम यह भी बता चुके हैं कि इनके बाद 'इण्डिया हाउस' लन्दन की जिम्मेदारी आर्यों की इस क्रांतिकारी पीढ़ी के वीर परवाने, स्वतंत्रता संग्राम के अमर योद्धा वीर विनायक दामोदर सावरकर ने ली। वह भी श्यामजी की ही तरह 'इण्डिया हाउस' में देशभक्तों को उसी तरह वैचारिकरूप से परिपक्व करते रहे। श्यामजी द्वारा शुरू की हुई छात्रवृत्तियों का लाभ सावरकर जी एवं दिल्ली से आए हरदयाल जी जैसों को मिलता रहा जो स्वदेश के लिए क्रांतिकारी नेता बने और आर्य क्रांतिकारी स्वाधीनता संग्राम के वीर नेता माने गए। इस तरह श्यामजी कृष्ण वर्मा ने लन्दन रहते हुए थोड़े ही दिनों में अपने चारों ओर भारतीय क्रान्तिकारियों की पौध तैयार कर दी। ऐसे क्रान्तिकारियों को उनका शिष्य भी कहा जा सकता है। विनायक दामोदर सावरकर भी उसी शिष्य-कड़ी के एक हिस्सा थे। इसका वर्णन आगे आएगा।

पति-पत्नी की अस्थियों की व्यवस्था-श्यामजी कृष्ण वर्मा ने 1930 जब स्विटजरलैंड के जिनोवा में अपनी धर्मपत्नी श्रीमती भानुमती के जीवनकाल में अपना नश्वर शरीर छोड़ने से पूर्व ही वहाँ के क्रेमेटरी व्यवस्था के ऑफिसरों से मिलकर अपने खर्चे से ही 100 वर्षों तक उन दोनों (पति-पत्नी) की अस्थियाँ सुरक्षित रखे जाने की व्यवस्था करवा ली थी और लिखवा लिया था कि भारत के आजाद हो जाने पर किसी

तरह उनकी (पति-पत्नी दोनों की) अस्थियाँ एवं राख भारत में ही भिजवाया जाए।

उन्हें पता ही था कि उनकी प्रिय पत्नी भानुमती भी तो एक दिन शरीर छोड़ेंगी ही। उनकी कोई संतान नहीं थी।

मृत्यु की खबर दबाया जाना-स्वदेश प्रेमी इस भारत की आत्मा को यह भी विश्वास था कि भारत को आजादी मिलने से कोई रोक नहीं सकता; क्योंकि इसमें महर्षि दयानन्द का अमर संदेश है जिससे प्रेरित होकर भारत के वीर अपनी आजादी ले के ही दम साधेंगे। अतः वह स्वदेश के प्रेम में अपनी आखिरी इच्छा के अनुसार स्वयं ही ऐसी व्यवस्था कर गए। परन्तु बताया जाता है कि उनकी मृत्यु की खबर भारत जाने से दबा दी गई जिसका खुलासा कालान्तर में स्वनाम धन्य सरदार भगतसिंह की लेखनी द्वारा किया गया। इसकी चर्चा आप महान् क्रांतिकारी सरदार भगतसिंह के विवरण में पढ़ेंगे।

श्यामजी कृष्ण वर्मा और भारत के वर्त्तमान प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी

यह तो निश्चित है कि स्वतंत्र भारत की सरकार ने लम्बे समय तक ऐसे अनेक वीर क्रांतिकारियों का मान करना तो दूर भूल से भी उनका नाम तक नहीं लिया। यदि उनका नाम लेते तो कांग्रेसियों के आजादी में दिए गए योगदान में भारी बट्टा न लगता!! बल्कि हम कहें कि कांग्रेस सरकार ने हमेशा ही उनके प्रति उपेक्षा दिखलाई तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसका कारण महात्मा गांधी और उनके सलाहों को महत्त्व देने वाली कांग्रेस सरकार की अंग्रजीदां सियासतदारों (जो एक ही परिवार से जुड़ी है) की ओछी सोच ही थी। वस्तुतः 1899-1901 में दक्षिण अफ्रीका के किसानों के खिलाफ ब्रिटिश सरकार ने हमला कर दिया जिसका नाम बोर-वार था। मुद्दा दक्षिण अफ्रीका के किसानों के मौलिक अधिकारों का था, तब महात्मा गांधी ने इस मुद्दे पर ब्रिटिश सरकार का साथ दिया, इस पर सच का साथ देने वाले श्यामजी कृष्ण वर्मा ने महात्मा गांधी के इस कदम का घोर विरोध किया। यहीं से

इनके और गांधी जी के बीच दूरी बन गई फलत: भारत की स्वतंत्रता के 55 वर्ष बाद तक भी कांग्रेसी नेताओं (विशेषकर भारतीय राजनीति को अपनी समझने वाले खानदानी परिवार) ने श्यामजी कृष्ण वर्मा की अस्थियों को भारत लाने में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई। विपिन चन्द्र पाल, बाल गंगाधर तिलक तथा लाला लाजपत राय श्यामजी की भावनाओं को आदर देने के लिए कहते रहे पर गांधी और उनके पिछलग्गू कांग्रेसी नेताओं ने उनकी एक न सुनी।

स्वाधीनता संग्राम में अपनी जवानी, परिवार, घर-बार सब कुछ भारत माता पर न्योछावर कर देने वाले वीरों के प्रति सम्मान करना तो दूर उनकी अस्थियों को भी भारत लाने में अपना नैतिक कर्तव्य नहीं समझा, कारण वही कि ऐसे क्रान्तिकारी प्रत्यक्ष रूप से आर्यसमाज की पौध थे जिन्हें सरकार वोट के लिए तुष्टिकरण के चक्कर में ऐसा कदम उठाने का साहस नहीं बटोर सकी।

मृत्यु से कुछ दिनों पूर्व उन्होंने इस सम्बन्ध में अपने लिखित दस्तावेज तैयार कर दिए थे तथा अपनी अन्तिम इच्छा भी प्रकट कर दी थी। श्यामजी के लिखित दस्तावेज के साथ सब प्रमाण उपलब्ध होने पर भी इतने लम्बे समय तक कांग्रेस सरकार ने इस तरफ ध्यान नहीं दिया। यह उनकी ओछी सोच या जानबूझकर लापरवाही न कहें तो क्या कहें।

प्रकरण में नरेन्द्र मोदी का प्रवेश-पर ऐसा भी नहीं है कि ऐसे वीरों का मान करने वाला भारत में कोई नहीं है। जब से भारतीय जनता पार्टी की सरकार आई, तब से देश पर मरमिटने वाले इन वीरों का मान-सम्मान दिया जाने लगा है। इसी कड़ी में आते हैं भारत के यशस्वी प्रधान मंत्री महामना श्री नरेन्द्र मोदी।

श्री नरेन्द्र मोदी गुजरात के मुख्यमंत्री थे तब उनके संज्ञान में यह मामला आया कि श्यामजी कृष्ण वर्मा की इच्छा थी कि उन दोनों (पति-पत्नी) की अस्थियाँ स्वतंत्र भारत में पहुँचाई जाएँ उन्हें यह भी पता चला कि इस सम्बन्ध में स्वयं श्यामजी ने **सेंट जार्ज क्रेमोटोरियम** के प्रबंधकों से मिलकर अपनी और अपनी धर्मपत्नी दोनों की अस्थियों को 100 वर्ष तक रखने का प्रबन्ध कर दिया था और इसके लिए धनराशि की भी व्यवस्था कर दी थी। सारी बात को समझने के बाद श्री नरेन्द्र मोदी जी ने

स्वयं इसकी पहल की। 22 अगस्त, 2003 में अपने विदेश गमन के समय श्री मोदी विशेष रूप से जिनोवा गए और वहाँ से ससम्मान श्यामजी एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती भानुमती की अस्थियों को उनकी मातृभूमि भारत लाने का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण काम किया जो 55 वर्ष से उस वीर पुरुष दम्पती की अस्थियाँ विदेश की भूमि पर थीं। इसका कारण कांग्रेस सरकार थी। क्रांतिकारी श्यामजी की अन्तिम इच्छा का सम्मान करते हुए तथा उनकी भावनाओं को सबल तथा संचेतना से सिंचित करने वाले भारत के गुजरात प्रांत के तत्कालीन यशस्वी मुख्य मंत्री श्री नरेन्द्र भाई दामोदर दास मोदी को यह पुण्य कार्य करने का श्रेय जाता है।

श्री नरेन्द्र मोदी की देखरेख में उनकी अस्थियाँ भारत लाने पर महान वीर क्रांतिकारी वीर पुरुष की पवित्र अस्थियों के दर्शन के लिए गुजरात के 17 जिलों की जनता के लिए एक-एक **'वीरांजलि यात्रा'** की व्यवस्था गुजरात सरकार द्वारा की गई यह यात्रा निर्धारित सभी 17 जिलों

को पार करती हुई श्यामजी की पावन जन्मस्थली माण्डवी (कच्छ) में आकर पूर्ण हुई। वहाँ की जनता ने अपनी माटी के वीर इस लाल की अस्थियों को अपने सामने देखकर मानो संतोष तथा तृप्ति की अनुभूति की एतदर्थ अपने गौरवशाली मुख्यमंत्री श्री नरेन्द्र भाई को कोटिश: धन्यवाद दिया।

देश की सच्ची वीरता को सच्ची श्रद्धांजलि देने की श्रद्धा से मांडवी के पास 52 एकड़ जमीन पर सन् 2010 में 'इंडिया हाउस लन्दन' की तरह ही एक भव्य भवन 'क्रांति तीर्थ' नाम से बनवाया गया। वहाँ श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती भानुमती की भव्य मूर्तियाँ स्मारक रूप में बनवाई गई हैं। वहीं पर उन दोनों की पावन अस्थियाँ भी रखी गई हैं ताकि जब भी कोई वहाँ जाकर उस भव्य स्मारक को देखे तो उसके मन में वीरता की अनुभूति हो और अपनी मातृभूमि पर मर-मिटने की चेतना जाग्रत हो।

श्री मोदी द्वारा ब्रिटेन यात्रा पर दूसरी श्रद्धांजलि-श्री श्याम जी के प्रति दूसरी महान श्रद्धांजलि मान्य नरेन्द्र मोदी द्वारा 2015 में तब दी गई जब वह ब्रिटेन की यात्रा पर लन्दन पहुँचे। इस समय श्री मोदी मुख्य मंत्री नहीं, बल्कि भारत के प्रधान मंत्री पद पर भारत माता को अपनी सेवाएँ दे रहे हैं। आशा करते हैं, प्रभु की कृपा तथा भारत की समझदार

जनता के सहयोग से आगे भी भारत माता की सेवा करते हुए भारतीय क्रान्तिकारियों का जो अनाम हैं जिनका कोई नाम लेवा नहीं है, उनकी खोज कर उन्हें मान-सम्मान के साथ प्रतिष्ठित करते रहेंगे।

वस्तुतः 1909 में इनर टेम्पल यू.के. बार बैरिस्टर के रजिस्टर से श्यामजी कृष्ण वर्मा का नाम हटा दिया गया था। श्री नरेन्द्र भाई ने पुनः उसे तत्कालीन ब्रिटेन प्रधान मंत्री मि. डेविड कैमरान द्वारा इनर टेम्पल

यू.के. बार बैरिस्टर के रजिस्टर में उनका नाम अंकित करवाया जिसका सर्टिफिकेट 13 नवम्बर, 2015 को वेम्बली हॉल लन्दन में जब भारत के वर्तमान यशस्वी-ओजस्वी प्रधान मंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने लगभग 60 हजार प्रवासी भारतीय जनता को सम्बोधित किया, तभी उन्हें ब्रिटेन के प्रधान मंत्री मि. डेविड कैमरान ने सौंपा। सौभाग्य से इस कार्यक्रम में मैं (आचार्य उमेश) भी दर्शक के रूप में उपस्थित था।

श्री नरेन्द्र मोदी जी ने उस सर्टिफिकेट को 18 दिसम्बर, 2015 को तत्कालीन गुजरात की मुख्य मंत्री श्रीमती आनन्दीबेन पटेल को सौंप दिया।

इस पुण्य तथा महत्त्वपूर्ण कार्य को पूर्ण करके निश्चय ही श्री नरेन्द्र मोदी ने भारत के क्रान्तिकारियों के त्याग, तपस्या, संघर्ष, बलिदान तथा

[नोट-श्यामजी कृष्ण वर्मा का और अधिक विस्तार इसकी अंग्रेजी वर्जन पुस्तक में प्राप्त है।]

वीरता को सच्ची श्रद्धांजलि दी है। आर्यसमाज तथा महर्षि दयानन्द की शिक्षाओं के अनुसार चलने वाले वीरों को ऐसी सच्ची श्रद्धांजलि देकर आर्य जनता के मन को भी संतृप्त किया है। इसके लिए श्री मोदी जी सदैव धन्यवाद के पात्र हैं और रहेंगे। और अपने इस यशस्वी कार्य के लिए सदा ही याद किये जाएँगे। आशा है कि आर्यसमाज के भारतीय स्वाधीनता संग्राम में समर्पित 80% की सहभागिता को भी श्री नरेन्द्र मोदी की सरकार अवश्य ही एक नयी पहचान देगी जिसे कांग्रेस की सरकार ने भारतीयों के समय प्रकट नहीं होने दिया। यदि यह कार्य श्री मोदी के द्वारा सम्पन्न होता है, तो निश्चितरूप से आर्यसमाज के इतिहास में यह अद्वितीय उपलब्धि होगी। इसके लिए हम सभी आर्य भाइयों एवं बहनों को एकजुट होकर काम करना होगा।

क्रांतिकारी वीर विनायक दामोदर सावरकर

वीर विनायक दामोदर सावरकर

वीर सावरकर का जन्म 28 मई, 1883 को महाराष्ट्र के नासिक के पास भगूर नामक गाँव में श्री दामोदर पंत सावरकर और श्रीमती राधाबाई के दाम्पत्य जीवन में पुत्ररत्न के रूप में हुआ। वह अपने माता-पिता के चार बच्चों में से एक थे और इनसे बड़े एक भाई का नाम गणेश दामोदर था। उन्होंने ही विनायक की शिक्षा का प्रबन्ध किया। जब यह नौ वर्ष के थे तो इनकी माता जी का देहान्त हो गया। ब्राह्मण परिवार में जन्मा यह बालक बचपन से ही क्रांतिकारी था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा शिवाजी विद्यालय नासिक में हुई, वहाँ 11 वर्ष की उम्र में ही उन्होंने वानरसेना नामक एक दल बनाया था। इसी के सहयोग से पं. बाल गंगाधर तिलक द्वारा शुरू किया गया 'शिवजी उत्सव' और 'गणेश उत्सव' का आयोजन किया जाता था। वह तिलक जी को अपना गुरु भी मानते थे। फलतः उनसे प्रभावित होकर वह इन अवसरों पर राष्ट्रीय विषयों पर नाटक आदि का आयोजन करके

नवयुवकों में राष्ट्र-प्रेम की भावना भरने की चेष्टा करते रहते थे। **'होनहार बिरवान के होत चिकने पात'** कहावत के अनुसार वह जीवन पथ पर आगे बढ़ते गए और आगे चलकर फर्गुसन कॉलेज पुणे में डिग्री की पढ़ाई के लिए सन् 1902 में प्रवेश ले लिया। दुर्भाग्यवश 1899 के प्लेग में उन्होंने अपने पिता को खो दिया। ग्रामीण परिवेश को देखते हुए 1901 में ही इनका विवाह यमुनाबाई से हो गया। माता-पिता के न रहने पर इनके बड़े भाई श्री गणेश दामोदर ने इनकी आगामी शिक्षा आदि का पूरा ध्यान रखा जो उनको आगे बढ़ाने में बहुत बड़ा सहारा बना।

स्वतंत्रता आन्दोलन का बीज—डिग्री की शिक्षा पूरी करने के बाद उन्होंने पुणे में 'अभिनव भारत सोसाइटी' की स्थापना की। साथ ही स्वदेशी आन्दोलन में भी शामिल होकर अपनी सक्रिय भागीदारी निभाने लगे। कुछ दिनों बाद वह 'तिलक स्वराज पार्टी' में सम्मिलित हुए। अब वह स्थान-स्थान पर देशवासियों को देश की आजादी के लिए ओजस्वी भाषण देकर उन्हें उत्साहित करने लगे। उनके देशभक्तिपूर्ण क्रांतिकारी भाषणों का भारतवासियों पर गहरा प्रभाव पड़ने लगा। इससे अंग्रेजी सरकार रुष्ट होकर, इन्हें विद्रोही समझकर इनसे इनकी बी.ए. की डिग्री वापस ले ली। सौभाग्य से 1906 ई. में सावरकर बैरिस्टर बनने के लिए लन्दन गए और वहीं वह श्यामजी कृष्ण वर्मा से 'इण्डिया हाउस' में मिले। श्यामजी ने उन्हें वहीं ठहरने की सुविधा दे दी। वहीं रहकर वह वकालत की पढ़ाई करने लगे। अध्ययन काल में श्यामजी द्वारा उन्हें आर्यसमाज तथा महर्षि दयानन्द के राष्ट्रीय प्रेम का, स्वदेशी गौरव का, विशेषकर वैदिक साहित्य का ज्ञान हुआ। धीरे-धीरे वह आर्य विचारधारा से प्रभावित होते गए और एक दिन वह अपनी राष्ट्रीयता को लेकर परिपक्व हो गए। उन्होंने लन्दन में भी भारत में भारतीयों पर ब्रिटिश सरकार द्वारा किये जा रहे अत्याचारों को मुद्दा बनाकर वहाँ रहने वाले भारतीय लोगों को एकजुट किया। इसके लिए उन्होंने 'निःशुल्क भारत सोसाइटी' भी बनाई। इस सोसाइटी के द्वारा महत्त्वपूर्ण भारतीय त्योहारों को शामिल करके उनको मनाना और भारतीय स्वतंत्रता के लिए अभियान चलाते रहना यानी अंग्रेजों से भारत को मुक्त करने की प्रेरणा सब में भरते रहना ही उनका वहाँ मुख्य उद्देश्य बन गया।

स्वतंत्रता की लड़ाई में उन्हें आवश्यकता पड़ने पर हथियारों का प्रयोग करने पर कोई आपत्ति नहीं थी। इस तरह धीरे-धीरे उन्होंने विदेश में रह रहे भारतीयों का एक सुदृढ़ सम्पर्क जाल बना दिया।

1908 में उन्होंने 'द इण्डियन वॉर ऑफ इंडिपेंडेंस 1857' नामक पुस्तक लिखी। अंग्रेजों ने ब्रिटेन, भारत में इसके प्रकाशित होने पर रोक लगा दी। उन्हीं दिनों अंग्रेजों ने 'द ग्रेट इंडियन विद्रोह' की खोज को 1857 का सिपाही विद्रोह नाम देकर इन पर शिकंजा कसना शुरू किया। सावरकर जी की उपरोक्त पुस्तक कई भाषाओं में साथियों के सहयोग से तैयार हुई। परन्तु उनके प्रकाशन में अनेक कठिनाइयाँ आईं। पुस्तक को पेरिस में भी गुप्तरूप से प्रकाशित करने की कोशिश हुई, पर वहाँ भी बात नहीं बनी। फिर अत्यन्त चतुराई पूर्वक इसे **मैडम भिकाजीकामा** के सहयोग से हॉलैंड में प्रकाशित किया गया और भारत के क्रांतिकारियों को गुप्तरूप से यह पुस्तक उपलब्ध करा दी गई। इसका हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हुआ जिसका नाम है—**'1857 का भारतीय स्वातंत्र्य समर'**।

1909 में नासिक में ब्रिटिश **कलेक्टर ए.एम.टी. जैक्सन** को एक युवक ने गोली मार दी। इसके आरोप में 13 मार्च 1910 को इन्हें भी लन्दन में गिरफ्तार कर भारत भेज दिया गया। फिर इन पर औपचारिक मुकदमा चलाया गया। भड़काऊ भाषण, अवैध हथियार परिवहन और राजद्रोह के आरोप लगा कर इन्हें 50 वर्ष (दो जन्मों) की सजा सुनाई गई। फिर अंडमान सेलुलर जेल में काला पानी की सजा दे दी गई।

क्रांतिकारी गतिविधियाँ—सावरकर जी के क्रांतिकारी जीवन की कुछ प्रमुख घटनाएं हम प्रस्तुत कर रहे हैं।

1920 में विट्ठल भाई पटेल, महात्मा गांधी, बाल गंगाधर तिलक समेत अनेक भारतीय प्रमुख नेताओं ने उनकी रिहाई की माँग की। इसी क्रम में उन्हें 2 मई 1921 को रत्नागिरी जेल और फिर वहाँ से यरवदा जेल भेजा गया। उन्होंने 'हिन्दुत्व' नामक पुस्तक रत्नागिरी जेल में ही लिखी थी। 6 जनवरी, 1924 को उन्हें रिहा तो किया गया, परन्तु रत्नागिरी में ही रहने को कहा गया। यह भी शर्त लगाई गई कि वह आगामी 5 वर्षों तक राजनैतिक गतिविधियों में शामिल नहीं होंगे। इस कारण उन्होंने 23 जनवरी, 1924 को प्राचीन संस्कृति तथा सामाजिक कल्याण के उद्देश्य से

'हिन्दू सभा' की स्थापना कर दी। इस तरह वे तिलक की स्वराज पार्टी में आए और साथ ही भारतीय राष्ट्रवाद तथा राजनीति को सफलरूप देने के विचार से 'हिन्दू महासभा' की स्थापना कर उसके सर्वसम्मति से अध्यक्ष चुने गए। आगे चलकर '**भारत छोड़ो**' आन्दोलन में कूद पड़े।

'नाथूराम गोडसे ने गांधी को मारा'-सावरकर गिरफ्तारी-प्रकरण-यह तो स्पष्ट है कि 'हिन्दू महासभा' समय-समय पर पाकिस्तान के निर्माण के विरुद्ध आवाज उठाती रहती थी। उधर महात्मा गांधी मुस्लिम तुष्टिकरण के निमित्त पाकिस्तान बनने के हक में बोल रहे थे। इससे हिन्दू महासभा के एक स्वयंसेवक नाथूराम गोडसे ने 30 जनवरी, 1948 को 'बिड़ला हाउस' नई दिल्ली की प्रार्थना सभा में जाकर महात्मा गांधी को गोली मारकर हत्या कर दी। नाथूराम की यह सोच थी कि भारत के हिन्दुत्व की रक्षा और भारतीय संस्कृति की गरिमा तभी सुरक्षित रहेगी जब मुस्लिमों के तुष्टिकरण में लिप्त और हिन्दुत्व की हानि से भी चिंता न करने वाले गांधी को स्वर्ग पहुँचा दिया जाए। नाथुराम गोडसे ने विस्तार से अपनी पुस्तक '**मैंने गांधी को क्यों मारा?**' में लिखा और अपनी फांसी के अंतिम दिन तक वह हिन्दुत्व के लिए संघर्ष करता रहा।

इस केस में वीर सावरकर को भी गिरफ्तार किया गया पर ठोस प्रमाण न होने से सर्वोच्च न्यायालय ने इन्हें छोड़ दिया।

वीर सावरकर की मृत्यु-ऊपर हम जान चुके हैं कि उन्हें काला पानी की सजा मिली थी और अण्डमान सेलुलर जेल में 50 वर्षों की सजा के कारण रखा गया था। उधर उनकी वृद्धावस्था भी हो गई थी। 26 जनवरी, 1966 को श्री विनायक दामोदर सावरकर की मृत्यु 83 वर्ष की अवस्था में हो गई।

वीर सावरकर पर आर्यसमाज का प्रभाव तथा राजनैतिक गतिविधियों की झलक—भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम में आर्यसमाज का योगदान, लेखक आचार्य सत्यप्रिय शास्त्री, पृ. 74-78 के अनुसार पता चलता है कि वीर सावरकर को भारतीय स्वतंत्रता के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करने की प्रेरणा आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द के अनन्य शिष्य पं० श्यामजी कृष्ण वर्मा ने दी थी। सावरकर जी पहले "The Indian war of Independence 1857 पुस्तक लिखकर

इतिहासकार बने इस पुस्तक से ब्रिटिश सरकार बेचैन हो गई। उस समय सावरकर जी मात्र 23 वर्ष के ही थे। इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक की पाण्डुलिपि के आधार पर ही लन्दन हाउस में भारतीय छात्रों तथा अन्य भारतीयों के बीच निडरता से स्वदेश की गरिमा एवं 1857 के संग्राम की कथा सुनाया करते थे। ब्रिटिश सरकार को जब अपने गुप्तचरों से पता चला तब से इनकी गतिविधियों पर कड़ी नजर रखी जाने लगी। अंग्रेजी गुप्तचरों ने उक्त पुस्तक के दो अध्याय चुरा भी लिये और इस पुस्तक की जब्ती की घोषणा ब्रिटिश सरकार ने कर दी। तब भी सावरकर की स्वदेश निष्ठा तथा वीरता में कोई कमी नहीं आयी। लन्दन में पुस्तक प्रकाशित नहीं हो सकी। पेरिस में भी यह प्रयास सफल नहीं हुआ अन्ततोगत्वा यह पुस्तक गुप्तरूप से हौलैंड में "1857 का स्वतांत्र्य समर" नाम से हिन्दी में अनुवाद रूप प्रकाशति हुई और इसकी प्रतियाँ भारत में क्रान्तिकारियों को उपलब्ध कराई गईं।

इस साहसिक कदम से बहुत से भारतीय युवक सावरकर जी के सम्पर्क में आए पर उनमें भी एक अत्यन्त साहसी क्रांतिकारी युवक इनका शिष्य बना, उसका नाम था—मदन लाल ढींगड़ा। उन्हीं दिनों सावरकर जी की योजनानुसार कर्जन वायली को वीर ढींगड़ा ने गोली से मार दिया तथा कहा कि वह स्वर्गधाम नहीं अपितु नरकधाम का अधिकारी है। अंग्रेजों के प्रति ऐसे ही विचार रखते थे ये वीर। इस हत्या-कांड का केस लन्दन की अदालत में विचाराधीन था, तभी वहाँ पर श्री बिपिनचन्द्र पाल की अध्यक्षता में सभा हुई। विपक्षी टोडी बच्चे (अंग्रेजी बच्चे) दनदना कर बैठे और ढींगड़ा की निन्दा से खुश हो रहे थे। इधर मन मसोसकर सावरकर चुपचाप बैठे सुन रहे थे। अन्त में जब अध्यक्ष श्री बिपिनचद्र पाल ने उठते हुए कहा कि ''तो क्या मान लिया जाए, मदन लाल ढींगड़ा की निन्दा का प्रस्ताव सर्व सम्मति से पास होता है।'' बस इतना सुनते ही वीर सावरकर उठकर सिंह की भाँति गरजते हुए जो बोले वह अत्यन्त मार्मिक चतुराई का परिचायक है। वह बोले—''**नहीं, मैं कुछ कहना चाहता हूँ—उसका केस अभी विचाराधीन है, बिना कोई अदालत का निर्णय हुए निन्दा प्रस्ताव के पास होने से उसके केस पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा।**'' तभी एक अंग्रेज क्रोधित हो गया और

सावरकर जी के मुख पर एक घूँसा मारते हुए बोला—"जरा अंग्रेजी घूँसे का मजा ले लो, कैसा बैठता है।"

घूँसे के बदले में गंजे सिर पर डण्डा-उसी अंदाज में ठीक उसी समय श्यामजी कृष्ण वर्मा के एक शिष्य ने उस अंग्रेज के गंजे सिर पर जोर से डण्डा मारते हुए कहा—"**जरा इसका भी मजा ले लो, यह हिन्दुस्तान का डण्डा है।**"

बस फिर क्या था, भगदड़ मच गई, किसी ने वहीं पर एक पटाखा भी फोड़ दिया। अचानक इस तरह ढींगड़ा जी की निन्दा प्रस्ताव पास हुए बिना ही सभा भंग हो गई।

सावरकर द्वारा फ्रांस के समुद्र में कूदना-सावरकर जी की ऐसी क्रान्तिकारी सक्रियता से घबराकर उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। इन पर मुकदमा चलाने के लिए इन्हें जल मार्ग से भारत लाते हुए फ्रांस के रास्ते में श्यामजी ने इन्हें अंग्रेज पुलिस से छुड़ाने का प्रयत्न किया। श्यामजी की योजनानुसार ही सावरकर जहाज से समुद्र में कूद गए। अंग्रेज सिपाहियों द्वारा लगातार गोली चलाए जाने पर भी यह शेरपुत्र समुद्र की छाती चीरता हुआ मार्सलेज नामक बन्दरगाह पर जा लगा। फ्रांस की भूमि पर भागते हुए वहाँ के एक सिपाही पर विश्वास कर लिया और कहा कि वह सावरकर को कोई फ्रेंच अदालत में ले जाए। पर फ्रेंच सिपाही की मूर्खता से अंग्रेज सिपाही ने फिर से सावरकर को पकड़ लिया और कच्छे-बनियान में ही उन्हें घसीटते हुए जहाज की ओर लाया गया। तब इस वीर ने गर्जना करते हुए कहा कि '**तुम्हारे द्वारा इस तरह अन्तर्राष्ट्रीय नियमों का उलंघन कर दूसरे देश में बिना पूछे मुझे पकड़ना गैरकानूनी है।**' वहाँ सुनने वाला कोई नहीं था। उन्हें इस तरह भारत लाकर उन पर सम्राट-विद्रोह का मुकदमा चला दिया गया। यद्यपि इनके सहयोगियों ने हेग के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध इस मुकदमे के तहत मुकदमा चलाया परन्तु अंग्रेजों का जोर होने के कारण उन्हें न्याय नहीं मिला।

उक्त मुकदमे के क्रम में जब संगीनों के बीच पुलिस से घिरे सावरकर को न्यायालय में लाया गया, तो भारत के इस गौरवपुत्र ने हथकड़ियों में बँधे दोनों हाथों को मेज पर जोर से पटकते हुए '**भारत**

माता की जय' का उद्घोष किया जिससे इनके तेजोमय स्वरूप को देख वहाँ का न्यायाधीश भी चकित रह गया। अनेक आरोपों के तहत इस महान् वीर को दो जन्मों के लिए काला पानी की सजा दी गई जिसका अर्थ 50 वर्ष की सजा थी। इस आर्यपुत्र ने संस्कृतियुक्त चेतना को प्रकट करने में कोई अवसर खाली नहीं जाने दिया। वीर सावरकर ने वहाँ हँसते हुए जो कहा, वह नितान्त स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है। पुनर्जन्म की घोषणा पर बोले—''**चलो अंग्रेजी सरकार ने मुझे दो जन्मों का दण्डरूप कारावास देकर आर्य धर्म के पुनर्जन्म के सिद्धान्त को तो मान लिया, जिसके लिए ईसाइयत में अभी तक कोई स्थान नहीं है।**'' यह था उनका वैदिक आर्य सिद्धान्तों के प्रति गहन विश्वास जो इन्हें कट्टर आर्यसमाजी श्यामजी कृष्ण वर्मा द्वारा यह वैदिक ज्ञान मिला था।

जब इन्हें दण्ड-पटिका देते हुए सरकारी अधिकारी ने कहा कि मेरी दयालु सरकार तुम्हें 1960 में मुक्त कर देगी। वह सजा उन्हें 1910 में दी गई थी। तपाक से इस वीरपुरुष ने फिर भारत के गौरवपूर्ण स्वतंत्रता संग्राम पर पूर्ण विश्वास करते हुए कहा कि ''**यह दया! अरे तुम यह विश्वास करते हो कि 1960 तक अंग्रेजी सरकार का राज्य रह पाएगा?**''

यह उनकी कैसी भविष्यवाणी थी जो पूर्णतया सिद्ध हुई और 1947 में ही भारत को आजादी मिल गई। 1942 का 'भारत छोड़ो आन्दोलन' में भी सावरकर सक्रिय हुए। भारत के ऐसे ही अनेक क्रान्तिकारियों के साहस एवं वीरतापूर्ण कदमों से डरकर अंग्रेजों को भारत छोड़ना पड़ा। ऐसा कोई न सोचे कि बिना ढाल तथा तलवार से ही आजादी मिल गई।

दुल्हन के हाथों की मेहंदी–अभी इस युवक वीर का विवाह ही हुआ था और काले पानी की सजा हो गई। दुलहन के हाथों की मेहंदी भी नहीं छूटी थी कि इनकी धर्मपत्नी इनसे जेल में मिलने आईं। संसार की रंगरलियां, वैवाहिक सपने सँजोए, दिलों के अरमान सब भावों को लिये अपनी धर्मसंगिनी को 50 वर्षों तक संयमित होने का संबल देते हुए किन शब्दों में समझाते हैं, जरा विचार करें—''**यदि ईश्वर कृपा हुई तो पुनः भेंट होगी, तब तक यदि सामान्य संसार का मोह होने लग जाय, तो ऐसा विचार करो कि बेटे-बेटियों की संख्या बढ़ाना तथा चार तिनके जमा करके घर बाँधना ही यदि संसार कहलाता है तो ऐसे**

संसार तो कौवे और चिड़ियाँ भी करती रहती हैं।''

नवेली पत्नी को उपदेश-इससे भी आगे इस वीर ने अपनी धर्मपत्नी के हृदय में देश के प्रति प्रेम पैदा करते हुए जो कहा वह भी पढ़ने योग्य है—''यदि परिवार का इससे भव्य अर्थ लेना हो, तो मानव के समान उसके योग्य संसार सजाने में हम भी तो कृतकार्य हो चुके हैं। हमने अपने दो-चार मटकों को तोड़-फोड़ डाला जिससे आगे चलकर हजारों के घरों में शायद सुवर्ण का धुआँ उठेगा।'' वह हिम्मत बँधाते हुए कहते हैं—''फिर भी घर करने वाले कितने लोग प्लेग के शिकार बन ही जाते हैं और घर बेचिराग हो जाता है। विवाह मंडप से भी पति-पत्नी को विलग कर मृत्यु के दाँतो तले दबाकर दैव कई जोड़ियों को बिजोड़ (अलग कर देना) बना देता है। यही संकटों से सामना करना सीखो।''

जरा विचार करें, उनके हृदय से निकली इस प्रकार की बातों से उनकी धर्मपत्नी को कितनी सान्त्वना मिली होगी और अपने राष्ट्रभक्त क्रांतिकारी पति पर कितना गौरव हुआ होगा। लेकिन यह अनुभूति वाणी द्वारा प्रकट नहीं की जा सकती।

अण्डमान जेल और भीषण यातनाएँ—यद्यपि सावरकर जी लन्दन से बैरिस्टरी उत्तीर्ण थे। फिर भी इन्हें खतरनाक कैदी मानकर पोर्टब्लेयर की कोठरी न. 123 में रखा गया जहाँ सुविधा के नाम पर सब नगण्य था। निम्न कैदियों की तरह इन्हें भी नारियल की रस्सी बांटना और दिन भर कोल्हू खींचने जैसा पाश्विक कार्य करना पड़ता था। टबों में नहाने वाले को केवल तीन कटोरी पानी से नहाना पड़ता था। पढ़ने-लिखने का कोई प्रबन्ध न था। वर्ष में एक बार ही घरवालों का समाचार जानने के लिए पत्र लिखने की आज्ञा थी। कहते हैं कि इसके लिए उन्हें कागज भी कटाफटा ही मिलता था। वहाँ के दीवारों पर लिखकर उन्होंने साहित्य रचा था। साथ रहते कैदियों को नैतिक शिक्षा दिया करते थे। अपने उपदेशों में महर्षि दयानन्द रचित 'सत्यार्थ प्रकाश' का अधिक प्रयोग किया करते थे। उन्हीं के लिखे ये शब्द पढ़ने योग्य हैं—

जेल में सत्यार्थ प्रकाश-''अण्डमान में हिन्दी पुस्तकों की भरती करके फिरते (घूमने वाले) अन्तस्थ वाचनालय रखे गए थे। जिसका वर्णन इसी ग्रन्थ में अन्यत्र किया गया है। इन वाचनालयों में अर्थशास्त्र, राजनीति,

राजकीय आन्दोलन आदि की नवीनतम पुस्तकें भी नित्य आती रहती थीं, जिससे प्रौढ़ विषयों का ज्ञान होने में सुविधा मिलती रही। सत्यार्थ प्रकाश की ओर मैंने विशेष ध्यान दिलवाया। राजबन्दी भी उसे बार-बार पढ़ते रहे। स्वामी दयानन्द जी का वह ग्रन्थ कुछ अपवाद छोड़कर हिन्दू संस्कृति के उच्च तत्त्व मन पर अंकित करता है, हिन्दू धर्म का राष्ट्रीय स्वरूप व्यक्त करता है। तथा वह है एक अदम्य उत्साही छाती का प्रचारक।''

'आजन्म कारावास' भाग-3, पृ. 599, विनायक दामोदर सावरकर

दोनों भाई जेल में-यह सत्य है कि उसी जेल में इसी तरह के क्रांतिकारी साहस भरे कार्यों के आरोप में इनके बड़े भाई **श्री गणेश दामोदर सावरकर** भी पूर्व से ही कैद थे। जब वीर सावरकर वहाँ कैदी बन कर गए, तो उनके बड़े भाई को ज्ञात नहीं था। वहाँ चन्द मिन्टों की ही मुलाकात हो पायी, इसी में दोनों को अपार खुशी हुई। दोनों वीर बड़े साहसपूर्वक स्वाधीनता के उत्कृष्ट भावनाओं को अपने सीने में सिमटे जेल की भयंकर से भयंकर यातनाएँ सहते रहे। 14 वर्ष के बाद उन्हें रत्नागिरी जेल में लाकर रखा गया। वहाँ भी हिन्दी का प्रचार करते रहते थे।

जेल से रिहा होने पर बाहर देशवासियों ने जोरदार स्वागत किया। यद्यपि उनका शरीर कमजोर हो चला था पर दिलो-दिमाग से बलवान थे। यह न भूलना होगा कि आर्यसमाज द्वारा आयोजित हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के मार्ग दर्शन के लिए वहाँ उत्साहपूर्वक उपस्थित होकर सबको आशीर्वाद ही नहीं, बल्कि सत्याग्रह के लिए मार्ग दर्शन भी किया।

इस तरह स्वाधीनता के लिए अंग्रेजों द्वारा बर्बरतापूर्ण यातनाओं को सहन करते हुए उन्होंने अपना जीवन लगा दिया। परिवार से दूर रहकर केवल राष्ट्र को अपने अन्तःकरण में सँजोय हुए अपने मिशन से लगे रहे। पर दुर्भाग्य है कि स्वतंत्र भारत ने जो महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू का भारत कहा जाने लगा, इस वीर को कभी श्रद्धांजलि भी नहीं दी। भारत के विनाश एवं अपयश का कारण बनने वाले मि. चर्चिल के मरने पर कांग्रेसी सरकार अपना राष्ट्रीय झण्डा झुकाकर तथा उसके शोक में संसद का अधिवेशन तक स्थगित कर अपना गौरव तो महसूस कर सकती है, शेख अब्दुल्ला को जेल में मेहमान की तरह सुविधा देकर रख सकती है पर हाय! भारतीय स्वाधीनता के लिए सारा जीवन अंग्रेजों द्वारा

कठोर दण्ड को सहते हुए अपनी काया को जर्जर करने वाले हिन्दू संस्कृति, हिन्दी भाषा तथा भारत माँ के प्रति अपना जीवन न्यौछावर कर देने वाले इस वीर के लिए स्वतंत्र भारत की सरकार के हृदय में लेश मात्र भी सम्मान की भावना उत्पन्न नहीं हुई। ऐसे नुमाइंदों के पास हृदय था ही नहीं तभी तो सावरकर जी के सर्वस्व त्याग की अनुभूति इन्हें नहीं हुई। पाषाण हृदयी जो ठहरे! यह स्वतंत्र भारत की कांग्रेसी सरकार की मानसिक रूप से विदेशी दासता नहीं तो और क्या है और उस सरकार को महात्मा गांधी का सानिध्य एवं आशीर्वाद दोनों प्राप्त थे। जीवनभर सावरकर गांधीवादी सरकार को खटकते रहे, इतना ही नहीं, महात्मा गांधी की मृत्यु पर भी इन्हें फंसाया गया। तब लोकसभा में इन्हें सहायता देने का प्रस्ताव रखा गया तो एक कांग्रेसी सदस्य ने इन्हें साम्प्रदायिक कह दिया और सहायता देने का विरोध किया। उधर जम्मू-कश्मीर को अपनी बपौती समझने वाले अखंड भारत के द्रोही शेख अब्दुल्ला को आम जनता को मूर्ख बनाने के लिए जेल में सुख-सुविधाओं के साजो सामान जुटाने में इस सरकार के कदम पीछे नहीं हटे। यह घटना उक्त सरकार को मुस्लिम तुष्टिकरण का सिपाही ही सिद्ध करती है। हम कह सकते हैं कि शायद सावरकर का एक हिन्दू होना ही उक्त सरकार की निगाहों में बहुत बड़ा गुनाह था। उनके निर्देशन में हैदराबाद सत्याग्रह में आर्यसमाज और हिन्दू महासभा के सम्मिलित कार्यकर्ताओं द्वारा निजाम सरकार के अत्याचारों को बन्द करने तथा सत्यार्थ प्रकाश की रक्षा करने के लिए 'निजाम निषेध दिवस' मनाया जाना, 'भागलपुर जन मोर्चा' को एक सबल दिशा देना, 'सत्यार्थ प्रकाश बन्दी' का विरोधात्मक आर्य आन्दोलन को बल देना आदि उनके द्वारा किए गए साहसिक कार्य स्वाधीनता संग्राम में प्रबल भागीदार बने। तभी तो आर्यसमाज ने उनके सम्मान में अभिनंदन समारोह का आयोजन किया।

आर्यसमाज द्वारा वीर सावरकर का अभिनन्दन—सन् 1957 ई. में दिल्ली में आर्य जगत् द्वारा आर्यसमाज को सर्वत्र सहयोग देने तथा भारत की स्वाधीनता को महर्षि दयानन्द की दृष्टि से समझने के लिए भव्य अभिनन्दन किया गया। इसमें सम्पूर्ण भारत से आर्यजन उपस्थित हुए। हजारों की संख्या में आर्य मौजूद थे। सावरकर जी ने अपने

अभिभाषण में मुक्तकंठ से आर्यसमाज तथा महर्षि दयानन्द के विचारों से स्वयं प्रभावित होने की बात कही—

''आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द के सम्बन्ध में मेरी श्रद्धा किसी से छिपी नहीं है। महर्षि का सत्यार्थ प्रकाश पढ़कर मैं सन्तोष प्राप्त करता हूँ। मैं जिस स्वाधीनता का चिन्तन करता हूँ, उसमें महर्षि का सत्यार्थ प्रकाश सहायक है, इसलिये मैं महर्षि दयानन्द का पक्का चेला हूँ।''

आगे आपने कहा—**''इस समय देश में आर्य सामाज ही एक ऐसी संस्था है, जो प्रत्येक प्रकार के राजनैतिक स्वार्थों और संदेहों से ऊपर है, इसी में देश के कल्याण की अधिक क्षमता है।''**

नव भारत टाइम्स, देहली 16.8.57 का अंक

''ऋषिवर के इन देशभक्त वीर शिष्यों ने भारत राष्ट्र को पराधीनता के जंजीरों को तोड़ने के लिए अपने परिवारों को बिलखता छोड़, मातृभूमि से दूर अण्डमान की काल कोठरियों में अपनी खिलती जवानियाँ गला कर रख दीं। काश कि आज के इतिहासकार इनके बलिदानों का यथार्थ विवरण जनता तक पहुँचा कर कुछ कृतज्ञता प्रकट कर पाते।''

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में आर्यसमाज का योगदान
पृ. 78, आचार्य सत्यप्रिय शास्त्री, हिसार वाले

आर्य वीर मदनलाल ढींगड़ा

मदनलाल ढींगड़ा

अमृतसर (पंजाब) में 18 फरवरी 1883 को श्री दित्तामल जी सिविल सर्जन के घर उनका जन्म हुआ। 17 अगस्त 1909 को उन्हें फाँसी पर लटका दिया गया। वह 'अभिनव भारत' के सदस्य थे। उनके पिता तो पूरी अंग्रेजियत में डूबे हुए थे, परन्तु जब मदनलाल ढींगड़ा सन् 1906 में 19 वर्ष की अवस्था में इंजीनियरिंग की पढ़ाई के लिए यूनिवर्सिटी कॉलेज ऑफ लन्दन में प्रवेश लिया, तभी वहाँ वह पं. श्यामजी कृष्ण

वर्मा व वीर सावरकर के सम्पर्क में आए और आर्यसमाजी भावनाओं से प्रेरित हो वह भी स्वाधीनता संग्राम की कड़ी बने।

'इण्डिया हाउस' में रहते हुए वह सत्यार्थ प्रकाश की कथा तथा देशभक्ति का विचार वह भी हर रविवार को होने वाले सत्संग में श्यामजी तथा सावरकर से सुना करते थे बस, महर्षि दयानन्द के बताए स्वदेशीय प्रेम के पुजारी बन गए। 1 जुलाई 1909 में लन्दन के एक समारोह में उन्होंने गोली मार कर कर्जन वायली की हत्या कर दी। विदेश में पहली बार किसी अंग्रेज ऑफिसर को मारकर किसी भारतीय सपूत ने अपनी भारत माता को उपहार दिया था। इस कारण उन्हें 23 जुलाई 1909 को फाँसी की सजा सुनाई गई। उस 22 वर्षीय भारतीय सपूत को 17 अगस्त, 1909 को फाँसी पर लटका दिया गया, परन्तु उस वीर ने अपने चेहरे पर कोई मलिनता नहीं आने दी।

मदन लाल ढींगड़ा ने लाहौर में प्रारम्भिक शिक्षा पूरी की थी। पंजाब विश्वविद्यालय से बी.ए. की थी। कहते हैं कि वह शुरू से ही थोड़ा क्रांतिकारी तबीयत के थे। कॉलेज में भी अंग्रेजों के खिलाफ कुछ बोल दिया जिसकी रिपोर्ट बड़े अधिकारियों के पास चली गई फलत: उन्हें लाहौर कॉलेज से निकाल दिया गया। इनके पिता ने भी नाराज होकर उन्हें घर से निकाल दिया। फिर कुछ दिन तक कश्मीर में सेटलमेंट विभाग में नौकरी की परन्तु वहाँ उनका मन नहीं लगा। अपने भाई की सहायता से वे इंजीनियरिंग की पढ़ाई करने के लिए लन्दन आ गए और इंडिया हाउस में रहने लगे। लन्दन में 10 मई 1908 को, 'क्रांति दिवस' 1857 के स्वतंत्रता संग्राम दिवस के रूप में मनाया गया, तब उन पर श्यामजी, सावरकर, लाला लाजपत राय आदि नेताओं के क्रांतिकारी भाषणों का बहुत प्रभाव पड़ा।

कर्जन वायली को मारने का निश्चय-उन्हें पता चला कि वहाँ कर्जन वायली एक बहुत क्रूर अंग्रेजी ऑफिसर रहता है जिसके कहने से ही भारत में पंजाब, बंगाल तथा महाराष्ट्र के अनेक क्रांतिकरियों को फाँसी की सजा दी गई। यह सुन उन्होंने मन ही मन में उसे मारने का इरादा कर लिया। उधर अंग्रेजी ऑफिसरों की डायरी में इंडिया हाउस में रहने वाले सब युवकों के नाम आ चुके थे। वहाँ अंग्रेजों के खिलाफ गतिविधियाँ चला ही करती थीं, इससे अंग्रेजों ने इंडिया हाउस को भी

बन्द करने का आदेश दे दिया था। अत एव ढींगड़ा जी को भी कहीं बाहर रहना पड़ा परन्तु भारत माँ के प्रति प्रेम कम न हुआ। एक दिन उन्हें पता चला कि एक समारोह को सम्बोधित करने के लिए कर्जन वायली इंपोरियल इंस्टिट्यूट में आ रहा है। उसी समय उन्होंने उसे वहीं ढेर करने का निश्चय कर लिया। वह भी उस इंस्टिट्यूट के सदस्य बन गए और उन्होंने सूटबूट पहनकर वहाँ भी आने-जाने लगे। अपने मित्रों की सहायता से उन्होंने पिस्तौल चलाना भी सीख लिया था। कुछ दिनों के अभ्यास के बाद वह अचूक निशाना लगाने लगे। बस क्या था! वह उस समारोह में गए और जब कर्जन वायली ने भारत की निन्दा करनी शुरू कर दी तो उनका खून खौलने लगा। उन्होंने उसके नजदीक जाकर जेब से पिस्तौल निकाला और कई गोलियाँ उस अंग्रेज कर्जन वायली पर दाग कर उसे ढेर कर दिया। वहीं एक पारसी डॉक्टर काव्स्की काका नामक व्यक्ति ने उन्हें पकड़ने की कोशिश की तो उसे भी गोलियों से ढेर कर दिया। बाद में पुलिस ने उन्हें पकड़ लिया और मुकदमा चला कर फाँसी दे दी गई।

कोर्ट-केस के निर्णय से पूर्व देशभक्त वीर मदन लाल ढिंगड़ा की अभिव्यक्ति–

"मैं अपने बचाव में कुछ कहना नहीं चाहता पर मेरे द्वारा कर्जन वायली को मारा जाना पूर्णत: न्यायसंगत है; यह अवश्य कहना चाहता हूँ। जहाँ तक मेरा सवाल है इंग्लैण्ड की किसी भी कोर्ट को मुझे गिरफ्तार करने, जेल में रखने या मौत की सजा देने का कोई अधिकार नहीं है। यही कारण है कि अपनी रक्षा के लिये मैंने कोई वकील नहीं किया। और मेरा यहाँ यह कहना है कि अगर इंग्लैण्ड पर जर्मनी कब्जा करने की कोशिश करे और अंग्रेज लोग जर्मनी का विरोध करें तब उस एक अंग्रेज व्यक्ति के लिये इंग्लैण्ड द्वारा जर्मन के खिलाफ कार्यवाही करना देशभक्ति मानी जायेगी तो इस तरह मेरे केस में मेरे लिय अंग्रेजों के विरोध में लड़ना कहीं अधिक न्यायसंगत और देशभक्ति का काम है।"

विगत पचास (50) वर्षों में लगभग आठ करोड़ भारतीय जनता की हत्या और प्रतिवर्ष भारत से करीब एक अरब रुपये लूटकर इंग्लैण्ड लाने के लिये मैं अंग्रेजी सरकार को जिम्मेवार समझता हूँ।

अपने बेनुनाह भारतीय लोगों को हमेशा फांसी और देश-निर्वासन सजा देने के लिये मैं इन्हें पूरी तरह जिम्मेवार समझता हूँ। जबकि इन भारतीयों ने भी वही काम किया जो अंग्रेज लोग जर्मनी के खिलाफ करने के लिये अंग्रेज लोगों को प्रोत्साहित करते है। और ब्रिटिश सरकार द्वारा जो अधिकारी भारत भेजे जाते हैं उन्हें भारत की धनराशि से एक सौ पौंड (£100) मासिक रूप से दिया जाता है जो हमारे लगभग एक हजार गरीब भारतीय लोगों के भोजन आदि के खर्च के बराबर है जिस धन को ये अंग्रेज अधिकारी अपनी मौज-मस्ती में उड़ा देते हैं। इस धन के अभाव में भारतीय गरीब लोगों में भूखमरी की समस्या होती है।

जैसे जर्मनी वालों को ब्रिटेन पर राज करने का कोई हक नहीं है वैसे ही इंग्लैण्ड वालों का भी भारत को अपने कब्जे में रखने का कोई अधिकार नहीं बनता। जो हमारी मातृभूमि को अपवित्र कर रहा है, उस अंग्रेज की हत्या करना हमारे लिये विल्कुल ही न्यायसंगत है। मैं अंग्रेजों की ऐसी झूठी-मक्कारी दोहरी नीति पर हैरान हूँ। एक तरफ तो कांगो और रुस के प्रताड़ित लोगों की मदद करने में ये अंग्रेज लोग अपने को चैम्पियन समझते हैं और दूसरी ओर ये ही अंग्रेज भारतवर्ष में भारतीयों को भयंकर (क्रूरतापूर्ण) प्रताड़ित कर उन पर अत्याचार कर रहे हैं। उदाहरण के तौर पर तुम अंग्रेज लोग हर साल हमारे दो लाख भारतीयों को मारते हो और साथ ही भारत की स्त्रियों का अपमान भी करते हो।

अगर ब्रिटेन पर जर्मनी अपना अधिकार बना ले, और तब एक अंग्रेज जर्मन के लोगों को शिर उठाकर गर्व से लंदन की गलियों में घूमता देखे, और वह (क्रोध में) एक-दो जर्मन को मार दे, और ऐसी स्थिति में ब्रिटेन की जनता उस अंग्रेज को देशभक्त समझे तो निश्चय ही मैं भी अपने देशगौरव में स्वदेश की स्वतंत्रता के लिये काम करने हेतु हरदम तत्पर हूँ।

इस कोर्ट के सामने मैंने आज इस पत्र द्वारा अपनी अभिव्यक्ति जो भी की है; उसमें कोर्ट से दया की भीख माँगने का मेरा कोई भी उद्देश्य नहीं है। बल्कि उल्टा मेरी तो यह इच्छा है कि अंग्रेज मुझे

फाँसी की सजा दे, ताकि मेरे देशवासियों में मेरे बदले की भावना और जगे जिससे मेरे जैसे भारत में और देशभक्त जाग सके। मैं अपने इस कथन के द्वारा ब्रिटेन के बाहर दुनियाँ वालों और विशेषकर भारत से सहानुभूति रखने वाले अमेरिका और जर्मनी के लोगों में अपने किये कार्य को न्यायसंगत ठहराना चाहता हूँ।

प्रिय पाठक वृन्द! देश-प्रेमी बलिदानी वीर युवा मदन लाल ढींगड़ा की उपरोक्त अभिव्यक्ति से आप स्वयं ही उसकी देशभक्ति का अंदाजा लगा लें। इन्हीं बलिदानियों के कारण हमारा भारत स्वतंत्र हुआ।

समकालीन ब्रिटिश समाचार पत्रों के अंश (उद्धरण)

जस्टिस, 27 अप्रैल, 1907

भारत में हमारा टूटता नियम

पिछले एक सप्ताह के दौरान भारत से दो समाचारों की ओर सामान्य से अधिक ध्यान आकर्षित किया गया है।

एक मैं "पंजाबी" के संपादक की लोकप्रिय अन्यायपूर्ण निंदा के खिलाफ विरोध करता हूँ जिसके कारण लाहौर में दंगा हुआ। दूसरा, यह कथन है कि पिछले सात दिनों में पूरे भारत में प्लेग से 75,000 लोग मारे गए थे। प्लेग अनिवार्य रूप से गरीबी को गहरा प्रभाव करने का प्रमाण है, और निस्संदेह इसका देशी समाज पर एक विघटनकारी प्रभाव है, जो हमारी सरकार के अधीन अकाल भी शायद ही कभी ला सके।

"जैसा कि मैंने पिछली गर्मियों में "टाइम्स" में अपनी चर्चा में एक बार फिर साबित किया, गरीबी से त्रस्त भारत से हमारे धन की निकासी, बिना वापसी के, एक वर्ष में 35,000,000 (पैंतीस मिलियन पाउंड) से अधिक है। यह जबरदस्त नाला हाथ से मुँह लगाने वाले काश्तकारों पर दसियों के लगभग अकल्पनीय दुःख को तीव्र करता है। और उन अंग्रेज़ों के बीच निर्मित भूखमरी-जिनके पेट से मिस्टर जॉन मॉर्ले (भारत के राज्य सचिव) इतने शालीनता से अपने 5,000 प्रति वर्ष पंप करते हैं। ब्लैक प्लेग अपना प्राकृतिक आवास पाता है।

यह हम अंग्रेजों के लिए सुखद नहीं है, जिन्होंने लगभग तीस वर्षों तक इस बदनामी की निंदा की है, यह जानकर कि हम एक राष्ट्र के रूप में इस समय सीधे तौर पर एक सप्ताह में हमारे साथी विषयों के 75,000 लोगों की मौत के लिए जिम्मेदार हैं। क्या हमारा यह कहना उचित नहीं है कि निरंकुश विदेशी शासन के तहत शांति की इन भयावहताओं को रोकने वाली कोई भी कार्रवाई मानवता के लिए लाभ होगी?

लाहौर में हुए दंगों के बारे में टेलीग्राफ का दूसरा बयान भी महत्त्वपूर्ण है। आम लोगों के एक भारतीय के लिए भारत में एक अंग्रेज के खिलाफ पूर्ण न्याय प्राप्त करना बेहद असंभव है। पूरे हिंदुस्तान में केवल 200,000 यूरोपीय और यूरेशियन हैं, 300,000,000 (तीन सौ मिलियन) भारतीयों के मुकाबले, जिनमें से कुछ 230,000,000 ब्रिटिश क्षेत्र में हैं। ऐसी परिस्थितियों में, स्वाभाविक है, और विदेशी शासकों के दृष्टिकोण से लगभग आवश्यक है, मुट्ठी भर शासी गोरों की ओर से गलत कामों को स्वीकार नहीं करना। समय-समय पर यह दिखाया गया है कि भारतीयों और यूरोपीय लोगों के बीच व्यक्तिगत मतभेदों के व्यवहारिक रूप से सभी मामलों में यह दृष्टिकोण लिया जाता है। "पंजाबी" के संपादक ने एक विशेष उदाहरण में इस विचार को लिया।....

लेकिन तथ्य यह है कि इस मामले में न केवल पंजाब में, बल्कि बंगाल में, उस प्रांत के पूरी तरह से अनुचित विभाजन के संदर्भ में, ब्रिटिश नीति में आपत्तिजनक बिंदुओं के खिलाफ सार्वजनिक प्रदर्शन आजकल असामान्य नहीं हैं। मुसलमानों और हिन्दुओं के बीच बुरी भावना पैदा करने के सरकारी अंगों के प्रयासों के बावजूद, भारतीय निराशाजनक रूप से बर्बाद और असंगत यूरोपीय निरंकुशता के खिलाफ कारण बनाने लगे हैं; और केवल एशियाई सामान खरीदने के पक्ष में स्वदेशी आंदोलन, हालांकि अभी तक उतना सफल नहीं है, जितना कि इसके प्रमोटर इसे बनाने की उम्मीद करते हैं, यह "भारतीयों के लिए भारत की भावना" के विकास का भी मजबूत सबूत है।

भारत–13 दिसंबर, 1907

"भारत की गरीबी"

लिवरपूल में सिस्टर निवेदिता का संबोधन

श्रीमती अल्फ्रेड बूथ ने 4 दिसंबर को कॉमन हॉल, हैकिन्स हे में आयोजित लिवरपूल भारतीय अकाल समिति की छठी वार्षिक बैठक की अध्यक्षता की।

सिस्टर निवेदिता ने "भारत की गरीबी" पर एक वाक्पटु भाषण दिया, जिसके बारे में उन्होंने कहा, यह तब तक बढ़ रहा था जब तक कि एक सामान्य अकाल की संभावना नहीं थी। वह चाहती थी कि भारत की स्थिति और व्यक्तिगत जिम्मेदारी की भावना के बारे में सोचने के लिए वह सोने में असमर्थ अपने दर्शकों को घर भेज सके।

उन्हें एक मुख्य तथ्य यह समझना था कि भारतीय गरीबी लोगों की किसी गलती के कारण नहीं बल्कि उनके किसी विदेशी देश के संपर्क में आने के कारण थी।

भारत बर्बर लोगों की भूमि नहीं थी, बल्कि दुनिया के सबसे उच्च सभ्य देशों में से एक थी: लेकिन उसकी पुरानी सभ्यता अब वह नहीं थी जो एक बार थी, क्योंकि इसकी सभी सादगी के साथ, लोगों के क्रेडिट पर्स पर कुछ मांगें थीं, और लोगों के पास अब न तो पैसा था और न ही क्रेडिट। पिछले साल उन्होंने पूर्वी बंगाल के अकाल जिलों का दौरा किया था। उन जिलों की भयावह स्थिति को शब्दों में बंया नहीं किया जा सकता। और कस्बों में चीजें बेहतर नहीं थीं।

उसके श्रोताओं की तरह परिष्कृत, अभिमानी, ईमानदार, ऊर्जावान और श्रमसाध्य लोग, और लंबे समय तक "वंश" और सभ्यता के साथ, कलकत्ता में एक दिन में एक ही और कम भोजन पर मौजूद थे, लेकिन अपनी भूख को छुपा रहे थे। इंग्लैंड के लोग, किसी भी पर्याप्त अर्थ में, उच्च जाति के भारतीय गरीबों की चुप्पी के गौरव, मितव्ययिता और दृढ़ संकल्प को नहीं समझ पाए।

"भारत के लोगों के भोजन को पैसे में बदलना" बुराई की जड़ में था। भारत में राष्ट्रीय आंदोलन "इंडिया" दिनांक 13 दिसंबर, 1907, पृष्ठ 287 से उद्धरण–

निम्नलिखित पत्र, जिसे हम न्यूयॉर्क के एक हालिया अंक "सन" से निकालते हैं, लिखा गया है, चाहे वह हिंदू "देशद्रोह-मोंगर" या "बंगाली बाबू" द्वारा नहीं बल्कि एक मुसलमान, श्री मोहम्मद बराकतुल्लाह द्वारा लिखा गया हो:-

"अक्टूबर 1905 में बंगाल के विभाजन के बाद से, भारत में विचार के लिए नेताओं ने हिंदुओं और मुसलमानों के बीच एकता और भाईचारे की भावना लाने की दिशा में अपने प्रयासों को निर्देशित किया है। अंग्रेजों के खेमे में तब खलबली मच गई जब हिंदू और मुसलमान आपस में भाईचारा करते नजर आए। लाला लाजपत राय जाति या धर्म की परवाह किए बिना मिट्टी के बच्चों के बीच मिलन के लिए अग्रणी कार्यकर्ता रहे हैं। एक शांतिदूत और एकीकरणकर्ता के रूप में उन्हें ब्रिटिश शासन के लिए खतरनाक समझा गया और इसलिए उन्हें मांडले जेल में भेज दिया गया।

भारत के राज्य सचिव श्री जॉन मॉर्ले ने शिक्षित भारतीयों को "हमारे दुश्मन" बिना मुकदमे के निर्वासित कर रहे हैं, और भारतीय जेलों को उनके साथ भर रहे हैं। मिस्टर लिंटन और उनकी क्षमता के लोग हमेशा भारत को तलवार से जीतने और उसे तलवार से ही रखने की बात करते हैं। लेकिन मुझे खुशी है कि जॉन मॉर्ले ने भारत को एक विजेता के रूप में शासन करना शुरू कर दिया है, क्योंकि ऐसा करके उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन को प्रोत्साहन दिया है।

"इंडिया" दिनांक फरवरी 1928, 1908

आर्यसमाज के बारे में सच्चाई

श्री। नेविंसन का ग्राफिक शब्द-चित्र

"भारत सरकार, ने हमेशा डरपोक और संदेहास्पद, हाल ही में समाज को विशेष शत्रुता के साथ माना है, और मैं उच्चतम चरित्र के एक सैनिक को जानता हूं, जो केवल एक सिख रेजिमेंट से संबंधित होने के लिए बाहर कर दिया गया था।"

"राजद्रोह" का केंद्र नहीं।

"लेकिन भारत सरकार ने भी इसे देशद्रोह का केंद्र मानने से

बड़ी गलती शायद ही की हो। दोनों वर्गों के सच्चे नेताओं-जैसे लाहौर में वैदिक कॉलेज के प्रिंसिपल श्री हंस राज और यहाँ गुरुकुल के गवर्नर श्री मुंशी राम जैसे लोगों ने लगातार किसी भी प्रकार के राजनीतिक कार्यों के खिलाफ अपना चेहरा स्थापित किया है, और वे छात्रों के बीच राजनीतिक चर्चा करके उन्हें हतोत्साहित करते हैं।

"भारत" दिनांक 2 अप्रैल, 1909

आर्यसमाज अपनी प्रदर्शनी के साथ आगे बढ़ते हुए, "टाइम्स" के संवाददाता ने अपना एक और पत्थर आर्यसमाज पर फेंका। बम्बई में 80 साल से भी अधिक समय पहले स्थापित तथ्य कहा जाता है, कि आजकल वहां कुछ अनुयायी हैं: लेकिन पिछले कुछ वर्षों में पंजाब में यह बहुत मजबूत हो गया है। इसके अनुयायियों की संख्या अब संयुक्त प्रांत में लगभग 40,000 है, मुख्यत: पंजाब से सटे डिवीजनों में; और इसका वास्तविक मुख्यालय अब पंजाब में नहीं है, बल्कि इन प्रांतों के बिजनौर डिवीजन में कांगड़ी में है। "मूल रूप से यह एक विशुद्ध धार्मिक आंदोलन था, जो वेदों की शिक्षाओं पर आध ारित था। यह जाति और मूर्तिपूजा के उन्मूलन को बढ़ावा देता है, जल्दी (बाल-विवाह) विवाह की निंदा करता है, और विधवाओं के पुनर्विवाह की अनुमति देता है। साथ ही यह ईसाई धर्म के लिए हिंसक रूप से बताना शत्रुतापूर्ण है। इसमें कोई शक नहीं है कि आर्य समाज के सदस्यों की बड़ी संख्या केवल इसके आध्यात्मिक पक्ष से संबंधित है; लेकिन इसमें समान रूप से कोई सवाल नहीं हो सकता है कि संगठन ने, समग्र रूप से, ब्रिटिश शासन के विध्वंसक चिह्नित राजनीतिक प्रवृत्तियों को विकसित किया है।"

"डेली हेराल्ड" दिनांक 24 मार्च, 1931

आतंकियों को फाँसी

राहत की गांधी की अपील खारिज

राहत के लिए अंतिम क्षणों में बेताब प्रयासों के बावजूद, लाहौर बम षडयंत्र और एक पुलिस अधिकारी श्री सौंडर्स की हत्या में शामिल

होने के लिए तीन भारतीयों को कल लाहौर में फांसी पर लटका दिया गया था।

वे भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव थे।

समझा जाता है कि श्री गांधी ने खुद भगत सिंह को राहत देने के लिए सरकार से अपील की थी?

जवाब यह था कि चूंकि आतंकवादी ने खुद दया की अपील नहीं की थी, इसलिए अधिकारी याचिका पर विचार नहीं कर सके।

डेली हेराल्ड, दिनांक 25 मार्च 1931

निष्पादन के खिलाफ भारतीय विरोध

"गंभीर सरकारी भूल" पर गांधी भगत सिंह और दो अन्य लोगों के लाहौर में निष्पादन की खबर से भारत में गहरी नाराजगी पैदा हुई थी। "सरकार ने क्रांतिकारी पार्टी पर जीत हासिल करने का एक सुनहरा अवसर खो दिया है।" कराची में कांग्रेस सम्मेलन के लिए नई दिल्ली जाने से पहले श्री गांधी ने टिप्पणी की।

आर्यसमाज का प्रभाव–भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम का इतिहास, पृ. 182 लेखक इन्द्र विद्यावाचस्पति के अनुसार–"22 वर्ष की उम्र में हँसते-हँसते भारत माँ को सच्ची वीरता अर्पित करते हुए फँासी पर झूल जाने वाले उस युवक मदन लाल ढींगड़ा के स्वेदश-भक्ति की पहचान करना कोई मुश्किल नहीं है।"

"जब धींगड़ा इंडिया हाउस के सम्पर्क से देश भक्ति के रंग से रंग गया, तब उसने स्वयं ही वीर सावरकर जी से अपने दल में दीक्षित करने की प्रार्थना की। वीर सावरकर के कहने पर धींगड़ा ने अपना हाथ भूमि पर टेक दिया, सावरकर ने एक सूवा लेकर पूरे जोर से उसके हाथ पर दे मारा, सूवा मदन के हाथ में से पार निकलकर जमीन में जा गड़ा, परन्तु उसके मुख पर कोई भी विषाद का चिह्न दृष्टिगोचर न हुआ। सावरकर ने उसे प्रेमपूर्वक छाती से लगा लिया है और कहा कि आज से तुम मेरे दल में दीक्षित हो गए हो। ऋषि (दयानन्द) के इसी वीर शिष्य ने भरे जनसमूह में कर्जन वायली को गोली से उड़ा कर भारत माता के अपमान का प्रतिशोध लिया था।

पूर्ण मातृसेवा समर्पण-लन्दन की अदालत में वक्तव्य देते हुए धींगड़ा ने कहा था कि मैंने अनुभव किया कि पराधीनता हमारे परमात्मा के अपमान के समान है, मातृभूमि की सेवा ही श्रीराम और श्रीकृष्ण की सेवा है, मेरे पास न धन है, न बुद्धि है, मेरे जैसे निर्धन पुत्र के पास माता की भेंट चढ़ाने के लिए अपने रुधिर के अतिरिक्त कुछ नहीं, मैंने वही भेंट दे दी है। भारत में आज एक ही पाठ पढ़ाने की आवश्यकता है और वह यह कि मरा कैसे जाता है? और उसे सिखाने का सर्वोत्तम उपाय यह है कि हम स्वयं मरकर दिखाएँ, इस कारण मैं मर रहा हूँ, और अपनी इस मृत्यु पर गर्व करता हूँ।"

उस वीर युवक में देशभक्ति की भावना श्यामजी तथा सावरकर जी द्वारा सत्यार्थ प्रकाश के पाठ एवं स्वाधीनता की गाथाओं को सुनने से ही आई। जब उस वीर युवक को लन्दन के ब्रिक्स्टन जेल में डाल दिया गया और फाँसी की सजा सुना दी गई, तो तलाशी में उनके पास से कुछ पिस्तौल आदि हथियार भी मिले थे और कुछ कागजी दस्तावेज भी थे। भारत माँ के प्रति पूर्ण समर्पित उस युवक के एक पत्र में यह भी लिखा मिला-"मैंने वायली की हत्या अपने विवेक से सोच-समझकर की है। मुझे न तो किसी ने प्रोत्साहित किया है और न इसमें किसी अन्य का हाथ है। मैंने उसकी हत्या करके अपने धर्म का पालन किया है। प्रत्येक मनुष्य को अत्याचारी की हत्या करनी ही चाहिये।"

-गुगल पर लेख श्री राजकुमार माली द्वारा मदनलाल धींगड़ा का जीवन परिचय से उद्धृत

इसी तरह आर्यसमाज के विचारों से ओत-प्रोत प्रोफेसर भाई परमानन्द और श्री हरदयाल जी भी उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिए लन्दन गए और श्यामजी कृष्ण वर्मा से मिलकर और अधिक सुदृढ़ क्रांतिकारी बन गए। लाला लाजपत राय के सम्पर्क ने भी इन वीरों को भारत माँ की स्वाधीनता का अमर सेनानी बना दिया। लाला लाजपतराय को भी अंडमान जेल में डाल दिया गया। जेल से छूटने के बाद कांग्रेस से मिल कर लाला जी देश हित में काम करना चाहते थे, परन्तु मौलाना अली और महात्मा गांधी की नीतियों से विक्षुब्ध होकर उन्होंने कांग्रेस को छोड़ दिया। आगे के क्रम में यत्र-तत्र उनकी गाथा मिलती रहेगी।

पंचम अध्याय

भारतीय स्वाधीनता संग्राम में मर मिटने वाले अमर शहीद वीर भगतसिंह और तद्वत् अन्य भारतीय आर्य वीर

चतुर्थ अध्याय में हमने कुछ उन वीरों के साहसिक कार्यों के बारे में जाना, जिन्होंने विदेशों में रहकर अंग्रेजी सरकार की कड़ी नजर में होते हुए भी अपनी जान की बाजी लगा दी। भारत की आजादी के लिए फिरंगियों से जूझते हुए कैदी बनकर नाना प्रकार की यातनाओं को अंडमान जैसी जेलों

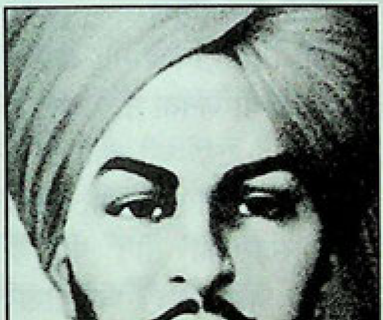

में भयंकर कष्टों को सहन किया। अपनी मातृभूमि के लिए अपना बलिदान देकर सर्वदा के लिए गौरवान्वित हो गए। क्यों न होते, संघर्षरत ऐसे क्रान्तिकारी किसी न किसी रूप में महर्षि दयानन्द की प्रेरणा पाकर ही भारत माता की सेवा में लगे थे। इनमें महर्षि दयानन्द की ही प्रेरणा काम कर रही थी कि विदेशी राज्य माता की तरह सब सुख-सुविधाओं के साथ भी प्यार दे तब भी त्याज्य है और स्वदेश सदैव जीवन के हर उतार-चढ़ाव में परम सुख का आधार है। इन्हीं संस्कारों से संस्कारित भारत में रहते हुए जिन वीरों ने आर्यसमाज की छाया में पले और महर्षि दयानन्द के स्वदेशी भावनाओं के दूत बनकर स्वाधीनता संग्राम में अपने प्राणों की

बाजी लगा दी जिनके कारण ही उक्त योजनाओं के हर कार्य में आर्यसमाज लगभग 80% की सहभागिता दर्ज कराई इसके लिए एक गैर हिन्दु पुरुष का बयान इस प्रकार पढ़ें और समझें कि जब भिन्न मत का व्यक्ति भी आर्यसमाज की सहभागिता का ऐसा बयान देता है तो इसमें निश्चित ही दम है।

आजादी से जुड़े एक सत्याग्रह में कांग्रेसियों ने सत्याग्रहियों का निरीक्षण करने के लिए मौलाना हसरत मौहानी को नियुक्त किया। वह कांग्रेस के एक बड़े अधिकारी भी थे। प्रायः उन्होंने सभी जेलों का निरीक्षण किया। फिर उन्होंने कमिटी के समक्ष अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। उन्होंने अपनी रिपोर्ट में आर्यसमाजियों के विषय में जो कुछ लिखा उसका एक अंश प्रस्तुत है—

''आज महात्मा गांधी के आदेश पर देश की स्वाधीनता के लिए गोराशाही की जेलों में बन्द जो लोग कठिन कष्ट काट-भोग रहे हैं, उनमें लगभग 80% आर्यसमाजी विचारधारा के हैं।''

यह सत्याग्रह 1930 ई. का नमक कानून भंग का आन्दोलन था। महर्षि दयानन्द ने 1874 ई. में ही अपने व्याख्यानों एवं पुस्तकों में स्वदेशी नमक के प्रयोग का समर्थन तथा इस पर लगते हुए टैक्स का पुरजोर विरोध किया था। यही कारण है कि महात्मा गांधी द्वारा किये गए आह्वान पर 1930 में भी अंग्रेजों के खिलाफ 80% आर्यसमाजी जनता ने सत्याग्रही बनकर आन्दोलन में भाग लिया और इसी तरह 1857 की क्रान्ति के शुभारम्भ से ही आर्यसमाज स्वदेश की स्वाधीनता के लिए आन्दोलनों में सर्वरूपेण जुटा रहा। पंजाब के वीर भगतसिंह की तीन पीढ़ियाँ आर्यसमाजी रहीं। और उक्त संग्राम में वे सब जूझते रहे। चन्द्रशेखर आजाद, रामप्रसाद बिस्मिल उत्तर प्रदेश की आर्यसमाजों में संस्कारित हुए। ऐसे ही वीर सुखदेव आदि अनेक क्रांतिकारी आर्यसमाज की छाया में महर्षि दयानन्द के राष्ट्रवादी चेतना से प्रभावित हुए और अपनी मातृभूमि के लिए बलिदान हो गए।

पाठकवृन्द इस अध्याय में इन्हीं वीरों की वीरता को पढ़ेंगे।

वीर भगतसिंह के पूर्वज तथा
उनकी टोली और आर्यसमाज से उनका सम्बन्ध

वीर भगतसिंह तथा उनके पूर्वज के बारे में लिखा जाए तो, एक बहुत बड़ी पुस्तक बन सकती है क्योंकि तीन पीढ़ियों से ही उनका परिवार महर्षि दयानन्द के विचारों से प्रभावित हो आर्यसमाज से जुड़ा था। सरदार अर्जुन सिंह लाला लाजपत राय के साथ उक्त संग्राम में अत्यधिक क्रियाशील रहे। इस परिवार में सबकी शिक्षा-दीक्षा आर्यसमाज एवं डी.ए.वी. स्कूल तथा कॉलेज में हुई थी। आगे उनके साहसिक कार्यों को पढ़ेंगे।

अमर शहीद भगतसिंह का जन्म तथा बचपन—इनका जन्म सम्वत् 1964, आश्विन शुक्ल तेरस, शनिवार प्रात: 6 बजे तदनुसार 19 अक्तूबर 1907 में गाँव वावली लायलपुर जिला बंगा (वर्तमान पाकिस्तान) में हुआ था। इनकी जन्म तिथि के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभदे है। हिन्दी तिथि तो ठीक है, परन्तु अंग्रेजी तारीख में मत भिन्न हैं। मैंने स्वयं पुराने हिन्दी पंचांग को देखा और पाया कि भगतसिंह की जन्म तिथि 19 अक्तूबर, 1907 ही प्रामाणिक है, न कि 27/28 सितम्बर, कहीं-कहीं ऐसा लिखा हुआ मिलता है। इनके पिता सरदार किशनसिंह और माता का नाम श्रीमती विद्यावती था। यद्यपि इनका पैतृक गाँव खट्कड़ कलाँ है। जो वर्तमान में पंजाब, भारत में ही है। इसे भारत की आजादी के बाद इसे भगतसिंह नगर घोषित किया गया है। इनका पूरा परिवार सिख आर्यसमाजी था। इनके दादा सरदार अर्जुन सिंह की भेंट हुई थी स्वामी दयानन्द के वैदिक विचारों से वह प्रभावित होकर, पक्के आर्यसमाजी बन गए थे, उन्हीं के संस्कार इनके चाचा सरदार अजीतसिंह, पिता किशनसिंह और इनके सब भाइयों एवं बहनों पर भी पड़े। इससे वे सभी आर्यसमाजी बन गए।

निःसंदेह ही उनकी तीन पीढ़ियाँ आर्यसमाज के विचारों से संस्कारित थीं। बचपन से ही भगतसिंह सरदार करतार सिंह सराभा और पंजाबकेसरी लाला लाजपत राय से अत्यन्त प्रभावित थे। वह अपने माता-पिता की तीसरी संतान थे। भगतसिंह के दो छोटे भाई थे—कुलबीर सिंह तथा रणवीर सिंह। इनकी तीन बहनें थीं। उनमें अमर कौर बड़ी थीं। उनकी दो बहनें उनसे छोटी थीं—शकुन्तला कौर तथा प्रकाश कौर।

इनकी प्रारम्भिक शिक्षा डी.ए.वी. विद्यालय लाहौर में हुई। 13 अप्रैल, 1919 को घटित जालियाँवाला बाग की नृशंस घटना जिसमें सैकड़ों निर्दोष भारतीय अंग्रेजों द्वारा गोलियों से भून दिये गए थे। इस घटना ने उनके कोमल मन को उद्वेलित कर दिया। इनके हृदय में क्रान्ति के बीज अंकुरित हो गए। इस युवा के हृदय में अंग्रेजों से भारत को आजाद करवाने की एक प्रबल चिनगारी भड़का दी। इससे वह क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में आने की सोचने लगे। इसी कड़ी में उन्होंने चन्द्रशेखर आजाद से मिलकर एक क्रांतिकारी संगठन तैयार किया। लाला लाजपत राय पर अंग्रेजों की बरसती लाठियों को देखकर भगतसिंह ने अंग्रेज ऑफिसर स्कॉट को यमलोक पहुँचाने का संकल्प ले लिया।

लाहौर षड्यन्त्र काण्ड में भगतसिंह, राजगुरु तथा सुखदेव को फाँसी एवं बटुकेश्वर दत्त को आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई। 23 मार्च 1931 को सायं 7 बजे ये तीनों फाँसी पर हँसते-हँसते झूल गए और स्वदेश के लिए बलिदान हो गए।

शहीदे आजम भगतसिंह एक वीर, विद्वान, लेखक तथा क्रांतिकारी थे उन्होंने कई पुस्तकें भी लिखीं। अनेक पत्र-पत्रिकाओं में समसामयिक क्रांतिकारी लेख भी लिखे।

उनकी कृतियाँ—'एक शहीद की जेल नोटबुक', सम्पादक—भूपेन्द्र हूजा, 'सरदार भगतसिंह : पत्र व दस्तावेज', संकलन—वीरेन्द्र सिन्धु, 'भगतसिंह के सम्पूर्ण दस्तावेज', सम्पादक—चमन लाल—प्रसिद्ध हैं।

(सरदार भगतसिंह की बहन श्रीमती प्रकाश जिनका 96 वर्ष की आयु में 28.05.2020 को निधन हो गया था)

जैसा कि हम जान चुके हैं कि वीर भगतसिंह के पूर्वज तथा परिवार आर्यसमाजी थे, वे सिख परिवार से थे पर आर्यसमाजी अधिक थे। उस परिवार ने सामाजिक तथा राजनैतिक स्वदेशी विचार का आधार महर्षि दयानन्द को ही माना। यहाँ हम थोड़ी चर्चा उनके चाचा अजीत सिंह की करते हैं। वे जालन्धर (पंजाब) में रहते थे। वहीं के डी.ए.वी. स्कूल में उनकी शिक्षा हुई। अजीत सिंह जी ने आर्यसमाज की शिक्षा अपने पिता सरदार अर्जुन सिंह से विरासत में प्राप्त की थी। आर्यसमाज के सत्संग में जाना, विभिन्न वैदिक आर्य विद्वानों के प्रवचन सुनना, सत्यार्थ प्रकाश का स्वाध्याय करना आदि से वे पक्के राष्ट्रभक्त बन गए और महर्षि दयानन्द के राष्ट्रीय विचारों को आधार बनाकर स्वाधीनता संग्राम से जुड़े रहे।

इतिहास के पन्नों को पढ़ने से पता चलता है कि शुरुआती दौर के स्वदेशी नेताओं में इनका बहुत नाम था। इसकी सच्चाई इस प्रसंग को पढ़कर जानते हैं।

श्रीमती वीरेन्द्र सिन्धु, एम.ए. पृ. 100-101, पुस्तक—'युगद्रष्टा भगतसिंह और उनके मृत्युंजय पुरखे' के अनुसार—1906-1907 में पंजाब सरकार द्वारा बनाया गया भूमि सम्बन्धी कानून सीधा वहाँ के किसानों के लिए अन्याय था बल्कि किसानों का रक्त शोषक कानून उसे माना गया, वह किसानों की भूमि-कर-वृद्धि-कानून था, इस अन्याय को

रोकने के लिए अजीत सिंह ने तत्कालीन कुछ खास आर्य नेताओं से सम्पर्क साधा जिनके प्रमुखत: ये नाम आते हैं—डॉ. गोकुल चन्द नारंग, चौ. रामभज दत्त, पं. रामचन्द्र, ईश्वरी प्रसाद, महाशय कृष्ण तथा अंग्रेजों के विद्रोही अभियुक्त महाशय रत्नचन्द। लाला लाजपत राय के नेतृत्व में इन सबको मिलाया और अंग्रेजों द्वारा बनाए उक्त कानून के विरुद्ध आन्दोलन चलाने के लिए एक ' भारतमाता सोसाइटी' बनाई जिसमें इनके भाई किशन सिंह व श्री घसिटा राम (इनके करीबी दोस्त) भी सम्मिलित थे और इसके सहारे सब आर्यसमाजी नेताओं को जोड़ कर एक महत्त्वपूर्ण **गरम आन्दोलन** चलाया। लाला लाजपत राय को तो गिरफ्तार कर माण्डाला के किले में अनिश्चित काल के लिए बन्द कर दिया मगर अजीत सिंह बच निकले। सरकार की कड़ी नजर से बचाए रखने के लिए महाशय कृष्ण की सहमति से महाशय रत्नचन्द ने अजीत सिंह को दो मास तक अपने घर में छिपा रखा। पर किसी की भूल के कारण वे पकड़े गए और वे भी देशनिकाला के शिकार हो गए। पर इस वीर पुरुष ने विदेश में जाकर भी अपने सहयोगी सूफी अम्बा प्रसाद व राजा महेन्द्र प्रताप के साथ मिलकर भारत की स्वाधीनता के लिए साहसिक कार्य करते रहना नहीं छोड़ा।

गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार में अजीत सिंह का भव्य स्वागत—सन् 1946 में जब अजीत जी वापस भारत आए, तो गुरुकुल कांगड़ी के वार्षिक उत्सव में आपको आमन्त्रित कर सम्मेलन का अध्यक्ष बनाया गया और वहाँ उनका भव्य स्वागत किया गया। अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने महर्षि दयानन्द, आर्यसमाज, स्वामी श्रद्धानन्द और लाला लाजपत राय की भरपूर प्रशंसा की और इस आर्यसमाज के प्रति अपनी मजबूत आस्था तथा भारत माता के प्रति दृढ़भक्ति का परिचय दिया।

भारत लौटने पर धर्मपत्नी से मिलना—इस वीर ने 1910 में हरनाम कौर से विवाह किया। उन्होंने अपनी पत्नी को यह कहकर कि 'परसों तक आ जाऊँगा' लापता हो गए। 37 वर्षों तक विदेशों में स्वदेश को मुक्त कराने के लिए खाक छानते रहे। जब भारत आए और अपनी प्रिय धर्मपत्नी से मिले तो उनकी श्रीमती तो उन्हें पहचान भी न पाई, कैसे पहचानतीं, दोनों के शरीरों पर वृद्धावस्था ने पड़ाव डाल दिया था। उनके

शरीर जर्जर, बाल सफेद हो गए थे। जब अजीत सिंह ने अपनी पत्नी को कुल में घटी कुछ खास घटनाओं का विवरण सुनाया, तब कहीं जाकर उन्हें अपने पति पर विश्वास हुआ। अपने पति के साहसिक कार्यों को जानकर गौरवान्वित हो गईं। आगे का वर्णन राष्ट्रीय अत्यन्त प्रेम के लिए अत्यन्त प्रेरणाप्रद है—

अजीत सिंह जी यद्यपि जर्जर अवस्था में थे पर मन में भाव जग रहा था कि जिसके लिए सारा जीवन अफ्रीका, पेरिस, रूस आदि अनेक देशों में नानाविध स्वदेशी आन्दोलनों के साथ लड़ता रहा, उसे देखे बगैर कैसे जा (मर) सकता हूँ। आखिर वह सौभाग्यशाली दिन भारत के प्राँगण में आ ही गया, स्वतंत्रता देवी पधारी,15 अगस्त 1947 को। चारों ओर हलचल थी, आजादी की खुशी थी पर उधर जवाहर लाल और जिन्ना को अपना ही स्वार्थ दिख रहा था।

सरदार अजीत सिंह के अंतिम काल का दृश्य—इतिहासकार लिखता है कि भारतमाता का अंग-भंग होते हुए देखकर इनका हृदय चीत्कार उठा और उनके मुख से निकला—'न जवाहर लाल देख रहा है, न जिन्ना। दोनों तरफ खून की नदियाँ बह जाएँगी, मैं भला उसे कैसे देख सकता हूँ? न-न मैं उसे नहीं देखूँगा, मैं चला जाऊँगा।' 14 अगस्त की रात्रि को डलहौजी नगर में वे रेडियो पर आजादी का आँखों देखा हाल सुनते रहे। 15 को प्रात: अचानक उठे और अपनी पत्नी को बोले—सरदारनी जी, मेरी जिन्दगी का मकसद पूरा हो गया, अब मैं जा रहा हूँ, लो मेरा आखिरी ब्यान सुन लो। दुनिया भर में मेरे दोस्त फैले हुए हैं, वे शिकायत करेंगे कि बिना हमसे कुछ कहे ही चला गया।

जब परिवारवालों ने उनकी इस बात पर विश्वास न करके उनकी अंतिम वसीयत लिखने की टालमटोल की तब वे बोले—खैर, मत लिखो, दुनियाँ के लोग तुम्हारी ही शिकायत करेंगे, इतना कह वे सोफा पर बैठ गए और अपनी पत्नी हरनाम कौर को बुलाकर बोले कि 'मैंने तुमसे शादी की थी, तुम्हारी सेवा करना मेरा फर्ज था, पर मैं भारतमाता की सेवा में लगा रहा, कुछ भी हो कसुर हुआ ही, पुनः गंभीर मुद्रा में बोले कि 'सरदारनी! मुझे माँफ कर देना', इतना कहकर और उठकर, अपने दोनों हाथों से श्रीमती हरनाम कौर के दोनों पैरों को छुआ, परन्तु सरदारनी

चौंककर पीछे हट गई, और अजीत सिंह जी ने पाँव ऊपर कर सोफे पर लेट कर एक लम्बी ध्वनि 'जयहिन्द' के साथ अपने नश्वर शरीर को छोड़ परलोक की राह पकड़ी। —वीरेन्द्र सिन्धु एम.ए.

वीर भगतसिंह और आर्यसमाज

'इन्क्लाब-जिन्दाबाद' का उद्घोष राष्ट्रीय आन्दोलन में कदम रखने पर नौजवान वीर भगतसिंह ने जब पहली बार किया तो यह उद्घोष पूरे भारत में बुलन्द हो गया। उत्तर भारत में विशेषकर यह वीर क्रांति का पर्याय बनकर उभरा और यहाँ तक कि महात्मा गांधी की ख्याति भी उसके सामने फीकी पड़ने लगी। खूद गांधीवादी कांग्रेसी विशेषकर नौजवान ने यह कहने लगे थे कि यह क्रांतिकारी वीर महात्मा गांधी से कम ख्याति वाला नहीं है। यह स्वतंत्रता संग्राम की कड़ी में जुड़ा वीर भी आर्यसमाज की ही उपज है। यद्यपि अन्य प्रान्तों के लोग 'सिंह' उपनाम होने से सिख ही समझते रहे, इस भ्रम के निवारण के लिए इनके कुछ महत्त्वपूर्ण पारिवारिक तथ्य उपस्थित करना यहाँ प्रासंगिक लगता है—

भगतसिंह के पूज्य दादा सरदार अर्जुन सिंह महर्षि दयानन्द से साक्षात् मिले, उनका भाषण सुना और पक्के आर्यसमाजी बन गए। दयानन्द ने उन्हें यज्ञोपवीत धारण कराया था। इसका प्रभाव अर्जुनसिंह पर अमिट रूप से पड़ा। **हवनकुण्ड उनका सदैव का साथी था और संध्योपासना उनकी सहचरी।** मानो महर्षि से मिलकर उनका सांस्कृतिक परिवरर्तन हुआ। सिख परिवार तथा समाज में रहते हुए उनका आर्यसमाजी बनना उस समय का एक क्रांतिकारी कदम था। यह जीवन के अन्त तक उनकी क्रांतिकारी विचारों को गति देता रहा। कई शास्त्रार्थों में जाना और मुख्य वक्ता बनना, कई दूर-दूर के आर्यसमाजों के उत्सवों में जाकर मुख्य वक्ता बनना आदि प्रक्रियाओं ने उत्तर भारत में उन्हें प्रमुख आर्यसमाजी नेताओं में स्थान दे दिया था। उनमें वक्ता, राष्ट्रीय नेता, किसान, हकीम, लेखक, पत्रकार आदि के गुण भरपूर थे। उनका पूरे परिवार पर अमिट प्रभाव था।

सन् 1950 में जब भगतसिंह की बरसी मनाई जा रही थी, तब आचार्य सत्यप्रिय शास्त्री (हिसार) और पं. लोकनाथ तर्क विद्यावाचपति

(पंजाब) दोनों महोपदेशक साथ में कहीं जा रहे थे। तब आपसी बातचीत से पता चला कि भगतसिंह का यज्ञोपवीत संस्कार पं. लोकनाथ विद्यावाचस्पति महोपदेशक, पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा सम्पन्न हुआ था। लाहौर वच्छोवाली, आर्यसमाज में प्रचार के दौरान पं. लोकनाथ जी आए थे। उनके विचारों को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

''जब मैं आर्यसमाज से विदा होकर बाहर निकलने लगा, तब एक सोलह वर्षीय नवयुवक ने मेरे चरणों को स्पर्श किया और कहा—पूज्य पंडित जी, मैं आपके करकमलों से यज्ञोपवीत लेना चाहता हूँ। मैंने पूछा, तुम्हारा नाम क्या है ? क्या करते हो ? तब उस युवक ने बताया कि मैं स. किशनसिंह का पुत्र हूँ, भगतसिंह मेरा नाम है और दयानन्द कॉलेज में पढ़ता हूँ। मैंने अपने घर में और मित्रों में आपकी विद्वत्ता की बड़ी प्रशंसा सुनी है। अत: मैंने निश्चय किया हुआ है कि यज्ञोपवीत की दीक्षा आपसे ही लूँ।' यह सुन पंडित जी उस रात रुक गए और दूसरे दिन प्रात: उस बालक का उपनयन संस्कार/यज्ञोपवीत संस्कार विधिवत् सब परिवार मित्रों के बीच कराया गया। फिर वे कहते हैं—**''जब गायत्री मंत्र का उपदेश कर रहा था, तो वह प्रस्तर/पत्थर मूर्ति के सदृश बड़ी श्रद्धा व प्रेम से उपदेश का श्रवण करता रहा। उसने जीवन पर्यन्त गायत्री का जप करने की प्रतिज्ञा ली। आँखों में आँसू भरते हुए भावुक होकर पंडित जी ने कहा कि मुझे क्या पता था कि वह साधारण सा युवक भारत माँ की परतंत्रता की बेड़ियाँ काटने के निमित्त अपना जीवन समर्पण कर देगा। भगतसिंह मेरा परम शिष्य था।''**

—'भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम में आर्यसमाज का योगदान'
पृ. 102, आचार्य सत्य प्रिय शास्त्री (हिसार)

इसी पुस्तक के पृ. 103-104 से पता चलता है कि **कलकत्ता आर्यसमाज मन्दिर 19 कार्नवालिस स्ट्रीट में जब**-सेंट्रल असेम्बली दिल्ली में बम फेंक कर अंग्रेजों को कँपा दिया था तब उसके पहले 6 मासों में से तीन मास तक वह वीर उसी आर्यसमाज में ठहरा हुआ था। वहाँ का सेवक/चपरासी एक वृद्ध व्यक्ति था। उसका नाम तुलसीराम था। तुलसीराम के अनुसार, वह युवक उत्साही आर्य, गायत्री मंत्र का जपने

वाला, नियमित यज्ञ तथा संध्योपासना करने वाला और आर्यसमाज, वैदिक धर्म में अगाध श्रद्धा रखने वाला था। सुबह होते ही सबको संध्या व हवन के लिए उठाना आदि उसका कार्य रहता था। वहाँ से जाते हुए भगतसिंह ने अपनी थाली और कटोरा तुलसीराम को दे दिया और बोला कि "आने वाले विद्वान्/अतिथियों को इसी थाली-कटोरे में यह कहकर भोजन कराना कि यह थाली-कटोरा भगतसिंह का दिया हुआ है। वीर भगत ने तुलसीराम से यह भी कहा कि मेरे पास तो कुछ बैंक-बैलेंस नहीं, केवल यही बर्तन है, सो दे रहा हूँ और बोला कि अब मैं अपनी भारत माँ के लिए कुछ खास करने जा रहा हूँ इसकी सूचना तुम्हें मिल जाएगी। वहाँ से जाकर बटुकेश्वर दत्त के साथ योजना बना कर 8 अप्रैल, 1929 को इस वीर ने सेंट्रल असेम्बली में बम फेंका।

थाली-कटोरी का प्रयोग—1946 में सार्वदेशिक आर्यवीर दल के प्रमुख नायक श्री ओम्प्रकाश त्यागी जी को उक्त तुलसीराम ने उस थाली-कटोरे में भोजन कराया था और कहा था कि आपका यह भोजन ऐतिहासिक पात्रों में होगा। उस समय नवाखाली के हिन्दुओं की सुरक्षा का प्रसंग था जिसमें राजस्थान आदि से लगभग 100 आर्यवीरों को कलकत्ता भेजा गया था जिसमें मान्य त्यागी जी प्रमुखता से वहाँ की व्यवस्था देख रहे थे। उसमें स्वनाम धन्य श्यामाप्रसाद मुखर्जी भी थे और अन्य आर्य विद्वान् भी सक्रिय थे। यह रोचक एवं महत्त्वपूर्ण विवरण का आचार्य सत्यप्रिय शास्त्री (मेरे गुरुदेव) को एक श्री रामगोपाल शालवाले महामंत्री सार्वदेशिक सभा, नई दिल्ली द्वारा लिखे पत्र से पता चला। पत्र सं. 3418, तिथि—25.04.1966।

भगत सिंह आर्यसमाज कलकत्ता में आर्यसमाज का इतिहास—6, डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार और अन्य, पृ. 57 के अनुसार जो वीर अर्जुन, दिल्ली में भी प्रकाशित हुआ, वीर भगत पूर्णरूप से आर्यसमाजी थे। कहीं भी जाते तो आर्यसमाज में रुकना उनका मनपसन्द था। क्रांतिकारी कार्यों के लिए उन्हें एवं उनके साथियों (बटुकेश्वर, राजगुरु, सुखदेव, हँसराज, यशपाल सिंह कामरेड, शचीन्द्र नाथ सान्याल, कामरेड इन सब साथियों को भी आर्यसमाज से पूरा स्नेह तथा सहयोग प्राप्त हुआ करत था। **भगतसिंह जब स्वदेशहित में क्रांतिकारी कार्यों के लिए**

कलकत्ता गए तो आर्यसमाज में दो बार रुके। पहली बार साण्डर्स हत्या से पूर्व बम बनाने के लिए आवश्यक मसाला खरीदना था तब श्री कमलनाथ तिवारी के साथ कलकत्ता आए और उन्हीं की सहायता से कुछ विश्वासी आर्यसमाजी दुकानदार तथा परिवार से सम्पर्क बना लिया और कार्य में सफल हुए, तब भी आर्यसमाज कलकता-19 में रुके थे। दूसरी बार दुर्गा भाभी व उनके पुत्र के साथ कलकत्ता आए जब सेंट्रल असेम्बली में बम फेंकने से पूर्व का समय था, तब तो 3 मास तक उक्त आर्यसमाज में रुके जिसका विवरण ऊपर आ चुका है।

दुर्गा भाभी के साथ कलकत्ता आना—जब वे दूसरी बार साण्डर्स को मारने के बाद छिपते हुए कलकत्ता आए थे, तभी दुर्गा भाभी अपने पुत्र के साथ भगतसिंह के साथ थीं। भगत जी तो अविवाहित थे पर पुलिस से बचने के लिए दिखावे के लिए दुर्गा भाभी उनके साथ पत्नी के रूप में कलकत्ता स्टेशन पर उतरी ताकि पुलिस भगतसिंह को पहचान न सके। पुत्रसहित जब दुर्गा भाभी भगतसिंह के साथ चलती रहीं तो पुलिस की निगाहें दूर से ही कल्पना करने में विफल हो गईं कि यह युवक भगतसिंह ही होगा। उनके साथ सेवक के रूप में राजगुरु भी थे। तब सर छाजू राम जो कलकत्ता आर्यसमाज के एक प्रतिष्ठित ट्रस्टी तथा अधिकारी थे, से उन दिनों कलकत्ता में ही रहती हुईं सुशीला दीदी (कन्या महाविद्यालय जालन्धर की स्नातिका) द्वारा वे सब मिलाए गए। तीनों उनके अथिति बने। एक दिन होटल में, फिर एक सप्ताह श्रीमती लक्ष्मीदेवी धर्मपत्नी सर छाजूराम के सान्निध्य से उनके घर और फिर अधिक सुरक्षा के ख्याल से क्रांतिकारी वीर भगत को वहीं आर्यसमाज में भेज दिया गया। उसी क्रम में वे तीन मास आर्यसमाज कलकत्ता में रहे। यह सारा विवरण उनकी प्रिय भतीजी श्रीमती वीरेन्द्र सिन्धु द्वारा भी विस्तार से अपनी पुस्तक 'युगद्रष्टा भगतसिंह और उनके मृत्युंजय पुरखे' में दिए हैं। पृ. 162-174 देखने योग्य हैं।

यज्ञोपवीत का भगतसिंह पर अमिट प्रभाव—श्रीमती वीरेन्द्र सिन्धु भगतसिंह की भतीजी (सुपुत्री श्री कुलतार सिंह) जिसने 'युगद्रष्टा भगतसिंह और उनके मृत्युंजय पुरखे' नामक पुस्तक लिखी। उसके पृ.146 पर भगतसिंह के द्वारा पिता को लिखे एक पत्र को उद्धृत किया।

इस पत्र में यज्ञोपवीत तथा उसके संस्कार का अपने ऊपर आए प्रभाव का भी उल्लेख किया—

पूज्य पिताजी, नमस्ते।

मेरी जिन्दगी मकसदे आला यानी आजादी ए हिन्द के हसूल के लिए वक्फ हो चुकी है। इसलिये मेरी जिन्दगी में आराम और दुनियावी खाहशात बायसे कशिश नहीं है। आपको याद होगा कि जब मैं छोटा था तो बापू जी ने मेरे यज्ञोपवीत के वक्त ऐलान किया था कि मुझे खिदमते वतन के लिए वक्फ कर दिया गया है। लिहाजा मैं उस वक्त की प्रतिज्ञा पूरी कर रहा हूँ, उम्मीद है आप मुझे माफ फरमाएँगे।

—आपका ताबेदार भगतसिंह

स्पष्ट है कि उक्त पत्र वीर भगत ने स्वदेश की स्वाधीनता हेतु मजबूत मन से संकल्प लेकर जब घर छोड़ा, तो पिता के नाम लिखकर छोड़ दिया था। यज्ञोपवीत करवाने वाले आचार्य की शिक्षा, पिता द्वार वतन के लिए समर्पण की भावना की रुख में आम जनता के बीच किए गए ऐलान का प्रभाव, संस्कार की प्रामाणिकता तथा भारत माँ के प्रति अनुपम समर्पण की झलक इस वीर के उक्त छोटे पत्र में निहित है।

भगतसिंह के साथी किन्तु कम्युनिज्म विचारधारा के पत्रकार तथा लेखक श्री यशपाल जी 'विप्लव' मासिक लखनऊ, 1936, पृ.58-59 पर खुलकर पंजाब के आर्यसमाज की क्रांतिकारिता के अनूठे प्रभावों की चर्चा करते हैं और इस परिवार की इस क्रांति युद्ध में सब जगह सम्मिलित हुआ बताते हैं, समय-समय पर आर्यसमाज के कार्यक्रमों में जाकर इनके दादा अर्जुन सिंह, चाचा अजीत सिंह तथा इनके पिता किशन सिंह और इससे भी आगे इनकी तथा इनके भाइयों की राष्ट्रीय प्रेरणाओं का स्रोत आर्यसमाज को ही बताते हैं तो इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है, इन पर आर्यसमाज, डी.ए.वी. शिक्षण संस्थानों का सीधा प्रभाव में भला क्या शंका हो सकती है, जबकि इनकी पूरी शिक्षा ही आर्यसमाज व डी.ए.वी स्कूल तथा कॉलेजों में हुई। इस लेखक की पुस्तक 'सिंहावलोकन' भी इस परिवार का विस्तार परिचय

देती है जिससे इन सब पर महर्षि दयानन्द के सिद्धान्तों का अमिट प्रभाव सिद्ध होता है।

नैनीताल आर्यसमाज के वार्षिक उत्सव पर पधारने के लिए अप्रैल 1965 में इस परिवार को आमन्त्रण पत्र मिला, तो उसके उत्तर में इनके छोटे भाई रणवीर सिंह द्वारा पत्र लिखा गया जिसमें माता जी का पंजाब से आना मुश्किल बताते हुए अनुपस्थित होने की सूचना दी जाती है पर पत्र में दादा अर्जुन सिंह, पिता किशन सिंह, चाचा अजीत सिंह व हंसराज जी द्वारा पूर्व के समारोहों में वहाँ सम्मिलित होने का हवाला, अपने पाँचों भाइयों का डी.ए.वी. स्कूल में पढ़ने व आर्यसमाज के सब परिवार ऋणी होने की बात लिखते हुए यह लिखना कि इस बार माफ करें, फिर कभी मौका मिलने पर अवश्य आऊँगा और अन्त में यह लिखना कि 'आर्यसमाज के उपकारों से लदा हुआ एक सेवक—रणवीर सिंह, ग्राम चक्रपुर, डा. बैजपुर, नैनीताल, क्या पर्याप्त नहीं है इनके आर्य सामाजिक संस्कारों को दिखाने के लिए?

—मासिक सार्वदेशिक, देहली, मई 1965 के मुख्य से उद्धृत

यों तो जब हम भगतसिंह की परवरिश देखते हैं तो पूर्णतया समझ में आ जाता है कि उनके संस्कार, राष्ट्रीय विचार तथा देश पर मर-मिटने की प्रेरणा उन्हें आर्यसमाज से ही मिली। उनके परिवार में जहाँ आर्यसमाज की मान्यताओं को सम्मान मिलता था उसके नियम-उपनियमों का यथासम्भव पालन भी होता था। तभी तो उस घर में सब लोग स्वदेश की स्वाधीनता के योद्धा बनकर काम कर रहे थे। उनके आर्यसमाजी संस्कारों के सैकड़ों प्रमाण कुमारी वीरेन्द्र सिन्धु, श्री यशपाल कमन्युस्ट कामरेड द्वारा लिखी पुस्तकें तथा समय-समय के पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित खबरों से मिलते हैं। उनके छोटे भाइयों का जीवन जहाँ राजनैतिक रहा वहाँ आर्यसमाज से भी जुड़ा ही रहा। उन दिनों गुरुकुल कांगड़ी के वार्षिकोत्सव पर इस परिवार से जुड़ा कोई-न-कोई महानुभाव अवश्य उपस्थित होता था। उनके घरों में आर्य विधि से ही विवाह, नामकरण, मुंडन आदि संस्कार होते रहे। कु. वीरेन्द्र सिन्धु का विवाह भी आर्यसमाज की विधि से ही 1969 में हुआ। आर्यसमाज से जुड़े कुछ प्रसंग प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

भगत सिंह के नाम डाक टिकट—29 नवम्बर, 1968 दैनिक वीर अर्जुन नई दिल्ली, सम्पाकदीय के अनुसार, जब भारत सरकार ने भगतसिंह के नाम डाक टिकट जारी किया, तब अकालियों ने बवाल मचाया कि भगतसिंह का फैल्ट हैट वाला चित्र हटा कर केश तथा पगड़ी

वाला लगाया जाए, इस पर अंग्रेजी इंडियन एक्सप्रेस में श्री रामगोपाल शास्त्री का लेख प्रकाशित हुआ जिसमें भगतसिंह को आर्यसमाजी बताया गया था, न कि सिख। उनकी शिक्षा-दीक्षा आर्यसमाज तथा डी.ए.वी. स्कूल, कॉलेज में हुई उसके दादा अर्जुन सिंह, पिता किशन सिंह और चाचा अजीतसिंह सब पक्के आर्यसमाजी थे, भगतसिंह का यज्ञोपवीत संस्कार पं. लोकनाथ ने कराया था। सब आर्यसमाज के सक्रिय कार्यकर्त्ता थे, संस्कारविधि आदि महर्षि दयानन्द की पुस्तकें पढ़ते थे आदि-आदि। लाला लाजपत राय द्वारा लाहौर में नेशनल स्कूल बनाया गया, तो भगतसिंह डी.ए.वी. छोड़कर वहाँ चले गए। यहाँ तक भी कहा गया कि पंजाब में लम्बे बाल रखना सिख धर्म का होना नहीं है, बल्कि वहाँ लम्बे बाल रखना फैशन भी है। बहुत ऐसे आर्यसमाजी पंजाब में हैं जो लम्बे बाल तथा पगड़ी रखते हैं।

डी.ए.वी. के संस्थापक महात्मा हंसराज एक निष्ठावान् आर्य-समाजी नेता थे। उन्होंने शिक्षा-जगत् में डी.ए.वी. द्वारा सम्पूर्ण भारत में एक नई क्रांति पैदा कर दी। उन्होंने कहा कि भगतसिंह की शहीदी का फायदा अकाली दल उठाना चाहता है, सो गलत है। उनके दोनों छोटे भाइयों कुलवीर व कुलतार तो केश नहीं रखते। इत्यादि बातें वहाँ लिखी गई। इससे स्पष्ट है कि भगतसिंह के संस्कार कैसे थे?

एक अन्य प्रकरण में पं. रामगोपाल शास्त्री ने यह भी स्पष्ट किया कि 1937 में जब स. किशन सिंह को कांग्रेस की ओर से टिकट मिला, तब अकाली दल ने आरोप लगाया कि यह उचित नहीं हुआ, यह टिकट केशधारी आर्यसमाजी को दे दिया गया। राजनीति में अपना मतलब साधने को कुछ भी कह दो, ऐसी परम्परा बन सी गई है। पर एक सच्चे आर्य स. किशनसिंह के छोटे पुत्र कुलवीर जो भगतसिंह के छोटे भाई थे, जिन्होंने 1957 में आर्यसमाज के प्रखर वक्ता और राष्ट्रवाद के सिपाही पं.

प्रकाशवीर शास्त्री गुड़गाँव (अब गुरुग्राम) के लोकसभा से चुनाव का पर्चा भरा, तो उन्होंने (कुलवीर जी ने) आर्यसमाजी मित्र के लिए अपना स्थान छोड़ दिया और पूरा साथ दिया।

आचार्य सत्यप्रिय शास्त्री हिसार वाले से उनकी भेंट हुई, तब आचार्य जी ने उत्सुकतावश भगतसिंह की आर्यसमाजी श्रद्धा पर प्रश्न पूछ लिया, तब कुलवीर जी ने तपाक से कहा कि जो मेरी श्रद्धा है, वही उनकी भी थी। इसी प्रसंग में आचार्य श्री ने उनकी वेशभूषा के बारे में पूछा। इसका जबाब उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत है—वेशभूषा के विषय में

पूछने पर वही पहले सूत्र दोहरा दिया। उस समय कुलवीर जी का वेशभूषा खद्दर का कुर्त्ता-पैजामा, सिर मुंडा हुआ तथा गले में यज्ञोपवीत था। भगतसिंह की वही हैट की बात कही। कुलवीर जी ने आगे कहा—''हम तीन पीढ़ियों से आर्यसमाजी रहे और आर्यसमाज की शिक्षा का ही यह प्रभाव था कि हम सभी देशभक्त क्रांतिकारी बने थे।''

पृ. 108 भा.स्वा.सं.में आ.स. का इतिहास- आ.सत्यप्रिय शास्त्री.

भगतसिंह के पठन-पाठन क्रम में मैट्रिक तक हिन्दी-संस्कृत विषय भी था, पर इनकी भाषा पर उर्दू का भी प्रभाव था; क्योंकि तब लाहौर आदि पंजाबी क्षेत्र में उर्दू काफी चलती थी। पारिवारिक आर्यसमाज के प्रभाव के कारण भगतसिंह को बचपन में हिन्दी तथा संस्कृत विषय दिलाया गया। कॉलेज में यह विषय तो छूट गया पर गुरुकुल कांगड़ी के प्रसिद्ध स्नातक इतिहास एवं वैदिक सिद्धान्तों के मर्मज्ञ श्री जयचन्द जी विद्यालंकार भगतसिंह के सम्पर्क में आए। उस कॉलेज की स्थापना में भी उनका हाथ था। उन्होंने भगतसिंह के पारिवारिक माहौल को समझा और युवक भगत के मन में विशेष रुचि लेकर पढ़ाते हुए स्वाधीनता के भाव कूट-कूट कर भर दिये। उनके नेतृत्व में 1925 हिन्दी साहित्य परिषद की ओर से सर्वश्रेष्ठ निबन्ध

लिखने वाले को 50 रुपये पारितोषिक दिये जाने की घोषणा हुई और उसमें भगत जी को ही वह इनाम मिला।

इतिहासकारों के अनुसार भगतसिंह पर पं. लोकनाथ तर्क विद्यावाचस्पति जिन्होंने उनका यज्ञोपवीत संस्कार करवाया था और जिन्होंने आर्यसमाज में सदा के लिए अमर हुआ गाए जाना वाला गीत **'यज्ञरूप प्रभु हमारे, भाव उज्ज्वल कीजिये'** लिखा था, का प्रभाव रहा। पं. जयचन्द जी विद्यालंकार का, नित्य संध्या-हवन करने वाले दादा अर्जुनसिंह, पिता किशनसिंह और चाचा अजीतसिंह का, साथ ही अन्यान्य अनेक ही सम्पर्क में आने वाले आर्य विद्वानों का सान्निध्य मिला।

भगतसिंह पर लाला लापजपत राय का राष्ट्रीय प्रभाव— लाला लाजपत राय का बलिदान वीर भगत के हृदय में क्रांति के सोये बीज को प्रस्फुटित करने में काम आया। सब जगह साइमन कमीशन के विरुद्ध नारे, लाहौर की सड़कों पर सरकारी पुलिस का भारतीयों पर पशुवत् अत्याचार आदि देख भगतसिंह का रक्त अपने दोस्तों के साथ उबल रहा था। उन्होंने अंग्रेजी सत्ता को देश से उखाड़ फेंकने के लिए संकल्प ले लिया था। जब लाला जी पर अंग्रेजों द्वारा बर्बर लाठियों का प्रहार हुआ, तो चारों ओर माहौल गर्म था। सायंकाल लाला जी की ही अध्यक्षता में एक सभा हुई। उसमें बंगाल के शेर श्री चितरंजनदास की धर्मपत्नी माता वसंतीदेवी शेरनी की भाँति गरजती हुई बोलीं—

''जब मैं सोचती हूँ कि भारत के तीस करोड़ नर-नारियों के प्यारे, वृद्ध आदरणीय लाला जी के पवित्र शरीर को किन हाथों ने स्पर्श किया, तो मैं आत्म-अपमान से काँपने लगती हूँ। ओ पंजाब के नवयुवकों! मैं एक अबला होकर पूछती हूँ कि क्या तुम्हारा यौवन और स्वाभिमान जीवित-जागृत है? क्या तुम्हारा वीरतामय खून गर्म है? यदि है, तो आज पंजाब का युवक आगे मैदान में निकलकर एक अबला के प्रश्न का आशाभरा उत्तर दे।''

भारत की उस वीर नारी के शब्दों को भगतसिंह के दल ने अपने पौरुष के लिए एक चुनौती मानकर कुछ कर गुजरने के लिए मन ही मन उसे स्वीकार कर लिया। लाला जी ने इस अवसर पर कहा—**''मेरे ऊपर**

पड़ी एक-एक लाठी ब्रिटिश साम्राज्य के कफन की ताबूद (कील) सिद्ध होगी।'' सभा विसर्जित होने पर वीर भगतसिंह का दल इस अपमान का बदला लेने चल पड़ा।

भगत सिंह द्वारा साण्डर्स को गोली मारना—आगे लिखते हैं कि इन्होंने कार्य समाप्त कर (यानी आवश्यक तैयारी कर) ऑफिस से बाहर आते हुए अंग्रेज ऑफिसर साण्डर्स को गोलियों से भूनकर लाला जी के अपमान का करारा बदला लिया था। साण्डर्स को यमपुर पहुँचा कर यह दल दयानन्द कॉलेज के होस्टल में घुस गया और वहीं वेश परिवर्तन कर दल के सभी सदस्य विभिन्न सुरक्षित प्रदेशों में चले गए। उसी फरार अवस्था में वीर भगतसिंह ने कुछ समय दिल्ली के 'वीर अर्जुन' पत्र में काम किया। गोपनीय तरीके से ही वे फिर वीर अर्जुन के सम्पादक पं. सत्यकेतु के पास पहुँचे और कुछ समय और लगाया। साण्डर्स की हत्या 1928 में हुई तब की बात है पर 1924 में भी पं. जयचन्द का पत्र लेकर भगतसिंह पं. सत्यकेतु से मिले और सत्यकेतु जी ने बड़े प्यार से गले लगाते हुए भगत को सँभाला; क्योंकि उस पत्र में यह वाक्य भी लिखा हुआ था कि यह आर्य युवक स्वदेश के लिए बहुत काम करने वाला है जिस पर हमें नाज होगा और वहाँ काम दे दिया। वहीं इनकी गुरुकुल काँगड़ी के स्नातक पं. दीनानन्द सिद्धान्तालंकार से भेंट हुई और उन दोनों में प्रगाढ़ मित्रता हो गई। एक दिन बातचीत में भगतसिंह ने उनसे पूछ लिया कि **मैं पकड़ा जाऊँ, तो मेरे खिलाफ तुम गवाही दोगे?** इस पर दीनानाथ जी ने उत्तर दिया—**''वीर जी, क्या आप हमें इतना गिरा हुआ समझते हैं कि भारतमाता के बन्धन काटने के लिए अपने जीवन की आहुति देने वालों को हम मौत के मुँह में धकेलेंगे?** तब भगतसिंह प्रसन्न होकर बोला कि नहीं, तुम जैसे गुरुकुल के स्नातकों से तो मुझे कभी भी ऐसी आशा नहीं हो सकती।''

—दैनिक हिन्दुस्तान दिल्ली, 22.3.1964—दीनानाथ जी का लेख

इन वीरों का एक दल था जिसमें विशेषरूप से इनके साथ बटुकेश्वर दत्त जी थे, कुछ अन्य भी। तब के कांग्रेसियों ने इनके नाम पर कुछ भ्रम भी फैलाने की कोशिश की पर स्वदेश के लिए भगतसिंह और इनके साथियों ने पूरी निष्ठा से काम किया। कुछ कांग्रेसियों ने इन्हें

आतंकवादी तक भी कहकर लोगों को भ्रमित किया और अंग्रेजी शासकों को भीतर से गुप्त रूप से साथ देकर अपनी चाटुकारिता का परिचय भी दिया पर ये वीर कभी रुके नहीं, किसी से झुके नहीं और भारत माँ की विदेशी बेड़ियों को काटना ही अपने जीवन का ध्येय समझा। क्यों न होता ऐसा, महर्षि दयानन्द ने यही तो बताया था कि विदेशी राज्य से कभी सुख नहीं मिल सकता। माता की तरह प्यार देने वाला विदेशी राज्य भी सर्वथा त्याज्य है और अपने राज्य में थोड़ा कष्ट सहना भी स्वाभिमान का विषय है। यही सीख तो वीर भगत को विरासत अर्थात् आर्यसमाजी विद्वान् गुरुओं तथा आर्यसमाजी क्रांतिकारी परिवार से मिली थी।

सैंट्रल असेम्बली में बम फेंकने की योजना तथा कार्य- आचार्य सत्यप्रिय शास्त्री (हिसार) अपनी पुस्तक के पृ.111-112 पर लिखते हैं कि—'इस दल ने अपना उद्देश्य देशवासियों के समक्ष रख कर उनके भ्रम दूर करने के लिए सैंट्रल असेम्बली में बम फेंकने का कार्यक्रम निर्धारित किया। अपने दल के उद्देश्यों तथा कार्यों के औचित्य को लक्ष्य कर एक संयुक्त विज्ञप्ति छपवाई गई, भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त दोनों ही दल के नियमानुसार बम, पिस्तौलें एवं पर्चे लेकर दर्शकों की गैलरी में जा बैठे। उस दिन सरकारी गुर्गों (ऑफिसरों) ने पब्लिक सेफ्टी बिल को पास कराने का निश्चय किया हुआ था। पाठकों को ज्ञात होगा कि इससे पूर्व भी एक सेफ्टी बिल पेश हुआ था, परन्तु अध्यक्ष श्री विट्ठल भाई पटेल की रूलिंग के कारण समाप्त हो गया था। जब अप्रैल 9, 1929 को यह बिल उपस्थित किया गया, उस दिन मतदान हुआ, तो बिल के पक्ष में अधिक मत आए, तब अध्यक्ष पटेल खड़े हुए और अत्यन्त खेद के साथ बोले—"तो क्या बिल पास कर दिया जाय?"

उनके इतना कहते ही हॉल में बम का एक जोरदार धमाका हुआ और असेम्बली हॉल धुएँ से भर गया। श्री मदनमोहन मालवीय, श्री मोतीलाल नेहरू तथा अध्यक्ष पटेल के अतिरिक्त सभी सदस्य भयभीत होकर इधर-उधर छिप गए। धुआँ साफ होने पर लोगों ने दर्शकों की गैलरी में खड़े मुस्कुराते हुए दो युवकों को देखा, उन्होंने छपे हुए लाल रंग के कुछ पर्चे फेंके जो इस वाक्य के साथ आरम्भ होते थे—"**बहरों को डराने के लिए धमाकों की जरूरत होती है।**" दर्शकों को देखकर

भगतसिंह और बटुकेश्वरदत्त ने 'इन्क्लाब जिन्दाबाद' की गर्जना की। यदि वे चाहते तो भागकर अपनी जान बचा सकते थे, परन्तु पुलिस आने पर उन्होंने पिस्तौलें फेंककर अपने को गिरफ्तारी के लिए पेश कर दिया। अंग्रेजी सरकार ने **न्याय का ढोंग रचकर** इन तीनों वीरों—भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को फांसी का दण्ड दिया।

फांसी पर चढ़ने से पूर्व भगतसिंह ने अपने छोटे भाई श्री कुलतार सिंह को निम्न पत्र लिखा जिसका प्रत्येक अक्षर उनकी दिलेरी का वज्रप्रमाण है—

''अजीज कुलतार,

आज तुम्हारी आँखों में आँसू देखकर बहुत रंज हुआ, आज तुम्हारी बातों में बहुत दर्द था, तुम्हारे आँसू मुझ से बर्दाश्त नहीं होते, बर्खुर्दार हिम्मत से शिक्षा प्राप्त करना और सेहत का ख्याल रखना। हौसला रखना और लिखूँ।

उसे फिक्र है हरदम नया तर्जे जफा क्या है,
हमें यह शौक देखें तो सितम का इन्तहा क्या है ?
घर से क्यों खफा रहे खर्च क्यों गिला करें,
सारा जहाँ अदू सही आयो(आओ) मुकाबला करें।
कोई दल का महमां हूँ ऐ अहले महफिल,
चिराग सिहर हूँ बुझा चाहता हूँ।
मेरी हवा में रहैगी ख्याल की बिजली,
यह मुश्ते खाक है फानी रहे न रहे।

अच्छा आज्ञा,

खुश रहो अहले वतन हम तो सफर करते हैं
हौसले से रहना, नमस्ते।

तुम्हारा भाई
भगतसिंह

इतिहास बताता है कि इन तीनों भारत माँ के सच्चे वीर सपूतों को राजकीय नियमों के विपरीत ही 23 मार्च की सायंकाल को ही चुपचाप फांसी पर लटका दिया गया, यह है क्रांतिकारियों के साहस का अपूर्व

प्रदर्शन। अन्त समय में भारत माँ के ये तीनों वीर—भगतसिंह, राजगुरु तथा सुखदेव ने एक-दूसरे के हाथ में हाथ डाले फांसी के फंदों के आगे बढ़ते हुए यह गाते जा रहे थे कि—**''सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है, देखना है जोर कितना बाजुए कातिल में है ?''**

कितना साहस था। हौंसले कितने बुलन्द थे। इसे कहा नहीं जा सकता। वे हँसते-हँसते फांसी पर चढ़ते हुए अपने प्रिय देशवासियों को देश की आजादी के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने की अमिट प्रेरणा दे गए। पर अन्यायी अंग्रेजों ने आधी रात में ही संसार की नजरों से बचाकर इन तीनों वीरों के शरीर सतलुज नदी के किनारे ले जाकर टुकड़े कर दिये और मिट्टी का तेल डालकर जला दिया। देश की स्वाधीनता के लिए मरमिटने वाले वीरों का यह क्रूर अंग्रेज पिशाचों ने ऐसा अंतिम संस्कार कर अपनी पाश्विकता का परिचय दिया जो बहुत ही निन्दनीय है। इसे अंग्रेज जाति की कुत्सित तथा पैशाचिक हृदय की प्रतिहिंसा की दूषित भावना न कहें, तो क्या कहें।

आर्य वीर भगतसिंह और उनकी नास्तिकता के भ्रम का निवारण

इस सम्बन्ध में मैंने व्हाट्स अप पर विशेष जानकारी के लिए एक निवेदन लिखा कि इस विषय पर आर्य विद्वान् अपनी राय तथा अनुसंधान पूर्वक विषय सामग्री भेजें ताकि मैं इस पर अपने विचार भी प्रस्तुत कर सकूँ। इस पर मान्य भाई श्री जयदेव आर्य सेवानिवृत अध्यापक, पत्रकार व वीर भगतसिंह चैरिटेबल ट्रस्ट यमुनानगर (हरियाणा, भारत) की राय मिली कि वे मूर्तिपूजा नहीं मानते थे, एक पक्के आर्यसमाजी थे और अंतिम समय तक आस्तिक ही रहे जैसे उन्हें परिवार व आर्यसमाज के विद्वानों से संस्कार मिले थे। इस सन्दर्भ में यहाँ श्री जयदेव आर्य जी के लिखे शब्दों को ज्यों का त्यों प्रस्तुत करना चाहूँगा—

''कुछ वामपंथी इस प्रकार का एजेण्डा चलाते हैं। उनकी लिखी पुस्तक में वामपंथियों ने इस तरह मिलावट कर दी जैसे मनुस्मृति में।'' गुगल विक्की पिडिया पर जो भी है, सब भगतसिंह द्वारा

लिखा कुछ भी नहीं है। यह कोरा किसी वामपंथी द्वारा ही लिखा गया और भगतसिंह के नाम से आज भी प्रचारित किया जाता है। उन्होंने आगे लिखा कि एक बार मैं स्वयं भगतसिंह के गाँव उनकी एक पारिवारिक सदस्या से मिला हूँ। मैंने खासकर उनसे भगतसिंह के बारे में यह नास्तिक वाला प्रश्न भी पूछा था, तब उन्होंने मुझे यह जबाब दिया था—

''जदों भगतसिंह नू फांसी दित्ती गई,मेरा जन्म नी सी हुइया पर जद्दो मैं इस घर दी नूह बण के आई ते घरों भगतसिंह दी सारियाँ गल्लां दा जिक्र सुणदी सी। उन्नाने कौम ते मुल्क लई वड्डी कुर्बानी दित्ती। ओ रब पे वड्डा भरोसा सी कारदे। गुरुद्वारा साहब जांदे। ये लाहौर कालेज चे हवन में वी जांदे।''

''उन्दा दी कुर्बानी दा ही नतीजा है अज एथे मौजां ही मौजां हो रहियां। सारे बाहरले मुल्कां च सैट हां। हर साल एसे स्टेडियम में पूरा मेला लगदा, इत्थे वड्डे लोकी आंदे ने।''

इसका हिन्दी अनुवाद है—जब भगतसिंह को फांसी दी गई, मेरा जन्म भी नहीं हुआ था, लेकिन जब मैं इस घर की बहू बनके आई तो घर में भगतसिंह की सारी बातें सुना करती थी। उन्होंने अपने भारत देश के लिए बहुत बड़ा बलिदान दिया। वे ईश्वर में बहुत विश्वास करते थे। गुरुद्वारा साहब जाते थे। वे लाहौर कॉलेज में हवन के लिए भी जाते थे। उन्हीं के बलिदान का यह फल है कि आज यहाँ मौज ही मौज हो रहा है। सब (परिवार के लोग) बाहर के देशों में व्यवस्थित हैं। प्रत्येक वर्ष इसी स्टेडियम (खेल के मैदान) में पूरी तरह से मेला लगता है। यहाँ बड़े लोग आते हैं।''

फिर श्री जयदेव आर्य लिखते हैं कि मैंने उन माता जी की उम्र पूछी, तो उन्होंने अपनी आयु 85 साल से ऊपर बताई और उस समय भी वे ठीक स्वस्थ थीं, जो उसी समय बंगा शहर से कुछ सामान लेकर पैदल ही खटकड़कलां गाँव आई थीं। मुझे नहीं लगता कि उन्होंने कुछ झूठ बोला होगा। भगतसिंह के पुश्तैनी घर के बिलकुल पास ही गुरुद्वारा भी है। मैं फरवरी 2020 को ही वहाँ उन्हें मिला था और उस दिन की फोटो भी मेरे पास है, बीच में वह माता जी, मैं नाम भूल गया, उनके एक तरफ मेरा बेटा अजय और दूसरी तरफ मैं स्वयं (जयदेव आर्य) था।

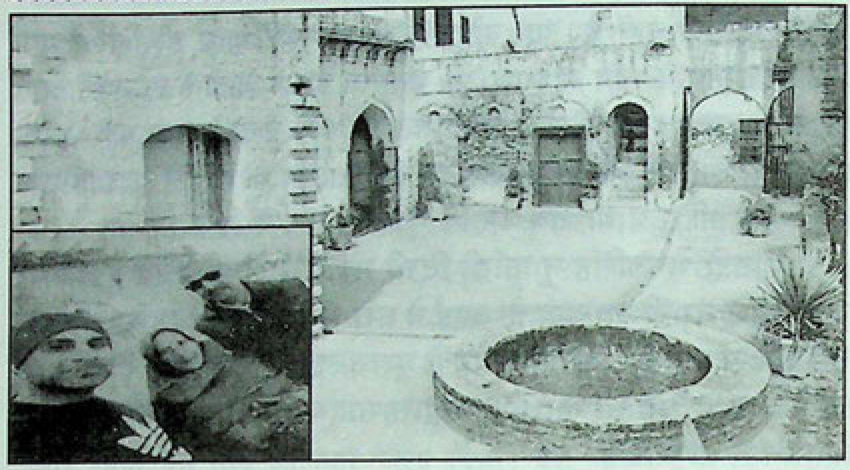

यह फोटो भगतसिंह के पुश्तैनी मकान के सामने गली में खड़े होकर ली थी।

इसके अतिरिक्त भगतसिंह के एक भाई सरदार कुलबीर सिंह हमारे शहर यमुनानगर में एक सामाजिक संगठन भगतसिंह मोर्चा के कार्यक्रम में कभी-कभी आया करते थे। जिसके संयोजक श्री रणधीर सिंह थे। यह घटना 20-25 वर्ष पहले की है। एक बार मुझे भी (जयदेव आर्य) उनसे मिलने का अवसर मिला। वे भी भगतसिंह को क्रांतिकारी होने के साथ धार्मिक स्वभाव के व्यक्ति मानते थे, जिसका सीधा अर्थ है कि अगर वे धार्मिक स्वभाव के थे तो नास्तिक नहीं हो सकते। नास्तिक व्यक्ति कभी धार्मिक स्वभाव का नहीं हो सकता क्योंकि नास्तिक और वामपंथी विचारधारा का व्यक्ति तो धर्म को विष मानता है। इससे यह स्पष्ट है कि भगतसिंह के बारे में वामपंथियों द्वारा जो प्रचारित किया जाता है कि नास्तिक थे, यह गलत है।

प्रिय पाठक वृन्द! इस विषय में मेरा चिन्तन यही है कि विक्की पिडिया पर प्रचारित पत्र जिसे कहा जा रहा है कि भगतसिंह के अंतिम समय का लिखा हुआ वह पत्र है जिसमें उनकी नास्तिक होने की बात आती है। मैंने वह पत्र पूर्णतया पढ़ा जो विक्की पिडिया पर उपलब्ध है। उस पत्र की भाषा बिलकुल शुद्ध हिन्दी में है जहाँ एक भी उर्दू शब्द का प्रयोग नहीं है। मैंने वीर भगतसिंह के दो पत्र ऊपर के विवरण में प्रस्तुत किये हैं—1. जब भगतसिंह घर छोड़ कर वतन के लिए स्वाधीनता संग्राम

में जुड़ने जा रहे थे तो उन्होंने पिता को पत्र लिखा। 2. अंतिम समय जेल से भाई कुलतार को लिखा जिसमें जीवन की अंतिम विदाई की भावना व्यक्त है। दोनों पत्रों की भाषा हिन्दी-उर्दू मिले शब्द हैं। लगभग 10-12 वाक्यों के इन पत्रों में वीर भगत की भाषा में लगभग 10-12 स्थानों पर उर्दू के शब्द हैं, साथ की लिखी कविता में भी पर्याप्त उर्दू शब्द प्रयुक्त किये हैं। यह उनकी स्वाभाविक भाषा है पर विक्की पिडिया में दर्शाया गया पत्र जो लगभग 2 पृष्ठ का है जिसमें एक भी उर्दू का शब्द नहीं प्राप्त है। यह स्पष्ट ही दर्शाता है कि वह पत्र वीर भगतसिंह का लिखा है ही नहीं। निश्चित ही किसी कामरेड या वामपंथी शरारती व्यक्ति का है और वह पत्र वैसे भी भगतसिंह की फांसी के 6 मास बाद प्रचारित किया गया जो सीधा ही भगतसिंह की धार्मिक व आस्तिक भावना पर भ्रम पैदा करना और संलग्न आर्य तथा समस्त हिन्दू जनों की भगतसिंह जी के प्रति श्रद्धा को भ्रमित करना था। उस समय के कई कांग्रेसी नेता भी ऐसे क्रांतिकारियों को गुप्तरूप से आतंकवादी कहकर उनकी वीरता का उपहास करते थे। यह कहना कोई अन्यथा नहीं होगा कि हो सकता है वीर भगतसिंह के परवरिश को बदनाम करने के लिए वांपंथी, कुछ कॉग्रेसी और अंग्रेज भी मिले हों और ऐसा पत्र षडयन्त्र पूर्वक तैयार किया हो जिसका प्रचार उनकी फांसी के 6 मास बाद ही किया गया। अगर वह पत्र आर्य वीर भगत के जीते जी प्रकाशित होता तो यह शत प्रतिशत (100%) विश्वास किया जाता है कि उसको आर्य पुत्र भगत अवश्य तिरस्कार करते पर उस पत्र को उनके बलिदान होने के 6 मास बाद ही प्रकाशित करवाया गया जो पूर्णत: संदेहात्मक है। यह पूरा ही जानबूझकर किया गया षडयन्त्र ही हो सकता है जो भगतसिंह की धार्मिक आस्था पर कुठाराघात है जिसे आर्यसमाज हमेशा-हमेशा निन्दा करता है।

भगत सिंह-नास्तिकता निवारण में कुछ विशेष

डॉ. नरेन्द्र कुमार (सह लेखक)

हम समझ सकते हैं कि उपरोक्त सभी व्यक्तित्व, जिन्होंने वीर भगत सिंह को बचपन और युवावस्था में बहुत गहराई से प्रभावित किया था, वे उस समय के आर्य समाज आंदोलन से संबंधित थे। यह तथ्य

निस्संदेह हमारे विचार का समर्थन करता है कि वीर भगत सिंह हमेशा अपने जीवन के अंतिम दिन तक सर्वशक्तिमान ईश्वर के अस्तित्व में ही विश्वास करते थे।

एक पत्र को प्रकाशित करने के लिए जो दावा किया गया कि यह वीर भगत सिंह द्वारा लिखा गया था, वह बिल्कुल ही निराधार है क्योंकि उनकी मृत्यु के 6 महीने बाद यह साबित करने की कोशिश करना कि वीर भगत सिंह नास्तिक थे, कुछ कुख्यात लोगों की ओर से पूरी तरह से शर्मनाक कार्य ही कहा जायेगा। कुछ दल जो भारत माता के एक वीर सपूत को बदनाम करना चाहते थे। यह स्पष्ट है कि कुछ नास्तिक षडयन्त्रकारियों के द्वारा ही अपने हाथों से नकली पत्र लिखकर बाद में प्रकाशित करवाया गया। हम इसे पाठकों पर छोड़ते हैं कि वे स्वयं पता करें कि ये गलत व्यक्ति कौन थे और इस बेहद शर्मनाक कृत्य में किन पार्टियों को शामिल किया गया था?

इसके अलावा, जो पत्र प्रकाशित किया गया था और दावा किया गया था कि वह लाहौर सेंट्रल जेल में वीर भगत सिंह द्वारा लिखा गया जिसमें उनकी मौत की सजा आदि की चर्चा की गयी, वह सर्वथा अस्वाभाविक है जो इस बहुत लंबे पत्र में इस्तेमाल की गई शैली, चरित्र और भाषा से पूर्णतः साफ हो जाता है।

हमने ऊपर भगत सिंह द्वारा लिखे गए दो पत्रों को उद्धृत किया है, पहला पत्र उनके पिता को जब वे घर छोड़ रहे थे और दूसरा पत्र उनके छोटे भाई कुलतार सिंह को संबोधित किया, संभवत उनकी फांसी के एक दिन पहले, इन दोनों पत्रों में बहुत सारे उर्दू भाषा के शब्दों का प्रयोग वीर भगत द्वारा किया गया जो उनकी स्वाभाविक भाषा व शैली थी। मेरी (नरेंद्र कुमार) समझ से अपने पिता और भाई को वीर भगत सिंह ने पहले जो दो पत्र लिखे, वे अत्यन्त सीधा, सरल और स्वाभाविक हैं। इन दोनों पत्रों की तुलना एक ही लेखक वीर भगत सिंह द्वारा लिखे जाने का दावा करने वाले लंबे पत्र से करें, तो यह पाठकों के लिए बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि वीर भगत सिंह द्वारा लिखे जाने का दावा करने वाले इस जाली पत्र में वीर भगत सिंह को नास्तिक होने का दावा करना एक सरारत के सिवाय

कुछ नहीं है। इस बहुत लंबे पत्र में शायद ही कोई वास्तविक उर्दू शब्द है। जबकि यह जाली पत्र बिल्कुल ही शुद्ध साहित्यिक हिंदी/लिटरेरि अंग्रेजी में लिखा हुआ है, जो भगत सिंह द्वारा लिखे गए पूर्व के दोनों पत्रों की भाषा व शैली वे बिल्कुल अलग है।

वीर भगत सिंह की युवावस्था को उनके आस-पास हो रही इन बड़ी घटनाओं और उनकी सोच प्रक्रिया की स्थिरता के विषय को समयानुसार कुछ ऐसा समझा जा सकता है कि वीर भगत सिंह का युवा मन लोगों के विभिन्न समूह, समाज और धर्मों से जुड़े विभिन्न देवताओं के नाम पर चल रहे सभी प्रकार के सांप्रदायिक और आंतरिक झगड़ों को सुनकर और पढ़कर आंशिक रूप से विचलित हो गया हो। उन्हें कुछ अस्थायी समय अवधि के लिए अस्थायी रूप से एक सर्वशक्तिमान ईश्वर के वास्तविक अस्तित्व के बारे में सोचने के लिए प्रेरित किया हो। इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि उनकी मानसिक अशांति लंबे समय तक रही और वीर भगत सिंह के मन में एक सर्वशक्तिमान ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास उठ गया। समसामयिक मानसिक विचलता अस्थाई ही अर्थात् कुछ ही काल के लिये होती है। अगर वीर भगत के अशांत मन में ऐसी कोई आंशिक विचलता आयी हो तो यह उनकी नास्तिक कहने में पर्याप्त कारण नहीं कहा जा सकता।

वैसे भी विचारणीय है कि मानसिक असंतुलन की अगर कोई अवस्था आयी भी हो तो ऐसी स्थिति में कोई भी व्यक्ति कुछ लिखना चाहे तो उसकी स्वाभाविक मातृभाषा से बढ़िया और कोई भाषा नहीं हो सकती। 'द पिपुल' अखबार में 27 सितम्बर 1931 में प्रकाशित पत्र एक बहुत ही उच्चस्तरीय साहित्यिक भाषा एवं शैली का प्रयोग किया हुआ है जो सामान्य और स्वाभाविक कतई नहीं है। समझने में भी काफी कॉम्पलिकेटिव है जो सीधा ही किसी सोची समझी चाल के तहत लिखा हुआ प्रतीत होता है। अगर कोई यह दावा करे कि भगत सिंह ने मूलत: उक्त पत्र को अपनी स्वाभाविक पंजाबी-उर्दू नुमा भाषा में ही लिखा था जिसका अंग्रेजी/हिन्दी अनुवाद पत्र अखबार में 6 मास बाद में प्रकाशित हुआ तो अनेक प्रश्न स्वाभाविक हैं।

1. उनके द्वारा लिखा वह स्वाभाविक पंजाबी उर्दू में पत्र कहाँ है?
2. उस मूल पत्र को फांसी के दूसरे दिन ही क्यों नहीं अखबार में प्रकाशित करवाया गया?
3. 6 मास के बाद भी प्रकाशित करवाते हुये उनके किसी परिवार से सम्पर्क क्यों नहीं किया गया जिसकी पुष्टि सम्भावित/अपेक्षित थी?
4. 6 मास तक उस पत्र को छिपा कर रखने का क्या औचित्य था?
5. उस पत्र का प्रकाशन केवल अंग्रेजी अखबार 'द पिपुल' में ही क्यों दिखाया गया?

प्रश्नों के घेरे में यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि आर्य शहीद वीर भगत सिंह के नाम पर प्रकाशित पत्र बिल्कुल ही जाली है जो एक आर्य संस्कृति पर जानबुझकर घिनौना कुठाराघात ही समझा जा सकता है। जिज्ञासु गण स्वयं भी इसके तह में जाकर पड़ताल करें कि इस षडयंत्र के पीछे वस्तु-स्थिति क्या है।

जिसके परिवार का हर सदस्य सदैव वीर भगत की आस्तिकता व धार्मिकता की दुहाई देता हो, जिसके धार्मिक सारे गुरु उसके उत्तम संस्कारों व आर्य विचारों का गुणगान करते हों, जो कलकत्ते के आर्यसमाज में रहते हुए नित्य प्रति हवन संध्या करता रहा हो, जिसका सेंट्रल असेम्बली में बम फेंकने से ठीक 3 मास ही पूर्व का समय रहा हो, भला वह व्यक्ति नास्तिक कैसे हो जाएगा। संस्कार एक दिन में तो नहीं बनता। अतः उनके नास्तिक होने के विचार का खण्डन सर्वथा किया जाता है।

राजगुरु, सुखदेव आदि वीर भगतसिंह के अन्य आर्य साथी—सशस्त्र साथियों में उनके साथ अनेक साथी मिले पर कुछ साथी इतिहास के हिस्से बन गए। **राजगुरु** जिनका पूरा नाम श्री शिवराम हरि राजगुरु था। वे महाराष्ट्र के थे जिनका जन्म 24 अगस्त 1908 को हुआ। माता का नाम—श्रीमती पार्वती बाई, और पिता का नाम श्री हरि नारायण था। वे आर्यसमाजी तो नहीं थे पर स्वदेश के लिए एक क्रांतिकारी वीर थे

राजगुरु

जो वीर भगतसिंह के साथ राष्ट्र के लिए हुतात्मा बनने में सक्रिय रहे। हमें ऐसा लिखने में गौरव की अनुभूति हो रही है कि आर्यवीर भगत के साथ होने के कारण उन्हें आर्यसमाज का विचार व उससे क्रांतिकारी कदम बढ़ाने की शक्ति व सहयोग मिलता ही रहा।

कई क्रांतिकारी संगठनों से मिलकर काम किया पर वे लाहौर में पुलिस ऑफिसर मि. साण्डर्स के हत्याकाण्ड योजना में वीर भगत के साथ सक्रिय होने के कारण पकड़े गए और उनके साथ ही तीनों वीरों(भगत, राजगुरु व सुखदेव) को 23 मार्च 1931 को लाहौर जेल में ही फांसी दे दी गई। यद्यपि यह 24 मार्च को होना था पर अन्याई अंग्रेजी सरकार ने 23 मार्च के सायं सात बजे ही यह काम कर दिया।

सुखदेव

शहीद सुखदेव—15 मई, 1908 को इनका जन्म लायलपुर, लुधियाना पंजाब में हुआ। माता श्रीमती राल्ली देवी और पिता श्री राम लाल थापर थे। एक पुत्री मधु सहगल थी। नेशनल कॉलेज लाहौर में शिक्षा हुयी। हिन्दुस्तान सोसलिस्ट रिपब्लिकन एसोसियेशन के सदस्य बने। फांसी की उम्र 23 वर्ष मात्र थी।

वीर भगतसिंह के साथ शहीद होने वाले वीर सुखदेव भी थे जो एक आर्यसमाज की देन थे। इनकी हाई स्कूल की शिक्षा धनपतलाल आर्य हाई स्कूल में हुई थी। आर्यसमाज में जाना, हवन व सत्संगों से प्रेरित होना और आर्यसमाज के सिद्धान्तों के अनुसार व्यवहार करना सब आपका स्वभाव में था। स्कूली शिक्षा काल में आर्य कुमार सभा के वर्षों तक मंत्री रहे और फिर उच्च शिक्षा हेतु नेशनल कॉलेज में आ गए। यह

कॉलेज भी आर्यसमाजी प्रेरणाओं से पूर्ण था क्योंकि इसके निर्माण में लाला लाजपत राय का हाथ था। आर्य सुखदेव थापर के चाचा श्री अचिन्त्य राम आर्यसमाज के एक कर्मठ प्रसिद्ध उपदेशकों में रहे, बाद में वे कॉंग्रेसी कार्यकर्त्ता व नेता बने। साण्डर्स की हत्या में यह वीर भी भगतसिंह के साथ होकर भारतमाँ का सपूत सिद्ध हुआ। इन्हें भी वीर भगतसिंह के साथ ही 23 मार्च 1931 को फांसी पर लटका दिया। इन तीनों का शवदाह रात्री में ही सतलुज नदी के किनारे अंग्रेजों ने वेरहमी पूर्वक टुकड़े कर मिट्टी के तेल डाल कर जला कर कर दिया था जबकि आम जनता को जानने तक भी नहीं दिया गया। बाद में शवदाह की एक कॉंग्रेसियों की जाँच कमिटी बैठी थी जिसमें लाला अचिन्त्य राम ने कहा था कि अगर शव हमें दी जाती तो हम इनका अंतिम संस्कार आर्यसमाज की विधि से करते। उक्त जाँच कमिशन के अध्यक्ष के पूछने पर ऐसी गवाही के रूप में शहीद सुखदेव के चाचा लाला अचिन्त्यराम ने दर्ज करवाया था। इसका विस्तार वर्णन लेखक शंकर लाल तिवारी ने अपनी पुस्तक ' भारत सन् 57 के बाद' पृ. 155 पर किया है। आचार्य सत्यप्रिय शास्त्री, हिसार ने भी ऐसा ही लिखा।

यशपाल—3 दिसम्बर 1903 को जन्म और 26 दिसम्बर 1978 को उनकी मृत्यु हुई, जन्म स्थान-कांगड़ी हिल था, पद्म भूषण-1970, सोसलिस्ट, हिन्दी लेखक-झूठा सच, मेरी तेरी उसकी बात, पिंजरे की उड़ान, साहित्य अकादमी अवार्ड-1976, डाक टिकट भारत-203, धर्मपत्नी-श्रीमती प्रकाशवती।

वीर भगत को साथ देने वालों में यशपाल जी भी थे। उनके पिता की मृत्यु जल्दी हो जाने से गरीब माँ के ऊपर दो बच्चों का भार आ गया जिससे बच्चों को लेकर उनकी माता मुलतान आ गईं थीं। वे आर्यसमाजी परिवार से थे, बचपनी शिक्षा आर्यसमाज से प्रेरित होने के कारण गुरुकुल काँगड़ी में कराई गई। अपनी पुस्तक सिंहावलोकन, पृ.44 में यशपाल जी ने स्वयं लिखा—सात आठ वर्ष की अवस्था में मेरी माता ने मुझे स्वामी दयानन्द के आदर्श आर्य धर्म का तेजस्वी और ब्रह्मचारी प्रचारक बना देने की आशा से गुरुकुल काँगड़ी में भरती करा दिया।

वैसे तो ये पत्रकार, लेखक, उपन्यासकार आदि सब विधाओं में रहे

और आजादी के बाद भी अपनी लेखनी से आर्य संस्कृति व हिन्दी भाषा की सेवा करते रहे। इसके लिए इन्हें पद्म भूषण का सम्मान भी स्वतंत्र भारत में दिया गया। साहित्य अकादमी अवार्ड भी मिला। इनके नाम पर 203 में डाक टिकट भी चलाया गया। पर यहाँ हम आर्यसमाज के दृष्टिकोण से इनके क्रांतिकारी जीवन का थोड़ा विश्लेषण करते हैं।

यशपाल जी की पुस्तक सिंहावलोकन पढ़ने से ज्ञात होता है कि इनकी प्रारंभिक शिक्षा गुरुकुल काँगड़ी में होने से ही इनके बचपने के संस्कार में ही आर्यसमाज, स्वदेश, स्वराष्ट्र, स्वभाषा आदि विषयों में आस्था बन गई थी। गुरुकुल काँगड़ी में उनकी नि:शुल्क शिक्षा करवाई गई। माता जी लाहौर आकर आर्य कन्या विद्यालय में अध्यापिका हो गई। उधर हरिद्वार में गुरुकुल में रहते हुए यशपाल जी का बाल मन भारतीय स्वातंत्र्य के भावों से भरता रहा और स्वदेश की स्वाधीनता के लिए तैयार होता रहा, स्वास्थ्य अच्छा न रहेने से गुरुकुल काँगड़ी छोड़ कर लाहौर ही आ गए फिर नेशनल कॉलेज में इन्हें दाखिल करवा दिया गया। फिर माता जी फिरोजपुर आर्य कन्या पाठशाला में जाकर पढ़ाने लगी।

यशपाल जी पर नेशनल कॉलेज में आर्य कुमार सभा व आर्यसमाज के कार्यों में निरन्तर रूचि लेते रहने से पूरा आर्य रंग चढ़ा और महर्षि दयानन्द के राष्ट्रीय भावनाओं से प्रेरित हो गए।

इनकी माता का भी यही स्वप्न था कि उनका बेटा आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द के विचारों के अनुसार जीवन जीये। बस मौका मिलते ही स्वाधीनता संग्राम में कूद गए।

आपने सबसे पहले पुरानी दिल्ली के पास वायसराय के ट्रेन को बम से उड़ा दिया और स्वयं पुलिस का वेश धारण कर चल पड़े। घटना स्थल की ओर जाते हुए अन्य पुलिस ने आपको ऑफिसर समझकर सैलूट किया और आप सबको उनके सैलूट का जबाब देते हुए आगे निकल गए। इस प्रकार अनेक क्रांतिकारी कारनामे किये जिससे इन पर गिरफतारी का वारण्ट निकल गया। वीर भगतसिंह के साथ भी लाहौर षडयन्त्र में भी तो आप थे ही।

इलाहावाद में एक देवी के घर आप छिपे हुए थे कि सरकारी पुलिस को पता चल गया। पुलिस ने चारों ओर से घेर लिया। दोनों ओर

से गोलियाँ चली पर अन्त में पुलिस ने गिरफ्तार कर ही लिया, कई मुकदमों के कारण आपको आजीवन कारावास दे दिया गया। कहते हैं कि अपने दल की एक क्रांतिकारी महिला के साथ जेल में ही आपने विवाह कर लिया पर क्रांतिकारी जीवन के बढ़ते कदम में यह उचित सिद्ध न हो सका।

कालान्तर में कांग्रेस का मंत्री मंडल बनने पर आपको बिना किसी शर्त 1936 में अन्य क्रांतिकारियों के साथ छोड़ दिया गया। आगे का जीवन भी आपका हिन्दी साहित्य सेवा में लगा रहा। साहित्य, समाज व मित्रों के बीच यत्र-तत्र राष्ट्रीयता के मुखर स्वर आपके निकलते ही रहे और भारत की जनता को हिन्दी भाषा व सामाजिक उत्थान में लगने की प्रेरणा मिलती रही है। आपका निधन 1978 में हुआ।

हंसराज वायरलैस—हंसराज वायरलैस एक क्रांतिकारी युवक थे जो पूर्णतया आर्यसमाज से संस्कारित थे। आचार्य सत्य प्रिय शास्त्री (मेरे गुरुदेव) ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि लगभग 1960 में वे यमुनानगर आर्य संस्था जो दयानन्द उपदेशक महा विद्यालय से जाना जाता है, वहीं वे श्री हंसराज वायरलैस से मिले। हंसराज जी वहाँ वैज्ञानिक चमत्कार दिखाने गए थे। क्रांतिकारी होने के कारण और विशेषकर वीर भगतसिंह के साथ लाहौर साण्डर्स हत्या काँड के साथी होने कारण वहाँ उनके स्वागत के लिए पुष्प मालाएं, मंच आदि की व्यवस्था की गई। वे वहां उस कदर स्वागत देख भावुक हो गए और अपनी जुबान अपने भाषण में जो कहा वह इस प्रकार था—

पहले तो उनसे जब भाषण के लिए निवेदन किया गया तो स्वागत की भव्यता से भावुक हो रो पड़े फिर थोड़े भर्राये हुए गले से बोले कि हमने स्वाधीनता के लिए इतना कुछ कार्य किया लेकिन आजतक किसी ने हमारा सम्मान नहीं किया। यह पहला अवसर है जबकि आपकी संस्था ने मुझ जैसे क्रांतिकारी का फूलमालाओं से स्वागत किया। आपका ऐसा करना उचित ही है क्योंकि आर्यसमाज देशभक्त संस्था है, अत: वही देशभक्तों का मूल्य समझ सकता है। मेरी माता छोटी उम्र में ही अनाथ हो गई थी। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने उसे आर्य कन्या महाविद्यालय, जालन्धर में पढ़ाया। जानकारी के लिए बताना उचित है कि यह कन्या महा विद्यालय

कन्याओं के लिए उत्तरभारत की पहली संस्था है जिसे लाला देवराज प्रसिद्ध आर्यसमाजी ने खोला था। लाला देवराज स्वामी श्रद्धानन्द के बहनोई थे।

आगे श्री हंसराज जी बोले कि स्नातिका होने पर उनका एक आर्य युवक से विवाह कर दिया, उससे हम तीन पुत्र पैदा हुए। माता जी प्रतिदिन हवन करती थीं तथा आर्यसमाज के कार्यों में बढ़चढ़कर भाग लेती थीं। एक को गृहस्थ बनाकर एक-दूसरे का आश्रय बनाया, दूसरे को धर्म की सेवा का कार्य सौंपा और मुझे राष्ट्र की सेवा में अर्पित कर दिया। वे मुझे आर्यसमाज ले जाया करती थी और कहा करती थी कि तू अधिक से अधिक आर्यसमाज से सम्पर्क कर क्योंकि इससे नवजीवन मिलेगा। -—आर्यसमाज ने न जाने मुझ जैसे कितने युवकों को देश धर्म के दिवाने बना दिये।"

विभिन्न क्रांतिकारी योजनाओं में संलिप्त पाए जाने पर आपकी भी गिरफ्तारी वारण्ट निकली तब आप गुप्तरूप से अपनी आर्य संस्थाओं में छिपते-घूमते थे। एक बार रात्री में स्वामी श्रद्धानन्द अनाथालय करनाल (हरयाणा) में आए। अपना नाम नहीं बताया पर विश्वासपूर्वक कहा कि बस इतना ही जाने कि कोई देशभक्त क्रांतिकारी फर्रार घूम रहा है। तब अधिकारियों ने कहा कि कोई भी फर्रार क्रांतिकारी अपने बारे में इतना स्पष्ट नहीं बोल सकता। फिर विश्वास पाकर उन्होंने अपना पूरा परिचय दे दिया। आर्यसमाजी लोग खुश भी हुए और गौरवान्वित भी। इस घटने का खुलासा तब हुआ जब आचार्य सत्य प्रिय शास्त्री वेद-प्रचार के दौरान वहाँ एक बार गए और वहाँ पर अधिकारियों के साथ ऐसे ही क्रांतिकारियों की बातचित चल पड़ी।

उपरोक्त घटना से ज्ञात होता है कि एक क्रांतिकारी आर्यसमाज पर कितना भरोसा किया करता था। जो क्रांतिकारी आर्यसमाजी स्वयं न भी हो, तब भी वे आर्यसमाज पर ऐसा विश्वास करता था क्योंकि उसे पता था कि यहाँ स्वाधीनता के लिए लड़ रहे सभी क्रांतिवीरों का सम्मान ही होता है।

धन्वन्तरी—वीर भगत के क्रांति दल का एक साथी का नाम धन्वन्तरी भी था। वह आर्यसमाजी परिवार से था। उसका परिचय आर्य

नेताओं से काफी हो गया था। गुजरात के आर्यसमाज के मुख्य कार्यकर्त्ता पं. आत्मा राम के दो बच्चे पंजाब में रहते थे। वे क्रांतिकारी कार्यकत्ता श्री माणिकराव को जानते थे। धन्वन्तरी ने पं. आत्माराम जी का पत्र लिया और माणिकराव के साथ गणेश रघुनाथ वैशम्पायन से मिला और इस प्रकार वीर भगतसिंह के दल का हिस्सा बन गया। आगे चलकर महान् क्रांतिकारी चन्द्रशेखर आजाद के साथ मिलकर उनके नेतृत्त्व में स्वाधीनता के कार्य में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

पं. लेखराम वैद्य—इस दल के एक सक्रिय सदस्य पं. लेखराम वैद्य का नाम भी आता है। वे रोहतक आर्यसमाज के कार्यकर्त्ता व मंत्री भी थे। उन्होंने उस दल के पार्टी को बम बनाने के लिए अपनी दुकान को दे दिया क्योंकि दल वालों का ऐसा विश्वास था कि यहाँ सब सुरक्षित रहेगा। पर पुलिस वालों को पता नहीं कहाँ से व कैसे इन गतिविधियों का पता चल गया। फिर वे छिप कर फर्रार हो गए और न जाने कहाँ-कहाँ पुलिस की नजर से बचकर भटकते रहे। यह जानकारी भी आचार्य सत्यप्रिय शास्त्री जी को हिसार में 26.12,1964 को मिली जब वे हिसार स्थित उनकी एक दुकान में मिलने गए। पूछने पर बताया कि मुझे यह सब प्रेरणा आर्यसमाज रोहतक से मिली। वहाँ वे सक्रिय कार्यकर्त्ता व मंत्री भी कई वर्षों तक रहे। और वे बोले कि आर्यसमाज हमेशा राष्ट्रीय भावनाओं को बड़ाने की शिक्षा देता है। आर्यसमाज की शिक्षा ही उनकी मौलिकरूप से प्रेरणास्रोत रही है। अन्त में वे बहुत ही गौरव व स्वाभिमानपूर्वक बोले- **'मैंने आर्यसमाज व स्वामी दयानन्द जी की शिक्षाओं को यथार्थ रूप में धारण किया है, अतः मैं अपने को स्वामी दयानन्द का पक्का चेला मानता हूँ।'**

इस वजह से पं. लेखराम वैद्य जी को काफी आर्थिक संकट से गुजरना पड़ा, अन्य परेशानियों का भी सामना करना पड़ा। धन्य हैं ये क्रांतिकारी जो संकटों को ही अपने जीवन की जयमाला बनाते हैं।

पं. जयचन्द विद्यालंकार—गुरुकुल काँगड़ी के सैंकड़ों स्नातकों का नाम आता है जो कहीं पत्रकार, कहीं अध्यापक तो कहीं महत्त्वपूर्ण लेखक हैं। इसी क्रम में पं. जयचन्द्र विद्यालंकार नेशनल कॉलेज लाहौर के योग्य प्राध्यापक थे जिनके सानिध्य में भगतसिंह का क्रांतिकारी दल

सशक्त होता रहा। वे वहाँ इतिहास के प्राध्यापक होने नाते सब आने वाले नये युवकों को अपनी प्रतिभा से प्रभावित कर उन्हें राष्ट्रीय प्रेम से भर दिया करते थे। शचिन्द्रनाथ सान्याल यद्यपि वांपंथी विचारधारा के पोषक थे पर आर्यसमाजी कार्यकर्त्ताओं से मिलकर काम करना उन्हें अच्छा लगता था। अत: जयचन्द्र जी ने उन्हें भी साथ लिया और उत्तर भारत में स्वाधीनता के काम को आगे बड़ाया। तत्कालिन प्रसिद्ध इतिहासकार श्री गौरी शंकर ओझा का पूरा मार्ग दर्शन जयचन्द्र जी को मिला जिसका श्रेय स्वामी श्रद्धानन्द जी को जाता है, उन्होंने ही एक पत्र देकर जयचन्द्र जी को स्नातक बनने के बाद इन्हें भारतीय इतिहास के योग्य पंडित श्री गौरी शंकर ओझा के पास भेजा, उसके बाद वे लाहौर नेशनल कॉलेज के इतिहास विभाग के योग्य प्राध्यापक बने।

श्रीमती पार्वती-आपकी बहन श्रीमती पार्वती भी क्रांतिकारी महिला थी। राजद्रोह में भाषण देती हुयी पकड़ी गई और फतेहपुर जेल में दो वर्षीय कारावास झेल रही थी तभी जयचन्द्र जी श्री सान्याल से मिले और अपने वचनानुसार पंजाब के कार्यों में दोनों ने हाथ बँटाया। सान्याल जी लाहौर आकर जयचन्द्र जी के घर पर रुके तभी दोनों की घनिष्टता हुई। समान विचारधारा के लोग जब मिलें, उनका कार्य करने का ध्येय व दिशा भी एक हो तो फिर साथ तो जमना ही था।

अपनी पुस्तक बन्दी जीवन पृ. 301-302 पर श्री सान्याल जी स्पष्ट लिखते हैं—' इस लोक संग्रह के कार्य में अध्यापक जयचन्द्र जी ही प्रधानरूप से सहायक थे।—फिर आगे लिखते हैं— 'पंजाब में जो विप्लव आन्दोलन की नींव पड़ी, उसका पूर्ण श्रेय जयचन्द्र जी को ही है, क़ारण उनके बिना मैं अकेला पंजाब के क्षेत्र में अल्प समय के अन्दर इतना अधिक अग्रसर नहीं हो सकता था। तिलक स्कूल और पॉलिटिक्स के छात्रों से जो मैं परिचित हुआ था, वह जयचन्द्र जी की कृपा से (ही)। आपकी सहायता से ऐसे आदमी भी मिले जिन्हें मैं अत्यन्त कष्टसाध्य एवं विपद् संकुल स्थानों से भेज पाया था।' यहाँ दो शब्द समझें जरा— कष्ट साध्य=कष्ट कारी अवस्था, विपद् संकुल=विपत्तियों से घिरा हुआ तो ऐसी स्थितियों में जिन लोगों ने इन्हें साथ दिया क्या वे भी कम वीर न थे?

श्री मुन्शी राम शर्मे 'सोम'—कानपुर के निवासी दयानन्द कॉलेज के प्राध्यापक भी आर्यसमाजी वीर थे। क्रांतिकारी वीर इनके घर वेझिझक आकर रुका ही करते थे। इन्हें मालूम होता था कि इसकी खबर पुलिस को आसानी से कहीं से भी हो जाती है तब भी पुलिस के खतरों की परवाह किये बिना श्री सोम इन्हें अपने घर में आश्रय दिया करते थे। वे स्वयं भी एक क्रांतिकारी विचारों के सक्रिय व्यक्ति थे। स्थान-स्थान पर होने वाली ऐसी सभाओं में भाग लिया करते और किसी के डर का परवाह नहीं करते थे। यही मूल चेतना तो महर्षि दयानन्द से आर्यों में आई है।

पं. सत्यदेव विद्यालंकार—इनका नाम भी ऐसे ही आर्य पुरुषों में गिना जाता था जो स्वदेश के लिए लड़ते हुए क्रांतिकारी वीरों को अपने घर में छिपाया करते और उनका साहस बड़ाया करते थे। वे हिन्दी साहित्य के एक प्रसिद्ध लेखक तथा गुरुकुल काँगड़ी के होनहार स्नातक थे। वे जालन्धर में रहने लगे थे, 1981 में मैं (आचार्य उमेश)उनसे जालन्धर में मिला था और तब उन्होंने मुझे कहा कि यज्ञोपवीत संस्कार मैं निःशुल्क करवाता हूँ ताकि सबको वैदिक संस्कार के प्रति उत्साह बढ़े। मुझे स्मरण है कि गीता मन्दिर माडल टाऊन जालन्धर के साथ श्री सुदर्शन शर्मा जो बाद में गुरुकुल काँगड़ी के चान्सलर भी बने थे, के निवास पर एक उपनयन संस्कार ही था, जहाँ मैं भी सह पुरोहित के रूप में शर्मा परिवार की ओर से आमन्त्रित था और मान्य पंडित सत्यदेव विद्यालंकार जी भी। तब मैं आर्यसमाज माडल टाऊन जालन्धर का नया-नया पुरोहित नियुक्त हुआ था। वे डी.ए.वी. कॉलेज जालन्धर से सेवानिवृत हुए थे। आर्यसमाज के ऐसे त्यागशील विद्वानों की सदैव प्रशंसा उचित है। वे सच में एक आर्य निष्ठावान विद्वान् व राष्ट्रप्रेमी व्यक्ति थे।

श्री कृष्ण जी—श्री यशपाल जी क्रांतिकारी के बारे में हम जान चुके हैं। उनके मत में कृष्ण जी एक दिल्ली अजमेरी गेट पर कोयले के व्यापारी थे। वे भी आर्यसमाजी होने के नाते क्रांतिकारियों को शरण देना और आर्थिक रूप से भी मदद करना अपना कर्त्तव्य समझते थे और आने वाले राष्ट्रप्रेमी क्रांतिवीरों को मदद भी करते थे। यशपाल जी एक बार मोटर सायकिल से टकरा कर घायल हो गए। इन्होंने 10-12 दिन अपने

घर में उन्हें रखकर इलाज करवाया जिसके कारण इस परिवार को अंग्रेजी सरकार द्वारा मारे पड़ीं। अन्य परेशानियाँ भी उठानी पड़ी। बन्दी जीवन-308-309 पृ. पुस्तक में श्री शचीन्द्र नाथ सान्याल ने भी तारिफ किया कि दिल्ली के प्रेस में एक विशेष अपील छपवाने में आपने आर्थिक मदद की। दिल्ली में तमाम क्रांतिकारी पर्चे छपवाने और वितरण करने में वे अत्यन्त सहायक थे।

इसी क्रम में कुछ अन्देखे नाम भी हैं जिन्होंने अपने जान पर खेलकर भारतमाता की बेड़ियों को काटने में महत्त्वपूर्ण काम किया।

ठाकुर यशपाल सिंह सदस्य लोक सभा-इन्होंने ने 15 वर्ष की अवस्था में ही चन्द्रशेखर आजाद की टोली में जुड़कर जेल की यातनाएं सही। इसी तरह एक आर्य जगत के दार्शनिक विद्वान् **स्व. जगदीश चन्द्र शास्त्री** का नाम आता है। 14 वर्ष तक गुप्त वास का कष्ट सहन करके अपना जीवन बिताया। श्री शास्त्री जी ने अपनी पुस्तक न्यायकुसुमांजलि-अनुवाद में कुछ अपने बारे में ऐसा लिखा-

"भारत के आकाश पर और मातृभूमि के प्रत्येक कण पर अंग्रेजी राज्य की छाप लगी हुई थी। देश का प्रत्येक निवासी पराधीनता और दासता की श्रृंखला में निबद्ध था। रामप्रसाद विस्मिल, सूर्यसेन, भगतसिंह और राजगुरु आदि को फांसी दी जा चुकी थी। कुछ साहसिक नवयुवकों ने इस राष्ट्रीय अपमान का बदला लेने की प्रतिज्ञा की और यह जानकर कि मैं मातृभूमि पर बलिदान होने वाले उपयुक्त शहीदों के अत्यन्त निकट रह चुका हूँ, वे युवक मेरे पास आए और मुझे नेतृत्व ग्रहण करने के लिए आग्रह करने लगे। मैं उन दिनों क्वेटा बलोचिस्तान में चिकित्साकार्य करता था। संगठन बन गया, सशस्त्र कार्य करने के लिए मैंने उन्हें आवश्यक सहयोग दिया, शस्त्र-चालन की शिक्षा भी मैंने ही दी। कार्यक्रम निर्धारित करके अभी प्रस्थान को उद्यत ही हुए थे कि किसी भेदिये के कारण पुलिसवाले आ पहुँचे। सब को लेकर गाड़ी में बैठाया और सियालकोट ले चले, निश्चय यह था कि सियालकोट पहुँचने से पहले ही चलती गाड़ी में सूटिंग हो, और सब भाग जाएं, ऐसा ही हुआ। यह घटना 5 मई 1931 को हुआ। अगले दिन घटने का पूरा विवरण रामनगर जम्मूकश्मीर में पहुँचकर समाचारपत्रों में पढ़ा।—फिर वे आत्म

रक्षा का ख्याल कर पंजाब के रास्ते हरिद्वार आकर तपस्वीरूप धारण कर छिपकर रहने लगे। ट्रेन में ही एक साथी पकड़े जाने के कारण सब के नाम पते बता दिये जिससे सबके नाम वारण्ट और इनाम भी निकाला गया। गंगा में स्नान कर उन्होंने सशस्त्र कार्यक्रम को त्यागने का विचार किया और स्वयं को साधना में डालने का। फिर वे उतराखण्ड चले गए और वहाँ से भी जब पढ़ा कि प्रभाखान और हंसराज को पुलिस ने पकड़ लिया है तब वे छिपकर काँगड़ा के बैजनाथ क्षेत्र में चले गए। प्रभाखान को फांसी व हंसराज वायरलैस को काला पानी की सजा मिल गई।"

इस कठिन काल में कितने ही नाम बदले और कितनी ही यातनाएं सहीं क्योंकि एक ही जनून था—

कभी वह दिन भी आएगा, जब अपना राज देखेंगे।
जब अपनी ही जमीं होगी और अपना आसमां होगा।

आगे भी कांग्रेस के साथ मिलकर राष्ट्र के उत्थान में सहयोगात्मक कार्य करते रहे। ये जजबा निश्चित ही आर्य समाजियों में ही देखने को तब मिला करता था।

स्वामी भीष्म जी व चन्द्र कवि—उत्तर प्रदेश के करहेड़ा नामक गाँव में अपना आश्रम बना कर पूरे भारत में आर्यसमाज का प्रचार किया करते थे। राष्ट्र प्रेमियों, क्रांतिकारियों व अन्य राष्ट्र सेवकों को अपने आश्रम में बिना किसी डर आश्रय देना इनका फितरत बन गया था। ओजस्वी वक्ता, पक्का ब्रह्मचारी, वलिष्ठ शरीर और आर्य विद्वान् महर्षि दयानन्द के पक्के अनुयाई थे। चन्द्र शेखर आजाद और वीर भगतसिंह तो इनके अत्यन्त प्रिय थे। शस्त्रों को छिपाए रखने में व अधिकाधिक शस्त्र जुटाने में भी वे लगातार इन वीरों को मदद किया करना अपना राष्ट्रीय कर्त्तव्य समझते थे।

इसी तरह उन्हीं दिनों एक ओजस्वी आर्य भजनोपदेशक व कवि अपने क्रांतिकारी कविताओं से बड़े-बड़े आर्यसमाज के मंचों पर सबको राष्ट्रीय प्रेरणाओं से उत्साहित करते थे जिनका नाम था—चन्द्र कवि।

उपरोक्त दोनों विद्वान् कलकत्ता आर्यसमाज के कार्यक्रमों में प्राय: आया ही करते थे। वार्षिकोत्सवों में विद्वानों की कड़ी की शोभा बनकर अपने समय में अपनी विद्वत्तापूर्ण विचारों से सब में पलभर में जोष भर

देना आप लोगों का मानो दाएं हाथ का खेल हुआ करता था। चन्द्र कवि ने एक मंच पर 1857 के गदर की क्रांतिकारी ब्रिटिश सरकार के खिलाफ में कविता सुनाई तो सब जगह गदर मच गया। पुलिस ने इन्हें पकड़ लिया और इन्हें भी आजन्म काले पानी की सजा सुना दी। कालान्तर में यह सजा साधारण कैद रूप में बदल दिया गया। सच में ऐसी यातनाओं को सहकर कार्य करने वाले आर्यसमाजी विद्वानों, संन्यासियों व भजनोपदेशकों के कारण ही भारत के क्रांति वीरों में जोश आया और फिर उनके जोखमभरे प्रयासों से ही अपनी मातृभूमि की ब्रिटिश बेड़ियाँ कटी।-—प्रोफेसर उमाकान्त उपाध्याय-सम्पादक, पुस्तक भा,स्वा.सं में आ.स. का इतिहास-द्रष्टव्य-पृ.121-122—1-50 और 60 के दसक में ये अनेक वार कलकत्ता में वार्षिकोत्सव पर आया करते थे।

सुशीला देवी, दुर्गा भाभी व श्रीमती चन्द्रवती चौधरी—सुशीला दीदी आर्य कन्या महा विद्यालय, जालन्धर पंजाब की स्नातिका थी। यह महा विद्यालय आर्य नेता लाला देवराज जी द्वारा स्थापित हुआ। स्वामी श्रद्धानन्द और ला. देवराज सोंधी साले-बहनोई थे। घर में बैठे एक बच्ची को खेलते और यह गाते देखा **'इशा-इशा बोल, क्या लागत है मोल'** आदि, बस दोनों में बातचित हुई और अपनी पाठशाला बनाने की ठान ली। उसी संकल्प ने इस संस्था को उत्तर भारत की सर्वप्रथम शानदार आर्य शिक्षा केंद्र कन्याओं के लिए बना दिया। सुशीला दीदी और दुर्गा भाभी ने मिलकर बम्बई में एक सरकारी अंग्रेज पर देखते-देखते गोली दाग दी थी। दुर्गा भाभी अमर शहीद भगवती चरण की पत्नी थीं। जब भगतसिंह कलकत्ता गए तो वहाँ साथ में यही दुर्गा भाभी थीं और उन दिनों सुशीला दीदी भी वहीं थीं। यह बहन दिल्ली के प्रसिद्ध आर्य नेता श्री नारायण दत्त जी ठेकेदार की सुपुत्री थी। यह दीदी जी के सम्बोधन से प्रसिद्ध हुईं। वीर भगतसिंह के सशस्त्र दल के सब लोगों को यह आर्थिक मदद भी अपने पिता से कहकर दिलवाती रहती थीं। इनके साथ एक और आर्य महिला का नाम आता है जिनका नाम **श्रीमती चन्द्रावती** था। वे भी दिल्ली के भूत पूर्व महापौर (मेयर) श्री देशराज चौधरी की धर्मपत्नी थीं। दिल्ली में ही एक बार एक अंग्रेज सरकारी ऑफिसर महिलाओं में घुसकर छेड़-छाड़ करने लगा तो इस आर्य महिला ने बिना

किसी झिझक के उस ऑफिसर को अपनी चप्पल से इतनी धुनाई कर दी कि वह वहाँ से जान बचाकर नौ दो ग्यारह हो गया। इस तरह हम देखते हैं कि उपरोक्त सभी देवियाँ स्वाधीनता संग्राम में अपनी-अपनी सीमा में हाथ बँटाती रहीं जो आर्यसमाजी परिवार से थीं और महर्षि दयानन्द के वैदिक विचारों व संस्कारों से संस्कारित थीं। आज भी इनका नाम बहुत ही आदर से लिया जाता है।

अमर शहीद चन्द्र शेखर आजाद—भगतसिंह के बाद सशस्त्र क्रांति वीरों में स्वाधीनता का जंग लड़ने का नेतृत्त्व लेने वाला अगर कोई वीर निर्भीक योद्धा निकला तो वह चन्द्र शेखर आजाद था। हाँ, इन्हें धार्मिक रूप से आर्यसमाजी तो नहीं कह सकते पर राजनैतिक रूप से कहें तो यह युवक पूर्णतया आर्यसमाज पर विश्वास किया करता था। आर्यसमाज में छिपना, संगठन बनाना और सबको प्रेरणा देना कि वे भारत-भूमि की स्वाधीनता के लिए आगे आएं और सहयोग दें आदि इनका सदैव ललकारपूर्ण भाषण हुआ करता था। भगवती चरण, रामप्रसाद विस्मिल आदि सब आर्यसमाजी इनके कट्टर मित्र थे तथा स्वाधीनता की लड़ाई में हर प्रकार की योजनाओं में साथी थे। उन्हें शत प्रतिशत (100%) आर्यसमाज पर विश्वास था कि आर्य सामाज पक्के तौर पर राष्ट्रवादी है और विदेशी राज्य समाप्त करने के लिए बनाई जाती हुई सभी योजनाओं को सिरे चढ़ाने में पूरी विश्वसनीयता से साथ निभाने वाली महर्षि दयानन्द की समर्थ शील संस्था है।

चन्द्र शेखर आजाद की जीवनी से पूर्णचन्द्र सनक की इन पंक्तियों पर जरा विचार करें-पृ. 12-28

"तुम्हें जो विश्वासी और हथियारबन्द आदमी मिलें, उन्हें ले आओ और मुझसे कल शाम को आर्यसमाज हॉल में मिलो। सबसे शाम तक कानपुर आर्यसमाज मन्दिर में पहुँचने के लिए कहकर उन्हीं पैरों लौट आया,—आप जरा ख्याल रखें कोई इन्हें तंग न करे, आप जानते ही हैं (कि) आर्यसमाज का काम करना आजकल कितना मुश्किल हो गया है?—जब काम हो जाएगा तो हम तीन फायर करेंगे, तुम यहाँ से हटकर सीधे आर्यसमाज चले जाना—वे दोनों (आजाद तथा भगवती चरण) आर्यसमाज हॉल की तरफ से आते दिखाई दिये।"

इस प्रकरण में लिखित इन शब्दों से आसानी से आर्यसमाज पर इनके विश्वास की कल्पना की जा सकती है। भगवती चरण आदि आर्यसमाजी कार्यकर्त्ताओं पर भरोसे के साथ मित्रता का अन्दाजा भी लगाना मुश्किल नहीं है। इनके बारे में आगे भी पढ़ेंगे।

महात्मा गांधी की वैचारिक अवस्था-'सन् 1942 की क्रांति में सब कांग्रेसी नेता लगभग पकड़ लिये गए और नेतृत्त्व के लिए कोई न रहा तो महात्मा गांधी भी फिके पड़ गए लेकिन सशस्त्र गरम दल के नेताओं को आर्यसमाज के साथ खड़ा होते देख मौन हो गए। अहिंसावाद पर चुप्पी साधकर 'करो या मरो—अंग्रेजों भारत छोड़ो' की बुलन्द करते देख महात्मा गांधी चुप हो गए और ऐसा समझते हुए कि ये लोग मेरे (महात्मा गांधी के ही) आह्वान को सार्थक करने में लगे हुए हैं। मानो उस समय सशस्त्र क्रांति को मन ही मन स्वीकार तो कर लिया पर 'न हाँ बोला, न न बोला और चुपचाप यत्र-तत्र आर्यसमाजी लोगों द्वारा उठाई जा रही सशस्त्र क्रांति को देखने लगे और आशा की किरण महसुस करने लगे।

अंग्रेजों की छली मनोवृत्ति भी समझ चुके थे, फलतः हथियारी योजनाओं का विरोध करना छोड़ दिया।

देखते-देखते सब ओर से आर्य युवकों की ललकार भरी आवाज उठने लगी—'करो या मरो—अंग्रेजों भारत छोड़ दो'। तब आर्य वीर दल के अनेक वीरों ने कठिन जेलें काटीं, जान गवाए, फांसी पर लटकाए गए आदि--। आर्यसमाज नरेला में संध्या करते 70 पुरुषों को पकड़ लिया गया और जेल में डाल उन्हें कठोर यातनाएं दीं गईं। स्वामी ईशानन्द जी (चौधरी रती राम), हरिदत्त सुपुत्र स्वामी धर्मानन्द जी आदि अनेक आर्य लोगों को लालकिले की तहखाने में 6 मास तक बन्द कर दिया गया जहाँ सूर्य की किरणें भी नहीं दिखाई पढ़ती थीं। आचार्य भगवान देव को पुलिस लाख प्रयत्न करके भी नहीं पकड़ सकी।'

प्रि. भगवान दास-पंजाब में जब सब कांग्रेसी नेता शिथिल पड़ गए तब डी.ए.वी. के छात्रों ने क्रांति की धूम मचाई। उन्हें कुछ उच्च पदों पर बैठे भारतीये मूल के सरकारी अधिकारियों का अन्दर से सहयोग / सुरक्षा आदि में मिल जाया करता था। प्रि. भगवान दास, आर्यसमाज के

मंत्री युवक राजेन्द्र आदि सबके ही नाम इस आन्दोलन में सक्रिय होते हुए आते हैं। बल्कि इन युवकों को साथ देने वाले अधिकारियों को भी तबादले आदि कष्टों को सहन करना पड़ता था। अंग्रेज अधिकारी गण तो क्रूर थे ही। जैसे प्रि. भगवान दास, बाबा गुरमुख सिंह, सेठ रामनारायण बर्मानी ये सब सरकारी उच्च पदों पर रहकर भी इन क्रांतिकारी वीरों को अपनी मुश्किलों का ख्याल किये बिना भी मदद करते दिखे। नागपुर के श्री कालूराम नामक आर्य युवक को फांसी दी गई तो पंजाब के आर्यसमाजी तगड़े नेता स्वामी स्वतंत्रतानन्द जी को पंजाब के सरकारी गवर्नर की हत्या का आरोप लगाकर नजरबन्द कर दिया गया जिसका बड़ा भारी विरोध पूरे पंजाब और अन्य क्षेत्रों के आर्यसमाजी द्वारा किया गया। आचार्य सत्य प्रिय जी (हिसार) लिखते हैं कि वे उस समय बच्चे ही थे पर उन्हें याद था कि दिल्ले में एक आर्य युवक ने एक विशाल सरकारी भवन को पेट्रोल से जला कर छिपता हुआ उनके घर में आकर रुका। उनके परिवार में उस युवक को सब प्रकार की सुरक्षा व सहयोग दिया जाता था। वह कई वर्षों तक वहाँ रहा। यह बात आचार्य श्री के मुख से मैंने भी उनके एक प्रवचन काल में सुना था। जब वे कोई आजादी की क्रांति पर भाषण देते थे तो प्राय: ऐसी चर्चा किया करते थे।

–लेखक (आचार्य उमेश)

इस तरह हम देखते हैं कि पूर्व आन्दोलनों की तरह आजादी की इस लड़ाई में भी आर्यसमाज के युवक-बड़े वृद्ध सब ने बढ़-चढ़कर भाग लिया तभी आगे चलकर अंग्रेजों को कहना पड़ा कि भारत का हर आर्य (बच्चा-बच्चा) जग गया है अब वहाँ अंग्रेजी राज छोड़ना ही होगा, और आगे चलकर भारत माँ को अंग्रेजी हुकुमत से पीछा छुटा।

आर्यवीरों ने संघर्ष के अंतिम समय तक भी लड़ाई में साथ दिया।

आजाद हिन्द सेना और आर्यसमाज

एक बार नेताजी सुभाष चन्द्र बोस आर्यसमाज लाहौर के एक सम्मेलन में आए, वहाँ गुरुकुल काँगड़ी के कुलपति महाशय कृष्ण हुआ करते थे। पंजाब व दिल्ली से निकलने वाला अखबार 'प्रताप' के सम्पादक भी थे। वहीं महाशय कृष्ण और नेताजी सुभाष जी का आपसी वार्ता इस प्रकार

हुई—साभार, जीवन प्रकाशक राजपाल एंड सन्स, लाहौर।

महाशय कृष्ण : सुना है वीर सावरकर ने आपको देश से बाहर जाकर सेना बनाने का सुझाव दिया है?

नेताजी : जी।

महाशय कृष्ण : आर्यसमाज इसके लिए आपको दस हजार रुपये की थैली तत्काल भेंट करता है।

नेताजी : धन्यवाद।

महाशय कृष्ण : धन्यवाद किस बात का नेताजी, जब भी आप आह्वान करेंगे, गुरुकुल काँगड़ी के सभी ब्रह्मचारी आपकी सेना में भर्ती होने के लिए पहुँच जाएंगे।

नेताजी : **आर्यसमाज तो मेरी माँ है। आजादी के जंग में जो भी भाग ले रहा है उसका किसी न किसी रूप में आर्यसमाज से सम्बन्ध अवश्य है, भले ही वह किसी भी मत पंथ से सम्बन्ध रखता हो, परन्तु दयानन्द जी के स्वदेशी के आह्वान का उस पर प्रभाव है ही क्योंकि स्वामी जी ने ही सबसे पहले कहा था कि स्वदेशी राज्य ही सर्वोपरि उत्तम होता है।**

—आर्यसमाज लाहौर सम्मेलन के दौरान नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, महाशय कृष्ण व अन्य आर्य नेता

विदेशों में जाकर नेताजी सुभाष चन्द्र बोस ने यत्र-तत्र विखरे भारतीयों को इकट्ठा किया और वीर सावरकर, श्यामजी कृष्ण वर्मा आदि

नेता... सुभाषचंद्र बोस

विदेश में सक्रिय आर्य नेताओं के सहयोग से ही ' आजाद हिन्द फौज बनाया। आचार्य सत्य प्रिय (गुरुदेव जी) जी ने तो उन्हें राजा राम जैसे बताया कि जैसे लाखों वर्ष पहले एक आर्य राजा राम ने जैसे बाहर ही बाहर अपनी वानरी सेना बनाकर लंकापति रावण का वध किया था और लंका पर विजय पाया था, वैसे ही भारत माँ की आजादी के लिए बाहर के देशों में जाकर आजाद हिन्द फौज बनाई जिससे अंग्रेजों से लड़ने में बड़ी भारी

मदद मिली और सफलता भी। नेताजी की सेना में सबसे अधिक युवक आर्यसमाजी ही थे। तीन प्रमुख नायकों में पंजाब के प्रसिद्ध आर्य नेता श्री अच्छरुराम जी आर्य के सुपुत्र श्री सहगल जी ही थे जिस परिवार का नाम पंजाब व भारत में भी कहें तो छिपा नहीं था। स्वयं महाशय अच्छरुराम जी कहा करते थे कि मुझे आर्यसमाजी होने पर नाज है। महर्षि दयानन्द के विचारों से प्रभावित हूँ तभी तो भारत माँ को अंग्रेजी दासता रूपी बेड़ियों से मुक्त करने के लिए अपने एक बेटे को स्वाधीनता संग्राम की भट्टी में झोंक रखा है। इससे बड़ा और अधिक प्रमाण क्या हो सकता है कि वे आर्यसमाजी नहीं थे? जिस जनून के साथ हमारे आर्यसमाजी वीरों ने स्वतंत्रता संग्राम में अपने प्राणपन से झूझने का प्रमाण दिया, उसका ही परिणाम है कि हम भारतवासियों ने 15 अगस्त 1947 को प्रात: सूर्योदय को मुक्तभाव से आजादी की अपनी किरणों को विखेरते पाया। निश्चित ही स्वाधीनता भारत के वीरों के महान बलिदानों का ही परिणाम है, यह यों ही महात्मा गांधी की अहिंसा व बिना ढाल व तलवार के नहीं आ गई। ये तो यों ही 'बापू' बन बैठे। ' तुम हमें खून दो, हम तुम्हें आजादी देंगे।' जरा याद करो इस आह्वान को। याद करो हमारे असंख्य आर्य वीर नेताओं की जेल अंडमान की काले पानी, कठोर यातनाएं, अनेक फांसियाँ— नमन है इन वीरों का जिन्होंने अपनी जां गवायीं और भारतमाँ को विदेशी जंजीरों से मुक्त करायीं।

इस अध्याय के उपसंहार में एक और कटु सत्य का खुलासा किया जाना लेखक का ध्येय उचित प्रतीत होता है।

पाकिस्तान कैसे बना ?—1940 तक तो मि. जिन्ना भारत की अखंडता पर टिके थे। हिन्दुस्तानी होने की कट्टरता पर गर्व किया करते थे। 1916 के भारत की राष्ट्रीयता 1946-47 में जाते-जाते जिन्ना की कट्टर मुस्लिम लिगी के समर्थक बनती दिखी। इसका कारण और कोई नहीं अपितु निकम्मे तब के कांग्रेसी नेता थे। कई इतिहासकार उर्दू के मशहूर शायर मोहम्मद इकबाल को पाकिस्तान के प्रवर्त्तक बताते हैं पर इकबाल के इन बोलों को समझें, इंगलैंड जाने से पहले लिखा था—

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दुस्तां हमारा,
हम बुलबुलें हैं इसकी, यह गुलिस्तां हमारा॥

पर इस भारत राष्ट्र-प्रेम भरे उदारमना इकबाल जब इंगलैंड से बरिस्टर बनकर भारत लौटा तो इसकी कविताओं के बोल बदलने लगे जिनमें कट्टर मुस्लिम लीग की मनोवृत्ति छाने लगी। प्रमाण देखें-

तुझको मालूम है लेता था कोई नाम तेरा,
कुव्बते बाजुवे मुस्लिम किया काम तेरा।
या रब दिले मुस्लिम का, को वों जिन्दा तमन्ना दे,
जो कल्ब गरमा दे और जो रूह को तड़पा दे।'

यह परिवर्तन कैसे होने लगा। इसमें दो बातें प्रतीत होती हैं—

1. अंग्रेजों की चाल कि हिन्दु-मुस्लिम लड़ें और 2. काँग्रेसियों का निकम्मापन। इंगलैंड में रहते हुए बरिस्टरी की शिक्षा पाते मुस्लिम नवयुवकों में अंग्रेज अलगाव वाद की कुत्सित भावना भरने में कामयाब होने लगे और जिससे मुस्लिम युवकों में पाकिस्तान आदि की माँग के स्वर फूटने लगे। नीचे के प्रसंग पढ़ने योग्य हैं—

इंगलैंड में रहते बरिस्टरी की पढ़ाई करता हुआ एक मुस्लिम युवक चौ. रहमत अली ने अपने निवास स्थान 16 मांटेगू रोड केम्ब्रिज में बैठकर 1933 ई. में ही कुछ इस तरह की योजना बनाई और इसे प्रकाशित करवा कर सब जगह फैलाना शुरू कर दिया—

1. हिन्दुस्तान एक देश नहीं है, यह देश समुह (कॉन्टिनेण्ट) है।

2. हिन्दुस्तान में एक रास्ट्र नहीं वल्कि हिन्दु और मुसलमान यह दो राष्ट्र रहते हैं।

3. हिन्दुस्तान का इंडिया नाम गलत है, इसका उल्टा नाम दीनिया होना चाहिये।

4. हिन्दुस्तान में बंगिस्तान (बंगाल), उस्मानिस्तान (हैदराबाद), म्युनिस्तान (राजस्थान) आदि प्रदेशों को पृथक्-पृथक् मुस्लिम प्रदेशों के रूप में संगठित कर सबको सामुहिक रूप से पाकिस्तान मानना चाहिये।

उक्त विचार को पाकिस्तान के समर्थन जहाँ मिलने की पहले सम्भावना थी वहाँ फैलाया गया। फिर हिन्दुस्तान में भी सब जगह यह विचार बढ़ाया गया। अंग्रेज आर्य समाजियों से तंग तो थे ही, उनके बहकावे से ही अलीगढ़ में सर सैय्यद को भारत बाँटने की मनोवृत्ति देकर बहका दिया। तब कांग्रेस में काफी आर्यसमाजी नेता सम्मिलित थे जिन्होंने

रहमत अली और सर सय्यद की इन प्रदूषित मनोवृत्तियों का सही जबाब दिया था पर अंग्रेज कहाँ मानने वाले थे। अपनी चाल में कामयाब होते दिखे और ाते-जाते मुसलमान नेताओं को बहका गए कि ये आर्यसमाजी हिन्दु तुम्हें जीने नहीं देंगे अत: अलग होकर पाकिस्तान बना डालो। 1921 से 1930 के आन्दोलनों को जब हम समझते हैं तो हमें इसका स्पष्ट ज्ञान हो जाता है। इसमें अंग्रेजों ने मि. जिन्ना को भी प्रभावित कर दिया। महात्मा गांधी ने भी चुप्पी साध ली, फिर वही हुआ जो मुस्लिम समुदाय चाहती थी और बँटवारा पर माहर लग गया और हिन्दुस्तान में सदा के लिए ये हिन्दु और मुस्लिम के टकराव का मार्ग खोल गए। जरा इस पर विचार करें—

'कैबिनेट मिशन के समय कांग्रेस प्रधान मौलाना आजाद ने क्रिप्स तथा भारत सचिव पैथिक लारेंस को एक गुप्त पत्र लिखकर पाकिस्तान योजना को क्रियान्वित करने पर बल दिया था। श्री सुधीर घोष से जानकारी प्राप्त कर गांधी जी ने जब इस पत्र के विषय में मौलाना से पूछा तो मौलाना ने स्पष्ट झूठ बोल दिया। गांधी जी ने भी इस रहस्य को सदा गुप्त ही रखा, नेहरू जी ने मौलाना को झाड़ने के वजाय सुधीर घोष को झाड़ डाली कि तुमने इस बात की सूचना महात्मा जी को क्यों दी?'

पृ.126 आचार्य सत्यप्रिय शास्त्री (हिसार)

इससे स्पष्ट हो जाता है कि नेहरू भी पाकिस्तान के हक में ही थे। गांधी जी की मजबूरी हो गई। बस अंग्रेजों की चाल सफल हो गई।

अंग्रेजों के सह से बंगाल व पंजाब में मुसलमानों ने लिगी एकता करके हिन्दुओं से दंगे भड़का दिये। सभी कट्टर धर्मान्ध मुस्लिम लिगियों ने देश बांटने का अभियान जारी कर दिया। तब भी अगर गांधी व कांग्रेसी नेता जल्दवाजी न करते तो काम सम्भल सकता था पर ये सब कांग्रेसी कमजोर पड़ गए हालाकि आर्यसमाज ने तब भी उस आन्दोलन को दबाने की कोशिश की पर सब कांग्रेस के बड़े नेताओं के निकम्मापन से हिन्दुस्तान -पाकिस्तान बन गया पर परिणाम अत्यन्त बुरा हुआ। चारों ओर पंजाब और बंगाल में मुस्लिम गुंडे हिन्दुओं को मारने लगे। मुसलमानी गुंडे तो हिन्दुओं का समूल मिटा देना चाहते थे पर तब भी हरियाणा के आर्य वीर दल, गुरुकुल के ब्रह्मचारी व अन्य आर्य संन्यासी दल ने

पाकिस्तान से हिन्दुओं को सुरक्षित भारत भेजवाने में जी जान से अनथक कार्य किया। स्वामी रामेश्वरानन्द और प्रिं. भगवान दास के नेत्तृत्व में गुरुदत्त भवन और डी.ए.वी. कालेज में सबको सम्भालना, खाना देना और सुरक्षित हिन्दुओं को भारत भेजना आदि अत्यन्त सराहनीय कार्य किया गया।

स्वामी आत्मानन्द—रावलपिंडी में लोहा ले रहे थे। उनकी नो हवाई जहाज की टिकट बनने पर भी मना कर दिया कि जब तक इस क्षेत्र में एक-एक हिन्दु व सिख यहाँ से चला न जाता तब तक वे वहीं उन्हें सुरक्षित भेजने में लगे रहेंगे।

मान्य ओम प्रकाश आर्य महोपदेशक—पं. ओमप्रकाश आर्य ने भी ये सब घटनाएं वहाँ आँखों देखीं और आर्यदल में सुरक्षाकेन्द्र में प्रबन्धन का काम भी किया। एक भारतीय बच्चे को एक माँ के आग्रह पर परमिट देकर भारत भेजवाया जिसके कारण आप को इस्लामिक पुलिस ने पकड़ लिया और बुरी तरह से पीटा, किसी तरह राख में पड़ा एक परमिट मिल जाने से आप क्रूर मुस्लिम पुलिस से बच गए वरणा वह आपको जान से ही मार देता। आदरणीय पं. ओमप्रकाश आर्य महोपदेशक से मैं (आचार्य उमेश) भी कई बार मिल चुका हूँ और आशीर्वाद पा चुका हूँ। वे अंतिम दिनों करनाल हरियाणा में रहने लगे थे। आचार्य सत्यप्रिय की पुस्तक 'स्वातंत्र्य संग्राम में आर्यसमाज का योग दान' का प्रथम सम्पादक भी आप ही थे। एक कम्युनिष्ट ने उनकी इस वीरताभरे साहस को देखकर बोला कि अगर आर्यसमाजी इसी का नाम है तो मैं भी आज ही आर्यसमाजी बनने को तैयार हैं। आचार्य सत्यप्रिय शास्त्री हिसार के शब्दों में पढ़िये—

'एक विख्यात समाचार पत्र ने आपके कार्य के विषय में लिखा था कि यदि प्राणों को हथेली पर धर, सिर पर कफन बांध कर, मृत्यु को चैलेंज करते हुए हिन्दु जाति क.. रक्षा करने वाले वीर के दर्शन करने हों तो रावल‍िंडी में जाकर आर्यवीर श्री ओ क्राश जी को देखो। आर्यसम के लिए प्रसंशा पत्र इससे बढ़कर और क्या हो सकता है? पृ.127. ह घटना भी आदरणीय पं. ओम् प्रकाश जी ने लेखक (आचार्य उमेश) को चण्डीगढ़ आर्यसमाज सेक्टर-7 में पधारने पर एक वार्त्तालाप

में सुनाई थी जब 1985-95 काल में लेखक वहाँ पौरोहित्य कार्य पर नियुक्त था।

आर्यसमाज अमृतसर पंजाब में और आर्यसमाज दीवानहौल दिल्ली में तब शरणार्थियों का अड्डा बना हुआ था। इनके नेत्तृत्त्व में ही लोगों को अमृतसर से दिल्ली भेजने का काम जोरों पर था। आर्यवीर इस पुण्य कार्य में लगे हुए थे उधर कांग्रेसी भारतीय नेता सत्ता की राजनीति में लिप्त आजादी के जश्न में डूबे दिल्ली के लालकिले से तिरंगा फहराने में संलिप्त थे। इतिहासकार के अनुसार लगभग 90 लाख लोगों को इस आजादी के लिए यातनायें भुगतनी पड़ी जिसमें हमारे नामधारी कांग्रेसी नेताओं की गलत निर्णय का परिणाम था। कितनी नारियाँ विधवा हो गईं, कितने बच्चे अनाथ, कितने वृद्ध माता-पिता अकेले रह गए, कितने भाई-बहन को खो बैठे और कितनी बहनों की कलाई शून्य हो गई, यह कल्पना मात्र से ही जी सिहर उठता है। इस विकट काल में भी आर्यसमाज ने कभी हिम्मत न हारी क्यों कि हमारे गुरु महर्षि दयानन्द ने लिखा और बोला कि अपना राज्य बुरा से बुरा भी अच्छे से अच्छा विदेशी राज्य से उत्तम है जो स्वीकार करने योग्य है तभी तो सब लोग अपनी करोड़ों की सम्पत्ति छोड़कर खाली हाथ सुख भरी आशा में अपने देश में आए जिन्हें भविष्य का केवल और केवल यही आशा थी कि हम अपने देश में सुखी रहेंगे। चलो जो भी मिली पर आजादी मिली। इस आजादी को बहुत से लोग **लंगड़ी, आधी, अंग्रेजियत** आदि नामों से भी पुकारते हैं कि यह आजादी पूर्ण नहीं है, हम आज भी अंग्रेजों के मानसिक गुलाम-से हैं और आज भी अपना राष्ट्रीय गीत 'जन-गण-मन अधिनायक जय हो, भारत भाग्यविधाता' एक ब्रिटिश वायसराय की प्रसंशा में ही गाते हैं जो कोरी विदेशी मानसिकता की पहचान है। हमें सदैव प्रयत्न करना होगा कि हम पूर्णतया अपने स्वदेशी भावना, संस्कृति, भाषा, तकनीक, विज्ञान व वस्तु पर गर्व करें, इनका विकास करें और इनका प्रयोग करें।

षष्टम अध्याय

आर्य वीर अमर शहीद रामप्रसाद बिस्मिल

आर्य वीर अमर शहीद रामप्रसाद बिस्मिल व सह साथी तथा कुछ अन्य स्वाधीनता की क्रांतिकारी घटनाएं—

रामप्रसाद बिस्मिल

रामप्रसाद बिस्मिल—श्री राम प्रसाद बिस्मिल सशस्त्र संग्रामियों में प्रमुख थे। आपका समय भगतसिंह के बाद सीधा जुड़ गया और इस क्रांति-आन्दोलन को अपने नेत्तृत्व में ले लिया। आपका जन्म 11 जून 1897 शाहजहाँपुर उत्तरप्रदेश में हुआ और आपकी मृत्यु 19 दिसम्बर 1927 गोरखपुर उत्तरप्रदेश में हुई। आपके पिताजी का नाम श्री मुरलीधर और माता का नाम श्रीमती मूलमती था। आपके पूर्वज ग्वालियर (म.प्र.) के चम्बल नदी के किनारे तोमरधार नामक गाँव में रहते थे पर मातापिता बाद में शाहजहाँपुर में आकर बस गए थे।

प्रारम्भिक शिक्षा—जब राम 7 वर्ष के थे तो उनके पिता पं. मुरलीधर ने घर पर ही हिन्दी वर्णमाला और शब्दों को लिखना सिखाया। साथ ही उर्दू पढ़ने के लिए मौलवी के पास जाया करते थे। 8वीं तक अपनी कक्षा में प्रथम आते थे पर बाद में कुसंगति का शिकार हो जाने से कई बार अनुतीर्ण हुए, गिरावट शुरू हो जाने से परिवार में चिन्ता स्वाभाविक है। उर्दू पढ़ने से उनका मन ऊब गया, पिता के मन न होने पर भी माता की सहमति से अंग्रेजी की पढ़ाई शुरू की। अंग्रेजी पढ़ने की

उनकी ईच्छा स्वयं जगी थी पर पिता नहीं चाहते थे तो माता से अनुमति मिल गई। नौवीं कक्षा में आने पर वे **आर्यसमाज शाहजहाँपुर से जुड़े,** वहाँ वे एक अच्छे वैदिक विद्वान स्वामी सोम देव से मिले और फिर तो इनका जीवन ही बदल गया। स्वामी सोम देव जी से मिलकर तो वे पूर्ण क्रांतिकारी बन गए। जब वे 18 वर्ष के थे तब ही रामप्रसाद बिस्मिल ने भाई परमानन्द की फांसी की सजा सुनी फिर आजीवन सजा में उनकी सजा बदल गई और बाद में 1920 में उन्हें रिहा भी कर दिया गया पर इस घटने ने वीर बालक राम पर अत्यन्त विह्लता का प्रभाव डाला जिसके परिणाम में बिस्मिल ने एक कविता लिखी जिसका शीर्षक था–'मेरा जन्म' और इस कविता में ब्रिटिश सरकार की खात्मा की प्रतिज्ञा के पवित्र भाव भरे थे। भाई परमानन्द जी को 'गदर षडयंत्र' के कारण उक्त सजा दी गई थी।

1916 में वे पढ़ाई छोड़कर लखनऊ में एक बड़ी राजनैतिक सम्मेलन में शामिल हुए जहाँ इन्हें श्री केशव बलिराम हेडगवार, सोमदेव शर्मा, मुकुन्दीलाल आदि नेताओं से मिले, वहीं से राजनीति में आगे बढ़ते हुए एक पुस्तक लिखी –'अमेरिका की स्वतंत्रता का इतिहास' जिसे उत्तर प्रदेश की सरकार ने जप्त कर ली, यह पुस्तक प्रकाशित तो हुई पर सरकार की कड़ी नजर से बच न सकी।

वे कवि, लेखक, शायर आदि विधाओं में भी प्रवीण थे। कई पुस्तकें लिखीं पर अंग्रेजी सरकार ने इनकी सारी दस्तावेज जप्त कर लिया इस लिये यत्र-तत्र इनकी रचनाओं का आंशिक भाग मिल जाता है जिसे हम आगे के विवरण में स्वाभाविक रूप से देखेंगे।

संगठन व कांड—राम प्रसाद बिस्मिल महर्षि दयानन्द की राष्ट्रीयता के कायल थे। फलत: उन पर स्वाधीनता संग्राम में कूदने की प्रबल प्रेरणा मिली—अपनी आत्म कथा में बिस्मिल ने खूद यह पंक्ति लिखी-**'भारत वर्ष की एक महान आत्मा विलीन हो गई और देश ने जाना भी नहीं।'** उनका यह उद्‌गार महर्षि दयानन्द के लिए ही था। लखनऊ सभा से पहले ही इनमें क्रांतिकारिता तो उभर आई थी पर उस सभा में तत्कालीन कांग्रेसी नेताओं व आर्यसमाजी नेताओं के प्रभाव से पूरी तरह क्रांतिकारी आयोजनों में कूद पड़े। इनके जीवन की दो महत्त्व पूर्ण घटना

मानी जाती है। 1. मैनपुरी घटना व 2. काकोरी रेल डकैटी काँड। इनके अलावे भी छोटी-मोटी डकैटियों का अंजाम अपने नेत्तृत्त्व में दिया पर मैनपुरी घटना में पूरी सफलता तो न मिली लेकिन उनके अदम्य साहस का परिचय मिला। खुद की आँखों से लहु बहते हुए भी अपने एक दोस्त को कंधे पर बैठा कर सुरक्षित जगह ले आए और घर जाने पर पिता को बोला कि एक बैल गाड़ी पर बैठने पर बैल गाड़ी पलट गई जिससे उन्हें चोट आ गई। यह एक डकैटी का काम था जो किसी परिवार में किया गया था। लगभग 15 युवक और इनके साथ थे। इस कांड में भी इनकी गिरफ्तारी का वारंट तो निकला पर किसी तरह छिप-छिपा कर वच निकले। एक स्टेशन पर किसी कुली से टकराकर गिर जाने पर बड़ी चतुराई से स्वयं को बचा पाए थे। कहीं से भी निराश हों पर आर्यसमाज में इन्हें पूरी शरण मिला करती थी। हम इनकी बहादुरी की बात करें तो वे शरीर से मजबूत थे। आर्यसमाज से ही प्रेरणा मिली थी कि वे आसन-व्यायाम, दण्ड, दौड़ आदि करके अपने शरीर को बज्र जैस बना लिया था। वे भाषण में प्रवुद्ध व प्रवीण थे। अपने आर्यसमाजी गुरु स्वामी सोमदेव से इन्होंने सारी कलाएं सीखी थीं। इनका यह आत्मबल इन प्रकरणों को समझने से स्पष्ट हो जाता है कि किस कदर यह महान व्यक्तितत्त्व आर्यसमाज की एक महान सबल आत्मा थी।

मैनपुरी योजना—अंग्रेजी सामराज्य को खत्म करने के लिए पं. रामप्रसाद बिस्मिल अत्यन्त उग्र हो चले थे। इसके लिए ओरैया के क्रांतिकारी विचारधारा के नेता पं. गेन्दालाल दीक्षित की मदद से **'मातृदेवी'** नामक एक संस्था बनायी। उधर स्वामी सोमदेव जी ने ही अपने मित्र श्री गेन्दालाल दीक्षित के पास बिस्मिल को भेजा था। दीक्षित जी ने 'शिवाजी समित्ति 'नाम से पहले से ही एक क्रांतिकारी योजनाओं के लिए संस्था बना रखी थी। इटावा, मैनपुरी, आगरा और शाहजहाँपुर के युवकों को जोड़ने की योजना लेकर आगे बढ़े। इस योजना को मैनपुरी योजना कहा गया जिसमें स्वाधीनता के लिए कार्य करने में धन भी चाहिये तो योजना बनाई कि इन इलाकों में सरकारी सम्पत्ति लूटेंगे। जनवरी 1918 में बिस्मिल जी ने 'संदेश' नामक एक पर्चा बाँटा जिसमें मैनपुरी षडयन्त्र की चर्चा भी की गई। उसमें प्रभावशाली कविता

लिखी जिसके द्वारा सब युवकों को प्रोत्साहित करने का काम था। इसमें मैनपुरी की प्रतिज्ञा का खुलासा किया गया। इसके लिए तीन बार छोटी-मुटी डकैतियाँ भी कीं। ब्रिटिश सरकार ने सम्बन्धित साहित्य को बाँटने पर प्रतिबन्ध लगा कर मैनपुरी षडयन्त्र की आशंका पर बिस्मिल पर वारण्ट जारी कर दी। इनके साथियों को भी पकड़ने की कोशिश की जाने लगी। वस्तुत: पुलिस ने इन्हें दिल्ली में चल रहे कांग्रेस-अधिवेशन में साहित्य-बँटन पर प्रतिबन्ध लगाकर गोली-वारी कर जनता में विप्लव पैदा कर दिया। पुलिस के मुठभेड़ के बाद बिस्मिल भाग निकले और यमुना में कूद गए। कंटीली रास्ते से तैरते हुए बिहड़ बबुल के कांटों से जख्मी हो गए पर वीर पुरुष ने हिम्मत नहीं छोड़ी। तैरते हुए आधुनिक नाम ग्रेटरनोएडा के तरफ बाहर आए बबुल के बिहड़ वन में भटकते रहे। मैनपुरी स्टेशन आदि लूटने आदि की योजना का खुलासा हो जाने के कारण पुलिस इनके पीछे पड़ गई। उधर ब्रिटिश जज ने मैनपुरी षडयन्त्र के मुख्य आरोपी पं. गेन्दा लाल दीक्षित और बिस्मिल दोनों को भगोड़ा घोषित कर दिया पर बिस्मिल ग्रेटरनोएडा के एक रामपुर जागीर गाँव में छिपकर रहने लगे और कई महिनों तक इधर-उधर भटकते रहे। उस दौरान एक उपन्यास ' बोल्शेविकों की करतूत' लिखी और योग-साधन को हिन्दी में अनुवाद भी किया। फरवरी 1920 में सरकार ने सभी मैनपुरी षडयन्त्र के आरोपियों को जो कैद थे, उन्हें रिहा कर दिया फिर बिस्मिल भी शाहजहाँपुर आकर वापस रहने लगे।

पं. गेंदालाल दीक्षित—पं. गेंदालाल दीक्षित मैन पुरी षडयंत्र के नेता माने गए। आप एक पक्के आर्यसमाजी विचारों के राजनैतिक नेता थे। युवावस्था में आपने मैनपुरी कांड को नेत्तृत्व दिया जिसमें रामप्रसाद बिस्मिल आपके शिष्य बने और आगे बढ़कर पूरी योजना में वीरता से भाग लिया। दीक्षित जी का जन्म आगरा जिले के एक प्रसिद्ध कस्बा बटेसर के पास मई गाँव में 30 नवम्बर 1888 में हुआ था। आपके पिता श्री भोला नाथ दीक्षित थे।

श्री गेंदा लाल दीक्षित एक ओरैया शहर में डी.ए.वी. के शिक्षक थे। वे स्वयं आर्यसमाजी तो थे ही, साथ में उनमें क्रांतिकारिता भी थी। देश की दुर्दशा देखकर बस स्वाधीनता समर में कूद गए। श्री मन्मथ गुप्त द्वारा

यह लिखना कि 'पंडित जी ने सोचा कि बस हम क्यों चुप बैठे रहें, हम भी कुछ कर गुजरें' यह उनके क्रांतिकारिता-व्यक्तित्त्व पर न्याय संगत सोच नहीं है। वस्तुतः दीक्षित जी पूर्व से ही महर्षि दयानन्द के राष्ट्रवादी विचारों से विदेशी सरकार के प्रति उग्र थे और समय पाकर इस धधकती आन्दोलनाग्नि में अपनी आहुति देने के दृढ़संकल्प को लेकर राष्ट्र-यज्ञ में वीरतापूर्वक उत्तरे। श्री गुप्त ने तो यह वाक्य लिखकर ऐसे दिखाने की कोशिश की जैसे उनका मन पहले नहीं था और समय का लाभ ऐसे लिया जैसे दीक्षित जी किसी लोकैषणा के भूखे थे। चलो! किसी कामरेड साम्यवादी लेखक से आर्यसमाजी नेता की इतनी तारीफ भी काफी है, न्यून ही सही, पर तारीफ करने को मजबूर तो थे श्री मन्मथ गुप्त (पृ.103—स्व पुस्तक-भा.क्रा. आर्य इतिहास)

पं. दीक्षित ने 'शिवा जी समिति, फिर मातृवेदी आदि संगठनों को बनाया जिनमें रामप्रसाद बिस्मिल को आगे रखा साथ ही अन्य सबको भी कार्य क्षेत्र में उतारा। इनके कुछ साथी पुलिस के मुठभेड़ में मारे गए जिससे आपको ग्वालियर जेल में रखा गया। पुलिस को चकमे में लाकर कि तुम्हें सब भेद बता दूँगा, रात्री में किसी तरह जेल से भाग गए। तब शरीर भी रोगयुक्त हो चला था। कमजोर शरीर के साथ इधर-उधर पुलिस से बचते-छिपते अंतिम समय उनका अत्यन्त कष्टकारी रहा।

मन्मथ गुप्त जी की पुस्तक पृ.107-8 पढ़ने से दीक्षित जी की अंतिम अवस्था का चित्रण कुछ इस तरह उभरकर आता है—

'एक देशभक्त अपनी जन्म-भूमि से दूर अपनी अंतिम शय्या पर लेटा हुआ है। उनके सहयोद्धा मित्र साथ नहीं हैं। केवल उसकी स्त्री उनके पास है तिस पर तुर्रा(भारी/मुश्किल) यह कि पुलिस पीछे लगी हुई है। ऐसी अवस्था में जब मृत्यु करीब थी तब स्त्री रोने लगी। पं. गेंदा लाल जी देर तक अपनी स्त्री की ओर देखते रहे। फिर बोले—**'तुम रोती है तो रोवो, आखिर इस रोने से क्या हासिल? दुःख तो मुझे भी है।** जिस बात का मैंने बीड़ा उठाया था और मैंने उसे कितना सिद्ध किया? मर तो मैं रहा ही हूँ, किन्तु जिस कारण मैं मर रहा हूँ, वह पूरा कहाँ हुआ? सच बात यह है कि उसका पूरा होने की आशा भी नहीं देख रहा हूँ। मैं इस बात को देख कर मर रहा हूँ कि मैंने जो कुछ किया था, वह छिन्न-भिन्न

हो गया। मुझे केवल इतना ही दु:ख है कि माँ के ऊपर अत्याचार करने वालों से बदला नहीं ले सका, जो मन की बात थी, वह मन में ही रह गई। मेरा यह शरीर नष्ट हो जाएगा किन्तु मैं मोक्ष नहीं चाहता, मैं तो चाहता हूँ कि बार-बार इसी भूमि में जन्म लूँ और बार-बार इसी के लिए मरूँ। ऐसा तब तक करता रहूँ जब तक कि मेरा देश गुलामी की जंजीर से छूट न जाए।'

इस प्रकार श्री गेंदा लाल दीक्षित एक आर्य वीर पुरुष थे जिन्होंने रामप्रसाद बिस्मिल को भी मार्ग दर्शित किया था। इन्हें मैनपुरी कांति के चाणक्य कहा गया। इस वीर को महर्षि दयानन्द का दिवाना कहने में क्या संकोच जिसका ध्येय ही बार-बार जन्म लेकर भी अपनी मातृभूमि को विदेशी जंजीरों से छुड़ाना है, भला उस आर्य वीर की वीरता को कौन झुठला सकता है ? चाहे उनके जीवन में स्वाधीनता न मिली पर उनकी चेतनाओं व प्रयत्नों की आहुति तो उनके द्वारा इस महान यज्ञ में डाली गई। तभी यह स्वाधीनता रूपी यज्ञ 15 अगस्त 1947 को सफल हुआ।

असहयोग आन्दोलन से जुड़े कुछ महत्त्वपूर्ण अधिवेशन- सितम्बर 1920 में एक कांग्रेस के बड़े अधिवेशन में वे लाला लाजपत राय से मिले और अपनी पुस्तक भी दिखायी। लाला जी बहुत प्रभावित हुए और अपने एक मित्र प्रकाशक से मिलवा दिया फलत: वह पुस्तक पं उमादत्त शर्मा के सहयोग से पुस्तक छप गई। श्री दीक्षित जी की मृत्यु 21 दिसम्बर 1920 को हुई।

सन् 1921 में अहमदाबाद कांग्रेस के अधिवेशन में भाग लिया और मौलाना हसरत मोहनी से मिलकर 'पूर्ण स्वराज' का प्रस्ताव पास करवाया। असहयोग आन्दोलन में शामिल होने के लिए युवकों को प्रेरणा देते रहे पर जब गांधी जी ने असहयोग आन्दोलन का प्रस्ताव वापस लेने की माँग की तब 1922 में गया (बिहार) में काँगेस का एक बड़ा अधिवेशन हुआ जिसमें बिस्मिल और अन्य आर्य नेताओं ने गांधी के इस प्रस्ताव का विरोध किया जिसके कारण तब कांग्रेस में दो फाड़ हो गई— उदारवादी और विद्रोही दो विचारधाराएं।

एच. आर.ए. (हिन्दुस्तान रिपबलिकन एसोशिएशन) का गठन- सितम्बर 1923 में इन सभी असंतुष्ट युवकों ने दिल्ली के एक विशेष कांग्रेस अधिवेशन में एक अलग संगठन बनाने का संकल्प लिया तब

पंजाब के लाला हरदयाल आर्यसमाजी क्रांतिकारी नेता जो विदेश में रह रहे थे ; ने एक पत्र द्वारा बिस्मिल जी को नवनिर्मित संगठन का अलग संविधान बनाने की सलाह दी थी जिसमें उन्होंने शचीन्द्र नाथ सान्याल व यदु गोपाल मुखर्जी से मिलकर नयी पार्टी का संविधान बनाने का उल्लेख था।

बमरौली-डकैती—हिन्दुस्तान रिबलिकन एसोशिएशन की एक बैठक कानपुर में 3 अक्तूबर 1924 को हुई जिसमें शचीन्द्र नाथ सान्याल, योगेश चन्द्र चटर्जी व राम प्रसाद बिस्मिल और अन्य आर्यसमाजी विचारधारा के गरमदली नेता सम्मिलित हुए जिसमें आवश्यक फण्ड के लिए डकैती का अंजाम देना तय हुआ तथा 25 दिसम्बर 1924 को **बमरौली में डकैती** डाली गई। इस तरह आवश्यक धन के लिए डकैती की योजनाएं आगे भी चलती रही जिसका उद्देश्य ब्रिटिश सरकार को उखाड़ फेंकना और लूटे हुए धन का इस राष्ट्रीय यज्ञ में सदुपयोग करना था।

काकोरी कांड—मैनपुरी घटना के बाद काकोरी रेल घटना हुई। 9 अगस्त 1925, संध्याकाल 8बजे 8 नम्बर की हरदोई से लखनऊ जाने वाली गाड़ी में घटी। काकोरी और आलमपुर के बीच 52 न. के खम्भे पर रुकने वाली गाड़ी की कहानी है। लगभग इसमें 9 अन्य नौजवान बिस्मिल के साथ हथियारबन्द होकर सवार हुए। इनका नाम था—अशफाक उल्ला खाँ, राजेन्द्र लाहड़ी, चन्द्रशेखर आजाद, शचीन्द्र नाथ बक्शी, मन्मथ नाथ गुप्त, मुकुन्दी लाल, केशव चक्रवर्त्ती, मुरारी शर्मा और बनवारी लाल। इनमें दो एक को छोड़कर सब आर्यसमाजी विचारधारा से प्रभावित थे। जो दूसरे भी थे तो उन्हें आर्यसमाज के अनुसार स्वाधीनता विचार पर पूरी सहमति थी। योजनानुसार जंजीर खीची गई और गाड़ी वहाँ रुक गई। सभी नौजवान रामप्रसाद की निगरानी में सक्रिय हो गये और गाड़ी गार्ड को पिस्तौल दिखाकर लेटा दिया गया। वहाँ हफरातफरी मच गई। कुछ लोग गाड़ी से बाहर निकल गए, कुछ इधर-उधर भागने लगे। चार नौजवानों की ड्यूटी बाहर ध्यान रखने की थी। दो आगे से और दो पीछे से। मुख्य पिस्तौलें राम प्रसाद बिस्मिल के पास ही थीं। खजाने की सन्दूक पर पिस्तौल मारकर अन्दर से निकाल दिया पर वह अन्दर से बन्धे होने के कारण बाहर की ओर लटक गया। चाभी गार्ड के पास नहीं थी। 10

मिनट के अन्दर ही अशफाक उल्ला खाँ द्वारा एक घन द्वारा सन्दूक की कड़ी तोड़ दी और उसमें रखे थैले निकाल कर एक चादर में बांध कर वहाँ से सब एक ओर झाडियों में भाग कर छिप गए। इन 10 लोगों में अशफाक, राजेन्द्र लाहड़ी, शचीन्द्र बक्शी भी इस काम के लिए मुख्यरूप से चुने गए थे। इन तीनों में अशफाक मुखिया था बाकी सात जनें श्री राम प्रसाद बिस्मिल के नेतृत्त्व में काम कर रहे थे पर पूरे आयोजन के मुखिया वीर राम प्रसाद बिस्मिल ही थे। इनके सारे हथियार घन, हथौड़े, छेनियाँ सब इनके नेत्तृत्त्व में ही आर्यसमाज शाहजहाँपुर में रखे जाते थे। इस कांड से पहले कई लूट के काम वे कर चुके थे अत: इन्हें इसमें अच्छा अनुभव हो चुका था। रेल के मोसाफिरों को चेतावनी दी जा रही थी कि कोई अपनी जगह से न हिले, गोलियों का बौछार भी दोनों ओर से होने लगा। एक मोसाफिर नीचे उतरते हुए मारा भी गया। झाड़ियों में छिपे लोग उधर थैले लिये लखनऊ चौक की ओर आ गए। थैले से रुपये नोट आदि निकाल कर थैले फेंक कर सब फरार हो गए पर 25 दिसम्बर,1925 को गिरफतारी इनकी शुरू हो गई जिसमें बिस्मिल पकड़े हये। डेड़ साल तक अभियोग चला। फांसी की सजा सुनाई गई, बहुत प्रयत्न किये जाने पर भी सजा कम न हो सकी। आर्यों ने भी इसके लिए काफी जोर लगाया पर कोई लाभ न हो सका। 19 दिसम्बर, सन् 1927 ई. को गोरखपुर में उनकी फांसी हो गई।

उनका आर्य चरित्र—एक छोटी सी डकैटी में अपने साथियों के साथ किसी के घर घुसे तो इनके एक सरदार साथी स्वयं को क्रांतिकारी सदस्य बताकर साथ हो लिया पर उसने अन्दर जाकर एक महिला को पकड़कर पैसे छिनने के बहाने कमरे में ले जाने लगा तो आर्य चरित्र श्री बिस्मिल ने कहा कि खबरदार! किसी भी स्त्री पर हाथ भी उठाया तो तुम्हें माँफ नहीं किया जाएगा। उसे गोली का निशाना बनना होगा। फिर डांटते हुए कहा कि 'कायर! अगर भविष्य में तूने फिर कभी अपनी स्वार्थसिद्धि के नाम पर क्रांतिकारियों को कलंकित किया तो अच्छा न होगा। जा आज तुझे क्षमा करता हूँ।' कहते हैं कि इस डकैती में सिर्फ 14 आने ही हाथ लगे थे। डकैती इनका एक नेक कार्य को अंजाम देने के लिए हुआ करती थी। गरीब, अबला, नारी या निर्दोष को सताने के लिए नहीं अपितु लूटी

हुई सम्पत्ति से देश का भला करना ही उद्देश्य था। यही इन्होंने अपने आर्य गुरुओं से सीखा था।

यद्यपि गोरखपुर की जनता ने इनकी अर्थी बहुत ही अच्छी तरह सजाई थी और बहुत शान पूर्वक अंतिम शव यात्रा निकाली गई गई थी जिसमें आर्यसमाज शाहजहाँपुर का मुख्य हिस्सा था। अन्त्येष्टि संस्कार पूर्णतया आर्यसमाज की विधि ही उनकी अंतिम इच्छा के अनुसार ही राप्तीनदी के तट पर हुआ था। अन्त समय में वीर बिस्मिल ने यह शेर कहा—

मालिक तेरी रजा रहे और तू ही तू रहे।
बाकी न मैं रहूँ, न मेरी आरजू रहे।

फिर बोला—

एक हसरत दिल में बिस्मिल के मिट जाने की है।

शहीदों की टोली-पृ. 145-151
प्रकाशक—कबीर शान्ति मिशन

आर्यसमाज की दृष्टि में बिस्मिल—महर्षि दयानन्द के बारे में अभी संसार को बहुत कुछ जानना है। अमर शहीद बिस्मिल अपनी पुस्तक आत्मकथा में लिखा—'**भारतवर्ष की एक महान आत्मा विलीन हो गई और देश ने जाना भी नहीं।**' इस उद्गार से प्रेरित बिस्मिल स्वाधीनता संग्राम में अपनी जान दे दी पर महर्षि दयानन्द को अपनी अंतिम घड़ी में अपना महान धार्मिक गुरु बताकर सदा के लिए सबमें महर्षि दयानन्द के विचारों को अमर श्रद्धांजलि दे गए। आएं और थोड़ा इस पर विचार करें-

बिस्मिल जी ने आत्मकथा नामक पुस्तक भी लिखी जो उनके आर्यत्व का पूरा परिचय देती है। इस पुस्तक के 21-24 पृष्टों को पढ़ने से जो हमें ज्ञान होता है, उसका उल्लेख हम थोड़े शब्दों में करते हैं—

यह हम जान चुके हैं कि मैनपुरी कांड जिसे विप्लव कांड भी कहते हैं, को फेल हो जाने पर बिस्मिल ने अपने अन्य नौ वीर दोस्तों के साथ काकोरी रेल डकैती कांड को अंजाम दिया जिसका मुखिया स्वयं थे और इसमें अधिक आर्यसमाजी युवक थे। सब के सब बड़े साहसी और लगभग 17 वर्ष से ऊपर के तो कोई थे नहीं। सबको आर्यसमाज से अद्भुत प्रेरणा मिली थी। बिस्मिल जी ने सत्यार्थ प्रकाश जब पढ़ा तो

उनका जीवन और आत्मबल दोनों स्वाधीनता के प्रति दृढ़ हो गया, वैसे ही उन्होंने अपने साथियों में भी स्वाधीनता के लिए दम व उत्साह भर दिया था। बिस्मिल जी के गुरु स्वामी सोमदेव जी महाराज थे जिन्होंने इन्हें स्वाधीनता के कंटकाकीर्ण मार्ग पर चलने को तैयार किया। स्वामी सोमदेव जी का परिचय बिस्मिल जी इस प्रकार दे रहे हैं—

'माता जी के अतिरिक्त जो कुछ जीवन तथा शिक्षा मैंने प्राप्त की वह पूज्यपाद श्री 108 स्वामी सोमदेव जी महाराज की कृपा का परिणाम है। आपका नाम श्री ब्रजलाल चोपड़ा था। पंजाब के लाहौर शहर में आपका जन्म हुआ।'

स्वामी सोमदेव जी महाराज—स्वामी जी महाराज ने किसी समाचार पत्र की सम्पादकी के लिए लाहौर में निवेदन रूप एक डिक्लरेशन दाखिल किया और यद्यपि वहाँ का डी. सी. आम तौर पर किसी को स्वीकार नहीं कर रहा था पर इनका जब डी.सी. से पहला ही इण्टरव्यू हुआ तो वह अत्यन्त प्रभावित हुआ और इनका डिक्लरेशन स्वीकार कर लिया। यह समय तब का था जब लाला लाजपत राय को देश-निर्वासन का दण्ड ब्रिटिश सरकार द्वारा दिया गया था। स्वामी जी का उस अखबार का पहला ही लेख 'अंग्रेजों को चेतावनी' ने डी.सी. को चौंका दिया। लेख के अन्दर भरी उत्तेजना से समाचार की प्रतियाँ धड़ा-धड़ बिक गईं। उसका दूसरा संस्करण भी प्रकाशित करना पढ़ा। उधर डी.सी. को जब सूचना मिली तब वह परेशान हुआ और उसने स्वामी जी को बुलाया। टेबल पर हाथ मारता कभी क्रोद्ध में चिल्लाता। लेख के अंतिम शब्दों को पढ़कर चुप हो जाता, आखिर क्या लिखा था उस लेख में—'यदि अंग्रेज अब भी न समझेंगे तो वह दिन दूर नहीं कि सन् 57 के दृश्य फिर दिखाई दें और अंग्रेजों के बच्चों को कत्ल किया जाए, उनकी रमणियों की बेइज्जती हो इत्यादि किन्तु यह सब स्वप्न है' इन्हीं शब्दों को पढ़कर डी.सी. चुप हो जाता और कहा करता था कि वह तुम्हारा कुछ नहीं कर सकते। ऐसे थे वीर स्वामी सोम देव जी महाराज। महर्षि दयानन्द का दिवाना।

अंग्रेजी, हिन्दी और संस्कृत का ज्ञान स्वामी जी को अच्छा था। वे एक सिद्धहस्त वक्ता थे। जोषिला भाषण हुआ करता था। आर्यसमाज

शाहजहाँपुर में वे अक्सर अपने प्रवचन व भाषणों द्वारा वैदिक प्रचार हेतु आकर जनता को राष्ट्रप्रेम के लिए भी खूब ही प्रभावित किया करते थे। बिस्मिल जी का सम्पर्क उनसे वहीं आर्यसमाज शाहजहाँपुर में ही हुआ था। बिस्मिल जी ने 1913 में उनका पहला व्याख्यान सुना और उनका शिष्य सा बन गये। 1915 में उन्हें आर्यसमाज शाहजहाँपुर में ही रहने के लिए निवेदन किया गया और वे वहीं रहने लगे। कहते हैं कि 1913 के पहले व्याख्यान के बाद हर वर्ष आपको वहाँ के वार्षिकोत्सव में बुलाया जाता रहा था और वहीं रहने का आग्रह भी किया गया। बिस्मिल जी ने तभी से आपकी सेवा में लगकर आपसे राजनीति का ज्ञान भी काफी अर्जित किया। स्वामी सोमदेव जी राजनीति का भी अच्छा ज्ञान रखते थे।

एक बार स्वामी सोमदेव जी ने स्वामी श्रद्धानन्द (महात्मा मुंशी राम) को पुलिस के प्रकोप से बड़ी चतुराई से बचाया। आचार्य रामदेव जी पूर्व आचार्य गुरुकुल काँगड़ी व महाशय कृष्ण जी से आपका अपार स्नेह था। क्यों न हो, ये सब ही तो आर्यसमाज के क्रांतिकारी अगुआ नेता थे जिन्होंने अंग्रेजों को भारत छोड़ने पर मजबूर किया। समस्त आर्य समाजियों को स्वाधीनता संग्राम की कड़ी में माला के पुष्प की भाँति पिरो दिया। राम प्रसाद बिस्मिल के अनुसार ये अपने विचारों में परमहंस रामकृष्ण, 'स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ तथा महात्मा कबीरदास के उपदेशों का वर्णन भी प्रायः किया करते थे'।

बिस्मिल और सत्यार्थ प्रकाश—बचपन में रामप्रसाद बिस्मिल कुछ बुराइयों में फंस गए, कई बार यह बात बच्चों में स्वाभाविक हो जाती है। आर्यसमाज शाहजहाँपुर में ही उन्होंने महात्मा मुंशी राम (स्वामी श्रद्धानन्द) के उपदेश सुने जिससे सत्यार्थ प्रकाश पढ़ने की जिज्ञासा पैदा हुई। क्या कहते हैं बिस्मिल—

'मुंशी जी ने आर्यसमाज सम्बन्धी कुछ उपदेश दिये। इसके बाद मैंने सत्यार्थ प्रकाश पढ़ा, इससे तक्था ही पलट गया। सत्यार्थ प्रकाश के माध्यम ने मेरे जीवन के इतिहास में एक नवीन पृष्ठ खोल दिया।—मैं थोड़े दिनों में ही कट्टर आर्यसमाजी हो गया। आर्यसमाज के अधिवेशनों में आता जाता।—जब कोई संन्यासी आर्यसमाज में आता तो उनकी मैं सेवा करता'। इसके लिए इनके पिताजी खुश न थे। एक बार कह दिया कि या

तो आर्यसमाज से त्यागपत्र दे दो या घर छोड़ दो। वे केवल एक कुर्त्ता और पयजामे में ही घर छोड़कर आर्यसमाज आ गए पर फिर इनके पिताजी इन्हें वापस घर ले गए।

जब वे आठवीं कक्षा में थे तो 1913 में उनकी मुलाकात स्वामी सोमदेव जी महाराज से हुई जिसका वृतान्त पहले भी आ चुका। बिस्मिल जी स्वीकार करते हैं कि मैंने उनकी सेवा प्राणपन से की और उन्होंने भी मुझे खूब पढ़ाया जिससे उनका जीवन बदल गया। इन वाक्यों को पढ़ें और समझें—

'वास्तव में आप मेरे गुरुदेव और पथप्रदर्शक थे। कुछ नवयुवकों ने मिलकर आर्यसमाज मन्दिर में आर्य कुमार सभा खोली थी जिसका साप्ताहिक अधिवेशन प्रत्येक शुक्रवार को हुआ करता था। कुमार सभा से ही मैंने जनता के सन्मुख बोलने का अभ्यास किया। बहुधा आर्य कुमार सभा के नवयुवक मिल-मिल कर शहर के मेलों में प्रचारार्थ जाया करते थे और बाजारों में व्याख्यान देकर आर्यसमाज के सिद्धान्तों का प्रचार किया करते थे।—मैं नित्य प्रति नियमपूर्वक हवन भी किया करता था।' पृ.18

लेकिन जब 1913 में उन्होंने आर्यसमाज में स्वामी सोमदेव जी के व्याखान सुने और उनके सम्पर्क में आए तो सत्यार्थ प्रकास के कई उपदेश भी सुने। बस, तब से सत्यार्थ प्रकाश पढ़ने लगे और उनकी बालसुलभ बुराइयाँ भी भागने लगीं। सब प्रकार के दुर्गुण त्यागकर बलिदान के राही बन गए। उनके ही शब्दों में पढ़ें—पृ. 15-18'

एक प्रश्न—क्या बिस्मिल भी कट्टर आर्यसमाजी नहीं थे?

'भा.क्रां. आन्दोलन का इतिहास' पृ.230 पर साम्यवादी विचारधारा के कामरेड श्री मन्मथ नाथ गुप्त ने लिखा—'पं. रामप्रसाद ने लड़कपन से ही आर्यसमाजी शिक्षा पाई थी। बाद को भी वे कट्टर तो नहीं किन्तु आर्यसमाजी जरूर बने रहे।' गुप्त जी ने चलो उन्हें अंतिम समय तक आर्यसमाजी बने रहने की बात तो स्वीकारी। वैसे हम बताना चाहेंगे कि रामप्रसाद बिस्मिल एक कट्टर आर्यसमाजी थे जिनके अंतिम सांस तक की सारी घटनाएं महर्षि दयानन्द के विचारों को पोषित करती हैं। जब हम इनकी स्वयं लिखित आत्म कथा पढ़ते हैं तो हमें अनेक ऐसे प्रमाण मिलते हैं जिससे हम ऐसा कह नहीं सकते कि वे आर्यसमाज की

मान्यताओं को कहीं छोड़ा हो।

एक बार दिल्ली में कांग्रेस का अधिवेशन होना था। आपने अपनी एक पुस्तक 'अमेरिका को स्वाधीनता कैसे मिली' को छपवा कर बाँटना शुरू कर दिया। यह पुस्तक को पहले भी ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया था फिर भी इन्होंने हिम्मत कर यह काम किया। भारतीयों को प्रेरणा देने के लिए यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी थी। पर ब्रिटिश पुलिस को पता चला कि बिस्मिल यह पुस्तक छपवाकर फिर बाँट रहा है तब फिर ब्रिटिश पुलिस ने छापा मारने की कोशिश की। इधर अपनी जान जोखिम में रखकर भी इस पुस्तक की सारी प्रतियाँ आर्यसमाज की कैंप में जमा करा दी और बच गए। अपने खून से स्वाधीनता के वृक्ष को सींचने वाले यह वीर मूलतः आर्यसमाज की शिक्षाओं से अपने को सींचा था तभी यह राष्ट्र के लिए यह जज्बात इनमें विद्यमान थी।

प्रश्न का समाधान—काकोरी कांड में इन्हें फांसी की सजा सुनाई गई। जेलर ने पूछा तुम्हारा गुरु कौन है? बिस्मिल बोला, समय पर बता दूँगा। अंतिम समय आया तो फिर पूछा कि बताओ

—तुम्हारा धार्मिक गुरु कौन है?

बिस्मिल बड़े आत्मविश्वास से बोले—**महर्षि दयानन्द सरस्वती।**

—घर कहाँ है?

आर्यसमाज तथा भारतवर्ष।

—व्याम कर रहे हो, तुम्हें तो अब फांसी होने वाली है!

तो बोला—**अगले जन्म की तैयारी कर रहा हूँ। इत्यादि।**

बिस्मिल की अंतिम इच्छा—उन्होंने स्वयं यह लिख दिया था कि मेरा शव आर्यसमाज को सौंप दिया जाए और मेरा अंत्येष्टि संस्कार पूर्णतया आर्यसमाज वैदिक रीति से हो। और ऐसा ही हुआ।

19 दिसम्बर 1927 को जब फांसी हुई तो उससे पहले आपके चेहरे पर मुस्कान, आत्मविश्वास, अपने कर्म पर गौरव, आर्यसमाज के प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द के प्रति आस्था और अपने संस्कार गुरु स्वामी सोमदेव जी महाराज के प्रति सब साकारात्मक भाव झलक रहा था। आप एक जिंदा दिल कवि थे और आपकी कविताओं में वीर रस टपकता था। कहीं राम, कहीं अज्ञात तो कहीं बिस्मिल नामसे आपकी कविता पढ़ी गई। आपकी

यह कविता फांसी से पूर्व की अत्यन्त साहसिक है—

'मरते बिस्मिल रोशन लहरी, अशफाक अत्याचार से,
होंगे पैदा सैंकड़ों, इनके रुधिर की धार से।
शहीदों की चित्ताओं पर, जुड़ेंगे हर वर्ष मेले,
वतन पर मरने वालों का, यही बाकी निशां होगा।
इलाही वह भी दिन होगा,जब अपना राज देखेंगे,
जब अपनी ही जमीं होगे, और अपना आसमां होगा।
दिल फिदा करते हैं, कुरबान जिगर करते हैं,
पास जो कुछ है, वह माता की नजर करते हैं।'

वाह क्यों न होता उनका यह भाव? महर्षि दयानन्द ने यही तो लिखा और बोला कि स्वदेशी राज ही अपनी माता है। विदेशी राज बिना किसी दुःख दिये माता की तरह भी प्यार दे तो भी वह कभी स्वीकार करने योग्य नहीं है। रानी विक्टोरिया ने प्रस्ताव भेजा था कि वह भारत को पुत्र की तरह रखेगी। उसी के जबाब में महर्षि दयानन्द ने कई स्थानों पर यह लिखा कि हमें सदा सजग रहना होगा और विदेशी राज को तत्परता से बहिष्कार करना होगा। अपना देश ही कम सुख देने पर भी उत्तम है; ऐसी भावना महर्षि ने सब भारतीयों में भरी। तभी तो बिस्मिल ने अंतिम पद में लिखा कि 'पास जो कुछ भी है, वह माता (भारत) की नजर करते हैं और ऐसा कहते-कहते हँसते हुए फांसी के फंदों में चारो साथी अन्य तीन (ठाकुर रोशन सिंह, राजेन्द्र लहरी, अशफाक उल्ला खाँ) झूल गए।

आर्यसमाज के नियमों को पालन करने वाले रामप्रसाद बिस्मिल प्रातः 3 वजे जागते, व्यायाम आसन, स्नान, संध्या व नित्य प्रति हवन भी किया करते थे। उन्हीं के शब्दों में जानिये- ' मैं यथानियम जाड़े, गर्मी तथा बरसात में प्रातःकाल तीन बजे से उठकर संध्यादि से निवृत हो नित्य हवन भी करता था। यदि किसी के वाल-बच्चे को कष्ट होता था तो वह हवन की भभूत ले जाता था।' पृ.112 नोट—हवन का भभूत/राख शरीर पर मलने से चर्मरोग में लाभ होता है, यह एक विज्ञान व औषधि है जिसको जानकर कोई भी श्रद्धालु भभूत /राख का प्रयोग कर सकता है।

बिस्मिल जी ने उपरोक्त अपनी बात जेल में ही फांसी से पूर्व के लेख में लिखी है। जो कारावास में अपने बारे में जीवन के अंतिम समय

में ऐसा लिखता हो, उसके बारे में आर्यसमाजी होने का और क्या प्रमाण चाहिये? उन्होंने संध्या-हवन तक भी कारावास में रहते हुए भी कभी त्याग नहीं किया।

पुनर्जन्म व देशप्रम में विश्वास—पृ.132—'परमात्मा से मेरी यही प्रार्थना है कि वह मुझे इसी देश में जन्म दे। मैं उसकी पवित्र वाणी -वेद वाणी का अनुपम घोष मनुष्यमात्र के कानों तक पहुँचाने में समर्थ हो सकूँ।' फिर फांसी के निकट जाकर उन्होंने कहा—'I wish the down fall of British Empire' अर्थात् मैं ब्रिटिश साम्राज्य का विनाश चाहता हूँ।' फिर वह तख्ते पर चढ़े और महर्षि दयानन्द का सबसे प्यारा वेद मंत्र **'ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव, यद्भद्रं तन्न आसुव'**—यजुर्वेद-30.3 का जाप करते हुए फंदे से झूल गए। आत्मकथा-सम्पादकीय से उद्धृत। इसी तरह उनकी अंतिम इच्छा थी कि उनके शव को आर्यसमाज को अंतिम संस्कार के लिए दिया जाए। गोरखपुर आर्यसमाज ने उनकी अभूतपूर्व शवयात्रा निकाली और इस तरह विधिवत् आर्यसमाजी तरीके से उनका अंत्येष्टि कर्म किया गया। यू.पी.सभा का इतिहास पृ.171 में ऐसा लिखा हुआ मिलता है।

इन सब प्रमाणों से अमर शहीद रामप्रसाद बिस्मिल के बारे में उनका आर्यसमाजी होने में कोई कसर बाकी नहीं रह जाती। इतिहास गवाह है कि 1857 के स्वाधीनता गदर के बाद उत्तर प्रदेश का अगर कोई स्वाधीनतार्थ प्रथम बलिदानी है तो वह है वीर आर्य युवा बिस्मिल। पर दुःख से लिखना पड़ रहा है कि कांग्रेसी राज में अपने देश में भी बिस्मिल के परिवार वालों का बुरा हाल हुआ, किसी ने ध्यान नहीं दिया। उनका छोटा भाई रमेश दवा दारु के अभाव में टी.बी, बिमारी से तप-तप कर मर गया। उनकी माता वृद्धावस्था में भूख से मर गई तथा तन ढपने के लिए कहते हैं फटा कपड़े के चिथा भी नसीव न हो सका। यह थी स्वतंत्र भारत की कांग्रेसी सरकार की लापरवाही। शहीद परिवार फंण्ड सब लुटेरे नेता अपने पेट में डालकर डकार गए। चुनाओं में वेशक रामप्रसाद बिस्मिल-जिंदावाद के नारे और जगह-जगह बिस्मिल-द्वार बनाकर नेतागण अपने चुनावी फायदे लेते रहे मगर इन नेताओं में श्री रामप्रसाद बिस्मिल के बलिदान के बाद न ही आर्यसमाज को महत्त्व दिया न ही इनके पीछे इनके परिवार को।

इससे अधिक स्वतंत्र भारत की कांग्रेसी सरकार की अकर्मण्यता को क्या कहें ?

स्वामी ओमानन्द गुरुकुल झझर (रोहतक), हरियाणा और बिस्मिल जी की बहन शास्त्री देवी का 'भाई-बहन' सम्बन्ध और गुरुकुल संग्रहालय में बिस्मिल स्मृति चिन्ह--

बिस्मिल जी की एक बहन शास्त्री देवी नाम से थी जिसने अनेक डकैतियों को अंजाम देने में साथ निभाई थी। लेखा-जोखा का हिसाब तथा अन्य योजनाओं को व्यवस्थित करने में भी साथ देती रही थी। वह भी बहुत ही दिलेर और राष्ट्र-भक्त बनी, सत्यार्थ प्रकाश पढ़कर व आर्य विद्वानों के विचारों को सुनकर भाई की तरह राष्ट्रवादी बनी। पर जिस तरह उनकी माता व भाई की चर्चा की गई कि आजादी के बाद किसी ने उनका ख्याल नहीं किया, उनमें शास्त्री देवी भी शिकार हुई। भूख से परेशान हुई, कपड़े की बदहाली भूगतनी पड़ी पर उसका निराकरण काँग्रेसियों ने तो नहीं किया लेकिन यह सौभाग्य एक आर्य संन्यासी झझर गुरुकुल के संस्थापक स्वामी ओमानन्द सरस्वती को मिला। स्वामी जी ने एक दिन अपने परिसर में बैठे अखबार पढ़ते हुए एक स्थान पर लिखा देखा कि 'आर्यों की बहन भूखी', तो रूचि पूर्वक पढ़कर जाना कि वहाँ शास्त्री देवी अमर शहीद आर्य वीर रामप्रसाद बिस्मिल की बहन की बात लिखी थी। बस आर्य नेता स्वामी ओमानन्द जी के मन में दुःख हुआ; आँखों में आँसु आए और अपनी गाड़ी में अपने कुछ ब्रह्मचारियों व गुरुकुल के साथियों के साथ कुछ धन राशि ली और शाहजहाँपुर उत्तर प्रदेश को चल दिये। मुश्किल से पूछताछ करते-करते उस बहन का घर ढूँढ लिया और बहन से मिलकर अपना परिचय दिया और बोला कि ' आपकी इस बदहाली का जिम्मेदार भी हम ही आर्य लोग हैं, मैं सब आर्य जनों की ओर से माँफी माँगता हूँ इत्यादि'। बहन की आँखें भी भर आयीं, अपने प्रिय भाई बिस्मिल को याद किया। कमजोर शरीर, धंसी आँखे, टूटा-फूटा घर आदि उस बहन की बदहाली देख स्वामी जी काफी पीड़ित हुए, पास का धन उसे दिया और उसे अपनी बहन बनायी। गुरुकुल में आमन्त्रित किया और उसका भव्य स्वागत भी किया, एक बार गुरुकुल कुरुक्षेत्र के महा सम्मेलन में बहन शास्त्री देवी का बहुत ही शानदार स्वागत करवाया

था। गुरुकुल कुरुक्षेत्र भी एक शानदार प्रतिष्ठित आर्य गुरुकुल है जहाँ आधुनिक शिक्षा के साथ वैदिक शिक्षा भी दी जाती है जो आर्य प्रतिनिधि सभा हरियाणा के अन्तर्गत सुचारु रूप से गतिमान है। इस प्रकार स्वामीजी के साथ उस बहन का रिस्ता 'भाई-बहन' का सारे जीवन का बन गया। स्वामी जी का उन दिनों आर्यसमाजी राष्ट्र नेता जो उत्तर प्रदेश के तब मुख्य मंत्री भी थे; आदरणीय चौधरी चरण सिंह जिनसे मित्र होने के नाते मिले और इस बहन के लिए स्वतंत्रता सेनानी का पेंशन लगवाया। तब से शास्त्री देवी जी का भरण-पोषण सही होने लगा। आजीवन उस बहन का गुरुकुल झझर में आना-जाना बना रहा। स्वामी ओमानन्द जी हरियाणा आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान वर्षों तक रहे और कालान्तर में सार्वदेशिक आर्य सभा नई दिल्ली का भी निर्विरोध प्रधान मनोनित हुए थे। उनका गुरुकुल आज भी वैदिक शिक्षा के लिए सुप्रसिद्ध है और गुरुकुल ट्रस्ट के अधीन चल रहा है। वह गुरुकुल लगभग 60 बिग्घे जमीन में स्थापित है जो जमीन भी अपने पिता के एकलौता पुत्र के नाम पर थी जो स्वयं ब्रह्मचारी रहे, वही अपनी जमीन गुरुकुल को दान देकर स्वयं उसका संचालक भी बने, वही स्वनाम धन्य स्वामी ओमानन्द जी महाराज थे। आज भी गुरुकुल झझर संग्रहालय में अमर शहीद रामप्रसाद बिस्मिल के कुछ सामान 'कम्बल, चाकु, हवन कुंड, पिस्तौल तथा 50 तोले का सोने का चैन आदि सब रखे हुए हैं जो पहले स्मृति चिन्ह रूप उनकी बहन के पास ये वस्तुयें संजोयीं थीं; उन्हें इतिहास की गरिमा समझते हुए स्वामी ओमानन्द जी को बहन ने सौंप दी थी कि गुरुकुल संग्रहालय में बिस्मिल की स्मृति में सुरक्षित रखीं जाएं। स्वामी ओमानन्द जी ने बिस्मिल जी की कुछ ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रतिबन्धित पुस्तकें भी गुरुकुल प्रेस में ही प्रकाशित करवायीं थी—बिस्मिल जी की स्वयं लिखित आत्म कथा जिसे उन्होंने जेल में लिखी थी, अमेरिका को स्वाधीनता कैसे मिली, क्रांतिकारी जीवन, मन की लहर आदि ये सब पुस्तकें भेंट के रूप में बहन शास्त्री देवी को स्वामी जी ने दी थी।

आर्यसमाजी नेता क्रांतिकारी रामप्रसाद बिस्मिल ही ऐसे वीर थे जिन्होंने सभी युवा क्रांतिकारियों को और पक्के तौर पर राष्ट्रवादी बनाया चाहे वे भगतसिंह थे, राजगुरु, सुखदेव वा उनके साथ अन्य जुड़े

नौजवान, सबमें आर्य चेतना भरकर महर्षि दयानन्द की शिक्षा कूट-कूट कर और भर दी और उनके पूर्व संस्कारों को पक्का बना कर उन्हें स्वाधीनता संग्राम के लिए क्षेत्र में उतार दिया।

काश! हमारे देशवासी व भारत सरकार अपने इन वीर बलिदानियों के त्याग व सेवाओं का सही मूल्यांकण कर सके। वर्त्तमान मोदी सरकार से हमें अनुकुल आशा है।

ठाकुर रोशन सिंह—बिस्मिल के साथ फांसी पर झूलने वाले दूसरे वीर ठाकुर रोशन सिंह भी पक्के आर्यसमाजी थे। इनके साथ काम करने वाले श्री विष्णु शरन दुब्लिश भी आर्यसमाजी ही थे। साप्ताहिक हिन्दुस्तान देहली 13.7.1958 में निकला—'**बाद को शहीद होने वाले श्री रोशन सिंह उन्हीं (राम प्रसाद बिस्मिल) के पदों का अनुसरण करते थे।'** वे लम्बे तगड़े एक बलिष्ठ युवक थे। अपने को कट्टर आर्यसमाजी मानते थे। शुरू-शुरू में वे हवन आदि भी बहुत करते थे। यद्यपि वे कट्टर धार्मिक बने रहे। उन्होंने सजा सुन कर 'ओ३म्-ओ३म् जोर से कहा।— समय-समय पर वे उसी दिल दहलाने वाले तरीके से ओ३म्-ओ३म् कहते जा रहे थे, '—साथ ही उनका ओ३म्-ओ३म् शब्द उनका अदम्य साहस सूचित करता था, —सुनाई पड़ता रहा। —फांसी के चढ़ते ही उन्होंने 'वन्दे मातरम्' का नाद किया और ओ३म् का स्मरण करते हुए लटक गए। —आर्यसमाजी विधि से श्मशान भूमि पर उनका दाह संस्कार हुआ।'—भारत के क्रांतिकारी-मन्मथगुप्त पृ. 170-174

अभिलाशचन्द्र—ठाकुर रोशन सिंह के एक रिस्तेदार मुसाफिर महाविद्यालय आगरा में पढ़ा करता था। उसका नाम अभिलाशचन्द्र था। कहते हैं कि वह जब कभी दिल्ली अपने साथियों के साथ आकर लालकिले पर फहराता हुआ यूनियन फ्लैग्स/जैक देखता था तो उसके आँखों में खून उत्तर आता था। क्यों न हो, वह भी तो आर्यसमाज के उपदेशक विद्यालय का स्नातक था। मुसाफिर महा विद्यालय ही उक्त उपदेशक विद्यालय था जो आर्यसमाज के सिद्धान्तों पर स्थापित और तब के एक प्रसिद्ध उपदेशक विद्यालयों मे था। उसी विद्यालय के स्नातक ने आचार्य सत्यप्रिय शास्त्री जी को यह वार्ता बतायी।

वीर रोशन सिंह ने अपनी फांसी से पूर्व अपने मित्र को जिस

आत्मविश्वास, आस्तिक भाव व भारतमाँ के प्रति समर्पण भाव से लिखा वह, उसकी वीरता व आर्य श्रेष्ठता का ही प्रमाण है।

'आप मेरे लिये हरगिज रंज न करें, मेरी मौत खुशी का वाइस(आवाज) होगी। दुनियाँ में पैदा होकर मरना जरूर है, दुनियाँ में बदफेल करके मनुष्य अपने को बदनाम न करे। मरते बक्त ईश्वर की याद रहे। ईश्वर की कृपा से मेरे साथ ये दोनों बातें हैं' और अन्त में आपने एक पद्य लिखा था—

जिन्दगी जिन्दा दिली को जान ऐ रोशन।
वरना कितने मरे और पैदा होते जाते हैं॥

—अज्ञात नाम (मेरठ, आर्यसमाज)

विष्णु दुब्लिस—यह उनके निकट के मित्र थे। वे भी आर्यसमाज मवाना जिला मेरठ के युवा कार्य कर्त्ता थे। उन्होंने भी सन् 1921 में स्वाधीनता की लड़ाई में बीच बाजार में गोरों की हंसते-हंसते बेतें सही थीं। काकोरी षडयन्त्र कांड में उन्हें सरकारी पुलिस पकड़कर आरोपी बना दिया जिससे अंडमान जेल में यातनाएं सहनी पड़ी।

यू.पी. सभा का इतिहास पृ. 34

आचार्य सत्यप्रिय शास्त्री जी ने उनके लिए यह लिखा कि जब काकोरी कांड के अभियुक्त चारों वीरों को फांसी की सजा सुनाई गई तो इस वीर ने जज के सामने रोते हुए बोला कि 'मुझको फांसी का दंड क्यों नहीं दिया जाता। भारत माता के पुत्रों में क्या मैं ही नालायक हूँ? ' अंग्रेज मजिस्ट्रेट इस युवक की इतनी निर्भीकता देख आश्चर्यचकित रह गया। यह है इन देशभक्त आर्यवीरों की गौरवगाथा, रोमांचकारी गाथा, जो हमारी आजादी के इतिहास का सुनहरा व गर्विला अध्याय है।

—आचार्य स.प्रि. शास्त्री, पृ. 101 भा. स्वा. सं. आ. स. का योगदान

कुछ उत्तर प्रदेश के आर्यसमाजी वीर-स्वतंत्रता सेनानी के रूप में—हिन्दी जगत के प्रसिद्ध साहित्यकार राहुल सांकृत्यायन के अनुसार हिन्दु विश्वविद्यालय के प्रोफेसर पं. महेश प्रसाद (मौलवी आलिम फाजिल) अत्यन्त राष्ट्र प्रेमी थे। 'हिन्दुस्तान' उर्दू के सम्पादक देशभक्त व आर्यसमाजी विचारधारा के धनी महात्मा नन्द गोपाल जी के प्रभाव में वे एक आर्य श्रेष्ठ बने। वे सदा सब शिष्यों व मित्रों को स्वदेशी तथा मोटा

वस्त्र पहनने की प्रेरणा दिया करते थे। सांकृत्यायन जी ने इनके लिए लिखा- ' भाई साहब (महेश जी) ने हमारी आँखें खोल दी। देश पुकार सुनने के कान दिये, प्राण दान करने वाले हुतात्मा (स्वामी श्रद्धानन्द सरीखे) का अनुकरण करने की प्रवृत्ति दी। 'महेश जी पहले पुलिस में नौकर थे, आर्यसमाजी देशभक्तों के सम्पर्क में आकर आर्यसमाज द्वारा संचालित संस्था 'मुसाफिर महाविद्यालय आगरा' में आ गए और अपनी राष्ट्रीय भावना को पूरी तरह वहीं पक्का किया। वहाँ से पढ़कर ही आप आर्यसमाज के सिद्धान्तों के विश्वासी बने और हिन्दु विश्वविद्यालय के प्रोफेसर बने। विस्तार ज्ञान के लिए पढ़ें -राहुल सांकृत्यायन लिखित' जिनका मैं कृतज्ञ हूँ—पृ.93-94

काशी की घटना—1885 में तत्कालीन भारत के वायसराय लार्ड रिपन काशी पधारे तो वहाँ के पौराणिक पंडितों ने उन्हें रथ में बैठा कर घोड़ों की जगह स्वयं लग कर पूरा जुलूस घुमाया। पंजाब के आर्यसमाजी नेता तथा स्वाधीनता संग्राम में जुड़े वीर लाला साईदास ने इसकी घोर निन्दा की और कहा— ' बनारस के पंडितों ने ऐसा करके बहुत बुरा किया। उन्होंने भारत की लाज गंवा दी तथा काशी की नाक कटा दी। उनका यह कार्य हमारे लिये बड़ा लज्जादायह है।' लाला सांईदास जी स्वयं एक महर्षि दयानन्द के भक्त व आर्यसमाज के अग्रणी कार्यकर्त्ता व नेता थे। खादी वस्त्रों का पहनना उनके जीवन की शान थी। इसी तरह हरियाणे के आर्य नेता चौ. रामभज दत्त, अम्बाले के बाबू मुरली धर और दीवान अलखधारी जी का नाम भी देशभक्त कार्य कर्त्ताओं में आता है।

—वीर सावरकर—माझी जन्म ठेपे पुस्तक से।

दिल्ली षडयंत्र के कुछ आर्य क्रांतिकारी वीर—दिसम्बर 1912 में लार्ड हार्डिंग दिल्ली के नये वायसराय बने जिसकी शान में धूमधाम से वहाँ जुलूस निकाली गई पर हमारे भारतीयों को वह कचोट रहा था। एक निश्चित योजना के तहत अपने क्रांतिकारी वीरों ने जुलूस को खत्म करने तथा वायसराय की शान को नकारने के लिए बम फेंक दिया। इसमें कई क्रांतिकारी वीर युवा आर्यसमाजी थे। यह अभियोग भी बहुत बड़ा सिद्ध हुआ। जिन आर्य वीरों ने इस महाभियोग में अंग्रेजी सरकार द्वारा सुनाई गई फांसी की सजा पर अपनी जान स्वाधीनता संग्राम में दे दी, उनमें कुछ

प्रमुख नाम इस प्रकार हैं—भाई बालमुकुंद जी, प्रताप सिंह बारहट व परिवार, बलराज (सुपुत्र म. हंसराज), पं. जगत् राम हरियानवी और पं. सोहन लाल पाठक। हम एक-एक करके इनके उस कांड में साहसिक कार्य का वर्णन करते हैं।

शहीद भाई बालमुकुंद जी—बालमुकुंद जी पंजाब के डी.ए.वी. कॉलेज लाहौर के क्रांतिकारी प्रोफेसर देवता स्वरूप भाई परमानन्द के चचेरे भाई थे। 1910-11 में जब पंजाब में ब्रिटिश राज के विद्रोह की आग भड़की तब आप भी भारत माँ की स्वाधीनता के लिए राजनीति की लहर में कूद गए और क्रांतिकारी बन गए। आपके कुल में मुगलकाल से ही क्रांतिकारी वीर पैदा होते रहे। आपके पूर्वज भाई मतिदास को मतान्ध क्रूर औरंगजेब जबरदस्ती इस्लाम धर्म कबुल करवाने के लिए आरे से चिरवाने का भय दिया पर **स्वधर्म प्रेमी वीर मतिदास** ने हँसते हुए आरे से चिरवाना स्वीकार कर लिया पर अपना धर्म नहीं छोड़ा। उसी परिवार का आर्य वीर भाई परमानन्द जो लन्दन जाकर भी श्यामजी कृष्ण वर्मा, वीर सावरकर, लाला लाजपत राय, लाला हरदयाल आदि के साथ काम किया और काले पानी की सजा भुगती, अपने आप में एक मिशाल हैं। मैं ऐसा मानता हूँ कि इन्हें देश व धर्म-प्रेम का संस्कार तो अपने पूर्वजों से ही मिला पर आर्यसमाज के सम्पर्क से और ही निखर गया।

दिल्ली में जब लार्ड हार्डिंग के जुलूस को भंग करने के लिए जब बम फेंका गया तो श्री बालमुकुंद जी अंग्रेजों की आँखों के शूल बन गए। इन्हें पकड़कर अभियोग में डाल दिया और अदालत में फांसी की सजा सुना दी। श्री शचीन्द्र नाथ सान्याल अपनी पुस्तक 'बन्दी जीवन' पृ.54 पर लिखते हैं कि बालमुकुंद जी फांसी पर हंसते-हंसते झूल गए पर जब उनकी धर्म पत्नी को पता चला तो वह भी अपने वीर क्रांतिकारी पति की जीवित अवस्था का ध्यान लगाकर स्वयं भी सति हो गई, मानो वह सीधा अपने पति से मिलने का मन ही मन व्रत कर लिया। वस्तुतः गिरफतारी से एक वर्ष पूर्व ही भाई बालमुकुंद जी का विवाह श्रीमती रामरखी देवी से हुआ था। पति के अंतिम क्षण का जब समाचार सुना तो वह स्वयं को रोक न सकी और अपने पति के साथ ही जाने का मानो व्रत कर लिया। यह पति-प्रेम व आत्मोत्सर्ग की चरम सीमा ही थी जिसकी तुलना हम कहीं

नहीं कर सकते। अपने वीर पति के साथ यह देवी भी अमर हो गई। सान्याल जी के शब्दों में जाने तो 'इस घटना (रामरखी जी का सती हो जाना) का स्मरण होते ही देह और मन पुलकित होकर कंटकित हो जाते हैं। बालमुकुंद जी की गृहिणी! तुम धन्य हो, ऐसी पत्नी के बिना क्या ऐसा पति हो सकता है ? हाय रे भारत के नसीब! ऐसी पत्नी और ऐसे पति का बना रहना भी तेरे भाग्य में न था। 'सान्याल जी के इस वियोगभरे शब्दों को कोई भी पाठक समझ सकता है कि आर्यसमाज की शिक्षा में पले राष्ट्र प्रेमी ही इस कदर स्वाधीनता के लिए बलिदान होते हैं जो सदैव अपनी इच्छा व उत्साह से बलिदान के लिए तैयार रहना अपना धर्म समझते हैं।

श्री प्रताप सिंह बारहट—राजस्थान के रहने वाले महर्षि दयानन्द के दिवाने शिष्य कृष्ण सिंह बारहट, उनके पुत्र श्री केसरी सिंह बारहट और उनके पौत्र श्री प्रताप सिंह बारहट ये तीन पीढ़ियों से स्वाधीनता की लड़ाई में यह परिवार समर्पित रहा। श्री केसरी सिंह के दो पुत्र श्री जोरावर सिंह और प्रताप सिंह अपने पिता और दादा की भाँति स्वाधीनता संग्राम में अपनी जान खपायी। केसरी सिंह ने कोटा के राज विरोधी षडयंत्र में आरोपी बन काले पानी की सजा पायी, यद्यपि उन्हें अंडमान जाने को आदेश हुआ पर स्वास्थ्य ठीक न होने से यहीं जेलों में सजा काटते रहे।

यह परिवार तो यह भी दावा करता रहा कि लार्ड हार्डिंग पर बम बसन्त कुमार विश्वास ने नहीं अपितु जोरावर सिंह ने फेंका था जिसके लिए जोरावर सिंह की गिरफ्तारी का वारण्ट भी निकला था पर वह फरार होकर बच निकला। 1938-39 में कुछ प्रांतों में कांग्रेस की मिनिस्ट्री होने पर उनका वारण्ट रद्द होने की सम्भावना बनी थी पर फरार अवस्था में ही उनका देहान्त हो गया था। पृ.397 बन्दी जी.

प्रताप सिंह बारहट की माता—बन्दी जीवन-भाग 2—पृ. 10

'प्रताप सिंह बारहट की माता के दुःखों की उस समय सीमा न थी। जब आज एक सम्बन्धी के पास रहती तो कल दूसरे सम्बन्धियों के घर जाकर अतिथि बनती। अन्त में अपने पिता के घर जाकर किसी तरह दिन काटती रहती। प्रताप के मामा के घर की हालत भी विशेष अच्छी न थी। विधाता जब किसी के प्रति निर्दय होता है तब उनकी निष्ठुरता के निकट संसार की सब निष्ठुरता फीकी पड़ जाती है।'

प्रताप सिंह बारहट शचीन्द्र जी के साथी बने और एक साथ मिलकर काम किया। स्वाधीनता में सर्वस्व होम करने वाला यह आर्य वीर अपने साहसिक कार्य के लिए अद्भुत व सराहणीय है। उनकी सारी सम्पति ब्रिटिश सरकार ने जब्त कर ली। तभी परिवार तथा इन्हें कहीं सर छुपाने की भी जगह नहीं मिल रही थी। यह वीर फिर भी घबराया नहीं, घूमते हुए अपने दल के एक विश्वसनीय सदस्य स्टेशन मास्टर के पास चला गया पर किसी कारण वह स्टेशन मास्टर पुलिस से मिल गया और प्रताप को कमरे में सुला कर उसका हथियार चुपके से सरका लिया, इतना ही नहीं, उसकी यह खबर पुलिस को बता दी कि प्रताप यहाँ है। बस, पुलिस ने प्रताप को पकड़ ली और बुरी तरह उसे पीटा। बर्फ के चट्टानों पर रखा, अन्य दुःखद यातनाएं दी और अन्य क्रांतिकारियों के बारे में जानना चाहा पर इस वीर ने किसी की कोई खबर नहीं दी। प्रताप ने सोचा कि अन्य मित्रों के पता आदि बता देने पर पुलिस सबको यातनाएं देगी। जैसे मेरी माँ दुःखी है वैसे ही मित्रों की माताओं को भी कष्ट सहना पड़ेगा। इस परिवार को शचीन्द्र नाथ सान्याल ने इन शब्दों में श्रद्धांजलि दी–

'नहीं मालूम, आज भारत में कितने ऐसे पिता हैं, जो सरदार केसरी सिंह की तरह सब जानबूझकर अपने को और अपनी संतान को इस प्रकार देश के कार्य में बलि दे सकेंगे। भारत का दुर्भाग्य है कि प्रताप सा युवक आज इस जगत् में नहीं है। बरेली जेल में अंग्रेजों का दंड भोगते-भोगते उसका नश्वर शरीर उस दिव्य आत्मा का साथ न निबाह सका।' बंदी जीवन–पृ.12

वीर युवा बलराज—यह स्वनाम धन्य डी.ए.वी. कॉलेज लाहौर के संस्थापक तथा अवैतनिक प्रिंसिपल म. हंसराज के बड़े पुत्र थे। दिल्ली षडयंत्र में यह युवक तीसरा आर्यसमाजी अभियुक्त था जिसे पकड़ लिया गया और इस पर भी मुकदमा चला। इस वजह से परिवार तहस-नहस हो गया। पुलिस के द्वारा घर की तलासी में काफी परेशानियों को परिवार ने झेला। दिवार पर टंगे चित्रों के पीछे देखा कि कोई कागज मिले। यूनिवर्सिटी कालेन्डर, पुस्तकें, प्रकाशकों की सूचियाँ सब उठाकर पुलिस ले गई। म. हंसराज जी के वकील मित्र ने निःशुल्क मोकदमा लड़ा। इस सन्दर्भ में म. हंसराज जी को कहा गया

कि कुछ बयान बदलने से उनका लाडला बेटा बच सकता है पर महात्मा जी ने हमेशा यही कहा—'यदि बलराज निर्दोष है तो सरकार को उसे छोड़ देना चाहिये, यदि वह दोषी है तो मैं उसे निर्दोष कैसे कह सकता हूँ?' यह चिन्तन म. हंसराज के एक सत्य व श्रेष्ठ व्यक्तित्व का परिचय देता है। उधर बलराज को भी पता चल गया कि उसके पिता सच पर ही रहना चाहते हैं। बलराज भी दृढ़ हो रहा था। मुकदमा बहुत देर तक चला, सात साल का सख्त कैद बलराज को मिला। उधर बलराज की माता उसे देखना चाहती थी कि जेल जाने से पहले अपने लाल को मिल ले पर क्रूर सरकार राजी न हो सकी। माता अपने हृदय के टुकड़े को देखे वगैर दम तोड़ गई। सात साल के बाद जब बलराज अपने पिता से मिला तो जेल की कठिन दिनचर्या ने उसे बिना पंखे के ही भीषण गर्मी में भी रहने को सीखा दिया था। म. हंसराज ने भी स्वयं को साधा कि जब बलराज बिना पंखे के रह सकता है तो वह भी बिना पंखे रह सकते हैं। पिता-पुत्र को नतमस्तक। महात्मा जी ने कभी भी अपने काम में पत्नी व पुत्र के अभाव को आड़े नहीं आने दिया। पुत्र को देखने की प्रबल इच्छा मन में संजोये ही उनकी धर्मपत्नी संसार से चली गई पर महात्मा जी का मन देश-सेवा व डी.ए.वी संस्थान के विकास में कभी रूका नहीं, कभी झुका नहीं। कालान्तर में जब बलराज जेल में रहने के नाते कमजोर शरीर हो जाने से घर आकर भी बहुत देर नहीं बच सका तथापि महात्मा हंसराज जी कभी विचलित नहीं हुए। यही उनकी देशप्रेम की अद्‌भुत निष्ठा थी, फलस्वरूप उनका लगाया हुआ डी.ए.वी शिक्षा संस्थान का पौधा आज भी देश-विदेश में खूब फल-फूल रहा है और आधुनिक और वैदिक शिक्षा देकर धर्म व राष्ट्र की अनुपम सेवा कर रहा है। आज लगभग (900) से अधिक डी.ए.वी. स्कूल, कॉलेज, हस्पताल, अनाथालय आदि संस्थाएं सफलता पूर्वक कार्यशील हैं। नई दिल्ली पहाड़गंज में इनका मुख्यालय केन्द्र है जहाँ से इन सबका विधिवत् संचालन होता है। ऐसे आर्यों पर हमें व देश को सदैव गौरव रहेगा।

पं. जगत् राम हरियानवी—पं जगत् राम हरियानवी जी होशियारपुर(पंजाब) के हरियाना गाँव से थे, इसलिये ये अपना उपनाम

हरियानवी लिखा करते थे। आर्यसमाज के इतिहास से पता चलता है कि वे डी.ए.वी. स्कूल से प्रारम्भिक, शिक्षा व डी.ए.वी. कॉलेज लाहौर से बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की तब भाई परमानन्द जी वहाँ प्रोफेसर के रूप में कार्यरत थे, बस फिर क्या कहना, डी.ए.वी. की शिक्षा व प्रो. परमानन्द का संसर्ग आर्यसमाजी व राष्ट्रप्रेमी बनने के लिए काफी था। ये गदर पार्टी में भी सक्रिय सदस्य बन गए थे। अनेक षडयन्त्रों में आपने भाग लिया और आरोपित हुए। आपको भी मृत्यु दण्ड दिया गया पर बाद में आजीवन कारावास में बदल दिया गया। 6 वर्ष के कठिन कारावास में कालकोठरी में बन्द रहे, सूर्य के दर्शन तक भी लम्बे समय तक न कर पाए। स्वदेश के लिए ही तो नाना प्रकार की यातनाएं सहीं। स्वतंत्र भारत में आप रिहा किये गए थे।

पं. सोहन लाल पाठक—गदर पार्टी के सक्रिय सदस्यों में आप भी थे। डी.ए.वी. हाई स्कूल में आप मास्टर रहे। आर्यसमाज अमृतसर पट्टी के सदस्य व कट्टर आर्यसमाजी थे। 1908 में लाला हरदयाल जी एम.ए. से आपकी मुलाकात हुई जब हरदयाल जी लन्दन से अपनी अधूरी पढ़ाई छोड़कर वापस आ गए तो लाला लाजपत राय के साथ स्वाधीनता के संगठनों में सक्रिय हो गए और आप जैसे नौजवानों को राष्ट्रीय योजनाओं के लिए प्रेरित करते रहे। उन्हीं दिनों आपकी धर्मपत्नी का देहान्त हो गया पर आपकी स्वाधीनतामूलक आन्दोलनों में भाग लेना बन्द न हुआ। लाला लाजपत राय ने एक ब्रह्मचारी आश्रम पंजाब के भुजंग में खोला था, हरदयाल जी व लाला लाजपत राय की सहमती व आशीर्वाद से वहीं उन्हें शिक्षक रख लिया गया।

जैसा कि हम जान चुके हैं कि गदर पार्टी में आप सक्रिय सदस्य थे। उस अभियान में आप बाद में पूरी तरह उतर गए। अलग-अलग छावनियों में गदर का प्रचार करते हुए एक देशद्रोही ने उन्हें पुलिस को पकड़वा दिया। मुकदमा चला, जज ने क्षमा याचना का मौका दिया पर वीर आर्य व राष्ट्रप्रेमी के अन्दर स्वदेश की गरिमा भरी पड़ी थी। कहा—'क्षमा तो अंग्रेजों को हमसे माँगनी चाहिये, क्योंकि वे हमारे देश पर बलात् कब्जा किये बैठे हैं, और इतने पर भी हमें धमकाते हैं।' इन्हें फाँसी की सजा सुना दी गई और जब अंतिम इच्छा पूछी गई तब इस वीर ने अपने

वैदिक संस्कार को महत्त्व दिया और बोला— 'मेरी मृत्यु के पश्चात् मेरी लाश को गाड़ा न जाए, बल्कि विधिवत् अग्नि में अन्त्येष्टि की जाए।' अन्त में फांसी दे दी गई।

यह आर्य वीर हमेशा कहा करता था कि 'राज्य भिक्षा से नहीं मिलते। भिक्षा में तो रोटियाँ भी नहीं मिलतीं। राज्य तो डंडे के जोर से मिला करते हैं।'

इन सब आर्य वीरों की चेतनापूर्ण संघर्षो से ही भारत माता को आजादी मिली। इन बलिदानियों की कदर हमें कभी नहीं भूलना चाहिये।

कोटा कांड और आर्य वीर—कोटा कांड भी एक ऐसा कांड घटित हुआ जो अन्य कई कांड हुए जिनमें दुष्ट धनिकों को लूटना और लूटे धन को स्वाधीनता के लिए की जा रही योजनाओं में लगाना, उन सब क्रांतिकारी वीरों के लिए भोजन, वस्त्र व हथियारों में व्यय करना आदि।

जोधपुर राजस्थान का एक महन्त था जो बहुत ही धनी पर दुश्चरित्र था। ठाकुर केसरी सिंह बारहट, हीरा लाल जालौरी, डा. गुरूदत्त (दामाद, महात्मा मुंशी राम/ स्वामी श्रद्धानन्द) तथा अन्य सज्जनों ने उस महन्त से धन माँगा और बहुत समझाया कि तेरा धन देश-हित में लग जाएगा पर उस दुष्ट व कंजूष ने धन देने से इन्कार कर दिया। इन वीरों को पता चला कि महन्त की लाठी में सोने की गिन्नियाँ छुपाई हुई है। ऐसा जानकर इन लोगों ने महन्त से बलात् लाठी छिन ली पर उसमें सोने की गिन्नियाँ तो न मिली परन्तु कोयला भरा मिला। पता चला उस महन्त ने भय के कारण सारे जवाहरात तो कहीं अन्यत्र छिपा कर लाठी में कोयला भर दिया था।

उसी काँड में इन पर मुकदमा हुआ। काले पानी की सजा हुई और सरदार केसरी सिंह बारहट की तो सारी सम्पत्ति ब्रिटिश सरकार ने जब्त भी कर ली, तभी बारहट परिवार की बुरी दशा हो गई थी कि खाने, रहने व वस्त्र आदि के भी लाले पड़ गए थे।

इस कांड में भी जब हम देखें तो मुख्य रूप से सरदार केसरी सिंह बारहट और डा. गुरूदत्त इन दो आर्यों की सहभागिता तो स्पष्ट ही देखती हैं। हमें इन आर्य वीरों से सदा सीख लेनी चाहिये।

पंजाब के कुछ अन्य वीर सेनानी व आर्य वीर पत्रकार देवता स्वरूप भाई परमानन्द—भाई परमानन्द जी पंजाब के रहने वाले थे। डी.ए.वी. कॉलेज लाहौर के इतिहास के प्रोफेसर और कट्टर आर्यसमाजी थे। महर्षि दयानन्द की राष्ट्रीय भावनाओं के अनुरूप ही उन्होंने अपनी क्रांतिकारिता का सारा जीवन बिताया और स्वाधीनता संग्राम में जीवन लगा दिया। इस पुस्तक में भाई परमानन्द को अनेक स्थानों पर हमें पढ़ने को मिला है और मिलेगा क्योंकि स्वामी श्रद्धानन्द के साथ ही आपका भी समय रहा और देश-विदेश में तत्कालीन लगभग सारे आर्य वरिष्ठ नेताओं के साथ आपने बड़ी ही वीरतापूर्वक काम किया। अत: यहाँ हम उनके साहसिक क्रांतिकारी कार्यों का थोड़ा ही विवरण प्रस्तुत करेंगे जिससे हम उन्हें एक प्रेरणा का स्रोत कह कर अपने प्रिय पाठकों को अवगत करा सकें।

वे इतिहास के प्रोफेसर तो थे ही पर आर्यसमाज के सिद्धान्तों के एक मिशनरी प्रचारक थे। इसी उद्देश्य से वे अफ्रिका गए और वहाँ जाकर विदेश में रहने वाले सक्रिय राजनैतिक आर्य सामाजिक नेताओं से मिले। श्यामजी कृष्ण वर्मा, वीर सावरकर आदि सब एक साथ होकर राष्ट्रीय योजनाओं में जुड़ गए। इतिहास की और अच्छी जानकारी के लिए डी.ए.वी. कॉलेज मैनेजिंग कमेटि ने उन्हें लन्दन विशेष अध्ययन के लिए भेजा पर उनकी पढ़ाई तो हुई, परीक्षा भी दी पर उत्तीर्ण न हो सके, तथापि 1857 के विद्रोह की अधिकतम पुस्तकें वे लन्दन से ले आए और डी.ए.वी कॉलेज लाहौर को सौंप दी। विलायत से लाई हुई पुस्तकों के आधार पर ब्रिटिश सरकार के विद्रोह सम्बन्धी एक पुस्तक लिखी जो पुलिस ने पकड़ ली और उनके खिलाफ विद्रोही सिद्ध करने में कोर्ट में वह पुस्तक वर्त्ती गई। उस पुस्तक के आधार पर यह कहा गया कि इस पुस्तक का पन्ना-पन्ना विद्रोह की आग भड़काता है। विलायत से आते हुए सायकिल-स्टैंड से उठाकर एक पत्रिका भी लाए थे जिसमें बम बनाने का तरीका लिखा हुआ था। उधर श्यामजी कृष्ण वर्मा ने उन्हें सरदार अजीत सिंह के लिए एक पिस्तौल भी दिया था। भाई परमानन्द और सरदार किसन सिंह तथा सरदार अजीत सिंह का परिवार लाहौर में एक ही मकान के अलग-अलग मंजिल पर रहा करते थे। किसी मुकदमें

में पुलिस ने सरदार किशन सिंह के घर की तलाशी ली तभी पुलिस परमानन्द जी के घर में भी घुस गई और उनके पास से वह पुस्तक, बम बनाने वाले नुक्से वाली पत्रिका, पिस्तौल तथा कुछ अन्य विद्रोही दस्तावेज पकड़ लिये। इस कारण उन्हें पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया। उनके मित्रों ने 25-25 हजार रुपये की दो जमानते देकर उन्हें छुड़ा लिया। उनकी प्रोफेसरी तो चली गई पर वे अमेरिका फिर चले गए और वहाँ जाकर स्वाधीनता की अनेक योजनाओं में व्यस्त रहे। 1910 से 1914 तक वे विदेश में ही विभिन्न क्रांतिकारी भारतीय संगठनों से जुड़े रहे और सक्रिय रहे। जब 1914 में फिर भारत लौटे तो गरीबों की सेवा के लिए एक दवाखाना खोला। पंजाब का शासक माइकल ओडवायर को किसी ने बता दिया कि पता नहीं दवाइयों के नाम पर क्या-क्या बनाता है तो उन्हें इसी शक पर ठीक उसी दिन साम को फिर पकड़ लिया गया। मुकदमा चला तो उसमें इनके गवाह प्रिं. दीवान चन्द एम.ए. थे जिन्होंने अपनी पुस्तक में ये सारा विवरण लिखा। मुकदमें की ट्यूबनल में दो अंग्रेज थे और एक पं. शिवनारायण जी वकील थे। अंग्रेजों ने मृत्यु दंड की सिफारिस की पर पं. शिवनारायण जी ने उमर कैद की तो वहाँ के वायसराय ने आजीवन कारावास का फैसला पास किया। भाई जी इस सजा के लिए जब अंडमान द्वीप कारावास में गए तो वहाँ उन्हें वीर सावरकर जेल में मिले और दोनों एक दूसरे का ख्याल रखा जितना सम्भव हो सका। यह विवरण वीर सावरकर के चित्रण में भी आया है। जेल में इन्हें भयंकर यातनाएं सहनी पड़ी।

इधर इनकी धर्म पत्नी भाग्यसुधी बड़ी मुश्किल से लाहौर की एक छोटी सी गली में छोटा ही कमरा लिया और एक आर्यसमाज की कन्या पाठशाला में काम करके गुजारा मुश्किल से ही करना शुरू किया।

1926 में ये रिहा होकर लाहौर आए तो पुलिस ने उन्हें लाहौर स्टेशन या लाहौर द्वार पर तांगे से छोड़ दिया था। शरीर जर्जर कमजोर हो चुका था। उन्होंने निकट के आर्यसमाज मन्दिर में जाकर किसी से पूछा कि भाई परमानन्द का क्या कोई पता बता सकता है ? पर किसी ने उन्हें पहचान लिया और पूछताछ करते उनका घर ढूँढ लिया। पत्नी और बच्चों से उस हालत में मिले तो सब सन्न रह गए। अन्दर खुशी भी थी पर लम्बे

समय से मुसिबतों के साथ रह रहा जीवन सबका लगभग कष्टमय हो चुका था।

कुछ समय बाद भाई जी ने कांग्रेस में फिर शामिल हुए और कलकत्ता एक राष्ट्रीय अधिवेशन में गए और देखा कि एक कमरे में मौलाना मोहम्म्द अली और शौकत अली साथ बैठे थे, जहाँ वे भी बैठने लगे तो इन मुस्लिम काँग्रेसियों ने इन्हें अपमानित किया और बैठने तक नहीं दिया। इन दोनों की कांग्रेस में तूती बोलती थी। भाई जी निराश होकर लौटे। लेखक ने उस समय की इनकी अनुभूति के ये शब्द लिखे— ' भाई जी आर्यसमाज में पले थे, शीघ्र उन्हें यह बात खलने लगी कि कांग्रेस मुसलमानों को खींचने (ऊपर उठाने) के लिए कई बार हिन्दु-हितों की उपेक्षा ही नहीं करती, उन्हें हानि भी पहुँचाती है। 'आर्यसमाज के त्यागी तपस्वी सन्त—पृ. 124—ले. प्रिं. दीवान चन्द एम.ए.

भाई परमानन्द जी का लाला लाजपत राय के साथ अनन्य प्यार था। 1915 में जब मुकदमा भाई जी पर चल रहा था तो उनके पास से लाला लाजपत राय के दो पुराने पत्र मिले। एक पत्र 1907 की भयंकर समय का था। पत्रों में क्रांतिकारी योजनाओं को सफल बनाने के विचार व समाचार से अवगत कराना उद्देश्य हुआ करता था। उन्हीं दिनों लाला हरदयाल एम.ए. जो स्वतंत्रता संग्राम के एक अमर वीरों में थे, अमेरिका रहा करते थे। वे विद्रोह तथा स्वार्थी लोगों की हरकतों से क्रांति में कमजोर पड़कर आध्यात्मिक जीवन विताने को सोचने लगे और विचार किया कि इसके लिए कोई आध्यात्मिक संगठन बनाया जाए। पर जब भाई परमानन्द जी उन्हें मिले तो स्वाधीनता की लड़ाई की एक अनुठी प्रेरणा उस बुझे हुए दिल में अपनी ओजस्वी और प्रिय वाणी से भर दी और लाला हरदयाल को फिर से अनुकुल दिशा में ला दिया जिससे लाला हरदयाल स्वाधीनता संग्राम में नयी ऊर्जा के साथ फिर से जुड़ गए। इतिहास का यह बोलता रूप यह बताता है कि इन वीरों में आर्यसमाज व महर्षि दयानन्द से ही अपनी भारतमाँ के लिए मर मिटने की शक्ति आई थी। परिवार से दूर, अंडमान की कठिन भयंकर बेड़ियों में जकड़े, कालकोठरी में काले पानी की सजा काटते हुए बिना किसी मलान देश के लिए जिते रहे और देश के

लिए ही मर गए। भला इन आर्य वीरों को हम कैसे भूला सकते हैं ?

पं. इन्द्र विद्या वाचस्पति—पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति अपने बड़े भाई हरीश के साथ ही अपने पिता द्वारा स्थापित राष्ट्र गौरव शिक्षा संस्थान गुरुकुल काँगड़ी के प्रथम स्नातक थे। म. मुंशी राम/स्वामी श्रद्धानन्द ने सबसे पहले अपने ही दोनों लाल को उक्त गुरुकुल का छात्र बनाया था। इन्द्र जी कविता, साहित्य आदि संरचना में गुरुकुल के ब्रह्मचारी काल से ही चतुर थे और कुछ न कुछ लिखते ही रहते थे। बाद में उन्होंने दिल्ली में 'अर्जुन' नामक अखबार शुरू किया था जिसमें सब प्रकार के राजनैतिक खबर अत्यन्त निर्भीकता से निकला करता था। हरीश जी साहित्य कार बने औत इन्द्र जी पत्रकार बने। पर पुस्तक लेखन कार्य दोनों ने किया तो साहित्य रचना में लगभग दोनों ही माहिर थे।

इन्द्र जी ने एक गुरुकुल में पढ़ते हुए एक राष्ट्र भक्ति का गीत लिखा था, वह वहाँ प्रार्थना में गाया जाता था। 1930 के अन्त में नमक सत्याग्रह का विगुल जब बज गया तब इन्द्र जी प्रारंभ में ही दिल्ली पुलिस के हाथ लग गए और जेल में डाल दिये गए। दिल्ली की एक बड़ी सभा में देवदास (महात्मा गांधी का पुत्र) ने इन्द्र जी की राष्ट्रीय कविता पढ़कर इन्द्र जी का गुणगाण किया। वह कविता थी—**'ऐ मातृभूमि मैं तेरे चरणों में सिर नवाऊँ।'** देवदास ने सभा को यह भी बताया कि यह गीत गुरुकुलीय छात्रावास में भी नित्य प्रार्थना रूप गाया जाता है जिसे इन्द्र जी ने अपने छात्र-जीवन में ही लिखा था। ऐसा जानकर जेल में भी इन्द्र जी के गौरव की प्रतिति हुई।

इन्द्र विद्यावाचस्पति एक कुशल लेखक व पत्रकार तो थे ही पर स्वाधीनता संग्राम में भी एक प्रमुख सेनानी बने। इस क्रम में जितने भी आन्दोलन हुए, उन्होंने सब में सक्रिय भाग लिया और अनेक बार इसके लिए जेल भी गए।

गुरुकुल की सर्वोच्च उपाधि विद्यावाचस्पति (डी. लिट.) प्राप्त कर इन्द्र जी सीधा दिल्ली आए, शुरू में 'विजय' नामक पत्रिका चलाई फिर कालान्तर में वीर अर्जुन नामक अखबार शुरू कर दिया। रोल्ट ऐक्ट जुलूस का प्रचार तो 'विजय' पत्रिका से ही हुआ, बाद में 'वीर अर्जुन' इन सब राजनैतिक कार्यों को आर्यसमाज व भारत माँ की दृष्टि से अत्यन्त

लाभदायक हुआ और इसी उद्देश्य से यह अखबार का विस्तार भी किया गया था। 1930 के महात्मा गांधी के नमक सत्याग्रह की घोषणा पर दिल्ली में एक सत्याग्रह कमिटि का गठन हुआ जिसमें **एक तिहाई सदस्य आर्यसमाजी थे** जिसका मंत्री बनने का सौभाग्य पं. इन्द्र जी को ही मिला। इन्द्र जी नरम दल के साथ थे जिससे गांधी के करीब हो गए थे। यद्यपि कालान्तर में गांधी और इनके पिता स्वामी श्रद्धानन्द से शुद्धि आदि कार्य में आपसी मतभेद होने से तथा कुछ और राजनैतिक गतिविधियों में अड़चने आने के कारण परस्पर मतभेद हो गया पर इन्द्र जी तब भी नरम दल के साथ ही बने रहे और इन्द्र जी एवं स्वामी श्रद्धानन्द जी पिता-पुत्र की कुछ समसामयिक नीतियों में मतभेद होते हुए भी अपनी-अपनी मर्यादा में काम करते रहे। स्वतंत्र भारत में इन्द्र जी कई बार राज्य सभा के नामजद सदस्य बनाए जाते रहे, शायद यह इसी वजह से सम्भव होता रहा कि वे महात्मा गांधी के करीब रहकर अपनी सेवा देते रहे। आर्यसमाज का इतिहास भाग-2 को पृ.110 के अनुसार। इनकी एक पुस्तक 'मैं इनका ऋणि हूँ' में भी ऐसा तथ्य मिलता है।

इन्द्र जी यद्यपि गांधी जी के निकट बने रहे तथापि गरम दल के नवयुवकों को मदद करने में कभी पीछे नहीं हटे। वीर भगत को 'वीर अर्जुन' अखबार में काम देकर तथा अपने संरक्षण देकर अपनी भारत माँ के प्रति पूरी वफादारी निभायी। इस तरह अनेक आन्दोलनों में अपनी सक्रियता दिखाकर स्वाधीनता संग्राम की कड़ी बने रहे।

महाशय कृष्ण—पंजाब में जालन्धर के प्रसिद्ध आर्यसमाजी पत्रकार महाशय कृष्ण को कौन नहीं जानता। बचपन से ही मेधावी लेखन शक्ति रखने वाले कृष्ण अंग्रेजी के प्रसिद्ध राष्ट्रीय पत्र 'अमृत बाजार पत्रिका' में आपके क्रांतिकारी लेख छपने लगे थे। इसी तरह अंग्रेजी की पत्रिका 'आर्य पत्रिका' जो आर्य प्रतिनिधि सभा के अन्तर्गत प्रकाशित हुआ करती थी, उसमें भी आपका लेख नियमित छपने लगा। विदेशी राज्य के विद्रोह में आपकी लेखनी सदैव चलती रही, कभी रुकी नहीं; कभी झूकी नहीं। आपकी इसी प्रतिभा के कारण लन्दन के एक समाचार पत्र ने 'अग्नि सम्पादक' की उपाधि से सम्मानित किया था।

1907 में आपने 'प्रकाश' नामक साप्ताहिक पत्रिका शुरुकर अपनी

लेखनी से पंजाब में एक नयी क्रांति ला दी थी। लाला लाजपत राय व सरदार अजीत सिंह (वीर भगत के चाचा) के निर्वासन के समय आपने विदेशियों के खिलाफ जो लेख लिखने शुरू किये उससे पंजाब ही नहीं, बल्कि उत्तर भारत में भारत की समस्त निराश जनता में नयी जान आ गई थी। आर्यसमाज तो सर्वत्र मानो फिर क्रांतिकारी जजबातों के लिए स्वाधीनता के अखाड़ों में आ गया। महाशय कृष्ण जी की इस वीरता को आज भी पंजाब में बड़ी गौरव से याद किया जाता है।

महाशय जी की ये पंक्तियाँ सबके जुबान पर नाचती रहीं—'न मिण्टो है वायसराय अपना, न किचनर है कमान अफसर' उनकी कविता की प्रथम प्रसिद्ध पंक्ति बहुत ही प्रभाव शाली थी जो सीधा वहाँ के वायसराय मिण्टो तथा कमांडर ऑफ चीफ लार्ड किचनर पर सीधा चोट मारती थी। प्रकाश नामक पत्र में छपी यह कविता इन अंग्रेजी ऑफिसरों की जड़ें हिला दी थी। विस्तार पूर्वक जानकारी के लिए श्री सत्यकाम विद्यालंकार की पुस्तक 'महाशय कृष्ण जीवन चरित्र, पृ.27 पठनीय है।

1919 का वर्ष आर्यसमाज और स्वाधीनता आन्दोलन का अत्यन्त वीरतापूर्ण समय था। स्वामी श्रद्धानन्द ने रोल्ट ऐक्ट के विद्रोह में जब दिल्ली में जुलूस निकाला और अंग्रेजों के आगे अपने कुर्त्ते के बटन खोलकर अंग्रेजी पुलिस ऑफिसर को पहले डांटा कि भीड़ पर गोली क्यों चलाई फिर ललकार कर बोला कि हिम्मत है तो मेरी खुली छाती पर गोली चलाओ तब अंग्रेजी ऑफिसर भी काँप गए थे। यह आँखों देखा दृश्य महाशय कृष्ण जी का था जिसका वर्णन 31 मार्च के पहले ही अंक में महाशय जी ने किया। वह 'प्रताप नामक उर्दू पत्र का प्रकाशन प्रारंभ ही हुआ था। 1 अप्रिल को भी निर्भीकता पूर्वक दूसरा अंक भी निकाला। इस तरह 'प्रताप' पत्र में राष्ट्र की नीतियाँ छपती रहीं जिससे गोरों के विरुद्ध मार्ग खोलने में भारतीय वीरों को उत्साह व आगे बढ़ने में मार्ग प्रशस्त होता रहा। पर अंग्रेज सरकार इस पत्र पर कड़ी नजर रखने लगी। कई मुकदमें लगा दिये गए। कई बार माल जब्ती करवाई गई। पर आर्यसमाज के वीर महर्षि दयानन्द के सिद्धान्तों के प्रति समर्पित और हल्दी घाटी के युद्ध के योद्धा राणा प्रताप की तरह कभी हार न मानने वाले महाशय कृष्ण जी स्वातंत्र्य जंग में डटे रहे।

द्वितीय विश्वयुद्ध में ब्रिटिश सरकार की हार होने पर महाशय जी ने 'प्रताप' पत्र में जंग का रंग' नामक लेख लिख कर अंग्रेज शासकों की नींद हराम कर दी थी। तब पंजाब में सर सिकन्दर हयात खाँ की मिनिस्टरी थी। युद्ध का सही चित्रण करने में महाशय जी तनिक भी नहीं डरे। अंग्रेज सरकार इनके द्वारा लिखे कई लेखों से तिलमिला उठी जिसके कारण महाशय जी के छाती पर सैंसरसिप रूपी भाले का नोक लगा दिया पर महाशय जी ने चतुराई बर्ती जिससे सरकार पर ही उल्टा पड़ा। सैंसरसिप के दौरान पं. जवाहर लाल नेहरू लाहौर गए तो वे महाशय जी की कोठी पर ही ठहरे। वहाँ प्रताप पर लगे सैंसरसिप के विरोध में उन्होंने कठोर वक्तव्य दिया। तभी एक पत्रकार सम्मेलन हुआ जिसमें एक पत्रकार ने नेताजी सुभाष चन्द्र बोस की सेना पर प्रश्न पूछ लिया, उसके उत्तर में नेहरू जी ने कहा—' नेताजी सुभाष चन्द्र की सेनाएं भारत पर आक्रमण करेगी तो पूरी शक्ति से मैं उसका विरोध करूँगा 'तब महाशय जी ने अपनी लेखमाला में प्रश्नोत्तर शैली में लिखा कि यदि जर्मनी की सेनाएं भी भारत में आए तो मैं बन्दरगाह पर जा हार पहना उनका स्वागत करूँगा।

महाशय कृष्ण जी राष्ट्रप्रेम की बात कर रहे हैं और जर्मनी की सेनाओं का भी भारत में स्वागत करने का आह्वान किया दूसरी ओर नेहरू जी अपने देश के वीर द्वारा निर्मित सेनाओं का विरोध किया। राष्ट्रप्रेम का पलड़ा महशय कृष्ण का भारी निकला। प्रताप पर लगे सैंसरसिप सरकार को वापस लेना पड़ा। इसी राष्ट्र प्रेम की तीव्रता ने महाशय जी को कांग्रेस से अलग होने को मजबूर किया। आजीवन महाशय इन्हीं सरकार विरोधी नीतियों को अपने पत्र में लिखते रहने के कारण सरकार की आँखों में खटकते रहे पर महर्षि दयानन्द का दिवाना कष्टों में जीवन बिताना स्वीकार किया पर अपनी लेखनी को कमजोर न होने दिया। अन्यत्र भी इनकी क्रांतिकारी भरी गाथाओं को आप पढ़ सकेंगे।

महाशय वीरेन्द्र—महाशय वीरेन्द्र भी अपने आर्य पिता महाशय कृष्ण जी के आर्य पुत्र थे। पिता के बाद आपने ही 'प्रताप' के सम्पादक के पद को सम्भाला था। आप थे अत्यन्त साहसिक और महर्षि दयानन्द की मान्यताओं के अनुरूप जीवन जीने वाले आर्यसमाजी। अपने-अपने समय

में पिता-पुत्र दोनों पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान रहे और इसी नाते स्वामी श्रद्धानन्द स्थापित गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार के चान्सलर भी रहे। आर्यसमाज के लिए यह शिक्षा संस्थान एक विद्या तीर्थ रूप है जहाँ पर हजारों की संख्या में देश-विदेश से छात्र आकर वैदिक शिक्षा लेते हैं। वीरेन्द्र जी जब मात्र 19 बर्ष के ही थे तब लाहौर षडयन्त्र में आप वीर भगतसिंह की टोली में सम्मिलित हुए और उसी अभियोग में आप भी पकड़े गए जिससे आप को कठोर कारावास की यातनाएं सहनी पड़ी। तब आप केवल मैट्रिक ही उत्तीर्ण थे, जेल में रहकर ही एफ.ए (इंटरमिडियेट), बी.ए. तथा एम.ए. की परीक्षाएं पास कीं। तप, त्याग, राष्ट्रप्रेम व कष्ट सहन की अपार शक्ति रखने वाला यह अपने आप में एक लौहपुरुष ही था। सच में यह एक महान व्यक्तित्त्व के धनी व कट्टर आर्यसमाजी व आर्यसमाज का गौरव थे। जालन्धर-पौरोहित्य कार्य के दौरान लेखक (आचार्य उमेश) इस वीर आर्यपुरुष से मिलने का सौभाग्य प्राप्त किया है।

डॉ, सत्यपाल और महाशय रत्नचन्द—जालियाँवाला बाग-कांड और आर्यसमाज इनका साहस तो तब दिखा जब 13 अप्रिल 1919 को मार्शल लॉ के आदेश से जालियाँवाला बाग, अमृतसर में दुर्भाग्य पूर्ण घटना अंग्रेजों द्वारा की गई लेकिन इससे पूर्व अमृतसर में एक विशाल जुलूस निकाला गया जिसका नेत्तृत्व तीन लोगों के हाथ में था—1. डॉ. सत्यपाल, महाशय रत्नचन्द 'महाशय रत्तो' नाम प्रसिद्ध और चौ. बुग्गा मल। इसमें भारत के पक्ष में राष्ट्रीय नारे सब ओर से लगने लगे; चारों ओर भारतीय नवयुवकों का उत्साह देखते बन रहा था। पर अंग्रेजों को बर्दाश्त न हो रहा था जिससे उनके पुलिस ने लाठियों से भारतीय बच्चों को स्त्रियों के गोद से छिन-छिन कर मारने लगे। बच्चों को बर्बरता पूर्वक सरकारी पुलिस ने पठरीली सड़क पर पटक-पटक कर मार डाला, परिणामत: अपने युवकों को उनकी यह क्रूरता व बर्बर्त्ता पूर्ण कुकृत्य देखा न गया और सभी भारतीय युवा वीरों ने पत्थरवाजी करना शुरू किया। कई अंग्रेजों को मौत के घाट भी उतार दिया, तिस पर अंग्रेज पुलिस ने जुलूस के नेताओं को पकड़ना शुरू कर दिया। श्री बुग्गा मल के घर पर कुछ स्वयं सेवक पहरा दे रहे थे, पुलिस ने उन्हें गोलियों से भून

दिया और डॉ. सत्यपाल को वहीं पकड़ लिया। आगे चलकर महाशय रत्न चन्द को भी खोजकर पुलिस अपने कब्जे में ले लिया। उनके मकान का सब सामान पुलिस उठा ले गई। उनकी पत्नी के गोद में बच्चा था, उसे छिन कर बाहर फेंक दिया, उस देवी को भी घसीट कर बाहर निकाल दिया और घर में सरकारी ताला बन्दी कर दी। उधर बुग्गा मल जी को तो उनके घर पर ही पकड़ लिया था। इन तीनों पर मुकदमा चला कर भारी बेड़ियों में बान्धे, बन्दूकों की नोक पर सैकड़ों सिपाहियों से घिरे, गोला बारूद से भरे तीन तोपों को उनके मुख की ओर करे इन वीरों को राजद्रोही के रूप में ट्रिब्युनल के सामने पेस किया और इन्हें फांसी की सजा दे दी गई। बाद में मदन मोहन मालवीय और मोती लाल नेहरू द्वारा अपील कौंसिल में बहस होने पर आजीवन कारा वास में यह सजा बदल दी गई। महाशय रत्न चन्द जी को अंडमान भेजा गया तो इनके परिवार की देखरेख की जिम्मेदारी वहाँ के अन्य आर्य वीरों ने लिया।

लाहौर जेल से जब रत्न चन्द जी अंडमान जाने लगे तब महाशय कृष्ण रिहा हो चुके थे। जेल में ही कृष्ण जी को रत्नचन्द जी ने बुला भेजा कि मिल जाओ। मिलने पर महाशय रत्न चन्द जी ने अपनी धर्मपत्नी के सामने ही अपने बच्चे को महाशय कृष्ण की गोद में देने को कहा और महाशय कृष्ण ने भी बच्चे को सहर्ष गोद ले लिया। बाद में बच्चे को गुरुकुल में पढ़ाया और वह बच्चा अपने जीवन में कामयाब हुआ। महाशय कृष्ण जी का संरक्षण उस परिवार पर बना रहा। ऐसे थे ये आर्य वीर और एक दूसरे के विश्वासी मित्र। भला इन पर कौन गर्व नहीं करेगा? डॉ. सत्य पाल और महाशय रत्न चन्द पक्के आर्यसमाजी थे। महर्षि दयानन्द के विचारों से प्रभावित होकर अमृतसर लौहगढ़ आर्यसमाज के सदस्य और कार्यकर्त्ता बने थे। सर सिकन्दर की मिनिस्टरी बनने पर 20 वर्षों की कठिन सजा अंडमान जेल में काटने के बाद रिहा हुए तब घर आकर कमजोर शरीर होने से जल्दी ही उनका देहान्त हो गया था।

12 फरवरी 1965 को आचार्य सत्य प्रिय शास्त्री, हिसार वाले इनके घर जाकर मिले और उत्सुक्तावस पूछ लिया कि आर्यसमाज में आपकी रूचि कैसे बनी? तो उन्होंने जबाब दिया-' आर्यसमाज का राष्ट्रीय स्वरूप ही मेरे आकर्षण का कारण था। यही कारण है कि मैं आज भी

अपने को आर्यसमाजी तथा दयानन्द का पट्ट (अच्छा) शिष्य कहने में गौरव अनुभव करता हूँ।'–आचार्य स.प्रि. शास्त्री, पृ. 50

महाशय रत्न चन्द ने उसी वार्त्ता में रुंधे गले से आचार्य श्री से बोला—'पंडित जी ? हमने अपने तप-त्याग के चैक भुगताने के लिए अंडमान की नारकीय यातनाएं नहीं सही थी। परन्तु स्वतंत्र भारत में इन अहिंसावादी थोथे शासकों ने हमारी कीर्ति को भी चुरा लिया। 1919 के जालियाँवाला बाग के कांड होने बाद म. रत्न चन्द का गली-मोहल्ले में नाम गूँजता था। लेकिन 1957 में भारत के राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद उसी बाग का उद्घाटन करने आए तो मैं सर्वसाधारण दर्शकों के मध्य दरियों पर बैठा था। इतना (भी) न हुआ कि मार्शल ला के सबसे बड़े अभियुक्त को मंच पर बिठाने मात्र का सम्मान दिया जाय'। अपनी जवानी स्वदेश के लिए कारावास की कड़ी यातनाओं के साथ परिवारसुख से सर्वथा वंचित जिन वीरों ने लुटा दी, उनकी यह दर्दनाक वार्त्ता सुनकर किस भारतीय का दिल नहीं पिघलेगा पर काश तब की कांग्रेसी सरकार द्वारा इनका ख्याल किया होता! स्वतंत्र भारत की उस सरकार का पाप तो न जाने कौन से जन्म में धूलेगा!

इस तरह आर्यसमाज के सैंकड़ों कार्य कर्त्ता पंजाब काँगेस के साथ मिलकर राष्ट्र की सेवा में आन्दोलनों के माध्यम से जुड़े रहे, यातनाएं सही, जेल गए आदि जिनके सामान्य नाम यहाँ प्रस्तुत किये जाते है। विस्तार के लिए आर्यसमाज का इतिहास पढ़ना जरूरी होगा।

1. महाशय खुशहाल चन्द (बाद में आनन्द स्वामी के नाम से प्रसिद्ध तपोनिष्ट संन्यासी वैदिक कथा वाचक, प्रखर महोपदेशक व सदैव शिक्षा व राष्ट्र सेवा में तत्पर)—डी.ए.वी. व आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के साथ प्राणपन से जुड़ा हुआ संन्यासी। उनका ही पौत्र पद्मश्री पूनम सूरी आज कल डी.ए.वी कॉलेज प्रबन्ध कर्त्री सभा व आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के यशस्वी प्रधान हैं। इस परिवार के पूर्वजों ने भी स्वाधीनता संग्राम में महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया।

2. श्री रणवीर जी—सुपुत्र आनन्द स्वामी—स्वाधीनता के कार्य में लिप्त होने के कारण ही आपको भी फांसी की सजा सुनाई गई थी पर कालान्तर में आजीवन कारावास में बदल दिया गया। भीषण यातनाओं के साथ सजा काटी।

3. श्री यश जी—आनन्द स्वामी के छोटे पुत्र—पंजाब के भूतपूर्व उप शिक्षा मंत्री—स्वाधीनता की लड़ाई में अनेक बार जेल गए और अनेक तरह से यातनाएं सहीं।

4. लाला भीमसेन सच्चर—भूतपूर्व मुख्य मंत्री पंजाब—आर्यसमाज की प्रेरणाओं से प्रभावित हो राष्ट्र सेवा में लगे और स्वाधीनता की लड़ाई में अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किया। आप कई आर्यसमाजों के प्रधान व मंत्री रहे। आर्यसमाज के प्रसिद्ध संन्यासी स्वामी स्वतंत्रतानन्द जी महाराज के आप शिष्यों में प्रमुख थे। मुख्यमंत्री बनने के बाद आप आर्यसमाज बियर्ड रोड, नई दिल्ली में हवन पर उपस्थित हो आशीर्वाद लिया। आप राजनीति में भी स्वामी जी के कहने से ही आए थे। उस हवन पर आपने राजनैतिक जीवन की प्रतिवद्धता, पद की कर्त्तव्यनिष्ठा, राष्ट्र व जनता की सेवा का सतत प्रयत्नशीलता, जागरुकता व इमानदारी का व्रत लिया।

5. डॉ. गोपी चन्द भार्गव—भूतपूर्व मुख्य मंत्री, पंजाब—डॉ. गोपी चन्द भार्गव पंजाब केसरी लाला लाजपत राय के शिष्य बने। आर्यसमाज के सिद्धान्तों से प्रभावित होकर और लाला जी की प्रेरणा से राजनीति में कूदे। कालान्तर में आप पंजाब के मुख्य मंत्री भी बने थे।

6. डॉ. गोकुल चन्द नारंग—आप एक डी. ए. वी. आन्दोलन के क्रांतिवीर थे। लाला लाजपत राय, महात्मा हँसराज व पं. गुरुदत्त विद्यार्थी की तरह इस शिक्षा आन्दोलन के सक्रिय आर्य युवा थे। स्वाधीनता की लड़ाई में आपका योगदान आर्यसमाज की सक्रियता का बोधक है। आप डॉ. गोपी चन्द भार्गव के शिष्य थे।

7. महात्मा देवी चन्द एम.ए.—होशियारपुर पंजाब के आर्यसमाजी नेता तथा स्वाधीनता के अमर सेनानी माने गए। आपका नाम भारतीय गौरव के लिए आर्यसमाज में प्रसिद्ध है। ब्रिटिश काल में एम.ए. की सर्वोच्च उपाधि पंजाब विश्वविद्यालय से सफलतापूर्वक उत्तीर्ण किया था। दीक्षान्त समारोह में जब डिग्री मिलने लगी तब अंग्रेज सरकार की ओर से उस समय अंग्रेजी सरकार के प्रति 'दृढ़निष्ठा व भक्ति' रखने की शपथ दिलाई जाने लगी। इस आर्य युवा ने ऐसा करने से इन्कार कर वहाँ उपस्थित सभी अंग्रेज अधिकारियों को चौंका दिया। फलतः इन्हें डिग्री

नहीं दी गई। यह घटना पता चलने पर जनता ने इनकी इस आत्मशक्ति को सराहा **और स्वयं जनता ने ही इन्हें महात्मा और एम.ए. ये दोनों शब्द इनके नाम के साथ जोड़ दिया।**

7. श्री लाला राम प्रसाद—आप भी इसी कड़ी के हिस्सा रहे। लाला लाजपत राय की प्रेरणाओं के ऋणि होकर स्वाधीनता के कार्य में जुटे रहे और समय-समय पर मुश्किलों का सामना भी करते रहे। आप ने काफी समय तक लाला लाजपत राय द्वारा चलाया समाचार पत्र 'बन्दे मातरम्' के सम्पादन-कार्य करते रहे। अखबार का सम्पादन कार्य और वह भी अंग्रेजों के विरोध में करना कितना दिलेरी का काम था। पाठक वर्ग स्वयं समझ सकते हैं। पर आप कभी इस चुनौति भरे समय में अपने इस चुनौतियुक्त कार्य में कोई कमी न आने दी। तब निःसंदेह आपका कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं में एक ऊँचा स्थान था।

8. श्री प्रबोधचन्द्र—आपका जन्म 24 अक्तूबर 1911 रावलपिंडी में हुआ। आपके पिता मास्टर सत्य देव आर्य व माता श्रीमती दुर्गा देवी एक जाने माने आर्यसमाजी परिवार थे। श्री प्रबोध चन्द्र जी का विवाह भी एक स्वतंत्रता सेनानी पक्के आर्यसमाजी, लाला लाजपत राय के साथ मिलकर काम करने वाले तथा कई बार स्वाधीनता संग्राम के तहत जेल जाने वाले महान क्रांतिकारी आर्य नेता लाला पिंडी दास (जुन 1886-जन्म, वैनीवाल, गुजरांवाला अब पाकिस्तान) की चौथी सुपुत्री आदर्श बाला के साथ हुआ। घर का पूरा वातावरण आर्यसमाज का ही था। लाला पिंडी दास की अन्य पूर्व की तीन बेटियाँ स्वराज, आदर्श और स्वदेश बाला सब आर्यसमाज के संस्कारों में पली और सारा जीवन त्यागमय अवस्था में ही रहकर सामाजिक सेवाओं में जुड़ी रहीं। स्वदेश जी तो जेल की अंधेरी व गन्दी कोठरियों में रहते हुए कष्टों में रही जिसके कारण टी.बी. का शिकार हो गईं थीं। श्री प्रबोध चन्द्र पर जहाँ पिता का संस्कार था, वहीं अपने स्वसुर पिता का भी अमिट प्रभाव पड़ा जिससे आप 16 वर्ष की किशोरावस्था में ही स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ गए। उन्होंने गुरदासपुर वाली कोठी का मुख्य हिस्सा अपने जीवन काल में ही मिलिट्री को दे दी थी पर समय के बदलते क्रम में उनके छोटे बेटे अश्विनी कुमार ने वापिस ले ली थी। विदित हो कि अश्विनी कुमार भी पंजाब के कानून मंत्री बने थे। ये अभी हैं।

श्री प्रबोध चन्द्र ने अपने बड़े पुत्र पवन कुमार की रहस्यपूर्ण मृत्यु से काफी हताहत हुए थे, कहते हैं, उस युवक को अकाली षड्यन्त्र के तहत शीशा-जहर खिला दिया गया, जो भी हो, यह बात रहस्य ही रह गई। उस युवा के नाम पर श्री प्रबोध चन्द्र ने गुरुदासपुर में 'पवन आई.टी.आई' नामक तकनीकी शिक्षा संस्थान खोल दिया। कष्ट में भी कांग्रेस के साथ राजनीति में रहे और पंजाब सरकार के अनेक राजनैतिक पदों पर काम किया। स्वास्थ्य मंत्री, पंजाब रहते हुए गुरदासपुर का अस्पताल का भरपूर सुधार व विकास करवाया जिससे इनकी मृत्यु के बाद वह अस्पताल अब इनके नाम पर 'प्रबोध चन्द्र गोर्मेंट हॉस्पिटल' कर दिया गया। उनके प्रति वहाँ की जनता में अपार श्रद्धा है जिसके कारण गुरदासपुर के चौक पर उनकी प्रतिमा लगाई गई और उस मार्ग का नाम भी प्रबोध चन्द्र मार्ग रखा गया। नि:संदेह इस आर्यसमाज के संस्कारों में पले नेता की गरिमा आर्यों के लिए सदा ही प्रेरणा रहेगी।

प्रबोध चन्द्र जी पंजाब के भूतपूर्व शिक्षा मंत्री भी बने तब आर्यसमाज की प्रेरणाओं के कारण ही उन्होंने एक कठिन समय आने पर भी स्वयं यह बोलने में कोई झिझक नहीं की—'आर्यसमाजी होने पर गर्व है'। 25 मार्च 1966 को पंजाब विधान सभा में अकाली दल ने आरोप लगाया कि यह व्यक्ति आर्यसमाजी है तब आपने कहा कि—**'हाँ मैं आर्यसमाजी हूँ और मुझे आर्यसमाजी होने पर गर्व है। आर्यसमाज ने देश की भारी सेवाएं की है।**—वीर अर्जुन पत्र—26 जुन 1966. इनके पिता मास्टर सत्यदेव जी बी.ए. परीक्षा उत्तीर्ण थे और आर्यसमाज के स्कूल में अध्यापक होकर उन्होंने आर्यसमाज की अनेक तरह से सेवा की। ब्रिटिश सरकार इन पर भी कड़ी नजर रखती थी। वेवजह अलग-अलग स्थानों पर इनकी बदली कर दी जाती थी जिससे परिवार-बच्चों को संभालने में काफी कष्टों का सामना करना पड़ा, यहाँ तक कि इनके साथ इनके अन्य भाइयों को भी अंग्रेजों की कहर सहनी पड़ी पर आर्यसमाज का काम कभी न छोड़ा। आपने गुरदासपुर को भारत संघ के साथ जोड़ने में जस्टिस मेहरचन्द महाजन और कश्मीर के राजा हरि सिंह के पुत्र डॉ. कर्ण सिंह के साथ मिलकर सहयोगात्मक कार्य किया—आशी चावला डब्लीन सुपुत्री स्व. श्री प्रबोध चन्द्र द्वारा लिखित पुस्तक से

प्राप्त जानकारी के अनुसार। नोट—गुरदासपुर का यह प्रसंग होने के कारण मैंने आर्यसमाज वेस्टमिड्लैंड्स बर्मिंघम यू.के. भूतपूर्व प्रधान श्रीमती विभा केल से बात की कि क्या आप गुरदासपुर के आर्य नेता श्री प्रबोध चन्द्र को जानती हैं? आप भी तो वहीं की हैं तो मान्या विभा जी भावुक हो गईं और कहने लगी कि वे तो मेरे मामा जी थे। मुझे जानकर प्रसन्नता हुई कि विभा जी ऐसे महान आर्य नेता की भांजी हैं। आर्यसमाज के लिए यह क्या कम गौरव की बात है?

9. लाला जगत नारायण—पंजाब के क्षेत्र में लाला जगत नारायण एक जाने पहचाने हस्ती हुए। आप भी आर्यसमाजी थे और राजनीति में सदैव सक्रिय रहे। पंजाब केसरी अखबार के मालिक थे। हमेशा ही अपने समय में अंग्रेजों के विरोध में आवाज उठाते रहे। आप पंजाब के शिक्षा मंत्री भी रहे। आपके पुत्र श्री रमेश चन्द्र और श्री विजय चोपड़ा और आपके पौत्र श्री अश्विनि चोपड़ा सब आर्यसमाज के कार्यों में सक्रिय रहे। स्वाधीनता कार्य में सदा ही प्रशंसनीय कार्य करते रहे। आपका परिवार पंजाब में अपने आप में एक प्रतिष्ठाप्राप्त परिवार है। मैं (आचार्य उमेश) जालन्धर रहते हुये इस परिवार में जाता रहा।

10. स्वामी आत्मानन्द जी महाराज—(पूर्व नाम मुक्ति राम उपाध्याय)—पं. जगदीश चन्द्र जी आर्यसमाज के क्रांतिकारी नेता तो थे ही, एक प्रसिद्ध आर्य विद्वान् थे। आर्य जगत् के महान दार्शनिक व देशभक्त थे। उनका एक संस्मरण आर्योदय पत्रिका में पृ.5-13 पर 19 पौष 2022 में छपा था जिसके अनुसार स्वामी आत्मानन्द जी महाराज एक संत थे, गुरुकुल पोठोहार पंजाब में रहा करते थे और समय-समय पर स्वाधीनता संग्राम में जुड़े क्रांतिकारी युवकों को अपने राष्ट्र के लिए लड़ने की शिक्षा भी दिया करते थे। यहाँ तक कि वीर भगतसिंह व वीर सुखदेव भी इनकी शरण में जाकर शिक्षा व सुरक्षा दोनों पाया करते थे।

पं. जगदीश चन्द्र जी की उक्ति के अनुसार—सायंकाल का हवन और संध्या काल में जगदीश जी अंग्रेजों से छुपते-छुपाते गुरुकुल पोठोहार पहुँचे। उपाध्याय जी ने उन्हें संध्योपरान्त यजशाला से नीचे उतरते हुए देख लिया। मेरे पास आकर मेरे कांड का पता उन्हें लगा तो गंभीर होकर बोला कि 'चार दिन पहले गुरुकुल की तलासी हुई है। झेलम पार के दो

ग्रामों में पुलिस ने कई लोगों को गिरफतार किया है। पता लगा है कि हमारे गुरुकुल पर भी पुलिस का कड़ा पहरा लगने वाला है। आप इसी समय (8 बजे रात) को दो मील पर उस ग्राम में चले जाएं और प्रातः उठते ही वहीं से 8 मील पर अमुक ग्राम में चले जाना और साधुवेश में भिक्षाटन से दिन काटें। एक मास के बाद मुझे रात के समय अमुक स्थान पर मिलें।' उपाध्याय जी के आदेशानुसार जगदीश चन्द्र जी ने वैसा ही किया।

स्वामी जी शब्दों से ही नहीं अपितु आर्थिक मदद भी क्रांतिकारी युवकों को किया करते थे। गुरुकुल से जाते हुए स्वामी जी को 100 रु. परिवार तक पहुँचाने के लिए पं. जगदीश चन्द्र जी ने दिये, स्वामी जी स्वयं उनके परिवार में गाँव, जण्डियाला गुरु, जाकर सांत्वना दी तथा आर्थिक सहायता पहुँचायी। पुलिस की इस गाँव पर कड़ा पहरा होते हुए भी स्वामी जी ने परवाह नहीं की और वहाँ जाकर जगदीश चन्द्र जी के परिवार से मिले। उन दिनों उस गाँव में बाहर से किसी को जाना इतना आसान नहीं था पर यह तो आर्यसमाजी वीर संन्यासी का ही काम हो सकता था।

11. जालन्धर के रायजादा—भगत राम—आप पक्के आर्यसमाजी तथा महर्षि दयानन्द के भक्त थे। स्वाधीनता संग्राम के वीरों को हमेशा साथ दिया, सुरक्षा दी और भारत प्रेम के पक्ष में प्रोत्साहित किया।

12. लाला देवराज—आप जालन्धर के रहने वाले थे तथा स्वामी श्रद्धानन्द के बहनोई थे। आपने जालन्धर में सबसे पहले उत्तर भारत का कन्या महाविद्याल खोला। आर्यसमाज के अधिकारी रहे तथा स्वाधीनता संग्राम के लिए जेल गए, अनेक यातनाएं सहीं। ये सोंधी परिवार से जालन्धर में जाने जाते थे। आज भी इनकी चौथी पीढ़ी का परिवार श्री आलोक सोंधी आदि जालन्धर में ही रहते हैं जिनकी माता श्रीमती राज सोंधी हैं। मेरा सौभाग्य रहा कि इस परिवार में जालन्धर पौरोहित्य काल में लाला देवराज सोंधी के परिवार की एक सदस्या श्रीमती वेद कुमारी सोंधी विलकुल खादी के वस्त्र पहनती थी, कन्या महा विद्यालय की पढ़ी हुयी थीं, के साथ इनके घर में लगातार लगभग दो वर्ष मैंने प्रतिदिन हवन करवाया। तब इनकी पुत्र वधू श्रीमती राज सोंधी अपने पूर्वजों के त्याग व

बलिदान की बातें बताया करती थीं। माता वेद कुमारी सोंधी भी स्वाधीनता संग्राम में जेल जाकर आन्दोलन का हिस्सा रही थी। मेरे लिये उस परिवार से मिलना अत्यन्त आह्लादक रहा। 1981–85 के समय में— लेखक (आचार्य उमेश)।

इस प्रकार जालियाँवाला बाग कांड के बाद स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपत राय आदि आर्य नेताओं के संरक्षण में आर्यसमाजी लोगों ने 1921 के 'असहयोग' आन्दोलन में बढ़-चढ़कर भाग लिया। सारे भारत में उसका संदेश गया। उस आन्दोलन में गांधी जी अहिंसात्मक संग्राम की तैयारी की पर महर्षि दयानन्द के शिष्यों ने देखा कि अंग्रेसी सरकार इसको विफल कर रही है तो स्वराज्य का वीज तो 1873–74 में ही महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में लिख कर बो ही दिया था, आर्यसमाजी नेताओं के संरक्षण में यह वृक्ष रूप बन कर उभरा। फलतः पंजाब, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, बिहार, आसाम, गोवा, हैदराबाद आदि तमाम क्षेत्रों से जेल भरों अभियान में सबसे अधिक आर्यसमाजी लोग ही थे। कुछ ठोस प्रमाण प्रस्तुत करना पाठकों की प्रेरणा के लिए उपयुक्त होगा।

80% की सहभागिता—यह निर्विवाद है कि स्वाधीनता संग्राम में आर्यसमाज की सहभागिता लगभग 80% थी। निम्न प्रमाणयुक्त विवरणों से यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाएगा।

80% सहभागिता-प्रकरण में ये विचार और प्रमाण प्रबल सहायक हैं—

1. महर्षि दयानन्द सरस्वती ने 7 अप्रैल सन् 1875 में वुधवार को पहला आर्यसमाज बम्बई (भारतवर्ष) में खोला जो तिथि वैदिक पंचाग के अनुसार चैत्र शुक्ला प्रतिपदा विक्रमी सम्वत् 1932 थी। अब भारतवर्ष में आर्यसमाजों की संख्या बढ़कर लगभग 5427 और इस तरह पूरी दुनियाँ में लगभग इसके अलावे भी 500 आर्यसमाजें, 900 से ऊपर डी.ए.वी. शिक्षण संस्थाएं, लगभग 1000 आर्यसमाजों द्वारा चलाए जा रहे आर्य विद्यालय एवं लगभग 150 आर्य/आर्ष वैदिक गुरुकुल चल रहे हैं। इस तरह ये आर्य संस्थाएं हर वर्ष कुछ न कुछ बढ़ती ही रहती हैं। यहाँ आर्य शताब्दी स्मारिका आर्य समाज टांडा में छपे लेखों के अनुसार कुछ महत्त्वपूर्ण प्रमाण प्रस्तुत है—

वस्तुतः यहाँ मानव मूल्यों का पाठ पढ़ाया जाता है। साथ ही देश-प्रेम के साथ एक अच्छा व्यक्ति बनकर जीवन की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए स्वस्थ परिवार, समाज व राष्ट्र के जिम्मेदार निष्ठावान् नागरिक बनने की शिक्षा आर्यसमाज के यज्ञों, सत्संगों व सम्मेलनों में उच्चस्तरीय विद्वानों द्वारा दी जाती है। आज लाखों में आर्यसमाज के कार्यकर्त्ता, विद्वान् तथा सदस्य भारत एवं विदेशों में भी प्राप्त हैं। जैसे मानव शरीर के पाँचों तत्त्वों के पोषण कर हम अपने स्वास्थ्य का ख्याल रखते हैं, उसी तरह हम अपने स्वच्छ मन, आत्मा और धन से देश की सेवा करके सर्वत्र प्यार और जिम्मेवारियों का वातावरण बना सकते हैं। महर्षि दयानन्द के विचारों में यही मानवहित और देशहित में उत्तम है। ब्रिटिश भारत के कार्यालयों में उपलब्ध जानकारियों के अनुसार यह स्पष्ट है कि आर्यसमाज आन्दोलन शुरू से ही भारतवर्ष की स्वतंत्रता के लिए पूरी शक्ति से अपने उद्देश्य की प्राप्ति तक लड़ा।

आर्य शताब्दी स्मारिका आर्य समाज टांडा
—डॉ. धनपति पांडेय—द आर्यसमाज और इंडियन नेशनलिज्म।

'इस तरह यह स्पष्ट ही ब्रिटिश शासन से भारतीय स्वतंत्रता पाने के लिए शक्ति और शांतिपूर्ण तरीके से जो आन्दोलन चला, उसमें आर्यसमाज आन्दोलन ने सर्वाधिक सहयोग दिया (आर्य शता. स्मारिका आ.स.हा.)'—भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में आर्यसमाज की देन—कुमारी गार्गी माथुर।

'तब भारत में आर्यसमाज का सदस्य बनना मानो ब्रिटिश शासन के विरोधी होना माना जाता था, इस कारण ब्रिटिश सरकार आर्य समाजियों और उनकी व्यावहारिक गतिविधियों पर कड़ी नजर रखा करती थी।

इंडियन नेशनल कांग्रेस पार्टी के तत्कालीन प्रधान श्री **पट्टाभिसीतारम्मैया** ने सन् 1948-1949 में कहा था—' आज हम जिस स्वतंत्रता के पवित्र वृक्ष के फलों का स्वादन कर रहे हैं, उस वृक्ष को स्वामी दयानन्द सरस्वती ने लगाया था।'—पृ.50 भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में आर्यसमाज की देन-लेखक श्री ओंकार मिश्र 'प्रणव' शास्त्री एम.ए.

'ब्रिटिश सरकार तब अच्छी तरह जानती थी कि भारतवर्ष की जनसंख्या में मुख्यतः आर्यसमाज आन्दोलन ही सावधान जिम्मेदार और राष्ट्रवादी है।'

सर ऐंथोनी पैट्रिक मैक्डोनल ने भारत में ही सन् 1915 में कहा—'भारत में सारे ब्रिटिश शासक आर्यसमाज को एक राजनैतिक संस्था मानते हैं और पुलिश इसे विद्रोही संस्था समझकर व्यवहार करती है।'

ब्रिटिश सरकार ने आर्यसमाज को विद्रोही संस्था सिद्ध करने के लिए पटियाला कोर्ट में केस दर्ज किया। आर्यसमाज के 85 सदस्यों पर वारंट जारी कर 'सत्यार्थप्रकाश' जैसी पुस्तक पर बन्दी लगा दी। लेकिन पूरे प्रयासों के बाद भी ब्रिटिश सरकार अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो पायी। '—भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में आर्यसमाज की देन-पृ. 61-लेखक-ईश्वरी प्रसाद 'प्रेम'

2. दयानन्द ऐंग्लो वैदिक (डी.ए.वी.) शिक्षण संस्था 1986 में महर्षि दयानन्द सरस्वती के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि देने के ख्याल से उनके त्याग को सार्थकरूप देने तथा भारतवर्ष की श्रेष्ठता को ध्यान में रखकर स्थापित किया गया और इसी तरह आगे चलकर 1902 में गुरुकुल भी खुला। वहाँ के छात्र भारतवर्ष /आर्यावर्त्त के अतीत गौरवशाली इतिहास के बारे में पढ़ाए जाते और यह भी उन्हें बताया गया कि आज ब्रिटिश राज्य में भारत का गौरव कितना फीका पड़ गया। अपने देश के बलिदानी महापुरुषों से शिक्षा लेकर वहाँ के छात्र अपने राष्ट्रप्रेमी व्यक्तित्त्व को बढ़ाते हुए ब्रिटिश शासक के विरोध लड़ने की प्रेरणा भी अपने गुरुओं से पाते रहे।

3. भारतवर्ष के नैतिक मूल्य बढ़ाने और ब्रिटिश शासक से लड़ने की अपूर्व प्रेरणा ग्रहण करने के लिए भारतीय वीरों को ये आर्य पत्र-पत्रिकाएं और कुछ समाचार-पत्र भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं रहे।

—आर्यप्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश—आर्य मित्र, लाहौर से प्रकाशित होने वाले समाचार पत्र—दैनिक मिलाप, आर्यवीर, तेज, प्रताप, दिल्ली से प्रकाशित होने वाले समाचार पत्र—वीर अर्जुन, जन सत्ता और कानपुर से निकलने वाला समाचार पत्र 'प्रताप' आदि ये सब आर्य नेताओं को भारतवर्ष के अतीत गौरव बताने और ब्रिटिश सरकार को उखाड़ फेंकने की भरपूर शक्ति बढ़ाने में अत्यन्त सहायक सिद्ध हुए।

श्यामजी कृष्ण वर्मा द्वारा चलाई हुई मासिक पत्रिका 'इंडियन सोसियोलौजिस्ट' 1905 से 1914 देश-विदेश में भारतीयों को जगाने हेतु

अनुपम योगदान देने में खूब ही लाभप्रद रही। इसमें 'An Organ of freedom' और इस तरह राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक सुधारों से सम्बन्धित विचार छपते थे। यह लन्दन में ही स्थापित हुई थी पर 1907 तक ही वहाँ रही फिर श्यामजी कृष्ण वर्मा जून 1907 में पेरिस गए तो यह पत्रिका साथ ले गए और 1914 तक वहाँ प्रकाशित करते रहे। फिर जिनोवा में दिसम्बर 1920 में इन्होंने इसे प्रकाशित करना शुरू किया और 1922 तक यह पत्रिका इनके संरक्षण में चलती रही जो यूरोप, अमेरिका और भारत में बहुत ही लोकप्रिय होकर भारतीय लोगों को स्वतंत्रता का पाठ देती रही जिससे लोगों में ब्रिटिश शासन के विरोध में संगठनात्मक रूप से खड़ा होने की प्रेरणा मिलती रही।

और भी ये प्रमाण प्रबल रूप से सहायक हैं—

यू.पी. सभा का इतिहास/आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का इतिहास—श्री शिवदयालु जी पृ. 30-125 तक विस्तार ज्ञान के लिए पठनयोग्य है।

4. 'स्वाधीनता के विगत संग्रामों में मेरठ जिला, उत्तर प्रदेश में सबसे आगे रहा। जिले के अन्दर दो हजार से ऊपर सत्याग्रहियों को कारावास की यातना सहन करनी पड़ी है। **इन दो हजार में से अधिकतर (लगभग 80%) आर्यसमाजी थे।'**

5. 'देश की स्वाधीनता के संग्राम में भी बुलन्द शहर ने बढ़कर बलिदानों का ताता लगाया। इस जिले के कई सौ आर्य समाजियों ने कारागारों की यातनाएं सही।'

6. सन् 1921 में स्वराज्य आन्दोलन में (आर्य) समाज के (सोरो जिला मथुरा) के अनेक सदस्यों ने प्रशंसनीय कार्य किया।

7. सन् 1921 के स्वाधीनता संग्राम में जिला सुल्तानपुर के अनेक आर्यसमाज के कर्मठ कार्य कर्त्ताओं ने प्रशंसनीय त्याग व बलिदान किये।

8. आर्यसमाज के इतिहास भाग 2 पृ. 111 (इन्द्र विद्यावाचस्पति) के अनुसार उस भीषण काल में जब सब सत्याग्रही जेलों में दारुण दुःख झेल रहे थे तब कांग्रेस के वरिष्ट नेता मोती लाल नेहरू की नियुक्ति अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटि की ओर से की गई थी कि वे जेलों में गहन कष्ट झेल रहे वीरों की जाँच करें। उन्होंने जो रिपोर्ट दिया वह यह

था— "आज महात्मा गांधी के आदेशानुसार स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए जेल के सीखंजों में बन्द बैठे जो सत्याग्रही कष्ट सह रहे हैं, उनमें लगभग **70% आर्यसमाज की विचार धारा रखने वाले हैं।** साथ ही जिन वकीलों ने अदालतों का बहिष्कार किया उनमें भी अधिक संख्या आर्य समाजियों की थी। 'यद्यपि आर्यसमाज और गांधी जी के विचारों में भेद आ गया था तथापि आर्यसमाज के लोगों ने अंतिम समय तक पूरी निष्ठा से इस आन्दोलन में साथ निभाया बल्कि सबसे आगे बढ़कर इसमें महत्त्वपूर्ण भाग लिया।"

9. डॉ. पट्टाभिसीता रमैया द्वारा लिखित पुस्तक 'कांग्रेस का इतिहास' भाग-1-2-3 में उन्होंने स्वयं की जाँच का विवरण विस्तारपूर्वक दिया है जिसमें सार अंश यहाँ उपस्थित किया जाता है— **'उस समय इस आन्दोलन की सहानुभूति तथा पक्ष में जिन वकीलों ने अदालतों का वहिष्कार किया था उनमें भी 80% लोग आर्यसमाजी विचार** धारा के थे।' यह प्रसंग 1921 के असहयोग आन्दोलन का है। यहाँ शब्दों पर ध्यान दीजिये। ऊपर के वाक्य में डा. रमैया ' उनमें भी' का प्रयोग किया अर्थात् जेल में जाने वाले लोग तो 80% थे ही, **सरकारी अदालतों का बहिस्कार करने वाले वकीलों में भी 80% आर्यसमाजी विचार धारा के थे।** यह प्रसंग स्वामी श्रद्धानन्द - प्रकरण में भी पूर्व ही उपस्थित किया गया है। यहाँ केवल प्रमाण-बहुलता के लिए दिग्दर्शित है। दु:ख है कि स्वतंत्र भारत में भी आर्यसमाज के इन बलिदानी वीरों की चर्चा सरकार के संज्ञान में न के बराबर है जिसकी आज महती आवश्यकता है। आगे भी देखें—यू.पी. सभा के इतिहास के अनुसार।

10. असहयोग आन्दोलन 5 सितम्बर 1920 को महात्मा गांधी द्वारा चलाया गया पर चौरी-चौरा घटना के कारण यह फरवरी 1922 में बन्द कर दिया गया। पर आगे चलकर 12 मार्च 1930 से 5 अप्रैल 1930 तक नमक पैदल यात्रा-आन्दोलन चला जो ब्रिटिश सरकार द्वारा मनमानी भारतीयों पर साधारण नमक के लिए भी 'कर' लगाए जा रहे कानून के विरोध में था। **1874 में ही महर्षि दयानन्द ने 'नोन कर' (नमक कर) के बारे में अपनी वाणी और लेखन द्वारा भी आवाज उठाई थी**

जिसके कारण उनके प्रबल अनुयाई आर्यसमाज के नेताओं ने इस आन्दोलन में अत्यन्त जोर-शोर से भाग लिया। उन्हीं दिनों पंजाब में स्वामी स्वतंत्रता नन्द जी महाराज जो एक जाने-माने आर्यसमाज के संन्यासी और एक लौहपुरुष की तरह दृढ़संकल्पयुक्त कार्यकरने वाले आर्य नेता थे जिन्होंने पंजाब में इस आन्दोलन को अपने हाथ में लिया। उनकी प्रेरणा और आह्वान से लगभग 50 हजार आर्य नर-नारियाँ जेल में भेजे गए। यू.पी. सभा के इतिहास पृ. 72 के अनुसार उस समय कुल ढाई लाख (2 लाख 50 हजार) कैदी जेल में थे। स्वामी स्वतंत्रता नन्द जी वैदिक धर्म के एक उच्चस्तरीय दार्शनिक, वेदों के विद्वान् और आर्यसमाज के प्रबल प्रचारक थे। उन्होंने लाहौर शहर में एक जन-समूह में ब्रिटिश सरकार को चुनौति दी कि **'ब्रिटिश सरकार भारतीय कैदियों के साथ भी वैसा ही व्यवहार करे जैसे वह अपने राजनैतिक कैदियों के साथ करती है**, इससे यह स्पष्ट होता है कि ब्रिटिश सरकार भारतीय कैदियों और अंग्रेज कैदियों में व्यावहारिक भेद-भाव किया करती थी।

11. श्री ईश्वरी प्रसाद 'प्रेम' एम.ए. साहित्य रत्न सिद्धान्त शास्त्री द्वार लिखित पुस्तक भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में आर्यसमाज की देन पृ. 63 के अनुसार—12 मार्च 1930 से 5 अप्रैल 1930 तक चलने वाले नमक आन्दोलन में जाने वाले जेल-कैदियों के विवरण के लिए इंडियन नेशनल काँग्रेश कमिटि के वरिष्ट सदस्य मौलाना हसरत मोहानी को उक्त कमिटी द्वारा नियुक्त किया गया और उनसे पूरा स्पष्ट विवरण कार्यालय में माँगा गया तब विस्तार पूर्वक जाँच के बाद उन्होंने अपने विवरण में साफ-साफ लिखा-**'महात्मा गांधी के आदेशानुसार इस ब्रिटिश सरकार के विरोध लड़ने के लिए गए जेल-कैदियों में 80% लोग आर्यसमाज के अनुयाई हैं जो जेल में काफी कठिनाइयों को झेल रहे हैं।'** एक भिन्न मतावलम्बी द्वारा दिया हुआ यह विवरण आर्यसमाज के लिए निश्चित रूप से महत्त्वपूर्ण है। क्या भारत की स्वतंत्रता में आर्यसमाज का यह विशेष योगदान को दिखाने में प्रबल प्रमाण नहीं है?

12. अपने कालजयी ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश के 11वें समुल्लास में महर्षि दयानन्द ने स्पष्ट लिखा है—**'इसलिये जो उन्नति करना चाहो तो 'आर्यसमाज' के साथ मिलकर उनके उद्देश्यानुसार आचरण करना**

स्वीकार कीजिये नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा।' इसी क्रम में उन्होंने और भी स्पष्ट लिखा—**'इसलिये जैसा आर्यसमाज आर्य्यावर्त्त देस की उन्नति का कारण है वैसा दूसरा नहीं हो सकता।'** महर्षि दयानन्द के इन्हीं प्रभावपूर्ण प्रेरणाओं के कारण आज भारतवर्ष में 5427 आर्यसमाजे और इसी तरह इसका जाल विदेशों में भी देखा जा सकता है।

यूनाटेड किंगडम, यू. एस. ए., कनाडा, जर्मणी, फ्रांस, चीन, जापान, बर्मा (म्यामर), थाइलैंड, मलेशिया, अफ्गानिस्तान, इरान, टर्की आदि देशों में भी लगभग 130 आर्यसमाजें व्यवस्थितरूप से कार्य कर रही हैं। हर वर्ष हम इसमें संख्या-वृद्धि ही पाते हैं।

13. श्री प्रकाश सिंह बादल ने, 1977 में पंजाब के मुख्यमंत्री होते हुए आर्यसमाज के आन्दोलन के प्रति अपनी श्रद्धा उद्‌गार भरे शब्दों में इस प्रकार प्रकट की—'जितना आर्यसमाज ने राष्ट्रभक्त दिया उतना किसी अन्य संस्था ने नहीं दिया।'

14. श्रीमती ऐन्नी बेसेंट—1917 में इंडियन नेशनल काँग्रेश के प्रधान रहते हुए— **' भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास से अगर आर्यसमाज को निकाल दें तो यह एक महत्त्वहीन और अस्तित्त्वहीन बिना सुगन्ध के पुष्प की भांति हो जाएगा।**

15. **महावीर त्यागी**—रामलीला मैदान, दिल्ली में एक बहुत बड़े राजनैतिक सम्मेलन होने पर अपने उद्बोधन में जन-समूह को कहा—' 1930 में जब हम जेल में थे वहाँ मौलाना हसरत मोहानी हमें मिलने आए और उन्होंने बताया कि वे इंडियन नेशनल काँग्रेश को अपना विवरण लिखने जा रहे हैं कि महात्मा गांधी के आदेशानुसार भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन की लड़ाई में जुड़े हुए लोगों में ब्रिटिश सरकार के जेलों में जो लोग थे, **उनमें 80 % आर्यसमाज आन्दोलन के अनुयाई थे।'**

श्री महावीर त्यागी—भूतपूर्व भारत के प्रतिरक्षा व पुनर्वास मंत्री बनने वाले की धार्मिक जड़ आर्यसमाज था। उन्होंने स्वयं लिखा—' मैं बचपन से ही आर्यसमाजी था। घर पर यज्ञोपवीत और धोती दो ही कपड़े पहनता था, आम तौर से गर्मियों में।' पृ. 45

80% आर्यसमाज की सहभागिता की पुष्टि—1964 सन् में दिल्ली आर्य केन्द्रीय सभा के दिवाली के अवसर पर महर्षि दयानन्द—निर्वाणोत्सव

में श्री त्यागी जी, पुनर्वास मंत्री के रूप में और श्री राजा दिनेश सिंह, विदेश मंत्री के रूप में आमन्त्रित किया गया। दोनों ने अपने-अपने अंदाज में महर्षि दयानन्द को श्रद्धांजलि दी। त्यागी जी ने अपने बारे में जो कहा वह ऐसा है— **'मैंने बचपन से ही आर्यसमाज की शिक्षा से उत्साह पाया था और उसी से प्रेरित हो कांग्रेस में शामिल हुआ। खिलाफत आन्दोलन के समय आगरा में 82% पुरुष और 92% स्त्रियाँ आर्यसमाजी थीं। महर्षि ने 'स्वराज्य ' का बीज बोया।' दैनिक हिन्दुस्तान—5.11.64 पृ. 3**

कुछ प्रमाण अन्य भी—अलगु राय शास्त्री—अलगू राय शास्त्री उत्तर प्रदेश के भूतपूर्व राज मंत्री रहे। आर्यसमाज आपके रग-रग में वसा हुआ था। लोक सेवा संघ के आजीवन सदस्य थे। आपने गुरुकुल डौरली उ.प्र. की स्थापना में निष्ठापूर्वक अपनी निष्ठा व सहयोग रखा। मेरठ आश्रम के संचालक बनकर जनता की सेवा की। ब्रिटिश सरकार के जेलों में आप अनेक वार अनेक आन्दोलनों के कारण आरोपित हुए जिसके कारण गए और यातनाएं सही। सन् 1942 में भारत से बाहर जाने लगे तो प्रांत की सीमा पर आपको पकड़ लिया गया और एक खतरनाक क्रांतिकारी और संगठन कर्त्ता बताकर आपको गृहसचिव बैरैन ने कारावास में रखा। पृ. 182

चौ. चरण सिंह—भारत की राजनीति में चौधरी चरण सिंह का आर्यसमाजी और राष्ट्र भक्त होने का अपना ही महत्त्व है। चाहे उनका आना-जाना सब मत-मतान्तर के लोगों के बीच हुआ करता पर उन्होंने आर्यसमाज की मर्यादा कभी नहीं तोड़ी। अनेक साथियों से सुना कि आपने कभी मजार पर चादरें नहीं चढ़ायीं, चर्च में मोमबत्ती नहीं जलाई इत्यादि पर सब मतों को मानने वालों में भी सम्मानित रहे। आज कल तो देखा जाता है कि अपने थोड़े से राजनैतिक स्वार्थ के लिए अपने सिद्धान्तों के मेड़ तोड़ देते हैं, पर चौ. चरण सिंह एक पक्के आर्य सिद्धान्तों के सिपाही माने जाते थे। उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री बने तथा एक बार भारत के प्रधान मंत्री भी। यद्यपि प्रधान मंत्री लगभग एक वर्ष ही रह पाए तथापि आर्यसमाज की दृष्टि से उनका स्थान महत्त्व पूर्ण रहा। सुना जाता है कि वे सदैव प्रधान मंत्री या मुख्य मंत्री या किसी भी पद पर रहे, वे महर्षि दयानन्द की तस्वीर अपने टेबल पर रखा करते थे। सच में वे किसान-पुत्र

किसानप्रिय, आर्य पुत्र व आर्य प्रिय नेता भारतवर्ष को आर्यसमाज की देन थे। मेरठ जिला उ.प्र. के स्वतंत्रता-आन्दोलनों व अनेक कार्यक्रमों में आपका विशेष हाथ रहा। अनेक बार ब्रिटिश जेलों में आप ने भी राजनैतिक संगठनों के कारण ही गए और अनेक कष्ट सहे। गुरुकुल डौरली के वर्षों प्रधान रहे, आर्य कुमार महासम्मेलन की अध्यक्षता की तथा भारतीय आर्य कुमार परिषद् के आप प्रधान भी रहे। राजनीति में सफलता, त्याग व स्वदेश प्रेम आपके सब उपलब्धियों का प्रेरणास्रोत आर्यसमाज को ही आपका मानना है। खादी वस्त्र, खादी टोपी कुर्त्ता-धोती सब स्वदेशी प्रेरणा ही थी जिसका आपने पालन किया। स्वदेशी वस्तु-प्रयोग व राष्ट्र-प्रेम की शिक्षा आपने महर्षि दयानन्द के सत्यार्थ प्रकाश से सीखी थी। यही तो आर्यसमाज का गौरव मुँहबोलता तस्वीर है। अन्यत्र भी हम इनके बारे में सम्बन्धित प्रकरणों में जानेंगे। पृ.157

श्री चन्द्रभानु गुप्त—देश भक्त व आर्य वीरों की श्रेणी में आपका नाम गौरव से लिया जाता रहा। आप भी उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री रहे। बचपन से ही आर्यसमाजी थे। आर्य कुमार सभा, लखीमपुर के आप मंत्री हुआ करते थे। गनेश गंज (लखनऊ) के आर्य कुमार सभा के कर्मठ कार्य कर्त्ता रहे। 1966 में आपके प्रयास से एक आर्य कुमार महासम्मेलन अत्यन्त सफल हुआ। अनेक तरह स्वाधीनता संग्राम में आपने सक्रिय भाग लिया, ब्रिटिश सरकार के जेलों में यातनाएं सहीं। आर्यसमाजी मनोबल से ही आप सर्वत्र सफल रहे। पृ.193-94

श्री गोविन्द बल्लभ पंत—आप का नाम आर्यसमाज के प्रखर कार्यकर्त्ताओं में आता है। आर्यसमाज की प्रेरणा ही अपको राजनीति में कूदने का कारण बनी। आप भारत के गृह-मंत्री भी रहे। अत्यन्त गौरव पूर्वक आपका राजनैतिक काल रहा। आर्यसमाज नैनीताल के साथ बचपन से ही आपका सम्बन्ध था। उस आर्यसमाज द्वारा स्थापित पहली पुत्री-पाठशाला के आप विशेष कार्य कर्त्ता थे। यह पाठशाला नैनीताल में पहली आर्य पुत्री पाठशाला के रूप में आर्यसमाज नैनीताल द्वारा स्थापित हुई जिसके संरक्षक स्व. श्री गोविन्द बल्लभ पंत जी थे। पृ. 6

पं. लाल बहादुर शास्त्री—'जय जवान, जय किसान' के सबल नारा देने वाले भारत के भूतपूर्व प्रधान मंत्री स्व. श्री लाल बहादुर शास्त्री

की राजनैतिक गरिमाओं से भला कौन अपरिचित है। आप भी भारत को आर्यसमाज की ही अनुपम देन थे। बचपन से आर्यसमाजी होने के कारण आगे बढ़ते गए और आर्यसमाज की प्रेरणा से राजनैतिक जीवन में स्वदेश सेवा के लिए आए। आर्यसमाज की ओर से चलाई जा रही शुद्धि के कार्यों में आप कार्य करते हुते आगे बढ़े तथा पंजाब केसरी लाला लाजपत राय द्वारा स्थापित लोक सेवा संग के आजीवन सदस्य बन गए और लाला जी के निर्देशानुसार राजनीति में आगे बढ़ते रहे। सादगी के अपूर्व प्रतीक, स्वदेशी वस्तु, भाषा, सभ्यता व वैदिक भारतीय संस्कृति के वे द्योतक थे। आगे भी जानेंगे इनके वारे में। –वे क्रांति के दिन–पृ. 45 से उद्धृत—लेखक श्री महावीर त्यागी, उसी क्रम में आगे–

श्री जयानन्द भारती—गढ़वाल आर्यसमाज से प्रभावित होकर श्री जयानन्द भारती स्वदेश के लिए स्वाधीनता की लड़ाई में आ गए। आर्यसमाज की ऐसी प्रेरणा मिली कि ब्रिटिश नौकर शाही उन्हें बर्दाश्त न हुआ फलत: इस ताना शाही के विरुद्ध आवाज उठाने लगे और इस संघर्ष में अनेक बार जेल गए। गढ़वाल में अछूतों की डोला–पालकी समस्या थी। सबको डोला–पालकी वर–बधू के लिए मिलता था पर अछूतों के लिए रोक था। आपने इसका विरोध कसकर किया और संघर्ष किया ताकि इस दिशा में अछूतों को न्याय व प्रतिष्ठा मिले। इस कारण भारती जी गरीबों तथा अछूत समझी जाने वाली जातियों के बीच देवतूल्य पूजनीय माने जाते थे। इसकी चर्चा श्री महावीर त्यागी जी ने अपनी पुस्तक 'वे क्रांति के दिन' में विस्तार से किया। इसी पुस्तक में श्री त्यागी जी ने अपने बारे में भी काफी जानकारियाँ दी। आगे देखें–

इसी तरह सत्याग्रह में भाग लेकर आर्यसमाजी जो जेल गए, स्वतंत्रता सेनानी बने उनके कुछ और भी ऐसे नाम आए—श्रीमती शोभावती देवी, श्रीमती अम्बा देवी जी हल्दवानी व समाज के कर्मठ कार्यकर्त्ता श्री शादी राम जी स्वाधीनता संग्राम में बढ़ चढ़कर काम किया।

पं. शिव दयालु जी, हापुड़—1930 में आपकी अध्यक्षता में विराट तहसिल स्तर पर राजनैतिक सम्मेलन हुआ और वहीं नमक सत्याग्रह का श्री गणेश किया गया। इसमें आर्यसमाज हापुड़ के आर्य समाजियों का विशेष हाथ रहा था। पृ.37—म. त्यागी जी.

वैद्य पं. शेर सिंह—आप भी स्वाधीनता की विभिन्न लड़ाइयों में जेल गए। आपने स्वयं फरमाया—स्वराज्य के आन्दोलन में इसी प्रकार हजारों व्यक्ति आर्यसमाज पदों को छोड़कर कांग्रेस में मिल गए और आर्यसमाज को भूल कर (आर्यसमाज की जिम्मेवारियों/ पदों से हटकर) उसी मशीन के पूर्जे बन गए। वैद्य पं. शेर सिंह फरमाते हैं कि जिस जेल में मैं था उसी में गणना की गई तो **उसमें 80% आर्यसमाजी थे।** लगभग यही हाल दूसरी जेलों का भी था। भारतीय लोक समिति के प्रथम अधिवेशन दिल्ली के अध्यक्ष पद से **श्री पं. राम चन्द्र देहलवी** का भाषण –पृ. 5. पं. राम चन्द्र देहलवी एक क्रांतिकारी, शास्त्रार्थ महारथी, आर्यसमाज के प्रखर वक्ता और उच्चकोटि के विद्वान थे। आपने भी अनेक स्थानों पर स्वाधीनता आन्दोलनों में भाग लिया और जेल गए।

मेरठ आर्य स्त्री समाज की सदस्या **श्रीमती रामकली देवी** अपने तीन मास के नन्हें बच्चे को लेकर एक कपड़े की दुकान पर सन् 1930 में धरना दिया कि पता चले कि कौन सा चतुर दिमाग इस आन्दोलन को खूफिया तरीके से सफल कर रहा है पर अन्त तक उसे पता न चल सका कि इस सत्याग्रह के जत्थेदारों की कड़ी कौन जोड़ रहा है। यह स्वामी स्वतंत्रतानन्द ही थे जो आर्यसमाज के एक प्रसिद्ध प्रचारक, दार्शनिक व वेदज्ञ थे। एक लाहौर की सम्पन्न सभा में स्वामी जी ने बेझिझक सरकार को अपने सम्बोधन में कहा कि 'सरकार हमारे सत्याग्रहियों को जेल में वही व्यवहार करे जो एक सरकार अपने राजनैतिक बन्दियों के साथ करती है।' अर्थात हमारे भारतीय सत्याग्रही जेलों में गए लोगों के साथ जाज्ती या अन्याय अथवा दुर्व्यवहार न करे।

स्वामी रामेश्वरानन्द जी महाराज-स्वाधीनता के लिए सतत संयुक्त आर्य वीरों में स्वामी रामेश्वरानन्द जी महाराज भूतपूर्व सांसद एक कर्मठ आर्य विद्वान् व त्यागी संन्यासी थे। आपने अपनी कर्मठता से एक 'गुरुकुल' घरौण्डा, जिला करनाल में स्थापित किया। इमानदार व निष्ठावान राष्ट्रप्रेमी तो थे ही, महर्षि दयानन्द के सच्चे भक्त थे। असहयोग आन्दोलन की लहर में ही बनारस के अध्ययन काल के बीच में ही देशसेवा के लिए आन्दोलन का हिस्सा बन गए। बचपन से ही खादी

वस्त्र आप पहना करते थे, आर्यसमाज का प्रभाव तो था ही, बस क्रांतिकरिता की लहर में अनेक बार जेल गए और यातनाएं सही। नमक कानून तोड़ के अभियान को जब ऋषिकेश में बढ़ा रहे थे तभी सरकार की ओर से वारण्ट जारी हो गया तब भूमिगत होकर आन्दोलन में लगे रहे और जगह-जगह नारे लगाया करते—' नमक कानून तोड़ दिया, अंग्रेज का सिर फोड़ दिया। 'सरकार की कड़ी निगाह से आप बच न पाए। सरकार ने आपको भयानक समझकर देहरादून की जेल में गिरफ्तार कर डाल दिया। कड़ी यातनाएं जैसे चक्कियाँ पीसना, पत्थर तोड़ना, मल-मूत्र के टोकड़े सिर पर उठाना इत्यादि। ये वही आर्य वीर दिवाना त्यागी संन्यासी थे कि एक बार सांसदों की किसी पाँच सितारा होटल में एक मिटिंग श्रीमती इन्दिरा गांधी ने बुलाई थी तो ये होटल का मंहगा खाना न खाकर अपने साथ लाई भिक्षाटन की दो बाजरे की रोटी निकाली और वुफे से अलग जमीन पर बैठकर खाने लगे। तब इन्दिरा जी ने देखा और हैरान होकर कहा कि आप यह क्या कर रहे हैं, यहाँ तो सब के लिए वुफे में भोजन की व्यवस्था है। तब उस आर्य संन्यासी सांसद ने होटल का खाना मना कर दिया और बोला-**'मैं संन्यासी हूँ, सुबह भिक्षा में किसी ने यही रोटियाँ दी थी। मैं सरकारी धन से रोटी भला कैसे खा सकता हूँ'** पूछने के लिए इन्दिरा जी को धन्यवाद दिया और उनसे एक गिलास पानी और एक फाँक आम का अचार माँग लिया और उसका भी भुगतान स्वामी जी ने अपने पास से किया। आगे के प्रकरण में हम विस्तार से इनके बारे में पड़ेंगे। वे जनसंघ पार्टी से सांसद बने थे पर सरकारी कोठी नहीं ली। वे दिल्ली के बाजार सीताराम, दिल्ली 6 के आर्यसमाज मन्दिर में ही रहकर प्रति दिन संसद में भाग लेने के लिए पैदल ही जाया करते थे। संसद में जब भी बोलना हुआ तब पहले एक वेद मंत्र का उच्चारण किया करते थे तब अपनी बात बड़ी शालीनता से रखा करते थे। यह सब विवरण संसद के रजिस्टर में लिखा मिलेगा। ऐसे आर्य संन्यासी के त्याग व कार्य पर हमें हमेशा गर्व रहेगा।

घरौण्डा आर्ष गुरुकुल आज भी चल रहा है। काश! सरकार ऐसे त्यागी इमानदार लोगों व इनके बनाए गुरुकुलों का नाम ही कहीं सरकारी रजिस्टर में अंकित करे।

पं. नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ—आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान् आर्ष महा विद्यालय ज्वालापुर, जिला सहारनपुर के आप कुलपति रहे। राजनैतिक स्वाधीनता की लड़ाई में आप अनेक बार जेल गए और नानाविध कष्ट सहे। लोक मान्य तिलक को आपने अपना राजनैतिक गुरु और महर्षि दयानन्द को धार्मिक गुरु माना। आप भी स्वतंत्र भारत में अपनी राष्ट्रीय सेवा के कारण उत्तर प्रदेश में प्रसिद्धि के साथ ही उत्तर प्रदेश विधान सभा के सदस्य मनोनित हुए थे।

स्वामी अभेदानन्द जी महाराज—पूर्व नाम पं. वेदव्रत जी ऐसे ही आर्य वीर संन्यासी व स्वतंत्रता सेनानी रहे। भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के आप परम मित्रों में थे। खास कर बिहार में गांधीवादी इन सारे आन्दोलनों में आपका कार्य सराहणीय था। इस कारण आप भी अनेक बार ब्रिटिश सरकार की जेलों में रहे और कष्ट पाया।

श्री घनश्याम सिंह गुप्त—मध्य प्रदेशीय आर्य नेता का नाम मध्य प्रदेश में बच्चा-बच्चा जानता है। आप वहाँ के विधान सभा का अध्यक्ष भी रहे और अंग्रेजी सरकार से कभी डरे नहीं। अंग्रेजों को किसी भी सभा में निर्भीक होकर ऐसी डाँट उन्हें लगाया करते थे कि उनकी सिट्टी-पिट्टी गुम हो जाया करती। अनेक बार आप ने भी जेल की हवा खायी। एक अंग्रेज की उदण्डता दिखाने पर उसे आपने ऐसा फटकार दिया कि वह चुप हो गया।

लाला देशबन्धु गुप्त—एक प्रसिद्ध आर्यसमाजी थे, राष्ट्र भक्त थे और समाज सेवी थे। कांग्रेसी नेताओं में आपका नाम अग्रणी श्रेणि में लिया जाता रहा। सामाजिक व राजनैतिक सेवाओं के लिए आपकी पाषाण-प्रतिमा भारत की राजधानी दिल्ली में लगाई गई है।

पं. दामोदर सातवलेकर-इसी कड़ी में आर्यसमाजी नेता पं. दामोदर सातवलेकर का भी आता है जिन्होंने क्रांतिकारी साहसिक कार्यों के बदले अंग्रेजों की कहर सही थी। 1907 में आपका सम्पर्क आर्यसमाज से हैदरावाद में हुआ। वहाँ पर ही वेद मंत्रों की व्याख्या का संकल्प लिया। अथर्ववेद की भूमिसूक्त की व्याख्या को ही अपने राष्ट्रीय शौर्य का आधार बनाया और इस सूक्त की व्याख्या को गीत रूप में साहस का प्रतीक बनाकर प्रस्तुत किया। पुस्तक के प्रकाशन होने पर ब्रिटिश सरकार ने इस पुस्तक को जब्त कर लिया और अंग्रेज रेजिमेंट के दबाव के कारण

निजाम सरकार ने आपको हैदराबाद छोड़ने पर मजबूर कर दिया। वहाँ से आप गुरुकुल काँगड़ी हरिद्वार चले गए और वहाँ पर ' वैदिक अर्चना की तेजस्विता' शीर्षक से एक लेख लिखा। धर्मयुग पत्रिका 19.9.65 के अनुसार आप पर राजद्रोह का मुकदमा चला, छोटी अदालत में तीन साल की सजा सुनाई गई पर ऊँची अदालत द्वारा डेड़ साल की ही सजा काटकर निर्दोष सिद्ध हो जाने पर छोड़ दिये गए।

श्री पं. महारानी शंकर—बम्बई आर्य प्रतिनिधि सभा के उपदेशक थे जिनके स्वाधीनता के कार्य प्रदेश में रहते हुए गुप्त रूप से मशहूर थे। ब्रिटिश सरकार के पास इनकी फाइलें मोटी हो गई थी। लाला लाजपत राय 'जलावतन' काल में पं. शंकर के प्रयत्नों व बुद्धिमत्ता से बम्बई प्रदेश के कई आर्यों ने रास्तों व किनारों पर 'उत्तेजयथका' आदि वाक्य लिखकर स्वातंत्र्य भावना फैलाने का गुप्त उपाय आविष्कार किया था।

पं. प्रकाश चन्द्र कवि रत्न—उपरोक्त प्रसंग के एक आर्य वीर पं. प्रकाश चन्द्र कविरत्न अजंमेर वालों का नाम आता है। आप ने जालियाँवाला बाग कांड के अवसर पर सरकारी नौकरी छोड़ दी और राष्ट्रीय कार्यों में आप संलग्न हो गए। 1931 ई. के स्वातंत्र्य समर में ब्रिटिश सरकार की जेल यात्रा की। -यू.पी. सभा का इतिहास—पृ. 209 जीवन के अंतिम समय में अधरंग बिमारी से जूझते रहे। सरकार या किसी भी कांग्रेसी नेता ने इस आर्य वीर का ख्याल नहीं किया। हाँ, पता चलने पर सार्वदेशिक आर्य सभा दिल्ली ने इनका ध्यान रखा और एक सौ (रु.100) रूपया मासिक सहायता उनके अंतिम जीवन तक किया।

श्री चन्द्र सिंह गढ़वाली—देशभक्त चन्द्र सिंह गढ़वाली का नाम आर्य वीरों में लिया जाता है बल्कि इन्हें याद करने से हमारा माथा और अधिक गौरवान्वित हो जाता है। इनका यह प्रसंग पढ़ें-

'1930 ई. में जब पंजाब की सीमा प्रान्तस्थ पेशावर नगर में स्वतंत्रता की माँग करती हुयी अहिंसक भीड़ पर अपनी सेना को गोली चलाने का आदेश दिया गया तब सर्वप्रथम इस देशभक्त आर्यवीर ने अपने चार-पाँच साथियों सहित पंक्ति से बाहर निकलकर अपने कमाण्डर का आदेश मानने से इन्कार कर दिया था। इसके परिणामस्वरूप इनको कारागार का दण्ड भुगतना पड़ा तथा नौकरी से भी हाथ धोना पड़ा। जब ये बरेली जेल

में दण्ड भुगत रहे थे, तब वहाँ कैदियों में तत्परता से आर्यसमाज का प्रचार किया करते थे।' -सिंहावलोकन भाग 3 पृ. 171-172 -श्री यशपाल क्रांतिकारी।

श्री रासबिहारी तिवारी—साइमन कमिशन जब भारत में आया तो लखनऊ में आपने उसका विरोध करने के लिए एक संगठन तैयार किया और उत्तर प्रदेश के प्रारम्भिक काल के आर्यसमाजी नेताओं में आपका यह अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य रहा था। उस कार्य में आप को भी पुलिस के डंडे खाने पड़े। पुलिस के अत्याचारों का विरोध करते हुए 1930 में आपने उत्तर प्रदेशीय कौंसिल से त्याग पत्र दे दिया और राजनीति में सक्रिय हो कर स्वाधीनता के कार्यों में लग गए। स्वाधीनता संग्राम में लगे रहने से आपका जीवन भी कष्टमय ही बिता पर साहस में कभी भी कमी नहीं दिखायी।

पं. सत्यपाल विद्यालंकार—आप गुरुकुल काँगड़ी के होनहार स्नातक थे। विदेश में आर्यसमाज के प्रचार के लिए गए, अफ्रिका व ब्रह्म देश के अनेक स्थानों पर आर्यसमाज का प्रचार किया तभी 31 वर्ष की उम्र में ही आप पंजाब आए और तब भारत में चल रहे सत्याग्रह आन्दोलन के सर्वाधिकारी नियुक्त हुए। लाहौर की सत्याग्रह—आन्दोलन की एक सभा में जब आप पहला ही व्याख्यान दे रहे थे तभी आप ब्रिटिश पुलिस द्वारा पकड़े गए और कारावास में दो वर्ष की सजा काटी। अन्यत्र भी इनका विवरण आया है। 'विदेशों में एक साल' नामक पुस्तक स्वामी स्वतंत्रतानन्द जी द्वारा लिखी उपलब्ध है। उस पुस्तक में 132 पृ. पर विस्तृत जानकारी द्रष्टव्य है।

श्री ज्ञानी पिंडी दास—आप सदैव खादी के कुर्त्ता और पायजामा पहनते थे। सब बच्चों को यही प्रेरणा दिया करते थे कि चाहे उँची डिग्री के लिए विदेश जाओ पर वापिस आकर अपने देश की सेवा करो। अपना स्किल (Skill) अपने देश के विकास में लगाओ। आपके बारे में हम श्री सुबोध चन्द्र के प्रसंग में जान चुके हैं। आपकी सुपुत्री सुदेश ने भी आपकी ही तरह स्वाधीनता के कार्य में अपनी सराहणीय सेवा दी। आप ने रावलपिंडी, लाहौर आदि पंजाब के क्षेत्र में सत्याग्रह में लाला लाजपत राय के नेतृत्त्व में महत्त्वपूर्ण काम किया जिसे भुलाया नहीं जा सकता है। श्री

सान्याल जी जो मार्शल ला के एक प्रसिद्ध अभियुक्त हुए, उनकी राष्ट्रीय सेवाओं के लिए आर्यसमाज सदा गौरव करता है।

आचार्य भगवान देव (स्वामी ओमानन्द जी महाराज)—जब स्वाधीनता का तूफानी काल चल रहा था; लाहौर षडयन्त्र और दिल्ली असेम्बली बम कांड के आरोपी आर्य वीर महान ओजस्वी और क्रांतिकारी भगतसिंह को उनके दो साथियों राजगुरु और सुखदेव के साथ फाँसी पर अंग्रेज सरकार ने लटका दिया था, उस भीषण काल में भी देश भक्ति के भावों से प्रेरित होकर यह नौजवान अपने कॉलेज के अध्ययन को छोड़कर राष्ट्र भक्ति के कार्य में लग गया, वह युवक और कोई नहीं अपितु हरियाणा व आर्य जगत् में स्वनाम धन्य स्वामी ओमानन्द जी थे। अपने पूर्व नाम आचार्य भगवान देव से ही प्रारम्भ में प्रसिद्ध थे, अपनी साठ बीघे (60) पैत्रिक जमीन में झझर (रोहतक) में आर्ष गुरुकुल खोला और उसे स्वयं सारा-जीवन चलाया। आज भी वह गुरुकुल संचालित है। अनेक बार जेल गए और यातनाएं सहीं। आपके निकटतम साथी चौधरी न्योद सिंह भी पक्के आर्य थे और राष्ट्रीय सेवाओं के लिए जेलों में अनेक यातनाएं सही। चौ. न्योद सिंह तो पहले से ही कांग्रेस के साथ मिलकर राष्ट्रीय सेवाओं में संलग्न थे, आपके सम्पर्क से और पक्के हो गए।

आर्य वीर कुँवर सुखलाल 'आर्य मुसाफिर'—आपका नाम लेते ही आर्यों का माथा गौरव से उँचा हो जाता है। एक प्रसिद्ध आर्योपदेशक, भजनोपदेशक, क्रांतिकारी ओजस्वी भाषण के महारथी जब मंच पर बोलने लगते थे तो आर्यों में जोश आ जाया करता था। अंग्रेजों को पसीना छूटता था। उनके ओजस्वी भाषणों से भयभीत होकर अंग्रेजी सरकार ने आपको पंजाब के सीमा प्रांत में जाना वर्जित कर दिया था। पर राष्ट्र-प्रेमी महर्षि दयानन्द का दिवाना अपनी धुन को कहाँ तोड़ने वाला था! सरकार के आदेशों का परवाह न कर सीमा प्रांत से बाहर भी जाकर बोलने लगे। वे उत्तर प्रदेश के रहने वाले थे पर फिर भी पंजाब में गए तो पुलिस ने पकड़ लिया और पूछा कि तुम कहाँ के रहने वाले हो—**'वीरता से जबाब दिया—उत्तर प्रदेश के।'** तब अंग्रेज अधिकारी ने कहा कि तुम इतनी दूर फ्रंट पर प्रचार करने क्यों आते हो, तुम्हें अपने आस-पास प्रांत में प्रचार

के लिए स्थान नहीं मिलता ? तब इस आर्य वीर का उत्तर जानने योग्य है, उत्तर—कुँवर जी ने अंग्रेज अधिकारी से पूछा— 'साहब, आपकी जन्म भूमि कहाँ है ? जब उसने अपने स्थान का नाम लिया तो कुँवर जी ने तपाक से कहा—'**साहब, आप सात हजार मील दूर से यहाँ अधिकार जमाने आ पहुँचे, क्या आपको शासन के लिए अपने पास कोई और देश नहीं मिला था ? जब आप इतनी दूर से यहाँ राज्य करने आ सकते हैं तो हमारे कुछ सौ मिल की दूरी से अपने ही देश में प्रचार करने में क्या आपत्ति आएगी ?** 'इस कड़ाके दार जबाब सुनकर वह अंग्रेज न्यायाधीश क्रोधित हो गया और पुलिस को कहा कि यह बदमाश तथा गुस्ताख है। इसको ले जाकर जेल में डाल दो।' आर्य वीर कुँवर सिंह ने जेल में ही अपना शरीर जर्जर किया।

स्वामी सत्य देव परिव्राजक—आपने देश-विदेश में घूम-घूम कर अंग्रेजों की क्रूरतापूर्ण नीतियों का विरोध किया। विदेशों में अमेरिका आदि कई स्थानों पर आर्यसमाज के माध्यम से अंग्रेजों का विरोध किया और स्वाधीनता संग्राम के लिए सब भारतीयों को राष्ट्र-प्रेम भरे उपदेशों द्वारा जगाते रहे। महर्षि दयानन्द के अंग्रेजी सरकार के प्रति अभिव्यक्त विचारों का सहारा लेकर बताया कि अंग्रेजी सरकार भारतीयों पर कभी न्याय, दया आदि गुणों से भी राज करे तो हमें विरोध करना है क्यों अपनी मातृभूमि ही अपनी माता है। सत्यार्थ प्रकाश के आठवें समुल्लास में महर्षि दयानन्द ने लिखा कि मातृ तुल्य पक्षपातरहित व्यवहार भी अंग्रेजी सरकार करे तो भी त्याज्य है। स्वामी सत्यदेव जी ने भी वही प्रचार किया। स्वामी जी ने स्वयं लिखा-

'आर्यसमाज के संस्कारों की जबरदस्त छाप मेरे हृदय पर लगी हुयी थी।' अमेरिका भ्रमण-पृ.177

अपनी इसी पुस्तक में पृ.253 पर आपने अमेरिका जाने का अपना उद्देश्य स्पष्ट किया—'**मेरी इच्छा थी कि मैं अमेरिका जैसे आजाद देश में जाकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करूँ, क्योंकि मेरे सिद्धान्तानुसार गुलाम संतान उत्पन्न करना घोर पाप है। (पर) अमेरिका जाकर मेरा प्रोग्राम बदल गया और मैंने सोचा कि मेरा कर्त्तव्य अपने देश में जाकर उसे स्वतंत्र करना है।**'

भारत में आर्यसमाज के प्रचार करते हुए विश्राम के लिए अलमोड़ा गए, वहीं जिलाधीश की ओर से आपको 'जुबाँबन्दी' अर्थात् जुबान बन्द रखने का आदेश पत्र दिया गया पर जन समर्थन के आधार पर आदेश को आपने फाड़ दिया। यही घटना फरूखाबाद में भी घटी। आपने वहाँ भी जनबल के आधार पर जिलाधीश के आदेश को भंग कर दिया। फलतः अदालत चलने तक उन्हें कारावास में बन्द कर दिया गया।

'लोग मुझसे पूछते हैं कि स्वामी जी, आप सिर के बाल कब कटवाएंगे ? मैं उन्हें जबाब देता हूँ कि ये तो सिंह की लटाएं हैं। ये तब तक नहीं कटेंगी जब तक हमारा देश स्वतंत्र नहीं हो जाता। ये जेल में भी मेरे साथ ही जाएंगी। 'मेरे पिता—इन्द्र विद्यावाचस्पति- पृ.241

पं. इन्द्र विद्या वाचस्पति ने अपनी उक्त पुस्तक में लिखा कि यह उनके दूसरे क्रांतिकारी व्याख्यान में उपरि लिखित अंतिम पदों को कहते हुए अपना व्याख्यान समाप्त किया था। इन्द्र जी ने उन्हें पहली बार सुना जिसका अटूट प्रभाव उन पर पड़ा। इन्द्र जी लिखते हैं कि वे मेरे प्रारम्भिक राजनैतिक गुरुओं में रहे थे। मनुष्यों के अधिकारों पर उनकी लिखी छोटी सी पुस्तक इन्द्र जी की बाल्यावस्था की प्रेरणा बनी थी।

पं. शिव दयालु जी—आप उत्तर प्रदेश के आर्य नेता रहे और कांग्रेस कमिटियों में कहीं प्रधान तो कहीं मंत्री भी रहे। यह काल सन् 1931 का अन्दोलन का है। ऐसा कोई आन्दोलन नहीं रहा था जिसमें आपने भाग नहीं लिया और जेल नहीं गए। अर्थात् सभी आन्दोलनात्मक योजनाओं तथा कार्यों में आप सक्रिय रहे।

यू.पी. सभा का इतिहास पृ. 72 विवरण से स्पष्ट ज्ञान होता है कि 1931 के आन्दोलन के बाद जो प्रांतीय शासनों पर चुनाव हुआ, उसमें कांग्रेस खुलकर आगे आया और उसमें भी आर्यसमाज के नेता अधिक शासन में आए। तब के निर्मित मंत्री मंडल में प्रांतीय शासनों में आर्य सामाजियों की संख्या सर्वाधिक थी।

यह निर्विवाद है कि आर्यसमाजी ब्रिटिश सरकार की दृष्टि में हमेशा खटकते थे। सरकार आर्यसमाजी वीरों से डरती थी। इन्हें सरकार भयानक व साम्प्रदायिक भी कहा करती थी। तब एक आर्य स्वराज

सभा बन गई थी जिसमें तीन आर्य वीर थे। 1. चौ. वेदव्रत 2. पं. राम गोपाल शास्त्री रिसर्च स्कॉलर 3. श्री अजीत सिंह सत्यार्थी। ये तीनों पंजाब से थे और इन्हें त्रिपुटी के नाम से जाना जाता था और यह भी कहा जाता था कि ये तीनों आर्य वीर पंजाब के दिल, दिमाग और वाणी रूप थे। इन्हें लाला लाजपत राय का नेतृत्त्व व आशीर्वाद प्राप्त था। इन तीन वीरों ने आर्य स्वराज्य सभा को इतना उठाया कि इतना काम कांग्रेसी भी नहीं कर पाए। कांग्रेस में तो करोड़ों सदस्य थे पर इन तीन वीरों की त्रिपुटी सदा उन पर भारी रही। पर दुःख से कहना पड़ता है कि इनका व इनके परिवारों का ख्याल किसी ने नहीं किया। सरकार तो हमेशा इनका तिरस्कार ही किया, हाँ अपने सामर्थ्य के अनुसार कुछ आर्यसमाज के लोगों ने ही ख्याल रखा तब भी इन सब वीरों की अंतिम जिन्दगी अत्यन्त कष्ट मय बिता। चौ. वेदव्रत जी स्वाधीनता के लिए लड़ते जेल में सड़े। इनकी पत्नी तथा इनकी एक ही सुपुत्री टी.बी. का शिकार होकर दवा के अभाव में पैसे-पैसे के लिए तरसती मर गईं। अंतिम समय में वेद व्रत जी स्वयं अधरंग होकर आर्थिक अभाव में ही प्राण छोड़ दिये। अन्य क्रांतिकारी साथियों के साथ भी अंतिम समय ऐसा ही कष्ट के दिन आए। पर बाद में भी अर्थात् स्वतंत्र भारत की सरकार ने भी इनका ध्यान नहीं रखा।

आर्य वीरांगनाएं

श्रीमती चन्द्रावती लखनपाल—श्रीमती चन्द्रावती लखनपाल संसद सदस्य बनी थी। आप आर्य जगत् के प्रसिद्ध विद्वान् पं सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार की धर्म पत्नी थी। श्रीमती लखनपाल भी अनेक बार कारावास गईं और जेल के अपार कष्ट सहन किये। डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार भी गुरुकुल काँगड़ी के उपकुलपति रहे और अनेक वैदिक सिद्धान्तों पर आधारित पुस्तकें लिखीं। आप होमोयोपैथ के भी एक उच्च स्तरीय अनुभवी चिकित्सक थे। आपकी धर्मपत्नी बचपन से ही आर्यसमाजी थी और स्वदेश-प्रेम उनके मन में बाल-काल से ही आ गया था। सौभाग्य से आपका विवाह भी एक वैदिक विद्वान् से ही हुआ जिसके कारण स्वाधीनता संग्राम में भाग लेने में सुविधा रही।

श्रीमती सुखदा देवी शारदा—आप राजस्थान के आर्य परिवार से थीं जो शारदा परिवार के नाम से राजनीति में सक्रिय माना जाता रहा था। श्री चान्द करण शारदा और श्री जिया लाल आर्य स्वाधीनता संग्राम के सक्रिय नेता रहे। अनेक बार जेल गए। राजस्थान में सबसे पहले सत्याग्रह में भाग लेने वाली महिला श्री चान्द करण शारदा की धर्म पत्नी श्रीमती सुखदा शारदा ही थी जिन्होंने तब के सभी आन्दोलनों में सक्रिय रही और जेलों की यातनाएं सहीं। यह शारदा परिवार लगभग सब ही राजनीति में भाग लेकर स्वाधीनता संग्राम के हिस्सा बना। इसी तरह स्वाधीनता संग्राम में आर्य सामाजिक शिक्षा संस्थानों का भी सराहनीय योगदान रहा है जिसे आगे आने वाले अध्याय में जानेंगे।

सप्तम अध्याय

स्वाधीनता संग्राम में आर्य शिक्षा-जगत् की महत्त्वपूर्ण भूमिका

देश की संस्कृति उसकी शिक्षा पर टिकाऊ बनी रहती है। अगर शिक्षा-पद्धति में छेड़-छाड़ हो जाए तो देश की जनता पर धीरे-धीरे उसका कैसे उल्टा प्रभाव बनता है, भारत के अतीत और वर्त्तमान को देखकर समझना मुश्किल नहीं है। यह निर्विवाद है कि जब विदेशी राज्य भारत पर हावी हुआ तो भारत की संस्कृति, सभ्यता और यहाँ तक कि इतिहास को छिन्न-भिन्न करने का भरपूर षडयन्त्र रचा गया जिसक दुष्प्रभाव भारतीय लोगों पर अब तक साक्षात् दृष्टिगोचर होता है। अंग्रेजों की चाल थी कि वे ऐसी शिक्षा-प्रणाली भारत में चलाएंगे जिससे भारतीय काले अंग्रेज बन जाएंगे। इस चाल को महर्षि दयानन्द ने 1855 में ही अपने गुरुओं व भारतीय सन्तों द्वारा समझ लिया था फलत: वैदिक शिक्षा से ही भारत का कल्याण सम्भव होने का पूर्ण विश्वास लेकर 1874 में ही स्वाधीनता की आवाज अपनी पुस्तकों के माध्यम से बुलन्द कर दी थी। सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, संस्कार विधि इसका जीता-जागता प्रमाण है। हिन्दी जगत् के प्रसिद्ध लेखक स्व. पं. सत्यदेव जी विद्यालंकार ने अपनी पुस्तक 'राष्ट्रवादी दयानन्द' में इस भाव को इस रूप में स्पष्ट किया है।

'भारत में अंग्रेजी राज्य ने यदि लार्ड क्लाइव और लार्ड मैकाले को जन्म दिया तो उनके मुकाबले में आर्यसमाज ने ऋषि दयानन्द और स्वामी श्रद्धानन्द को जन्म दिया। लार्ड मैकाले ने अंग्रेजी शिक्षा द्वारा जो माया जाल इस देश में फैलाया था, उसको छिन्न-भिन्न करने का प्रयत्न स्वामी श्रद्धानन्द जी ने गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली का श्री गणेश करके किया।'

उधर अंग्रेजों की कपटता को देखिये—

"We must do over best to form a class who may be interprets between us and the millions whom we govern, a class of persons Indian in blood and colour but English in tastes, in openion, in morals and in intellect."

अर्थात् जिन पर हमें शासन करना है, (उनके लिए) हमें इस देश में ऐसा वर्ग पैदा करने का पूरा यत्न करना चाहिये जो हमारे और उन करोड़ों के बीच मध्यस्थ (मिडिल लाइन) का काम कर सके। यह वर्ग भले ही रंगरूप व खून से हिन्दुस्तानी हों, पर आचारविचार, रहनसहन और दिल दिमाग से अंग्रेज बन जाएं।

मैकाले ने सन् 1836 में अपने चाचा को एक पत्र लिखा जिसमें उपरोक्त भाव को सफल रूप देने की योजना स्पष्ट होती है ङ्क

"Hindu who has received 'English Education', never remains sincerely attached to his religion, some continue to profess as a matter of policy but many profess themselves pure deists and some embrace Christianity, it is my firm believe that if our plans of education are followed up, there will not be a single idolater among the respectable class in Bengal thirty years hence."

इसका अर्थ है—जो भी हिन्दु अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण कर लेता है, वह अपने धर्म में सच्ची श्रद्धा व विश्वास खो बैठता है। कुछ केवल दिखावे के लिए उसे मानते हैं, अधिकतर सिर्फ एकेश्वरवादी बन जाते हैं, और कुछ ईसाई हो जाते हैं, यह मेरा पक्का और निश्चित विश्वास है कि यदि शिक्षा की हमारी यह योजना काम में पूरी तरह लाई गई तो अब से 30 वर्ष के बाद बंगाल के अच्छे घराने में एक भी मूर्तिपूजक अथवा हिन्दु न रहेगा।

यह तो अंग्रेजों की चाल थी जिसे उन्होंने लागू भी किया, मनमानी हमारे साहित्य, इतिहास, संस्कृति, रहनसहन परंपरा सब कुछ बदलने का पूरा प्रयास किया। इसका प्रभाव पड़ा भी। इससे भारतीय युवक तो तेजी

से बदलने लगे, अपनी मूल को भूल कर अंग्रेजी शासन को ही अपना वरदान मानने लगे, इस परिवर्त्तन को आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द ने कसकर समझा और वेदों के उचित भाष्यों, अपनी लगभग 73 महत्त्वपूर्ण वैदिक ग्रंथों व सम्पूर्ण भारत में भ्रमण कर विचारों द्वारा भारतीय वीरों व बुद्धिजीवी लोगों में स्वदेश का स्वाभिमान फिर से भर दिया। परिणामत: महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त स्वामी श्रद्धानन्द ने तो इस स्वाभिमान को सार्थक रूप से जीवित रखने तथा भारतीय जनों को विदेशी राज्य के विरुद्ध लड़ने की चेतना जागृत करने के लिए अंग्रेजों की उस कपट चाल को पराजीत करने व अपने गुरु महर्षि दयानन्द के स्वप्न को साकार करने के ख्याल से ही हरिद्वार में सर्वप्रथम गुरुकुल को जन्म दिया जिसका नाम है—'गुरुकुल काँगड़ी' जो अब पूर्ण विश्वविद्यालय बनकर विश्व भर में वैदिक शिक्षा फैलाने के लिए आज आर्यसमाज का एक अपूर्व धरोहर है।

1899 ई. में गुरुकुल के लिए पंजाब में दान माँगा जा रहा था, तब लाला मुंशी राम (स्वामी श्रद्धानन्द) अमृतसर के अपने आर्यसमाजी मित्र पं. रामभज दत्त के साथ गुजरात, शियालकोट और गुजरांवाला पंजाब के क्षेत्रों में खुलेआम अंग्रेजों का विरोध किया और ऐसा कहकर भारतीय लोगों में स्वाभिमान जगाया कि जब हमारे युवक गुरुकुल में पढ़ जाएंगे तो इन कपटी अंग्रेजों को सिपाही भी नहीं मिलेंगे। आज तो हमारे युवक कितने मूर्ख हैं कि 17-18 रुपये मासिक पर भर्त्ती होकर उनके लिए अपना सिर कटवाते हैं।

गुरुकुल काँगड़ी हरिद्वार

उपरोक्त चिन्तन के साथ ही गुरुकुल की स्थापना 4 मार्च 1902 में गंगा के किनारे हरिद्वार काँगड़ी में हुई जो बहुत ही जल्दी उस युग की सर्वश्रेष्ठ राष्ट्रीय संस्था के रूप में उभरी यह सर्वथा मातृभाषा में बालकों को राष्ट्र प्रेम सिखाकर अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली से पृथक एक नयी वैदिक तरीके की शिक्षा का पहला गुरुकुल था। अंग्रेजों के मायाजाल को काटने का प्रबल हथियार सिद्ध हुआ। यहाँ के ब्रह्मचारी अंग्रेजी दासता व उनके द्वारा चलाए जा रहे तमाम षडयन्त्रों को सीधा-सीधा समझने में समर्थ होने लगे।

सर्वप्रथम यह गुरुकुल गंगा के किनारे हरिद्वार से थोड़ा दूर बना था जिसके आचार्य श्री रामदेव जी थे। इसके संस्थापक महात्मा मुँशी राम (स्वामी श्रद्धानन्द जी) थे। एक बार के भीषण बाढ़ में बह जाने के कारण इस गुरुकुल को हरिद्वार में शहर से कुछ दूर लाया गया जो वर्त्तमान काल में एक विश्वविद्यालय के नाम से वैदिक धर्म का उच्चत्तम यश रूपी पताका फहरा रहा है।

आर्यसमाज का गुरुकुलीय सूत्रपात अत्यन्त सार्थक था जिसके कारण देश में अनेक अन्य गुरुकुल भी बने। अभी हम गुरुकुल काँगड़ी की विशेषताओं पर एक नजर डालते हैं—

1. वहाँ के अधापकों में एक भी अंग्रेज अध्यापक नहीं था।
2. वहाँ किसी भी सरकारी विश्वविद्यालय की परीक्षाएं न दिलाकर अपनी ही परीक्षाएं होती थीं।
3. किसी भी सरकारी विश्वविद्यालय के निर्धारित पाठ्यक्रम की पुस्तकें भी गुरुकुल ने अपने पाठ्यक्रम में नहीं रखी थी। अपनी पाठ्यपुस्तकें स्वयं ही तैयार कर अपने ही प्रेस में छापते थे।
4. वहाँ पर इतिहास, भूगोल, विज्ञान, अर्थशास्त्र, आदि सभी आधुनिक विषय हिन्दी भाषा के माध्यम से ही पढ़ाए जाते थे।

5. वहाँ सरकार व सरकारी विश्वविद्यालय से अनुदान के रूप में एक पाई/पैसा भी नहीं लिया जाता था।
6. अपने वार्षिकोत्सवों पर अध्यक्षता व उपाधि तथा पारितोषिक-वितरण और दीक्षान्त-भाषण के लिए किसी भी सरकारी (अंग्रेजी सरकार) अधिकारी को नहीं बुलाया जाता था।
7. अपने उत्सव के प्रबन्ध के लिए सरकारी पुलिस और सरकारी मान्यतावाले स्वयं सेवक न बुलाकर अपने छात्र वर्ग से प्रबन्ध कार्य लेते थे जो पुलिस आदि की अपेक्षा उत्तम होता था।
8. वहाँ के सब अधिकारी कर्मचारी तथा ब्रह्मचारी विशुद्ध स्वदेशी खादी वस्त्रों का ही प्रयोग किया करते थे।
9. गुरुकुल संसार की नजरों से दूर एकान्त बीहड़ जंगल में स्थित था।
10. गुरुकुल के छात्रों को तैरना, घुड़सवारी, लाठी, भाला,तलवार आदि शस्त्रों का चलाना तथा निशानेबाजी के साथ युद्धविद्या का भी अभ्यास कराया जाता था।

इन सब विशेषताओं से भरपूर यह गुरुकुल अपने उद्देश्य की ओर आगे बढ़ने लगा, पर लम्बे अंग्रेजी शासकों के लिए यह उनकी आँखों का काँटा बना रहा। उनकी डायरी में इस **गुरुकुल का नाम काली सूची में** दर्ज था। सरकारी पुलिस का गस्त वहाँ लगता ही रहता था बल्कि प्रति दिन पुलिस का कड़ा पहरा हुआ करता था गुरुकुल की गतिविधियों पर कड़ी नजर रखी जाती थी। वहाँ वार्षिक उत्सव जब होता था तो लगभग एक लाख लोग भारत के हर क्षेत्र से भाग लिया करते थे। दान की अपील पर स्त्रियाँ तो अपने गहने भी उतार कर दान दे दिया करती थी। अंग्रेजों का शक होता था कि यहाँ के छात्र भी राजनीति में भाग लेते हैं। प्रारम्भिक आचार्य श्री रामदेव जी ने एक रिपोर्ट में लिखा था- ' गुरुकुल में इतिहास इस ढंग से पढ़ाया जाता है कि उससे ब्रह्मचारियों में देशभक्ति की भावना (स्वत:) उद्दीप्त होती है, उनमें स्वदेश और आचरण दोनों से देश के लिए उत्कट प्रेम पैदा किया जाता है। 'राष्ट्रवादी दयानन्द-पृ. 96

गुरुकुल काँगड़ी और कलकत्ता विश्वविद्यालय में मौलिक अन्तर-श्री यशपाल जी हिन्दी साहित्य के एक प्रखर लेखक थे। वे गुरुकुल के प्रारंभिक काल के ही योग्य स्नातक थे। अपनी पुस्तक

सिंहावलोकन 43-44 पृष्ठ पर जो वर्णन किया है वहाँ एक संस्मरण रूप है जिसका अर्थ यह निकलता है कि आचार्य रामदेव जी अंग्रेजों के विरोध में भी कोई ब्रह्मचारियों के बीच या किसी गुरु के साथ हो तो वे मना नहीं करते थे अपितु और प्रोत्साहन दिया करते थे। पर कलकत्ता विश्वविद्यालय में ऐसा नहीं था। वहाँ अंग्रेजी शासकों के विरोध में न तो छात्र बात करते न ही वहाँ के प्रोफेसरस्। उन्हें हमेशा अंग्रेजी सरकार का डर होता था। यह था गुरुकुल और सरकारी शिक्षा का मौलिक अन्तर। गुरुकुल में पढ़ते हुए स्वाभाविक ही स्वदेश प्रेम जागृत होता था और आज भी है। गुरुकुल के दिवारों पर अंग्रेजी शासन से पूर्व के और अंग्रेजी शासन के समय की तस्वीरें इतिहास के रूप में लगी थीं। यशपाल जी का गुरुकुलीय शिक्षा काल प्रथम विश्वयुद्ध के समय का था। कहते हैं एक सायं काल आप अपने साथियों से भोजनोपरान्त चर्चा करने लगे और कहा कि जर्मन अंग्रेजों को हराएगा तब आचार्य रामदेव जी ने पीछे से कंधे पर हाथ रखकर कहा कि इस विषय पर तुम कुछ बोलो। मेरे बोलने पर कहा कि जर्मन तो और क्रूर शासक है तब यशपाल जी ने बोला कि फिर तो और दमन होगा तब आचार्य श्री ने कहा कि औरंगजेब और नादिरशाह जैसे क्रूर शासकों से तो क्रांति हुई नहीं तो जर्मन क्या करेगा- इत्यादि अतः जाओ और इतिहास और राजनीति का और अधिक अध्ययन करो, इस तरह छात्रों को प्रेरणा मिला करती थी। गुरुकुलों में अंग्रेजों की हर चालभरी घटनाओं की चर्चा खुले आम होती थी बल्कि घटी घटनाओं की तस्वीरें भी लगती होती थीं, चाहे बंगाल के सेठ अमीचन्द के साथ धोखा, नन्दकुमार को फाँसी, चेतराम के साथ अन्याय तथा वारेन हेंस्टिंग के अत्याचारों की खुली चर्चा का साहस तो गुरुकुल में ही सम्भव था, सरकारी विश्वविद्यालय में नहीं। यशपाल जी ने स्वीकार किया कि मुझे राष्ट्र-प्रेम की प्रबल शिक्षा गुरुकुल से ही मिली। क्यों न हो, एक गुप्तचर की डायरी के अनुसार—'गुरुकुल के दिवारों पर ऐसे चित्र लगे हैं जिसमें अंग्रेजी राज्य के पहले की भारत की अवस्था और अंग्रेजों को कलकत्ते में आने के दिनों की दिखाई गई है। सन् 1857 ई. के विद्रोह के दिनों की लखनऊ की घटनाओं के चित्र भी लगाए गए हैं। विजनौर के जिला मजिस्ट्रेट मि. एफ. फोर्ड (Mr. F. Ford) ने जौन ऑफ आर्क (Jone of Arch) का वह बड़ा चित्र भी गुरुकुल में लगा हुआ

देखा था जिसमें वह अंग्रेजों के विरुद्ध सेना संचालन कर रही है।' रा. दया. पृ. 97 से

इन्द्र विद्या वाचस्पति लिखते हैं कि गुरुकुल में ब्रह्मचारी बंगाल के क्रांतिकारियों की तरह नंगे पाँव घूमते थे, यह अंग्रेजों के लिए संदेह और देशवासियों के लिए आकर्षण का कारण था। वहाँ वातावरण तो स्वदेशी था ही, इसी कारण वहाँ बड़े-बड़े भारतीय क्रांतिकारी आकर निश्चिन्त्य होकर रूका करते थे क्यों कि उन्हें यहाँ अपनी पूरी सुरक्षा की प्रतीति होती थी। प्रसिद्ध देशभक्त लाला हरदयाल वहीं कई सप्ताह रूके और ईसायियों व अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध उन्होंने जो अग्नि रूपी वाण छोड़े थे, उनमें बहुत से गुरुकुल में ही तैयार किये गए थे। आ. स. क्रा. इति. पृ. 27—इस तरह लाला हरदयाल जी वहाँ के ब्रह्मचारियों को भी क्रांतिकारी योजनाओं के लिए तैयार किया करते थे।

महात्मा गांधी ने अपने सत्याग्रह आश्रम के बालकों को भारत में आने से पूर्व भेजा तो उन बच्चों को भारत में सत्याग्रह आश्रम की स्थापना तक गुरुकुल काँगड़ी में ही रहने का आदेश दिया तब उनका अपना एक होनहार बेटा देवदास गांधी भी था और वह कई महिनों तक वे गुरुकुल काँगड़ी में ही रहे।

एक बार अंग्रेजों को शंका हुई कि गुरुकुल में गुप्त हथियारों का स्टोर है। विजनौर का कलक्टर फोर्ड यह जानकर कि मुख्य आचार्य (स्वामी श्रद्धानन्द) कहीं बाहर (एटा) कुरुकुल के काम से गए हुए हैं, मौका पाकर वह कलक्टर गुरुकुल की तलासी लेने आ गया। वहाँ के अधिष्ठाता आचार्य रामदेव जी आदि हैरान हो गए और स्वामी जी को तार भेजा कि जल्दी आ जाएं। स्वामी जी तुरंत तांगे की सवारी से सीधा कलक्टर के कैंप में ही चले गए। इन्हें देख वह हैरान हो गया और सोचा था कि अभी गुरुकुल में सब कमजोर लोग हैं, उन्हें धमका कर तलासी ले लेंगे पर स्वामी जी की निर्भीकता देखकर वह शांत हो गया। बातचीत से ही उसकी शंका समाप्त हो गई और तलासी का वारण्ट खत्म कर दिया। यह थी स्वामी जी की गुरुकुल के प्रति निष्ठा।

इन्द्र जी की निर्भीकता गुरुकुल काल में—एक बार सभी ब्रह्मचारी और गुरुकुलीय स्टाफ सरस्वती यात्रा के लिए धर्मशाला गए।

स्वामी श्रद्धानन्द जी के साथ कई आर्यसमाजी लोग भी थे। रास्ते में एक घटना घटी कि जिस रास्ते से इन्द्र और उनके साथी चल रहे थे उसी रास्ते से गोरे घोडों की सवारी पर आ रहे थे। ब्रह्मचारी नंगे सिर और हाथ में डंडे लिये हुए थे। एक गोरे ने अपने घोड़े को इन्द्र जी के पास लाकर इतना नजदीक कर दिया कि घोड़े का नथुना इन्द्र जी के शरीर से टकरा रहा था। यद्यपि इन्द्र जी ने शालीनता से रास्ता दे दिया पर गोरे ने फिर सरारत की और घमंड में बोला कि सलाम करो। इन्द्र जी ने मना किया और निडर होकर बोला कि गोरे को सलाम करना कोई कानून नहीं है। गोरे से बिल्कुल डरे नहीं और एक मिनट तक इस प्रकार के कहा–सुनी कर गोरा तुनककर यह बोलते भाग गया कि '**टुम सलाम नहीं करटा, अच्छा देखा जाएगा।**' इस तरह इन्द्र जी ही नहीं, लगभग वहाँ के सब ब्रह्मचारी स्वाभिमान से भरपूर निडर हुया करते थे। 'मेरे पिता'–पृ.131–133 से उद्धृत.

पंजाब सेवा समिति और गुरुकुल के ब्रह्मचारी—1919 के मार्शल ला से घायल पंजाब में चारों ओर घबराहट और निराशा जैसी स्थिति पैदा हो गई थी। जब स्वामी श्रद्धानन्द लाहौर गए तो महाशय कृष्ण जी से मिले और उनके दैनिक प्रताप के दफ्तर के आगे पंजाब सेवा समिति की स्थापना की तब स्वामी जी की देखरेख में इन्द्र जी समेत गुरुकुल और महाविद्यालय–विभाग के छात्रों ने खूब सेवा की थी। इन्द्र जी तब 13वीं कक्षा में थे। 14वीं कक्षा ही गुरुकुल की अंतिम पढ़ाई हुआ करती थी उन दिनों, अब तो वहाँ एम.ए., पी.एच.डी., डी.लिट आदि की उच्चतर शोध पूर्ण उपाधियों की भी व्यवस्था है। इन्द्र जी लिखते हैं कि हम ब्रह्मचारी नंगे सिर, नंगे पाँव, खद्दर की धोती और कमीज पहने जब लाहौर स्टेशन पर पहुँचे तो हमें देखकर पुलिस घबरा गई और सोचा कि बंगाल के क्रांतिकारी षडयन्त्र कारी इस वेशभूषा में आ गए। तब माहौल भी भयानक ही था। पुलिस को काफी समझाने पर भी पुलिस उन्हें थाने ले गई, घंटों तक रोका, तलासी ली, उल्टासीधा पूछताछ किया और बड़ी मुश्किल से कई आर्य समाजियों के प्रयत्न से कहीं साम तक वे अपने दो और साथियों के साथ रिहा हुए। स्वामी जी ने एक को लाहौर ही रखा तथा इन्द्र और दूसरे साथी अमृतसर सेवा के लिए भेजे गए। मई के प्रथम

सप्ताह में वे दोनों वहाँ पहुँच गए थे। आर्योदय-दिल्ली, पं. दीनानाथ सिद्धान्तालंकार द्वारा लेख—जालियाँवाला बाग हत्या कांड से लिया गया संदर्भ।

सत्याग्रह और गुरुकुल के ब्रह्मचारी-जब महात्मा गांधी ने 1930 ई. सन् में स्वाधीनता संग्राम के लिए सत्याग्रह का आह्वान किया तब जहाँ भारत के हर क्षेत्र से आर्यसमाजी वीर उस अभियान में जुड़े, वहीं गुरुकुल के विद्यार्थी भी चुप न बैठे। एक छात्र जो 14 वीं श्रेणी में पढ़ रहा था, उसका नाम 'ब्रह्मचारी सर्वमित्र' था। उसके नेतृत्त्व में अन्य छात्रों ने भी राष्ट्र-सेवा में दृढ़ता से उतरने का फैसला लिया। नियमतः गुरुकुल के अधिकारी इसके लिए अनुमति नहीं दे रहे थे क्योंकि संस्था के रूप में गुरुकुल को राजनैतिक गतिविधियों में भाग लेना नियम से बाहर था। पर नियम से बाहर आकर गुरुकुल के विद्यार्थियों ने स्वराज्य संग्राम में भाग ले ही लिया। अधिकारियों को मजबूरन महाविद्यालय विभाग का कुछ महिनों के लिए अवकाश रखना पड़ा। इस में बहुत से विद्यार्थी कैद हो गए और ब्रह्मचारी सर्वमित्र तथा एक और ब्रह्मचारी सत्यभूषण देहातों में सेवा करते हुए दोनों बीमार पड़ गए जिससे उनकी मृत्यु हो गई। इन्द्र जी के शब्दों में ये सब ब्रह्मचारी स्वदेश के लिए बलिदानी बने। **'घोर विपत्तियों और प्रचंड महामारी की परवाह न कर जिस ढंग से इन ब्रह्मचारियों ने अपने प्राणों को मातृभूमि के लिए स्वाहा किया, उसे हम बलिदान कहें तो अनुचित न होगा।** 'इस तरह कुछ मास के बाद असाधारण अवकाश के बाद गुरुकुल तो खुला पर कुछ ब्रह्मचारी अभी भी सत्याग्रह में लगे रहे। सत्याग्रह स्थगित होने पर ही गुरुकुल में ये ब्रह्मचारी लौटे और अपनी पढ़ाई पूरी की। 1932 में आचार्य रामदेव जी भी सत्याग्रह में भाग लेने के लिए गुरुकुल से चले गए और पंजाब कांग्रेस के डिक्टेटर के रूप में सत्याग्रह किया तथा एक वर्ष तक जेल की यात्रा की। यह जानकारी 'पंजाब का आर्यसमाज' के लेखक श्री रामचन्द्र जी जावेद से प्राप्त है। इसी तरह गुरुकुल के एक और आचार्य अभयदेव जी भी स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लेते रहे। इस गुरुकुल से निकले अनेक क्रांतिकारी स्नातकों की चर्चा हम समय-समय पर करते आए हैं। पं. सत्यदेव विद्यालंकार, साहित्यकार यशपाल, स्वयं इन्द्र विद्यावाचस्पति व

पं. हरीश वेदालंकार (दोनों सुपुत्र स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज, गुरुकुल संस्थापक) इत्यादि।

गुरुकुल के पूर्ण वातावरण में स्वदेश-प्रेम का जलवा छाया हुआ था। गुरु-शिष्य सभी स्वराष्ट्र की सेवा में पूर्णतया एक मत थे तभी तो नियम से बाहर जाकर भी कोई छात्र स्वदेश आन्दोलन में हिस्सा ले लें तो उन्हें दंड नहीं अपितु सहयोग मिला करता था। यह संस्था भविष्य में भी स्वाधीनता के लिए सब भारतीयों में इसी तरह राष्ट्रीय प्रेम जगाती रहे, बस इसी परम उद्देश्य से ही तो आर्य जगत् के अमर सेनानी स्वामी श्रद्धानन्द ने उस युग का सर्वप्रथम गुरुकुल स्थापित कर समुचित ढंग से संचालित भी किया था। प्रारंभ से ही उस गुरुकुल में यह परम्परा रही कि उस विश्वविद्यालय के कुलपति या उपकुलपति या अन्य कोई प्रशासनिक अधिकारी आर्य ही हों, ऐसा ख्याल रखा गया और आज भी ऐसा ही चल रहा है। कुलपति तो आर्यसमाज की आर्य प्रतिनिधि सभाओं के नियुक्त सदस्यों द्वारा विधिवत् मनोनित किया जाता है और उपकुलपति पद पर उसी विश्वविद्यालय के उच्च स्तरीय शिक्षाविद् अनुभवी योग्य विद्वान् की विधिवत् नितुक्ति होती है। ये सब गुरुकुलीय परंपरा से शिक्षित आर्य/आर्ष विद्वान् होने चाहिये।

गुरुकुल काँगड़ी के बाद उसी पद्धति पर कालान्तर में भारत व विदेशों में भी अनेक गुरुकुल स्थापित हुए जहाँ वैदिक शिक्षा पाकर अनेक युवक राष्ट्र भक्त के रूप में देश को प्राप्त हुए और आगे भी होते रहेंगे ऐसी आशा है। हर युग में इस गुरुकुल का महत्त्व सदैव अक्षुण रहेगा। गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय से लगते हुए ही ज्वालापुर शहर स्थापित गुरुकुल का भी राष्ट्र सेवा में महत्त्व कम नहीं है।

आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर

वैषाख शुक्ल 3 (अक्षय तृतीया), 1964 को तदनुसार 30 जून 1907 तीन बिघे जमीन पर केवल 12 आने के कोष से स्थापित किया गया था।

आर्यसमाज के प्रसिद्ध शास्त्रार्थ महारथी स्वामी दर्शनानद जी महाराज द्वारा स्थापित आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय उत्तर भारत में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एक आर्ष संस्था है। इस संस्था में भी पढ़ने वाले ब्रह्मचारी

युवक राष्ट्र प्रेम के पुजारी बनते रहे। गुरुकुल काँगड़ी की ही तरह यहाँ भी अन्दर की पढ़ाई व आवास की व्यवस्था लगभग वैसी ही है। यहाँ पर 'विद्याभास्कर' की उपाधि है जो ग्रेजुएशन के बराबर होती है।

स्वाधीनता संग्राम में इस संस्था ने भी निष्ठा से भाग लिया। समय-समय पर स्वाधीनता के लिए होने वाले आन्दोलनों में यहाँ के अधिकारी, अध्यापक व छात्र भी कभी किसी से कम नहीं रहे। इस संस्था के कुलपति प्रसिद्ध देश भक्त पं. नरदेव जी शास्त्री वेद तीर्थ अपने आप में एक संस्था व राष्ट्र के प्रति समर्पित आर्य विद्वान् थे। हम इनकी चर्चा अन्यत्र क्रांतिकारियों के बीच पढ़ आए हैं। स्वामी दर्शनानद जी महाराज के बाद यहाँ पर लम्बे समय तक कुलपति पद पर आचार्य रामगोपाल शास्त्री जी रहे।

1945-46 में इसी महाविद्यालय का एक छात्र की वार्ता के अनुसार यहाँ भी वार्षिक उत्सव हुआ करता था और आर्यसमाज व गुरुकुलों के बड़े-बड़े विद्वान् यहाँ आए करते थे। सभी छात्रों को भी कक्षाओं में राष्ट्र भक्ति का पाठ पढ़ाया जाता था। एक बार वहाँ आजाद हिन्द सेना से एक बरिष्ट अधिकारी आए तो उनका जोरदार स्वागत हुआ और उनका राष्ट्र भक्ति पर प्रेरक भाषण हुआ। देश भक्ति की दिशा में उस वक्ता ने अपनी बिती रामकहानी सुनाई कि किस तरह राष्ट्र सेवा में अनेक तरह की भयंकर घटनाओं से देश भक्तों को जुझना पड़ता है। इससे वहाँ के विद्यार्थियों में जोश भर गया था। उस संस्था के अनेक छात्र युवकों ने

1942 के सत्याग्रह में भाग लेने के लिए भूमिगत हो गए थे। समय-समय अनेक क्रांतिकारी वहाँ भी छुपने के लिए शरण लिया करते थे। इन सब कारणों से आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर भी अंग्रेज-सरकार की आँखों में सदा ही खटकता रहा। अन्दर रहने वाले सब देश भक्ति के रंग में रंगे थे। सबके अन्दर अंग्रेज-सरकार के प्रति घृणा के भाव भरे रहते थे।

श्री अलगू राय शास्त्री व श्री पं. शिवदयालु जी इन्हीं राष्ट्रभक्त गुरुकुलों से निकले और उत्तर प्रदेश में 'गुरुकुल डौरली' की स्थापना की। डौरली गुरुकुल के प्रथम आचार्य श्री अलगू राय शास्त्री ही थे। इनकी राजनैतिक जीवन का विवरण हमने पूर्व भी पढ़ा, यहाँ भी इनकी राजनैतिक निष्ठा का परिचय निम्न प्रमाण से जानें।

'एक वर्ष उपरान्त श्री अलगूराय शास्त्री के लाला लाजपत राय द्वारा निर्मित लोक सेवा संघ में चले जाने पर पं. लेखराम शास्त्री स्नातक गुरुकुल शिकन्दराबाद इसके आचार्य बने जो 20 वर्ष निरन्तर कार्य करते रहे, और वे 1946 जेल की यातनाओं के कारण श्री अलगूराय जी का वसंतपंचमी को देहान्त हो गया।'

गुरुकुल ने 1930-31 व 42 के आन्दोलनों में विशेष भाग लिया। 1942 के आन्दोलन में तो इस संस्था के लगभग सब प्रमुख अधिकारी, कार्यकर्त्ता, स्नातक व यहाँ तक कि ब्रह्मचारी भी जेल गए। उस समय की सरकार ने गुरुकुल को अवैध घोषित कर दिया था क्योंकि सरकार की नजरों में वह संस्था क्रांतिकारियों का छिपने का केन्द्र बन गया था। यह भी सच है कि क्रांतिकारी समय-समय पर वहाँ आकर रुकते व ठहरते भी थे। इसी कारण सरकार इससे (इस संस्था से) क्षुब्ध हो उठी थी। यू.पी. सभा के इतिहास पृ. 128 से उद्धृत

गुरुकुल घरौंडा (करनाल)

यह गुरुकुल स्वामी रामेश्वरानन्द जी द्वारा 1939 में घरौंडा (करनाल) हरियाणा में स्थापित हुआ। गुरुकुल स्थापना से पहले आपने कई सत्याग्रह में भाग लिया और बाद में भी राजनैतिक आन्दोलनों में सक्रिय रहे। आप 1962 में करनाल क्षेत्र से जनसंघ की टिकट से सांसद भी रहे और कभी भी सरकारी निवास नहीं लिया। आप भिक्षा

की रोटी खाया करते थे तथा जीवन भर त्याग, तपस्या व आर्यसमाज की प्रेरणा बन कर रहे। इनकी चर्चा हम पूर्व भी कर आए हैं। 1942 के सत्याग्रह में भी आप खूब सक्रिय रहे। गुरुकुल का स्वाधीनता संग्राम में योगदान का थोड़ा दिग्दर्शन करें।

यह गुरुकुल भी आर्यसमाज की पृष्ठभूमि पर स्वाधीनता संग्राम के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। समय-समय पर स्वाधीनता समर में भाग लेने के लिए यहाँ ब्रह्मचारी व आचार्य भी उद्यत रहते थे। अंग्रेज-सरकार इस गुरुकुल पर भी तीखी नजर बनाए रखती थी। इसके संस्थापक स्वामी रामेश्वरानन्द जी पूर्व से ही राजनैतिक आन्दोलनों से जुड़े हुए थे फलतः उस क्षेत्र के लिए विशेष कर आर्य जगत् में उनका नाम यशस्वी व त्यागी संन्यासी के रूप में प्रसिद्ध था। साथ ही वे एक क्रांतिकारी संन्यासी माने जाते थे। 1942 ई. सन् के सत्याग्रह की आग चारों ओर फैल गई तब ब्रिटिश सामराज्य के विरुद्ध विगुल बज उठा। **'अंग्रेजों भारत छोड़ो'** की आवाज बुलन्दियों पर सबके कानों में गुँजने लगी। स्वामी जी भी पीछे कहाँ रहने वाले थे। नजदीक के सरकारी रेलवे लाईन को उखाड़ फेकने में अपने ब्रह्मचारियों के साथ अत्यन्त साहस से जुड़ गए। उस कार्य को सिरे चढ़ाने में आपने कोई कमी नहीं की बल्कि आपने उसके लिए एक सफल प्रयास कर अंग्रेजों की निन्द उड़ा दी। इस कारण तत्कालीन जिलाधीश क्रोधित होकर इस गुरुकुल को अवैध करार दे दिया और गुरुकुल की मालजब्ती की योजना बनाई परन्तु किसी निकटतम हितैषी द्वारा स्वामी जी को जिलाधीश द्वारा किये जाने का रहस्य पता चल गया और गुरुकुल तथा ब्रह्मचारियों की रक्षा का ख्याल कर स्वामी ने उस समय के लिए शांत हो गए। उन्होंने विचार किया कि गुरुकुल में कोई और सरकार द्वारा अनिष्ट न पैदा हो जाए तो नीति पूर्वक और विवशता भी बनी, तो सरकारी सम्पति को नष्ट पहुँचाने का अपना विचार त्याग दिया पर गुप्त रूप से ब्रिटिश राज्य के विरोध में लगे रहे। देश की स्वाधीनता के लिए आप अनेक बार जेल गए, यातनाएं सहीं आदि के रूप में तो हम स्वामी जी के त्याग व बलिदान के दास्तां पूर्व पढ़ ही चुके हैं। स्वामी द्वारा स्थापित उक्त गुरुकुल आज भी उसी स्थान पर सक्रिय है। वहाँ के अनेक स्नातको ने स्वाधीनता संग्राम में आगे बढ़कर भाग लिया और जेल गए।

आर्यजगत के गुरुकुलों की सूची:-परिवर्तन एवं परिवर्धन तिथि-09/08/2018

क्र.	गुरुकुल का नाम एवं पता	आचार्य/आचार्या	दूरभाष	E-mail	राज्य
1.	आचार्य जी, उपदेशक महाविद्यालय टंकारा, जि.-राजकोट (गुजरात)	आचार्य रामदेव जी	9913251448	tankarasamachar@gmail.com	गुजरात
2.	आचार्य जी, श्री आर्य कन्या गुरुकुल, पोरबन्दर, जि.-पोरबन्दर (गुजरात)	आचार्य रंजनाबेन मजिठिया	9327820015	info@aryakanyagurukul.org	गुजरात
3.	आचार्य जी, विदेशिय गुरुकुलम् (स्कूल ऑफ वैदिक हैरिटेज), आर्यसमाज स्वामी श्रद्धानन्द भवन, साहपुर, अहमदाबाद (गुजरात)-380001	आचार्य मित्रमहेश	8849004943		गुजरात
4.	आचार्य जी, राजा गोविन्द चन्द्र आर्ष गुरुकुल दयानन्द दूर्ग, दियुंगब्रा, जि.-दिमाहसाउ (असम)	आचार्य महेन्द्र कुमार जी	7002503316		असम
5.	आचार्य जी, गुरुकुल योगाश्रम नरसिंहनाथ, पाईकमाल, जि.-बरगढ़ (ओडिसा)-768039	आचार्य बुद्धदेव जी	9938552151	babulalanika10@gmail.com	ओडिसा

6.	आचार्य जी, आर्ष कन्या गुरुकुल देवनगर (घुचापाली), जि.-बरगड़ (ओडिसा)-768039	आचार्या शारदा जी	9937649313	gurukulanya @gmail.com	ओडिसा
7.	आचार्य जी, गुरुकुल महाविद्यालय आमसेना, खरियार रोड़ जि..नवापारा (ओडिसा)-766109	स्वामी धर्मानन्द सरस्वती जी	9437070392		ओडिसा
8.	आचार्य जी, गुरुकुल नवप्रभात आश्रम, तह.पदमपुर, जि.-बरगड़ (ओडिसा)	आचार्य बृहस्पति जी	9556433621		ओडिसा
9.	आचार्य जी, आदर्श कन्या गुरुकुल आमसेना, जि.-नवापारा (ओडिसा)-766109	आचार्य पुषादेव जी	9937498084		ओडिसा
10.	आचार्य जी, गुरुकुल वैदिक आश्रम वेदव्यास, पानपोष सुन्दरगढ़, जि.-राउरकेला (ओडिसा)				ओडिसा
11.	आचार्य जी, श्री आदिम, गुरुकुल आश्रम, ग्रा.-कुन्दुली, हाटपदा, वाया-पटांगी, जि.-कोरापुट (ओडिसा)	आचार्य विनय कुमार जी	9437433191 7656000544	binaykumarba idik@gmail.com	ओडिसा

12.	आचार्य जी, आध्यात्म गुरुकुल आश्रम भरसुजा, ग्रा+पो.-भरसुजा, व्हाया-डुडका, जि.-बलांगीर (ओडिशा)	आचार्य चन्द्रशेखर जी (बाहरी रिंग रोड, विकासपुरी, दिल्ली वाले)	98100844806		ओडिसा
13.	आचार्य जी, गुरुकुल आश्रम हरिपुर, जि.-नुआपाडा (ओडिसा)	आचार्य डॉ. सुदर्शन देवी व्रती	9437188321 9777453714	Gurukulharip ur2012@gmail.com	ओडिसा
14.	आचार्य जी, आर्ष शोध संस्थान, ग्रा.-अलियाबाद, मण्डल-सामीरपेट, जि.-रंगारेड्डी (तेलंगाना)	आचार्य आनन्द प्रकाश जी	9989395033		तेलंगाना
15.	आचार्य जी, आर्ष गुरुकुल बडलूर, कामरेड्डी, जि.-निजामाबाद (तेलंगाना)-503111	स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती जी			तेलंगाना
16.	आचार्य जी, गुरुकुल वटुक विकास केन्द्र आलियाबाद, सामीरपेट, जि.-रंगारेड्डी (तेलंगाना)	आचार्य भवभूति आर्य जी	9390792645		तेलंगाना

17.	आचार्य जी, गुरुकुल निमनीड़म् गंजवेल (तेलंगाना)	आचार्य उदयान आर्य जी	9440721958	aum.nigaman eedam@gmail.com	तेलंगाना
18.	आचार्य जी, आर्ष ज्योति गुरुकुल कोसरंगी, पो.-पचेडा, जि.-महासमुद, (छत्तीसगढ़)	आचार्य कोमल कुमार जी	9617082000		छत्तीसगढ़
19.	आचार्य जी, श्रीमद् दयानन्द आर्ष ज्योतिर्मठ गुरुकुल, दून वाटिका-2, पौन्धा, देहरादून (उ.ख.)-248007	आचार्य डॉ धनंजय जी	9411106104	arsh..jyoti@yahoo.in darya1978@ gmail.com	उत्तराखण्ड
20.	आचार्य जी, द्रोणस्थली आर्ष कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, 35-ए किशनपुर, कैनाल पथ, राजपुर रोड़, देहरादून (ऊ.ख)-248001	आचार्य डॉ. अन्नपूर्णा जी	9319054421		उत्तराखण्ड
21.	आचार्य जी, गुरुकुल महाविद्यालय कण्वाश्रम, कलालघाटी, जि.-पौड़ी गढ़वाल (उ.ख.)	आचार्य विश्वपाल जयन्त जी	9837162511		उत्तराखण्ड

22.	आचार्य जी, गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर, जि.-हरिद्वार (उ.ख.)		911334454295	info@gurukul mahavidhyalaya.com	उत्तराखण्ड
23.	आचार्य जी, गुरुकुल कांगड़ी (विद्यालय विभाग), गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, देहरादून (उ.ख.)	आचार्य बिजेन्द्र शास्त्री जी	9412025930		उत्तराखण्ड
24.	आचार्य जी, मैत्रेयी कन्या गुरुकुल, मुण्डाखेड़ा खुर्द, लक्सर, जि.-हरिद्वार (उ.ख.)	आचार्य डॉ. सविता आर्या	9410962840		उत्तराखण्ड
25.	आचार्य जी, वैदिक गुरुकुल रुद्रपुर (उ.ख.)	आचार्य विवेक जी			उत्तराखण्ड
26.	आचार्य जी, श्रीकृष्ण आर्ष गुरुकुल देवालय, गोमत, तह.-खैर, जि.-अलीगढ़(उ.प्र.)-202135	स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती जी	9416267482 8053355496		उत्तरप्रदेश

27.	आचार्य जी, गुरुकुल महाविद्यालय ततारपुर, जि.हापुड (उ.प्र.)-245201	आचार्य प्रेमपाल जी	9410475580		उत्तरप्रदेश
28.	आचार्य जी, तपोभूमि विरजानन्द आश्रम, वृन्दावन मार्ग, मथुरा, जि.-मथुरा (उ.प्र.)-281001	आचार्य स्वदेश जी			उत्तरप्रदेश
29.	आचार्य जी, कन्या गुरुकुल विद्यापीठ, नजीबाबाद, जि.-बिजनौर (उ.प्र.)--246763	आचार्य डॉ. प्रियंवदा वेदभारती जी	9412824424		उत्तरप्रदेश
30.	आचार्य जी, श्रीमद् दयानन्द कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, चोटीपुरा, रजबपुर, जि.-मुरादाबाद (उ.प्र.)-244236	आचार्य डॉ. सुमेधा जी	9412322258 9219602139	gurukulchotip. ura@yahoo.com	उत्तरप्रदेश
31.	आचार्य जी, कन्या गुरुकुल महाविद्यालय सासनी, जि.-हाथरस (उ.प्र.)	आचार्य डॉ. पवित्रा विद्यालंकार जी	8433470865 9258040119	kanyagurukul. mhv.hathars @gmail.com	उत्तरप्रदेश
32.	आचार्य जी, आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय सिरसागंज, जि.-फिरोजाबाद (उ.प्र.)				उत्तरप्रदेश

33.	आचार्य जी, आर्ष गुरुकुल ऐरवा कटरा, जि.-इटावा (उ.प्र.)	श्री ऋषि राज आर्य जी	9997792237		उत्तरप्रदेश
34.	आचार्य जी, श्री निःशुल्क गुरुकुल महाविद्यालय, अयोध्या, जि.-फैजाबाद (उ.प्र.)	आचार्य डॉ. नागेन्द्र मिश्र जी	9415718089	gurukul ayodhye32@gmail	उत्तरप्रदेश
35.	आचार्य जी, श्री जिज्ञासु स्मारक पाणिनि कन्या महाविद्यालय, तुलसीपुर, मोती झील, वाराणसी (उ.प्र.)	आचार्य डॉ. नन्दिता जी	9235539740		उत्तरप्रदेश
36.	आचार्य जी, आर्ष गुरुकुल यज्ञतीर्थ एटा, जि. एटा (उ.प्र.)-207001	आचार्य वागीश जी	9820601318		उत्तरप्रदेश
37.	आचार्य जी, गुरुकुल पुष्पावती पूठ, वाया बहादुरगढ़, जि.-गाजियाबाद (उ.प्र.)-768036	स्वामी धर्मेश्वरानन्द जी	9837402192		उत्तरप्रदेश
38.	आचार्य जी, आर्ष गुरुकुल गुरुकुल नोएडा, सी-69, सै.33, नोएडा (उ.प्र.)-201301	आचार्य डॉ. जयेन्द्र जी	9899349304		उत्तरप्रदेश

39.	आचार्य जी, गुरुकुल प्रभात आश्रम, टीकरी भोला झाल, जि.मेरठ (उ.प्र.)-250501	स्वामी विवेकानन्द	9758747920	gurukulprabh atashram@gmail. com	उत्तरप्रदेश
40.	आचार्य जी, वेदवेदांग विद्यापीठ गुरुकुल आश्रम, दयानन्द नगर, धनपतिगंज, जि.-सुल्तानपुर (उ.प्र.)	आचार्य डॉ. शिवदत्त पाण्डेय जी	9450783337		उत्तरप्रदेश
41.	आचार्य जी, दयानन्द वैदिक संन्यास आश्रम दयानन्द नगर, गाजियाबाद (उ.प्र.)				उत्तरप्रदेश
42.	आचार्य जी, आर्ष गुरुकुल मुरसदपुर, ग्रेटर नोएडा, जि. गौतमबुद्धनगर (उ.प्र.)		8538722672		उत्तरप्रदेश
43.	आचार्य जी, आर्ष गुरुकुल दखौला, पो.-पीगरी, जि.-मथुरा (उ.प्र.)-281122		9897742177		उत्तरप्रदेश

44.	आचार्य जी, आर्ष कन्या गुरुकुल वेदधाम, सोरखा, सै.-115, ग्रेटर नोएडा, जि.-गाजियाबाद (उ.प्र.)	आचार्य आदेश जी पाण्डेय जी	9991360222		उत्तरप्रदेश
45.	आचार्य जी, महर्षि दयानन्द संस्कृत महाविद्यालय, पटेल मार्ग, गाजियाबद (उ.प्र.)	आचार्य दिनेश चन्द्र शुक्ल जी	9868010142		उत्तरप्रदेश
46.	आचार्य जी, वेदामऊ वैदिक विद्यापीठ, बदायूँ (उ.प्र.)				उत्तरप्रदेश
47.	आचार्य जी, गुरुकुल सिराथू, इलाहबाद (उ.प्र.)				उत्तरप्रदेश
48.	आचार्य जी, गुरुकुल महाविद्यालय धरारी, खुर्जा, जि.-बदायूँ (उ.प्र.)				उत्तरप्रदेश
49.	आचार्य जी, गार्गी कन्या महाविद्यालय गुरुकुल, भैया-चामड, जि.-अलीगढ़ (उ.प्र)	आचार्य मनु आर्या जी, स्वामी चैतन्यदेव वैश्वानर जी	9410426199		उत्तरप्रदेश

50.	आचार्य जी, श्रीमती चन्द्रवती कन्या गुरुकुल संस्कृत विद्यापीठ, प्रह्लादपुर, जि.-कासगंज (उ.प्र.)	आचार्य डॉ. धारणा याज्ञिकी जी	9414533951		उत्तरप्रदेश
51.	आचार्य जी, महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, कोठरा, जि.-बदायूँ (उ.प्र.)	श्री भीकम सिंह आर्य जी	9719125435		उत्तरप्रदेश
52.	आचार्य जी, गुरुकुल कम्हेडा, तह.-गंगोह, जि.-सहारनपुर (उ.प्र.)	श्री विपिन आर्य जी	9411442587		उत्तरप्रदेश
53.	आचार्य जी, वैदिक कन्या गुरुकुल ट्रस्ट, फतूही, जि.-गंगानगर (राजस्थान)	आचार्य अनुपमा, स्वामी सुखानन्द (संस्थापक)	8107938646 9416193695		उत्तरप्रदेश
54.	आचार्य जी, वैदिक साधना संस्कृतविद्या आश्रम गुरुकुल चरथावल, जि.-मु. नगर (उ.प्र.)	आचार्य दयादेव जी	9368675589		उत्तरप्रदेश
55.	आचार्य जी, श्री महानन्द संस्कृत माध्यमिक विद्यालय, लाक्षागृह, बरनावा जि.-बागपत (उ.प्र.)	आचार्य विनोद कुमार जी	9416389201		उत्तरप्रदेश

56.	आचार्य जी, गुरुकुल महाविद्यालय शुक्रताल, जि.-म. नगर (उ.प्र.)	आचार्य इन्द्रपाल जी	9811687124		उत्तरप्रदेश
57.	आचार्य जी, आर्या मातृ मन्दिर वाराणसी	आचार्य डॉ. गायत्री जी	9450150961 9838359413		उत्तरप्रदेश
58.	आचार्य जी, गुरुकुल तेजल्हेडा, जि.-मु.नगर (उ.प्र.)	आचार्य डॉ. रघुवीर वेदालंकार जी			उत्तरप्रदेश
59.	आचार्य जी, आचार्यकुल विश्ववारा संस्कृति विद्या आश्रम, ग्रा.पो.-समसपुर भूड़, जि.-बदायूँ (उ.प्र.)	आचार्य विजयदेव नैष्ठिक जी	9719495312		उत्तरप्रदेश
60.	आचार्य जी, श्री सर्वदानन्द संस्कृत महाविद्यालय, गुरुकुल साधु आश्रम, अलीगढ़ (उ.प्र.)	आचार्य जीवन सिंह जी	9719375848		उत्तरप्रदेश
61.	आचार्य जी, श्रीमद् दयानन्द आर्ष गुरुकुल नगला कटीला, जि.-कासगंज (उ.प्र.)-207123	आचार्य लोकेन्द्र देव आर्य जी	9760830871	aryalokendrad cv@gmail.com	उत्तरप्रदेश
62.	आचार्य जी, महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, नोएडा (उ.प्र.)	आचार्य ज्ञानेन्द्र जी			उत्तरप्रदेश

63.	आचार्य जी, ब्रह्माश्रम संस्कृत विद्यालय, बुलन्दशहर (उ.प्र.)	आचार्य सोमपाल जी			उत्तरप्रदेश
64.	आचार्य जी, ज्ञान गंगा गुरुकुल महाविद्यालय, ग्रा.-तारापुर, पो.-गोण्डा, जि.-अलीगढ़ (उ.प्र.)		9536100997		उत्तरप्रदेश
65.	आचार्य जी, आर्य कन्या गुरुकुल शिवगंज, जि.-सिरोही (राज.)-306027	आचार्य डॉ. सूर्यदेवी चतुर्वेदा जी	9680677489	gurukulsheog anj@gmail.com	राजस्थान
66.	आचार्य जी, आर्ष कन्या गुरुकुल दाधिया, वाया-अजरका, जि.-अलवर (राजस्थान.)-301401	आचार्य विश्वपाल जी	7665931698		राजस्थान
67.	आचार्य जी, कन्या गुरुकुल पद्मीनी, चित्तौडगढ़ (राजस्थान)-312001	आचार्य डॉ. सीमा जी			राजस्थान
68.	आचार्य जी, श्री गुरुकुल चित्तौड़गढ़, निकट-रेलवे स्टेशन, जि.-चित्तौड़गढ़ (राज.)-312001	आचार्य चन्द्रदेव जी			राजस्थान

69.	आचार्य जी, आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय, आबू पर्वत् देलवाडा, जि.-सिरोही (राजस्थान)	आचार्य आमप्रकाश जी	9414589510		राजस्थान
70.	आचार्य जी, महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल कोलाघाट, काऊर चण्डी, पो.-आमलहाजपूर्व, जि.-मिदनापुर (प.बं.)-721134	आचार्य ब्रह्मदत्त जी	7504723052		पश्चिम-बंगाल
71.	आचार्य जी, आर्ष कन्या गुरुकुल आबादा, हावडा (पश्चिम बंगाल)	आचार्य मीरा शास्त्री	6294029947		पश्चिमी-बंगाल
72.	आचार्य जी, गुरुकुल वेदरक्षक, मालीग्राम, जि.मिदनापुर (पश्चिम बंगाल)				पश्चिमी-बंगाल
73.	आचार्य जी, गुरु विरजानन्द गुरुकुल महाविद्यालय, जी.टी. रोड़, करतारपुर, जि.-जालन्धर (पंजाब)-144801	आचार्य डॉ. उदयन जी	9803043271	gurukulkartar pur@gmail.com	पंजाब
74.	आचार्य जी, दयानन्द मठ दीनानगर, जि.-गुरुदासपुर (पंजाब)	स्वामी सर्वानन्द जी			पंजाब

75.	आचार्य जी, गुरुकुल यमुनातट मंझावली, जि.-फरीदाबाद (हरियाणा)-121101	आचार्य जयकुमार जी	9718579333	gurukulmanjh awali@gmail.com	हरियाणा
76.	आचार्य जी, गुरुकुल महाविद्यालय झज्जर, जि.-झज्जर (हरियाणा.)-124103	आचार्य विजयपाल जी	9416055044	gurukuljhajjar @gmail.com	हरियाणा
77.	आचार्य जी, आर्ष गुरुकुल भादस, खण्ड-नगीना, जि.-मेवात (हरियाणा.)-122108	आचार्य हरिनिवास जी	86890553646		हरियाणा
78.	आचार्य जी, गुरुकुल भैयापुर लाढौत, जि.-रोहतक (हरियाणा)-124001	आचार्य हरिदत्त जी			हरियाणा
79.	आचार्य जी, गुरुकुल आर्य नगर, हिसार, जि.-हिसार (हरियाणा)	आचार्य रामस्वरूप शास्त्री जी	9466613413 9050863704		हरियाणा
80.	आचार्य जी, कन्या गुरुकुल हसनपुर, जि.-पलवल (हरियाणा)-121003	आचार्य निशा जी	9812350806		हरियाणा

81.	आचार्य जी, गुरुकुल भैसवाल, जि.-सोनीपत (हरियाणा)				हरियाणा
82.	आचार्य जी, महर्षि पाणिनि आर्ष गुरुकुल कटिया बाबा रामदास, ग्रा.-नलीखुर्द, पो.-कुंजपुरा, जिल.-करनाल (हरियाणा)-132022	स्वामी सम्पूर्णानन्द जी	9416033160		हरियाणा
83.	आचार्य जी, वैदिक साधना आश्रम खजुरी रोड़, शादीपुर, जि-यमुनानगर (हरियाणा)				हरियाणा
84.	आचार्य जी, श्रीमद् दयानन्द विद्यापीठ गद्पुरी, जि-फरीदाबाद (हरियाणा)		9585861124		हरियाणा
85.	आचार्य जी, भगवती आर्ष कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, जसात, जि.-रेवाड़ी (हरियाणा)	श्री रवीन्द्र आर्य	9416188854		हरियाणा
86.	आचार्य जी, आर्ष गुरुकुल खानपुर, पो.-मढाना, जि.महेन्द्रगढ़ (हरियाणा)	आचार्य प्रद्युम्न जी	8954890130		हरियाणा

87.	आचार्य जी, आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय, कालवा, जि.जीन्द (हरियाणा)	आचार्य राजेन्द्र जी	9992221509 7351477558 9466013563		हरियाणा
88.	आचार्य जी, पाणिनीय महाविद्यालय रेवली, जि.-सोनीपत (हरियाणा)	आचार्य प्रदीप जी			हरियाणा
89.	आचार्य जी, कन्या गुरुकुल महाविद्यालय पंचगाँव, पो.-गोपी, तह.-वाढ़डा, जि.-भिवानी (हरियाणा)-127308	आचार्य श्रुतिकीर्ति जी	9416972666		हरियाणा
90.	आचार्य जी, कन्या गुरुकुल खरल, जि.-जीन्द (हरियाणा)		9996299700		हरियाणा
91.	आचार्य जी, गुरुकुल आट्टा डिकाडला, जि.-पानीपत (हरियाणा)				हरियाणा
92.	आचार्य जी, गुरुकुल मटिण्डू, जि.सोनीपत (हरियाणा)				हरियाणा

93.	आचार्य जी, आत्म शुद्धि आश्रम, बहादुरगढ़, जि.झज्जर (हरियाणा)			atamsudhi@ gmail.com	हरियाणा
94.	आचार्य जी, दयानन्द ब्राह्म विद्यालय, हिसार, जि.-हिसार (हरियाणा)	डॉ. प्रमोद योगार्थी			हरियाणा
95.	आचार्य जी, गुरुकुल किशनगढ़ घासेडा, जि.-रेवाडी (हरियाणा)	आचार्य सत्यव्रत शास्त्री जी	8222889112 9416347551	gkgrewari@ @gmail.com	हरियाणा
96.	आचार्य जी, श्री रणजीत, समरक शान्ति निकेतन कन्या गुरुकुल सिद्धी लोवाकला, वाया-बहादुरगढ़, जि-झज्जर (हरियाणा)	आचार्य डॉ. राजनमान जी	9416054033 7015381060		हरियाणा
97.	आचार्य जी, आर्ष गुरुकुल खाण्डाखेडी, जि.-हिसार (हरियाणा)	श्री सुभाष जी	9812546632		हरियाणा
98.	आचार्य जी, विश्ववारा कन्या गुरुकुल, ग्रो.+रोहतक (हरियाणा)-124401	आचार्य डॉ. सुकामा जी	9416197366 7599209296	gurukulruki @gmail.com	हरियाणा

99.	आचार्य जी, कन्या गुरुकुल खानपुर कलां, जि.-सोनीपत (हरियाणा)					हरियाणा
100.	आचार्य जी, गुरुकुल सिंहपुरा, सुन्दरपुर, जीन्द रोड़, जि.-रोहतक (हरियाणा)		आचार्य शम्भु मित्र शास्त्री जी			हरियाणा
101.	आचार्य जी, दिव्यधाम, गुरुकुलम् अगवानपुर, गन्नौर, जि.-सोनीपत (हरियाणा)					हरियाणा
102.	आचार्य जी, श्रीकृष्ण ज्ञान ज्योति गुरुकुल महाविद्यालय, दड़ौली, जि.-रेवाडी (हरियाणा)					हरियाणा
103.	आचार्य जी, गुर्जर कन्या गुरुकुल, कन्या विद्या प्रचारिणि सभा, देवधर, जि.-यमुनानगर (हरियाणा)		आचार्य पुनम देवी जी महात्मा ओमप्रकाश गाँधी जी	8930402260		हरियाणा
104.	आचार्य जी, आर्ष गुरुकुल कुरुक्षेत्र, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)		आचार्य नन्द किशोर जी			हरियाणा

105.	आचार्य जी, गुरुकुल धीरणवास, बाल समन्द रोड़, जि.-हिसार (हिरयाणा)	स्वामी सर्वदानन्द जी			हरियाणा
106.	आचार्य जी, आदर्श गुरुकुल वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, सिंहपुरा, सुन्दरपुर जि.-रोहतक (हरियाणा)	आचार्य वेदप्रकाश आर्य जी	9416581019		हरियाणा
107.	आचार्य जी, आर्ष महाविद्यालय गुरुकुल लाडवा, जि.-कुरुक्षेत्र (हरियाणा)	आचार्य विश्वजीत जी	7617500248		हरियाणा
108.	आचार्य जी, गुरुकुल ब्रह्मानन्द संस्कृत लाडवा, सफीदों, जि.-जीन्द (हरियाणा)	स्वामी नित्यानन्द जी	8053662657		हरियाणा
109.	आचार्य जी, श्रीमद् दयानन्द वेदविद्यालय, 119 गौतम नगर, नई दिल्ली-49	स्वामी प्रणवानन्द	9868855155	smdntas99i@ @gmail.com	दिल्ली
110.	आचार्य जी, कन्या गुरुकुल नरेला, दिल्ली-110040	श्री सोमवीर शास्त्री	9999299300		दिल्ली

111.	आचार्य जी, गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ, वाया-बदरपुर, नई दिल्ली-110044	आचार्य ऋषिपाल जी	9811687124		दिल्ली
112.	आचार्य जी, श्रीमद् दयानन्द गुरुकुल संस्कृत महाविद्यालय, खेडा खुर्द, दिल्ली-82	आचार्य सुधांशु जी	9350538952		दिल्ली
113.	आचार्य जी, कन्या गुरुकुल, राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली-60				दिल्ली
114.	आचार्य जी, सांगोपांग वेद विद्यापीठ, टटेसर जौन्ती, दिल्ली-81	आचार्य हनुमत प्रसाद जी			दिल्ली
115.	आचार्य जी, महर्षि दयानन्द गुरुकुल एवं शोध संस्थान विकास नगर, नई दिल्ली	आचार्य अमित आर्य जी			दिल्ली
116.	आचार्य जी, स्वामी कृष्णानन्द आर्य बालाश्रय ट्रस्ट गुरुकुल ब्रह्मपुरी, दिल्ली	आचार्य सुन्दर शास्त्री	8130404584 7982380619		दिल्ली

117.	आचार्य जी, गुरुकुल आश्रम दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, मिण्टो रोड़ नई दिल्ली	आचार्य भद्रकाम वर्णी जी			दिल्ली
118.	आचार्य जी, आर्ष गुरुकुल पहाड़गंज, दिल्ली	आचार्य संजय आर्य जी			दिल्ली
119.	आचार्य जी, आर्ष गुरुकुल दयानन्द वाणी, ग्रा.पो.जरैल, वाया-बेनपिट्टी, जि.-मधुबनी (बिहार)	आचार्य सुशील जी	8809852187 7320887735 7070682364		बिहार
120.	आचार्य जी, महर्षि दयानन्द आर्य वैदिक गुरुकुल जि.-समस्तीपुर (बिहार)	आचार्य ज्ञानेन्द्र जी	7979814441		बिहार
121.	आचार्य जी, कन्या गुरुकुल पाण्डू नगर, फंड डलसिंह सराय, जि.-समस्तीपुर (बिहार)	आचार्य अंजु सुमन जी			बिहार
122.	आचार्य जी, वैदिक संस्कृत महाविद्यालय गुरुकुल, येडसी रामलिंग, उस्मानाबाद, जि.-धाराशिव (महाराष्ट्र)-413405		9011274785		महाराष्ट्र

123.	आचार्य जी, स्वामी श्रद्धानन्द गुरुकुल आश्रम परली बैजनाथ, जि.-बीड (महाराष्ट्र)-4331515				महाराष्ट्र
124.	आचार्य जी, स्वामी शान्ति प्रकाश गुरुकुल नेता जी स्कूल के पीछे, उल्लास नगर-5 (महाराष्ट्र)				महाराष्ट्र
125.	आचार्य जी, कान्हा आर्ष गुरुकुल आश्रम, रुईखैरी ईस्पात कारखाने के सामने, बुट्टबोरी, चन्द्रपुर रोड़, नागपुर (महा.)-441108	आचार्य धर्मवीर जी			महाराष्ट्र
126.	आचार्य जी, गुरुकुल महाविद्यालय नर्दमापुरम्, खर्रा घाट, होशंगाबाद (म.प्र.)-461114	आचार्य सत्यसिन्धु जी	9907056726 9424471288		मध्यप्रदेश
127.	आचार्य जी, आर्ष कन्या गुरुकुल विद्यापीठ, जमानी, इटारसी (म.प्र.)	आचार्य पवित्रता आर्या जी	9643619655		मध्यप्रदेश

128.	आचार्य जी, श्री प्रणवानन्द आर्ष गुरुकुल न्यास, आर्यनगर (बैरागढ़) तह.-बेरसीया, जि.-भोपाल (म.प्र.)-463111	आचार्य जीवन प्रकाश जी	9868072383		मध्यप्रदेश
129.	आचार्य जी, गुरु विरजानन्द गुरुकुल, इन्दौर (म.प्र)	आचार्य भानुप्रताप वेदालंकार जी			मध्यप्रदेश
130.	आचार्य जी, पण्डित लेखराम और गुरुकुल महाविद्यालय, वेलीनेझो, जि.-पालक्काड (केरल)-679504	आचार्य हीराप्रसाद शास्त्री जी	94977525923, 0466- 22853448	smdnyas99i@ @gmail.com	केरल
131.	आचार्य जी, गुरुकुल शान्ति आश्रम, लोहरदगा, जि.-लोहरदगा (झारखण्ड)	आचार्य शरदचन्द्र आर्य जी	9430779794, 7979009794		झारखण्ड
132.	आचार्य जी, आर्ष कन्या गुरुकुल न्यास, हजारीबाग (झारखण्ड)	आचार्य पुष्पा शास्त्री जी आचार्य कौटिल्य जी	9469711054, 7277437245		झारखण्ड

गुरुकुल घटकेश्वर हैदराबाद

यह गुरुकुल हैदराबाद के एक प्रसिद्ध आर्य नेता श्री बंशी लाल जी ब्यास द्वारा स्थापित हुआ था। वहाँ के निजाम सरकार के अन्याय व अत्याचारों से भला कौन भारतीय परिचित नहीं है। उस भीषण परिस्थिति में न केवल दक्षिण भारत के अपितु सारे भारत से क्रांतिकारी वहाँ आकर शरण लेते थे। वहाँ के अधिकारी तथा स्नातक सबने निजाम तथा रजाकारों की दानवतापूर्ण अत्याचारों से जनता को मुक्ति दिलाने में अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य किया है। हैदराबाद के इतिहास में वह गुरुकुल निःसंदेह एक अटुट व एक अमर इतिहास का हिस्सा है।

उस गुरुकुल के विद्यार्थियों को भी स्वाभिमान से जीने की शिक्षा के साथ राष्ट्र प्रेम और स्व रक्षा के लिए लाठी, भाला, तलवारों की शिक्षा भी दी जाती थी। आवश्यकतानुसार ब्रह्मचारी दुश्मनों पर इनसे बार भी कर सकते थे। निजाम सरकार तो हमेशा इस संस्था पर गुप्तचरों के साथ कड़ी नजर रखती थी पर निजाम के लिए यह संस्था सदा एक पहेली की तरह उनकी परेशानियों का कारण बनी हुयी थी।

दयानन्द उपदेशक विद्यालय—यह गुरुकुल भी अंग्रेज-सरकार के समय में ही आर्यसमाज के प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् और क्रांतिकारी संन्यासी स्वामी स्वतंत्रतानन्द जी महाराज द्वारा सम्यग् संचालित होता रहा। यह गुरुकुल आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के अन्तर्गत स्थापित था जिसके प्रथम आचार्य स्वामी स्वतंत्रतानन्द जी ही थे। इसका कार्यालय गुरुदत्त भवन लाहौर हुआ करता था। 1930 के भारत व्यापी सत्याग्रह के सिलसिले में पंजाब जत्थे की जिम्मेदारी स्वामी जी के कुशल नेतृत्व में था। सत्याग्रह का कार्य अत्यन्त चतुराई से करते हुए सब आर्यों व आर्य समाजियों को अपने साथ जोड़ लिया था। वे उस क्षेत्र में पूरी गोपनीयता से कार्य करते हुए अपने कुशाग्र बुद्धि व चतुर मस्तिष्क का परिचय देते हुए अंग्रेजों की कड़ी नजर से स्वयं की गोपनीयता को बचाए रखते थे। पर अंग्रेजों के अधिकारी उनसे सदा भयभीत ही रहा करते थे फलतः अपना गुप्तचरों की चप्पे-चप्पे कड़ा पहरा लगाया हुआ रहता था। यद्यपि स्वामी जी की गोपनीय तरिकों का सुराग तो अंग्रेजों के गुप्तचर नहीं पता

लगा सके पर एक दिन स्वामी जी को ही शक के आधार पर धर दबोचा। विद्यालय की पूरी तलासी लेने पर भी अंग्रेजों को आपत्तिजनक सामग्री नहीं मिली क्योंकि स्वामी जी ने सारी सामग्री पहले ही कहीं अन्यत्र भेजवा दी थी; उन्हें भी सरकार की चाल की आशंका हो गई थी। स्वामी जी का एतत् सम्बन्धी सारे पत्र व्यवहार भी किसी अलग ही पते से हुआ करता था। तत्कालीन अनेक राष्ट्रीय नेता रात्री में आकर विश्राम किया करते थे जिसकी गोपनीयता रखी जाती थी। बहुत कुछ दस्तावेजों का अब तक पता न चल सका अतः इस गुरुकुल के स्वाधीनता संग्राम सम्बन्धी और अधिक जानकारी नहीं मिल पाती। दक्षिण में हैदरावाद के प्रसिद्ध आर्यसमाजी क्रांतिकारी वीर विद्वान् पं. नरेन्द्र जी लाहौर के इसी विद्यालय के पड़े हुए थे। यही उपदेशक विद्यालय कालान्तर में डी.ए.वी. की संस्था **'दयानन्द ब्राह्म महा विद्यालय'** के नाम से हिसार हरियाणा में 1956 में पुनः स्थापित हुई जिसके स्नातक आचार्य देव व्रत जी भी हैं जो वर्षों गुरुकुल कुरुक्षेत्र के आचार्य रहे और पूर्व हिमाचल प्रदेश के राज्यपाल और वर्त्तमान गुजरात के राज्यपाल हैं। आप भी आर्यसमाज के एक प्रतिष्ठित विद्वान् व प्रखर वक्ता हैं। हिसार की इसी संस्था में मुझे (आचार्य उमेश) भी आचार्य सत्यप्रिय शास्त्री के प्राचार्यत्व में वैदिक शिक्षा मिली और सौभाग्य से यहीं 10 वर्ष तक प्राचार्य बनने का अवसर भी मिला।

आर्य गुरुकुल गुजरांवाला—यह गुरुकुल भी आर्यसमाज की एक प्रसिद्ध संस्था थी। पश्चिम पंजाब अब पाकिस्तान की जगह गुजराँ वाला आर्यसमाज की पवित्र भूमि थी। चारों ओर इस गुरुकुल के अध्यापक, आचार्य व छात्रों द्वारा वैदिक प्रचार होता था। 1919 के भीषण विद्रोह में जब मार्शल ला पजाब को रौंद रहा था तब इस गुरुकुल के अध्यापक व छात्र सबने सपीस्थ रेलवे लाइन पर पत्थरों का ढेर बनाकर अंग्रेजों का मुकाबला किया। परिणामतः यह गुरुकुल अंग्रेजों की नजरों पर चढ़ गया। इसी कारण गुरुकुल के आचार्य समेत सब को भयंकर यातनाएं सहनी पड़ीं। यहाँ भी राजनैतिक क्रांतिकारी आर्य नेता आकर छिपा करते थे तथा सुरक्षित रहते थे।

वैदिक आश्रम, अलीगढ़—अलीगढ़ के आर्य समाजियों के

प्रयास से विद्यार्थियों में राष्ट्रीय व आर्य भावना भरने के लिए एक वैदिक आश्रम की स्थापना की थी। इस आश्रम में भी राजविद्रोही आकर छिपने लगे थे। धीरे-धीरे यह आश्रम क्रांतिकारियों का अड्डा बन गया था जिसका दुष्प्रभाव आश्रम की स्थिति पर पढ़ने लगी। निःसंदेह अंग्रेजों की मार इस संस्था पर भी पड़ी। यहाँ स्कूल के छात्र रहते थे तो उन्हें आतंकी घोषित कर स्कूल के अंग्रेज हेडमास्टर ने उन छात्रों को प्रवेश न दिया। 1907-8 में आश्रम के कई पुरुष जेल गए, छात्रों का स्कूल में प्रवेश बन्द हो गया और स्कूल-हेडमास्टर की सख्ती के कारण आश्रम पर अत्यन्त बुरा असर पड़ा जिससे वह संस्था शनैः-शनैः टूट गई। -पं. गंगा प्रसाद उपाध्याय—जीवन चक्र—60 से जानकारी प्राप्त।

मुसाफिर महा विद्यालय आगरा—इस महाविद्यालय का नाम पूर्व भी आ चुका है। क्रांतिकारियों के किये यह भी एक अड्डा बन चुका था। यहाँ से पढ़कर लोग राष्ट्र-प्रेम के पुजारी बना करते थे तथा उनमें अपने देश के लिए कुछ कर गुजारने की तमन्ना सहसा ही उत्पन्न हुआ करती थी। पर यह संस्था भी अंग्रेजी सरकार के हत्थे चढ़ गई। एक बार वहाँ के एक छात्र श्री अभिलाषचन्द्र ने बारूद आदि चीजें लाकर बम बना बैठा और उसका परीक्षण तक किया। इस कारण पुलिस को भनक लग गई और वहाँ पुलिस का पहरा पड़ गया। यद्यपि यह घटना गांधी जी से पहले ही घटी पर गांधी युग आने तक भी यह संस्था आगरा व लखनऊ के क्रांतिकारियों का ठहराव बना हुआ था। यहाँ के अध्यापक पं. महेश प्रसाद तो अनेक बार जेल जा चुके थे। वहाँ पर राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने की प्रेरणा मिलती ही रहती थी। फलतः वहाँ के छात्र और अध्यापकों ने 1921 के आन्दोलन में जोरदार भाग लिया जिससे अंग्रेजों की कड़ाई और कार्यकर्त्ताओं के अभाव के कारण वह संस्था बन्द ही हो गई।

गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन—राजा महेन्द्र प्रताप एक देश भक्त और आर्य वीर पुरुष थे। यह भी आर्यसमाज के वातावरण में रहे और अन्य आर्य वीरों की भाँति आपने भी आर्य सिद्धान्तों को आगे रखकर स्वाधीनता के यज्ञ में अपनी आहुति दी। जब आर्यसमाज के लोग शिक्षा के प्रारंभ काल में अनेक स्थानों पर आर्य शिक्षण संस्थाएं बनाने में जुड़े हुए थे तो आपने महर्षि दयानन्द की राष्ट्रीय शिक्षाओं से प्रेरित होकर

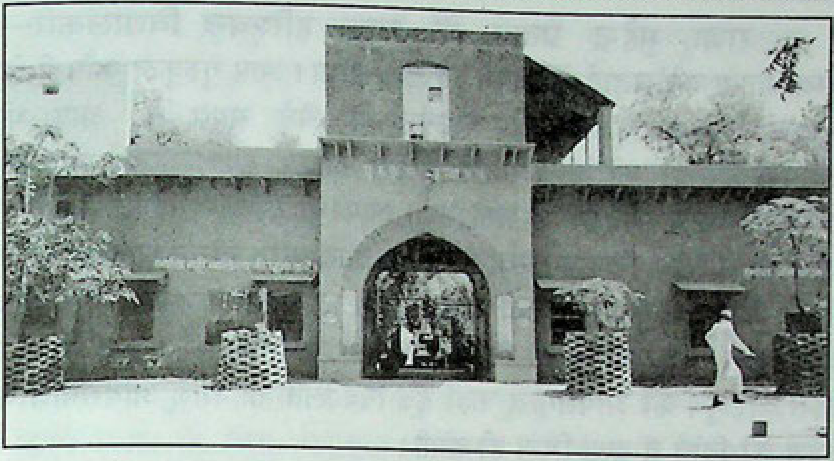

वृन्दावन में अपनी जमीन का एक बड़ा हिस्सा वागीचा समेत आर्यसमाज को दान दे दिया था जिसमें बाद में गुरुकुल विश्वविद्यालय बनाया गया। आज भी वह गुरुकुल आर्ष शिक्षा के लिए सक्रिय है। राजा महेन्द्र प्रताप महान् आर्य क्रांतिकारी रामप्रसाद विस्मिल के गुरु श्री स्वामी सोमदेव जी के भक्तों में एक विशेष थे। आत्म कथा में रामप्रसाद बिस्मिल ने लिखा कि राजा महेन्द्र प्रताप एक बार आगरा की 'आर्यमित्र सभा' के वार्षिकोत्सव में स्वामी सोमदेव जी महाराज का राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत भाषण सुना और मंत्रमुग्ध होकर स्वामी जी के पैर छूये और तब से स्वामी जी के भाषण वे सुनने लगे और उनके भक्त बन गए। राजा साहब स्वामी जी को अपनी कोठी पर भी ले गए।

राजा महेन्द्र प्रताप को भी अन्य क्रांतिकारियों की तरह देश छोड़ना पड़ा। 12 बजे रात में ही नवविवाहिता धर्मपत्नी को छोड़ कर, उसके पूछने पर कि कब लौटेंगे, उत्तर दिया पता नहीं, लौटूँ भी या नहीं। राजा साहब ने अपनी जवान पत्नी को बोला कि यह जवानी विषयभोग के लिए नहीं अपितु भारतमाता अब इस जवानी को निहार रही है। अगर यह जवानी देश की स्वाधीनता में लगे तो हम दोनों का ही जन्म सफल है। ऐसा कहकर घर से चल दिये। भारत से बाहर जाकर सीमाप्रांत पर 31 वर्षों तक तप करते रहे और स्वाधीनता के लिए प्रयत्न करते रहे। आप एक 'आर्य सेना' बनाना चाहते थे पर सफल न हो सके। अंग्रेजी सरकार ने आपकी सम्पति भी जब्त कर ली।

राजा महेन्द्र प्रताप के साथ हरिश्चन्द्र विद्यालंकार— स्वाधीनता की लड़ाई में आपने भी देश छोड़ा। आप गुरुकुल काँगड़ी के प्रथम स्नातक थे। स्वामी श्रद्धानन्द के बड़े सुपुत्र थे। आप भी अंग्रेज-सरकार की शंकाओं के घेरे में आकर राजा महेन्द्र प्रताप के सेक्रेटरी के रूप में विदेश चले गए। आप भी दर-दर भटकते रहे और विदेशों में छिप-छिप कर स्वाधीनता के कार्य करते हुए न जाने कहाँ खो गए, आज तक कुछ पता नहीं चला और न ही आर्यसमाज उन्हें आज तक ढूँढ पाया। आर्यसमाज की शिथिलता कही जा सकती है। काश! अपने इस वीर पुत्र को आर्यसमाज कहीं ढूँढ निकालता तो आज आर्यसमाज व देश की दिशा व दशा भिन्न ही होती।

मन्मथनाथ गुप्त ने अपनी पुस्तक भा.क्रां. आ. का इतिहास पृ. 150 पर लिखा कि पं. हरिश्चन्द्र जी राजा महेन्द्र प्रताप के सेक्रेटरी व गुप्तचरों में एक थे जिन्होंने बर्निल समिति को तरह-तरह का धोखा देकर बहुत रुपये लिये। यह महाशय श्रद्धानन्द के कोई थे, ऐसा डॉ. दत्त ने लिखा है। -डॉ. कृष्ण दत्त—'जीवन ज्योति'

प्रारंभिक काल में गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन के आचार्य, अध्यापक व छात्रों को काफी कष्ट सहना पड़ा क्योंकि स्वाधीनता संग्राम का आन्दोलन तो चल ही रहा था जिसके कारण यहाँ भी क्रांतिकारी आया करते थे। संस्था के लोग भी उसमें भाग लेते हुए अंग्रेजों से यातनाएं सहीं। पर गुरुकुल आज भी वहाँ सक्रिय है।

इस प्रकार आगे भी गुरुकुलों का निर्माण होता रहा और आर्य सामाजिक सिद्धान्तों पर कालान्तर में लगभग उत्तर भारत में अनेक स्थानों में आर्ष गुरुकुलों का निर्माण होने लगा जहाँ से राष्ट्र को अच्छे शिक्षक, लेखक, साहित्यकार, राजनैतिक, वेद प्रचारक, धर्मशिक्षक, योग-शिक्षक आदि अनेक विधाओं में सुचरित्र व व्यक्तित्व के लोग मिलने लगे। आर्यसमाज में सभी वर्णों/वर्गों के स्त्री-पुरुष को वेदादि सत् शास्त्रों को पढ़ने व पढ़ाने की व्यवस्था होती है। फलतः पूरे भारत के प्रांतों में ऐसे गुरुकुल बनाए गए और आज भी नये-नये गुरुकुलों की संख्या बढ़ रही है। पंजाब, हिमाचल, राजस्थान, हरयाणा, गुजरात, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, उत्तराखण्ड, झारखंड, बिहार, आसाम, बंगाल, उड़ीसा, महाराष्ट्र व कुछ

दक्षिण में भी गुरुकुल चल रहें हैं। बालकों का गुरुकुल अलग व बालिकाओं का गुरुकुल अलग होते हैं। इसी तरह कई आर्य वानप्रस्थ आश्रम, अनाथालय आदि संस्थाएं भी आर्यसमाज द्वारा अलग-अलग स्थानों में सक्रिय हैं। हम कह सकते हैं कि आज देश-विदेश में इस तरह की शिक्षा संस्थान श्री विट्ठल राव, सम्पादक सार्वदेशिक आर्य पत्र द्वारा दी गई सूचना के अनुसार 160 से ऊपर हैं जो बिना भेद-भाव के सब जगहों से आए बालक-बालिकाएं वैदिक व आदर्श शिक्षा ग्रहण करते हैं। ये सभी गुरुकुल आवासीय होते हैं, सब के लिए वहीं पर रहने व खाने तथा शिक्षा की पूरी व्यवस्था होती है। ऐसे गुरुकुलों में नित्य यज्ञ व योग करने-कराने के लिए अनुकूल वातावरण होने से सभी वैदिक संस्कारों से पूर्ण संस्कारित होते हैं। इस दिशा में आर्यसमाज का प्रयास आगे भी जारी है कि नये-नये गुरुकुल भी बनते रहें तथा वैदिक व शुद्ध राष्ट्रीय विचारों के अनुरूप विद्वान, राजनैतिक, साहित्यकार, पत्रकार, लेखक, शिक्षक व धर्म प्रचारक बनकर राष्ट्र को नैतिकता के उच्च मूल्यों का पाठ पढ़ाते रहें।

पतंजलि विश्वविद्यालय हरिद्वार
गुरुकुलों के बढ़ते कदम

उपरोक्त आर्ष परम्परा को जीवित व सक्रिय रखते हुए संसार के बच्चों को ऊँची शिक्षा के साथ राष्ट्रीयता की सार्थक शिक्षा दी जाए के पावन विचारों से ही स्वनाम धन्य वर्त्तमान योगऋषि स्वामी रामदेव जी महाराज ने पतंजलि विश्वविद्यालय की स्थापना 24 मार्च 2007 में हरिद्वार-रुड़की में की जबकि पतंजलि योगपीठ 2006 में ही बन गया था। इस विश्वविद्यालय के अन्तर्गत वैदिक गुरुकुल लड़के, लड़कियों के अलग-अलग तथा आचार्यकुलम के नाम से भी गुरुकुल स्थापित और सुचारु रूप से संचालित हैं। वहाँ पर आयुर्वेद व आधुनिक शिक्षाएं भी दी जाती हैं। नित्य यज्ञ व योग का अभ्यास वहाँ सबके लिए अनिवार्य है। यह परिसर लगभग 100 एकड़ जमीन पर आधारित है। आचार्य बालकृष्ण जी विश्वविद्यालय के कुलाधिपति हैं। प्रतिकुलपति समय-

समय पर आवश्यकतानुसार बदलते रहते हैं जो विश्वविद्यालय के नियमानुसार उनकी नियुक्तियों पर निर्भर करता है। इस विश्वविद्यालय का उद्देश्य है कि इसके अन्तर्गत प्रायः सभी प्रांतों में गुरुकुल हों। यह विश्वविद्यालय अपने उद्देश्यों की पूर्ति करता हुआ अग्रसर है। 26 अप्रैल 2013 को आचार्यकुलम का विधिवत् उद्घाटन श्री नरेन्द्र मोदी, मुख्यमंत्री, गुजरात द्वारा सम्पन्न हुआ था। वर्त्तमान काल में श्री मोदी अब भारत देश के प्रधान मंत्री हैं। पतंजलि विश्वविद्यालय के अन्तर्गत चलने वाले सभी गुरुकुलों में आधुनिक शिक्षा, वैदिक शिक्षा, योग-शिक्षा, आयुर्वेद शिक्षा तथा आधुनिक ओलंपिक खेलों की दृष्टि से भी शिक्षा देने की व्यवस्था है। राष्ट्र के हर क्षेत्र में बच्चे यहाँ शिक्षित होकर निकलें और राष्ट्र के गौरव बने, यही उद्देश्य है। घुड़सवारी, तीर अन्दाजी, कब्बडी, कुस्ती, बैडमिंटन, क्रिकेट आदि अनेक आधुनिक खेलों को सिखाने की वहाँ अच्छी व्यवस्था है। स्वामी रामदेव जी का यह प्रयास है कि वहाँ के बच्चे चाहे कन्याएं हो या बालक सब खेलों में भी ओलंपिक स्तर के तैयार हों जिससे हमारा देश संसार में सर्वोपरि रहे।

पतंजलि गुरुकुलम् : परिचय

पतंजलि गुरुकुलम् का उद्घाटन 26 नवम्बर 2018 को परम पूज्य योग ऋषि स्वामी रामदेव जी महाराज और श्रद्धेय आचार्य बालकृष्ण जी महाराज के मार्गदर्शन में सरसंघ चालक श्री मोहन भागवत जी के कर-कमलों द्वारा किया। पंतजलि गुरुकुलम् प्राचीन युग के सतो और

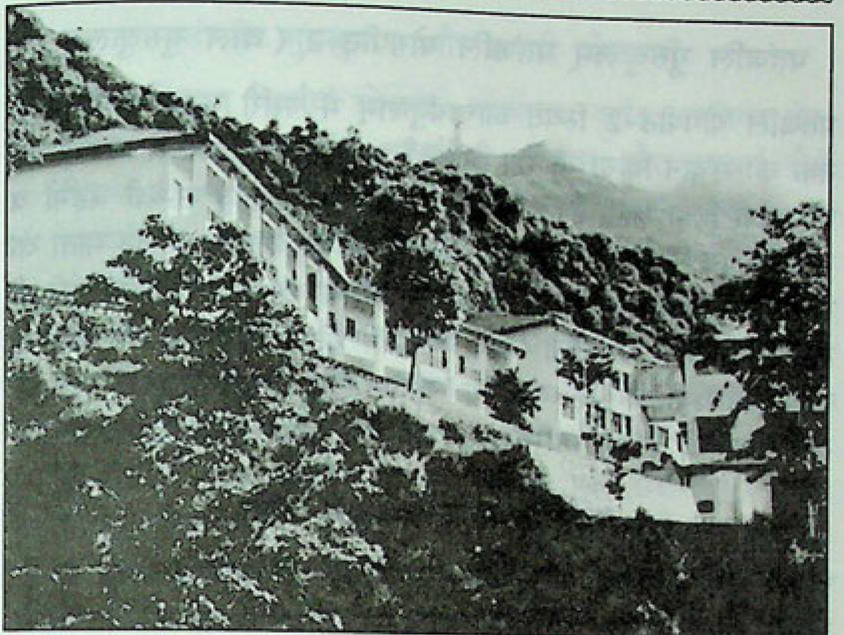

आधुनिक विज्ञान, प्रौद्योगिकी और पेशेवर शैक्षिक प्रणाली द्वारा स्थापित वैदिक गुरुकुल के संन्यासी आर्य ज्ञान परपरा का जंक्शन है।

वर्तमान में शिक्षा का यह दिव्य प्राकलन तीन शाखाओं में विकसित किया जा रहा है। क्रमश: दूसरे और तीसरे स्थान पर चल रहे हैं जहाँ 250 छात्र प्राचीन वैदिक ज्ञान परंपरा में अध्ययन कर रहे हैं।

पतंजलि गुरुकुलम् देवप्रयाग में केवल बहनों (महिला वर्ग) के लिए ही शिक्षा की व्यवस्था है। वर्तमान में यहाँ कक्षा-5 से कक्षा-8 का संचालन किया जा रहा है। यही बहनों को कला, गणित, विज्ञान, अंग्रेजी कम्प्यूटर आदि विषयों के साथ-साथ संस्कृत में भी पारंगत किया जाता है।

पतंजलि गुरुकुलम् योगग्राम-औरंगाबाद

औरंगाबाद स्थित पतंजलि गुरुकुलम् योगग्राम में भाइयो (पुरुष वर्ग) के लिए शिक्षा की व्यवस्था है। वर्तमान में यहाँ कक्षा-5 से कक्षा-8 का सचालन किया जा रहा है।

पतंजलि गुरुकुलम् पतंजलि योगपीठ-2 (बाल गुरुकुलम्)

पतंजलि योगपीठ-2 स्थित आचार्यकुलम् में नर्सरी कक्षा से कक्षा-7 तक का संचान किया जा रहा है। यहाँ 24 साल से 9 वर्ष के बच्चों को ही प्रवेश दिया जाता है। इसमें बच्चों की देखरेख हेतु साध्वी बहनों व माताओं को नियुक्त किया गया है जो बच्चों का लालन-पालन माता के समान करती है। यहाँ बच्चों को अक्षर ज्ञान के साथ-साथ बचपन से ही शास्त्र, अष्टाध्यायी, गीता आदि का ज्ञान भी प्रदान किया जा रहा है। साधु-साध्वियों के आध्यात्मिक जीवन तथा गुरुकुलीय परम्परा में अबोध बच्चों के मन-मस्तिष्क में एक भी गलत शब्द नहीं आता।

पतंजलि गुरुकुलम् का दर्शन

इसका उद्देश्य प्रबुद्ध और सक्षम् आत्माओं को विकसित करना है। इसका मुख्य उद्देश्य परिवार समाज, राष्ट्र और दुनिया को शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्तर पर विकसित करना है।

स्वामी जी महाराज का कथन है कि पंतजलि गुरुकुलम् के माध्यम से हम उच्च शिक्षा के अलावा, वेद-वेदांग, भारतीय संस्कृति, शोधन, इतिहास, योग, ध्यान, धैर्य, और अच्छे व्यवहार को शामिल करके भारतीय मूल्यों या स्वदेशी पर आधारित शिक्षा प्रदान करना चाहते हैं ताकि छात्रों को जीवन में सफलता मिल सके। हम पंतजलि गुरुकुलम् के छात्रों को निखारना चाहते हैं, जो पश्चिमी दुनिया के भौतिकवादी प्रभाव से छुटकारा पाने के लिए पर्याप्त सक्षम है। हम पतंजलि गुरुकुलम् में प्रबुद्ध और बुद्धिमान छात्रों को तैयार करना चाहते हैं। हमारी संस्था के स्नातकों को नौकरी खोजने के लिए दूसरों पर निर्भर नहीं होना चाहिए। इसके बजाय वे अपने दम पर नौकरी उत्पन्न कर सकते हैं और दूसरों को नौकरी प्रदान कर सकते है। हम महान् वैदिक ऋषि-संस्कृति की गुरुकुलिया परंपरा को पतंजलि विश्वविद्यालय और पतंजलि गुरुकुलम् के माध्यम से प्रस्तुत करना चाहते हैं।

पतंजलि गुरुकुलम् और हमारी योजनाएँ

1. **वैदिक विद्वान् निर्माण योजना**—व्याकरण, दर्शन, उपनिषद वेद, वैदिक साहित्य, भारतीय प्रामाणिक इतिहास और राजधर्म जैसे विषयों के संदर्भ में प्रामाणिक विद्वानों का विकास करना।
2. **आधुनिक भारत की राष्ट्रीय नेतृत्व निर्माण योजना**— प्रौद्योगिकी, प्रबन्धन कला, संगीत, नाटक, कृषि, शिल्प, अनुसध ान और उद्योग जैसे विभिन्न क्षेत्रों में नए कीर्तिमान स्थापित करने के लिए बौद्धिक और राष्ट्रीय नेतृत्व विकसित किया जाना चाहिए। हम बच्चों के दिमाग में दोनों योजनाओं की महिमा, उपयोगिता और आकर्षण पैदा कर रहे हैं। पूज्य स्वामीजी महाराज तथा श्रद्धेय आचार्य बालकृष्ण जी महाराज का मत है कि आयु के अनुसार बच्चों में एक प्रतिशत दर से सुधार की संभावना कम होने लगती है और एक प्रतिशत जागरण प्राप्त होता है। ज्ञानपूर्ण प्रयासों के माध्यम से हम शारीरिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक स्तर पर इस जागृति को एक प्रतिशत से 10 प्रतिशत तक बढ़ा सकते हैं।

गुरुकुल की उपलब्धियाँ

शिक्षा प्रदान करने के अलावा, छात्रों को उनके समग्र विकास के लिए विभिन्न सह-शैक्षणिक गतिविधियाँ प्रदान की जाती हैं जैसे कि खेल और व्यायाम प्रतियोगिता, गायन गीत, (क्विज और इप्रोमप्टु) प्रश्नोत्तरी तथा विकासात्मक प्रतियोगिता, तीन भाषाओं में लेखन प्रतियोगिताएं। छात्रों में कविता और लेखन के माध्यम से अभिव्यक्ति कौशल विकसित किया जा रहा है। छात्रों को गुरुकुल के अलावा जिला और राज्य स्तर पर कई पुरस्कार मिले। सभी शिक्षक छात्रों के बीच प्रतिस्पर्धात्मक माहौल बनाने के लिए कड़ी मेहनत कर रहे हैं। पहले वर्ष में, पंतजलि गुरुकुल के कई छात्रों ने पूरी गीता कांड में गायन, और अन्य प्रतियोगिताओं में राज्य स्तर पर अपनी योग्यता साबित की।

मुख्य विशेषताएं

- अलग शिक्षा प्रणाली के शोधकर्ता के रूप में, आधुनिक पाठयक्रम को पतंजलि गुरुकुलम् में सनातन श्रुति परंपरा के अलावा अति आधुनिक सुविधाओं से सुसज्जित परिसर में शामिल किया गया है।
- पारंपरिक वैदिक गुरुकुल प्रणाली के अनुसार, छात्रों को आधुनिक शिक्षा प्रणाली से संस्कृत, वेद-वेदांग, उपनिषद् दर्शन के अलावा अंग्रेजी भाषा, अंग्रेजी बोलने, गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, कला और शिल्प और खेल में विशेषज्ञ बनाया जाता है। पतंजलि गुरुकुलम् का उद्देश्य छात्रों में वैदिक सभ्यता, शोधन और मानवीय मूल्यों को स्थापित करना है।
- शिक्षा का उद्देश्य बहुमुखी और समग्र व्यक्तित्व का निर्माण करना है। पतंजलि गुरुकुलम् का मुख्य उद्देश्य छात्रों को शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक बौद्धिक और आध्यात्मिक स्तर पर विकसित करना है। पतंजलि गुरुकुलम् में किए गए योग और हवन इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।
- पतंजलि गुरुकुल पूर्व और पश्चिम की सर्वश्रेष्ठ शैक्षिक प्रणालियों का केंद्र है।
- आध्यात्मिकता और चरित्र निर्माण को ध्यान में रखते हुए पतंजलि गुरुकुल को भविष्य के सामाजिक और राष्ट्रीय नेतृत्व की दिव्य कार्यशाला के रूप में स्थापित किया जा रहा है।
- छात्रों को योग और आयुर्वेद आधारित स्वदेशी जीवन शैली तथा उसके अनुरूप पौष्टिक आहार प्रदान किया जाता है।
- महान् शिक्षाविद् और शिक्षक समय-समय पर छात्रों को अपना मार्गदर्शन और आशीर्वाद प्रदान करते है।
- परिसर में नई और रचनात्मक को बढ़ावा दिया गया है।
- छात्रों को विभिन्न उद्देश्यों के लिए शिक्षा यात्रा पर ले जाया जाता है।

वैदिक गुरुकुलम् एवं वैदिक कन्या गुरुकुलम्

पूज्य योग-ऋषि स्वामी रामदेव जी महाराज तथा आयुर्वेद शिरोमणि श्रद्धेय आचार्य बालकृष्ण जी महाराज के मार्गदर्शन में वैदिक संस्कृति को पुनः प्रतिष्ठापित करने के लिए तथा पूर्ण जागरूक, पूर्ण पुरुषार्थी एवं पूर्ण समर्पित साधु व साध्वियों के निर्माण करने हेतु वैदिक गुरुकुलम् तथा वैदिक कन्या गुरुकुलम् की स्थापना की गयी है। इन गुरुकुलों का उद्देश्य ऐसे दिव्य सन्यासियों के निर्माण का है जो सर्वसंदेह मुक्त व दैवीय चेतना युक्त हो एवं प्रत्येक क्षेत्र में सम्पूर्ण विश्व को एक स्वस्थ, स्पष्ट, उन्नत मार्गदर्शन व दिव्य नेतृत्व देने में अग्रगण्य हो। ऋषि-ऋषिकाओं के दिव्य उत्तराधिकारी बनाना ही इस गुरुकुलम् का मुख्य ध्येय है। वैदिक गुरुकुलम् तथा वैदिक कन्या गुरुकुलम् में उन्हीं अभ्यार्थियों को प्रवेश दिया जाता है जो अपना जीवन पूज्य गुरुसत्ता को समर्पित कर तथा आजीवन ब्रह्मचारी व्रत ध ारण कर समाज व राष्ट्र के उत्थान के कार्यों में संलग्न रहने हेतु संकल्पित हों।

स्वयं को जानना, जगाना व समस्त दिव्यताओं तथा पूर्णताओं को पाना, ईश्वर प्रदत्त अनन्त दिव्य सात्विक सामर्थ्य का विकास व विस्तार स्वयं करना व कराना, वेद, योग, धर्म सेवा, न्याय व श्रेय मार्ग पर स्वयं चलना, औरों को भी चलने के लिए प्रेरित करना, यही हमारे जीवन का आदर्श है।

'इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृवण्तो विश्वमार्यम्।
अपध्नन्तो अराव्णः।' —*ऋग्वेद-9.63.5*

बलिष्ठ शरीर भावपूर्ण हृदय व धारणावती मेधा का पूर्ण समन्वित विकास कर सभी मनुष्यों में देवत्व व इस धरा पर दिव्यता की पूर्ण प्रतिष्ठा ही हमारा ध्येय है। वे पावन आत्माएँ जो राष्ट्रयज्ञ एवं आत्मयज्ञ में अपनी आहुति देकर भारतीय संस्कृति एव ऋषि-परम्परा को पुनः प्रतिष्ठापित करने में अपना सम्पूर्ण योगदान देना चाहते हैं। उनका पंतजलि वैदिक गुरुकुलम् व वैदिक कन्या गुरुकुलम् में स्वागत है।

शिक्षा एवं उपाधि

ऋषि-परम्परा द्वारा योग, आयुर्वेद, वेद वेदांग, उपांग, दर्शन, उपनिषद, नीति शास्त्र आदि के ज्ञान सहित आधुनिक अर्थशास्त्र समाज शास्त्र एवं विविध भाषाओं में पारंगतता विकसित कर भारत को आध्यात्मिक राष्ट्र व विश्व गुरु के महिमान्वित पद पर प्रतिष्ठापित करने हेतु शिक्षा दी जाती है।

गुरु-शिष्य-परम्परा अपने आप में पूर्ण रूप से प्रामाणिक है। पुनरपि शिष्य की योग्यताओं को प्रमाणित करने हेतु **'पतंजलि विश्व-विद्यालय'** से शास्त्री व्याकरण (बी.ए.), आचार्य व्याकरण (एम.ए) तथा दर्शन में बी.ए. एम.ए तथा पी-एच.डी. में रुचि व योग्यतानुसार वैदिक ऋषि-परम्परानुसार पाठ्यक्रम का अध्ययन करवाया जाता है।

विशेषताएँ

- **श्रेष्ठ वातावरण**-महान् व्यक्तित्व के निर्माण में सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका श्रेष्ठ वातावरण की होती है। इसलिए गुरुकुलम् का वातावरण दिव्य एवं भव्य है जिसमें अन्तेवासी अपना समग्र विकास कर सकते हैं।
- **समर्थ गुरुसत्ता एवं आचार्यगण**-परम श्रद्धेय स्वामी जी महाराज व परम श्रद्धेय आचार्य जी के पावन सान्निध्य में आचार्यों की एक श्रेष्ठ शृंखला जो अन्तेवासियों को योग आयुर्वेद संस्कृत एवं आधुनिक शिक्षा में निपुण बनाने में पूर्ण समर्थ है।
- **दिनचर्या**-प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त में जागरण से लेकर योग, यज्ञ, स्वाध्याय, सेवा, क्रीड़ा एवं संध्योपासना के समग्र मिश्रण से निर्मित उत्तम दिनचर्या अन्तेवासी की साधना को पवित्र एवं सुदृढ़ बनाती है।
- **सात्विक आहार**-गुरुकुल में अन्तेवासियों के लिए शुद्ध घी, दूध एवं फलों से युक्त पौष्टिक व ऋतु अनुकूल आहार की सुविधा है, जो उनके शारीरिक व मानसिक विकास में पूर्ण रूप से सहायक है।

- **अन्य गतिविधियाँ**—अन्तेवासियों की प्रतिभा के समग्र विकास के लिए गुरुकुलम् में क्रीड़ा, संगीत एवं शास्त्र प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जाता है।

गुरुकुल किशनगढ़ घासेड़ा, रेवाड़ी, हरियाणा

'वीरभूमि हरियाणा' राज्य के रेवाडी नगर से लगभग 10 किमी० दूर प्रकृति की नैसर्गिक व रमणीक गोद में 20 एकड़ भूमि पर स्थापित गुरुकुल किशनगढ़-घासेड़ा विश्व में भारतीय सभ्यता संस्कृति के धवल-कीर्ति ध्वजवाहक आयुर्वेदाचार्य वेदाचार्य व्याकरणी परम पूज्य श्रद्धेय योगर्षि स्वामी रामदेव जी महाराज व परम श्रद्धेय आचार्य बालकृष्ण जी महाराज के दिव्य व पुनीत संरक्षण में तीव्र गति से उन्नति की ओर अग्रसर है। यह गुरुकुल किशनगढ़ और घासेड़ा ग्रामों के धार्मिक, संस्कृत व संस्कृतिभक्त, दानी महानुभावों द्वारा प्रदत्त 20 एकड़ भूमि में अवस्थित है। इसकी स्थापना 14 जनवरी, 1979 को मकर-संक्रान्ति के पावन अवसर पर महाशय हीरालाल आर्य जी के प्रयास से हुई। तत्पश्चात् सन् 1989 से गुरुकुल का संचालन करने

वाले तपोनिष्ठ, वेद व वैदिक संस्कृति के प्रति सर्वात्मना समर्पित स्वर्गीय महात्मा धर्मवीर जी महाराज व गुरुकुल की कार्यकारिणी समिति ने सन् 2002 को श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ, वीतराग परम पूज्य श्रद्धेय आचार्य श्री बलदेव जी महाराज के परम शिष्य, योगर्षि परम श्रद्धेय स्वामी रामदेव जी महाराज के दिव्य-पावन कर कमलों में गुरुकुल का सम्पूर्ण संचालन व संरक्षण व्यवस्था प्राप्त है जिसने, इस पुनीत यज्ञ की एक चिर संचित बृहत् आहुति प्रदान की। तब से यह गुरुकुल हर क्षेत्र में दिन-दूनी और रात चौगुनी उन्नति कर रहा है। इस समय गुरुकुल में हरियाणा, राजस्थान, पंजाब, हिमाचल, बिहार, गुजरात, झारखण्ड, मध्यप्रदेश, दिल्ली, यू०पी० नेपाल, पं० बंगाल आदि 15 राज्यों के छात्र भी अध्ययनरत हैं।

परम पूज्य योग-ऋषि स्वामी रामदेवजी और परम श्रद्धेय आचार्य बालकृष्ण जी महाराज के दिव्य आशीर्वाद से उसका उद्घाटन 14 जनवरी, 1979 को हुआ था। 'गुरुकुल किशनगढ़-घासेड़ा एक आवासीय शैक्षणिक संस्थान है। हमारे पूर्वजों, ऋषि-मुनियों और आज के अति-सक्षम, वैज्ञानिक व्यावसायिक और सूचना प्रौद्योगिक सक्षम शिक्षा प्रणाली सम्पन्न प्राचीन 'गुरुकुलम् किशनगढ़-घासेड़ा' ज्ञान प्रदान करने की सदियों पुरानी परंपरा का दिव्य संगम है।

परम पूज्य योग-ऋषि स्वामी रामदेव जी और परम श्रद्धेय आचार्य बालकृष्ण जी के आध्यात्मिक और दिव्य मार्गदर्शन के तहत 'गुरुकुल किशनगढ़-घासेड़ा' अपने छात्रों का पालन-पोषण दिव्यता और आध्यात्मिकता के साथ-साथ अल्ट्रा-मॉडर्न शिक्षा विधि से अन्तर्गत करता है। गुरुकुल किशनगढ़-घासेड़ा का उद्देश्य पूरी तरह से जाग्रत और जागरूक विद्वानों को तैयार करना है, जिन्हें आध्यात्मिक ज्ञान और अति-आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान के संगत के माध्यम से तैयार किया जाएगा। गुरुकुल के छात्रों ने योग, वाद-विवाद और भाषण प्रतियोगिताओं के राष्ट्रीय स्तर के प्रदर्शन में अपना कद साबित किया है। विश्व स्तर के प्रशिक्षकों के साथ गुरुकुल के छात्रों का उत्साही व शानदार प्रशिक्षण कार्यक्रम हर क्षेत्र में सीखने के उनके उद्देश्य को प्राप्त करने में बहुत मदद करता है।

शिक्षक अभिविन्यास कार्यक्रमों के माध्यम से शिक्षकों को लगातार प्रशिक्षित किया जाता है ताकि वे ज्ञान प्राप्ति में अड़चनों के मूल कारणों की खोज कर सकें। छात्रों के साथ-साथ शिक्षक के कौशल को बढ़ाना गुरुकुल किशनगढ़-घासेड़ा का मुख्य उद्देश्य है। वांछित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए शिक्षकों को अति-आधुनिक शिक्षण सहायक सामग्री और नवीन तरीकों से सुसज्जित किया जा रहा है। हमारे पास गुरुकुल किशनगढ़-घासेड़ा में रचनात्मक दृष्टिकोण के साथ स्मार्ट कक्षाएं हैं, जो कक्षाओं को जीवत बनाने के साथ-साथ आनददायक बनाती है। ज्ञानार्जन के क्षेत्र में थोड़े कमजोर शिक्षार्थियों की मदद के लिए सहायक कक्षाओं का संचालन भी किया जाता है।

'गुरुकुल किशनगढ़-घासेड़ा' छात्रों को दादाजी, दीदीजी और भैयाजी की निगरानी में एक विश्व स्तरीय वातानुकूलित छात्रावास सुविधा उपलब्ध करता है। सभी छात्रों को उनके बेहतर जीवन के अनुकूल आहार, आहार विशेषज्ञों के परामर्शानुसार दिया जाता है।

संगठन के मानकों को बनाए रखने के लिए समय-समय पर निर्देशक और प्राचार्य द्वारा शास्त्रीय और शास्त्रार्थ गतिविधियों का अच्छी तरह से पर्यवेक्षण किया जाता है। समय-समय पर पर्यवेक्षण और निरीक्षण यह सुनिश्चित करता है कि स्कूल में हर गतिविधि मानक के अनुसार पूर्वनिर्मित हो।

किशनगढ़ घासेड़ा में गुरुकुलीय विशेषताएँ

- **शुद्ध शान्त व नैसर्गिक परिवेश:**—आपका यह गुरुकुल सभी प्रकार के प्रदूषण व कोलाहल से मुक्त प्रकृति के पवित्र व सुरम्य गोद में स्थित है। यहाँ ब्रह्मचारी सभी प्रकार की चिन्ताओं व समस्याओं से दूर रहकर सौहार्दपूर्ण परिवेश में अपना सर्वांगीण विकास कर सकता है।
- **उच्च शिक्षा, संस्कृत, संस्कृति व संस्कार**—गुरुकुल में प्राचीन व आधुनिक शिक्षा का समयानुकूल समन्वय करके विद्यार्थी का सर्वांगीण विकास कराने का पूर्ण प्रयत्न किया जाता है। यहाँ

संस्कृत धर्म-शिक्षा, सन्ध्या-यज्ञ प्रवचनादि के माध्यम से विद्यार्थी में जहाँ एक ओर श्रेष्ठतम भारतीय संस्कार दिये जाते हैं, वहाँ दूसरी तरफ अंग्रेजी, गणित, विज्ञान, कम्प्यूटरादि की शिक्षा के द्वारा उन्हें वर्तमान समाज में स्वावलम्बी सम्मानित व सम्पन्न जीवन जीने के योग्य भी बनाया जाता है। हमारा पूर्ण प्रयास है कि हमारा विद्यार्थी अपनी श्रेष्ठतमी तथा ज्येष्ठतमी, सभ्यता-संस्कृति के प्रति निष्ठा व गौरवबोध से युक्त होकर विकास के चरम सौपान को प्राप्त कर सके।

- **योग्य समर्पित व निष्ठावान आचार्यगण**—अर्थ व स्वार्थ प्रधान इस युग में हम सगर्व व सहर्ष घोषित करते हैं कि हमारे अध्यापक व व्यवस्थापक बन्धु अत्यन्त योग्य, कार्य-कुशल, शिक्षा-प्रेमी, समाज, राष्ट्र संस्कृति व मानवता के प्रति सर्वात्मना समर्पित हैं। सभी अपने-अपने विषयों के मर्मज्ञ व गवेषक है। अत: निश्चित रूप से हम मानव-निर्माण के इस पुनीत कार्य में अवश्य ही सफल होंगे।
- **वसुदेव कुटुम्बकम्**—इस वैदिक उदात भावना के अनुरूप ब्रह्मचारियों का संरक्षण व संवर्द्धन जाति, वर्ग, भाषा, प्रान्त, मत आदि के भेदभाव के बिना किया जाता है। विद्यार्थियों में परस्पर प्रेम, सहयोग, सामंजस्य शिष्टाचार, सौम्यता आदि मानवीय गुणों का विकास कराया जाता है। इसके साथ-साथ उनमें अपनी सभ्यता, संस्कृति, राष्ट्र व मानवता के प्रति निष्ठा व कर्तव्य-भाव भी विकसित करने का प्रयास किया जाता है।
- **गुरु-शिष्य परम्परा**—गुरुकुलीय परम्परा के अनुसार यहाँ आचार्य और विद्यार्थी के बीच गुरु-शिष्ट का पवित्र व आत्मीय सम्बन्ध है। गुरुकुल अर्थात् गुरु का परिवार जिसमें गुरुजन शिष्य को माता-पिता के समान स्नेह देते हुए उनके कल्याण के लिए सर्वदा तथा सर्वथा प्रयत्नशील रहते हैं। ब्रह्मचारीगण भी उन्हें पूरा सम्मान देते हैं। आज स्कूल-कॉलेजों में टीचर-स्टुडेण्ट के बीच बद से बदतर होते जा रहे सम्बन्धों के लिए गुरुकुलीय परम्परा अनुकरणीय है।

- **सेवा-प्रकल्प**—विद्यार्थियों में सेवा-भाव, कार्य-कुशलता, कर्मठता और स्वावलम्बनादि गुणों के विकास हेतु गुरुकुल में आधे घण्टे का सेवा-कार्य भी रखा गया है। इसमें विद्यार्थी, सफाई, बागवानी आदि विविध कार्यों को करते हैं।
- **निःशुल्क शिक्षा**—वैदिक परम्परा के अनुरूप यहाँ भी शिक्षा का कोई शुल्क नहीं लिया जाता है। अभिभावकों से केवल विद्यार्थियों के भोजन, आवास, पुस्तकालय आदि के लिए अल्प मात्रा में ही शुल्क लिया जाता है।
- **शुद्ध, पौष्टिक व ऋतु के अनुसार भोजन**—यहाँ गुरुकुल में विद्यार्थियों को शुद्ध, पौष्टिक व ऋतु के अनुकूल भोजन दिया जाता है। गुरुकुल की अपनी गोशाला से शुद्ध दूध, खेतों से सब्जी, फलादि भी प्राप्त होता है। विविध पर्वों व विशिष्ट अवसरों पर विशेष भोजन तथा समय-समय पर फलाहार की भी व्यवस्था है।
- **आवासीय व्यवस्था**—यहाँ विद्यार्थियों के निवास हेतु उचित सुविधाओं से युक्त छात्रावास है। छात्रों को योग्यतानुसार पृथक-पृथक छात्रावास में रखा जाता है।
- **योगासन, प्राणायाम, ध्यानादि का अभ्यास**—यहाँ विद्यार्थियों को प्रतिदिन आसन, प्रायाणाम ध्यानादि का अभ्यास करवाया जाता है। जिससे विद्यार्थी शारीरिक, मानसिक व आत्मिक रूप से सुदृढ़ होकर भौतिक व आध्यात्मिक दृष्टि से अपना सुखद व सफल जीवन यापन कर समाज को भी लाभान्वित कर सके।
- **चिकित्सा-व्यवस्था**—गुरुकुल में प्राथमिक उपकार की व्यवस्था के साथ अस्वस्थ विद्यार्थियों हेतु रेवाड़ी में वैद्य व पतंजलि औषधालय की भी व्यवस्था है।
- **कम्प्यूटर शिक्षा व विज्ञान प्रयोगशाला**—प्रयोगशाला इस समय गुरुकुल में कम्प्यूटर भौतिक विज्ञान, जीव विज्ञान, रसायन विज्ञान तथा भूगोल की प्रयोगशालाएँ भी हैं, जहाँ विद्यार्थीगण आचार्य जी के निरीक्षण व निर्देशन में प्रयोग करते हैं।
- **संगीत शिक्षा**—गुरुकुल में विविध सांस्कृतिक प्रतियोगिताओं हेतु

छात्रों को विशेष संगीत शिक्षा भी प्रदान की जाती है।

- **पुस्तकालय तथा वाचनालय**—गुरुकुल में प्रार्थना वैदिक आर्ष साहित्य आधुनिक साहित्यों से सुसज्जित एक पुस्तकालय तथा वाचनालय भी है। जहाँ विद्यार्थी स्वाध्याय के द्वारा अपना ज्ञान-विज्ञान बढ़ाते हैं। इसके अतिरिक्त विविध समाचार-पत्र व पत्रिकायें भी मंगवाई जाती है।
- **निर्धन**:-किन्तु मेधावी छात्रों हेतु पारितोषिक के रूप में छात्रवृत्ति भी प्रदान की जाती है।
- **शैक्षणिक ऐतिहासिक, सांस्कृतिक-प्रौद्योगिकी स्थलों का परिदर्शन**—विद्यार्थियों में ज्ञानवर्द्धन व अपनी सभ्यता-संस्कृति इतिहास आदि का ज्ञान, निष्ठा व गौरव-भाव भरने के उद्देश्य से विविध धार्मिक, शैक्षणिक, ऐतिहासिक, प्रौद्योगिकी सम्बन्धी स्थानों का परिभ्रमण भी कराया जाता है।
- **कौशलवर्धिनो व वाग्वर्धिनी सभा**—छात्रों के अन्दर वैदिक चेतना को जगाने तथा निर्भीक व सही ढंग से विचारों की अभिव्यक्ति को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से मासिकी तथा विविध पर्व, महापुरुषों के जन्म व निर्वाण दिवस आदि अवसरों पर सभा आयोजित की जाती है।
- **सामाजिक राष्ट्रीय उत्सवों व वैदिक संस्कारों का ज्ञान**—गुरुकुल में होली, दीपावली, मकर-सक्रान्ति, श्रावणी (रक्षा बन्ध न) आदि को विशुद्ध वैदिक स्वरूप से मनाते है तथा छात्रों को जन्म नामकरण उपनयन आदि संस्कारों का भी व्यवहारिक ज्ञान कराया जाता है।
- **साधु**—बच्चों, विद्वानों आदि प्रबुद्धजनो द्वारा मार्ग-दर्शन: परम पूज्य श्रद्धेय योगर्षि स्वामी रामदेव जी महाराज की असीम कृपा से गुरुकुल में साधु-सन्तों, विद्वानों, प्रशासनिक अधिकारियों आदि प्रबुद्धजनों का प्राय आगमन होता रहता है। अत: उनका मार्ग-दर्शन भी समय-समय पर विद्यार्थियों को मिलता रहता है।
- **वस्तु भण्डार**—गुरुकुल में वस्तु भण्डार भी है, जहाँ से छात्रों को आवश्यक वस्तुयें उचित मूल्य पद दी जाती है।

प्रेरक प्रतियोगिताएँ

प्रत्येक वर्ष सत्र के दौरान विभिन्न खेल-कूद प्रतियोगिताओं के साथ प्रत्येक माह के अन्तिम दिवस को विभिन्न विषयों पर आधारित प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता का आयोजन भी किया जाता है तथा विजयी छात्रों को उत्सावहर्धन हेतु पारितोषिक प्रदान किया जाता है जिससे अन्य छात्रों को आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलती है।

गुरुकुल घासेड़ा में छात्रों की दिनचर्या-प्रकरण

गुरुकुलीय परम्परा में विद्यार्थी को गुरुकुल में ही आचार्यों के संरक्षण में रहना पड़ता है। अत: यहाँ उनको नियामित व निश्चित दिनचर्या का पालन करना अनिवार्य है।

पाठ्यक्रम

- केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा समय-समय पर जारी निर्देशानुसार।
- अनुशासन स्वच्छता आदि विषयों का भी ग्रेड के रूप में मूल्यांकन किया जायेगा।
- छात्र द्वारा किसी भी परीक्षा में अनुपस्थित छात्र की परीक्षा नहीं ली जायेगी।
- किसी कारणवश परीक्षा में अनुपस्थित छात्र की परीक्षा लेना प्रधानाचार्य की कृपा पर निर्भर है।

डी.ए.वी. शिक्षा आन्दोलन

स्वाधीनता के पवित्र यज्ञ में जहाँ गुरुकुलों की आहुतियाँ पड़ी हैं वहीं डी.ए.वी. शिक्षा संस्थानों का भी कम हिस्सा नहीं है। महात्मा हंसराज, लाला लाजपत राय व पं. गुरुदत्त विद्यार्थी डी.ए.वी. शिक्षा आन्दोलन के संस्थापक रीढ़ की हड्डी थे। 1885 में एक सर्वप्रथम डी.ए.वी. स्कूल लाहौर में खुला और 1886 में वही डी.ए.वी. कॉलेज बन गया। 1 जून 1886 में डी.ए.वी. कॉलेज प्रवन्ध कर्तृ सभा का गठन हुआ जिसके प्रधान

संस्थापक महात्मा हंसराज ही थे। वे स्कूल व कॉलेज के प्रथम अवैतनिक आचार्य रहे जिनके तप व त्याग सदा के लिए डी.ए.वी. में अमर रहेगा। त्यागमूर्ति महात्मा हंजराज की देखरेख में यह संस्था आगे बढ़ने लगी और आज तो इस प्रबन्ध कर्तृ सभा के अन्तगत लगभग 900 छोटे-बड़े स्कूल व 75 कॉलेज तथा एक डी.ए.वी विश्वविद्यालय, जालन्धर है। लगभग 20 तो प्रोफेसनल और टेक्नोलोजिकल संस्थाएं हैं जो होस्पिटल, डेन्टिस्ट्री, फार्मेशी, इंजिनियरिंग, शिक्षक प्रशिक्षण आदि अनेक विधाओं में बँटी हुई हैं। डी. ए. वी. की शाखाएं मॉरिशस, फिजी, सिंगापुर, नेपाल, अमेरिका आदि देशों में भी स्थापित हैं। महर्षि दयानन्द की मृत्यु के बाद जो आधुनिक शिक्षा के पक्षधर थे, उन आर्यसमाज के नेताओं नें दयानन्द के नाम पर यह शिक्षा-संस्थान बनाया और विचार किया कि यहीं पर महर्षि दयानन्द के धार्मिक, सामाजिक व राष्ट्रीय विचारों को बच्चों में संस्कार के रूप में डाला जाए और साथ में आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से ओत-प्रोत शिक्षा भी दी जाए ताकि देश-विदेश को हर विषय के योग्य शिक्षक, इंजिनियर, डॉक्टर, वैज्ञानिक, वकील, जज आदि और योग्य राष्ट्र सेवक भी मिल सकें; इसका पूरा नाम ' दयानन्द ऐंग्लो वैदिक' है। सीधे शब्दों में कहें तो सभी क्षेत्रों में योग्य व चरित्रवान स्त्री-पुरुष यहाँ से निकलें और राष्ट्र की सेंवा करें जिससे हमारा राष्ट्र समुन्नत हो। मुझे (आचार्य उमेश) भी इस संस्था से जुड़ने का मौका मिला जब मुझे 1995 में डी.ए.वी. प्रबन्ध कर्तृ सभा के अन्तर्गत चलने वाली एक महत्त्वपूर्ण **'दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय'** नामक संस्था का प्राचार्य बनने का सुअवसर प्राप्त हुआ। स्मरण के आधार पर मैं कह सकता हूँ कि इस प्रबन्ध कर्तृ सभा के प्रधान भी प्रारम्भ से ही महात्मा हंसराज जी महाराज के बाद बड़ी ही होनहार व्यक्तित्व के हस्ताक्षर रहे हैं। जस्टिस मेहर चन्द महाजन, डॉ. सूरज भान, प्रोफेसर वेदव्यास, बाबू दरबारी लाल, श्री टी. मेहता, पद्मश्री श्री जी.पी. चोपडा जैसे अनुभवी व्यक्ति रहे हैं जो अब इस दुनियाँ में तो नहीं हैं पर इनका व्यक्तित्त्व व कार्य सदैव डी.ए.वी. में बोलता रहेगा। और अब वर्त्तमान में पद्मश्री श्री पूनम सूरी इस महत्त्वपूर्ण संस्था के प्रतिष्ठित प्रधान हैं जिनकी देखरेख में लगभग एक लाख प्राचार्य, प्राध्यापक व अन्य प्रशासनिक अधिकारी कर्मचारी आदि कार्यरत

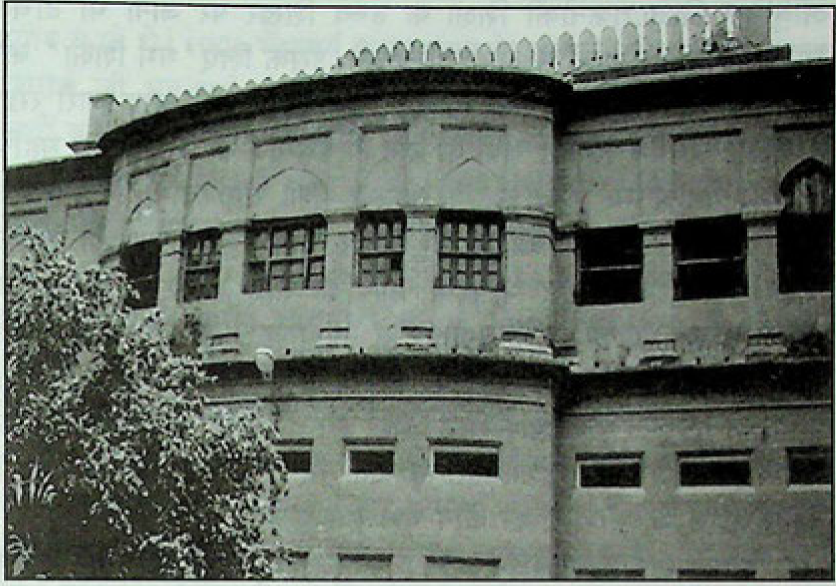

हैं। सम्प्रति अर्थात् भारत-पाकिस्तान विभाजन के बाद इस विशाल शिक्षा रूपी वटवृक्ष का मूल/जड़ रूप केन्द्रीय कार्यालय दिल्ली में इस पते पर स्थित है—'डी.ए.वी. कॉलेज प्रबन्धकर्तृ सभा, चित्र गुप्ता रोड, नई दिल्ली—11055। इस संस्था के अन्तगत् दो उपदेशक महा विद्यालय भी हैं जिसका सम्बन्ध आर्य प्रादेशिक सभा मन्दिर मार्ग नई दिल्ली से है। एक 'दयानन्द ब्राह्म महा विद्यालय हिसार जो 1956 में हिसार में लाहौर से स्थानान्तरित हो पुन: स्थापित हुआ और दूसरी 'आर्ष **उपदेशक महाविद्यालय टंकारा**' नाम से टंकारा (गुजरात) में 'टंकारा गुरुकुल ट्रस्ट' के अन्तर्गत संचालित है, वह भी आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मन्दिर मार्ग नई दिल्ली से जुड़ी हुई है।

स्वाधीनता संग्राम में डी.ए.वी. का योगदन—पूर्व में हम विचार कर आए हैं कि गुरुकुल और आधुनिक शिक्षा दो तरह से शिक्षा देने की परिकल्पना की गई। आर्यसमाज के पूर्व नेता लाला लाजपत राय, पं. गुरुदत्त विद्यार्थी व महात्मा हंसराज के प्रयासों से 1886 में ही डी.ए.वी. स्कूल बना जो बाद में जल्दी ही कॉलेज में परिणत हो गया। शुरू में डी.ए.वी. स्कूल में भी आर्य पाठ्यक्रम ही रखा गया था। भाषा भी आर्य भाषा/हिन्दी भाषा में ही सारी शिक्षा दी जाती थी। पर बहुत ही जल्दी

आधुनिक शिक्षा/तकनीकी शिक्षा के उच्च शिखर पर जाना भी उचित समझा गया और छात्रों में आर्य चरित्र बने, इसके लिए 'धर्म शिक्षा' को अनिवार्य रखा जाना प्रारंभ से ही जो निश्चित था उसी तरह जारी रखा गया। पर लगभग 10-12 वर्षों के बाद आर्यसमाज के उभरते नेता महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त स्वामी महात्मा मुँशी राम/स्वामी श्रद्धानन्द ने आर्ष पद्धति से गुरुकुल खोलने का विचार किया जिसमें पूर्णतया वैदिक शिक्षा-पद्धति, आवासीय व्यवस्था आदि के साथ 1902 में हरिद्वार में प्रथम गुरुकुल खोला। यद्यपि 1899 से ही गुरुकुल के लिए दान आदि माँगने का अभियान चल पड़ा था और शीघ्र ही उन आर्यों के सफल प्रयास से गुरुकुल बन गया। अस्तु! यहाँ हम डी.ए.वी कॉलेज लाहौर के स्वाधीनता संग्राम में सहभागिता की बात कर रहे हैं तो त्यागमूर्ति आर्य नेता हँसराज के योगदान को कौन भूल सकता है!

इनकी अनथक परिश्रम और निष्ठायुक्त कार्य से चरित्रवान लोगों का विकास हो रहा था। प्रारंभिक स्कूल के प्रथम वर्ष के परिणाम से अंग्रेजी शिक्षाधिकारी प्रभावित हुआ। जब इनके प्राचार्यत्व में छात्रों ने सारे स्कॉलरशीप जिते तो डी.पी.आई से इन्हें वधाई-पत्र मिला जिसके उत्तर में महात्मा जी ने धन्यवाद पत्र लिखा। उसी धन्यवाद-पत्र के आधार पर ही बिना निवेदन किये ही सरकार ने स्कूल की मान्यता दे दी। यह तो इनके स्वच्छ चरित्र का श्रेष्ठ प्रमाण पत्र था। धन्य थे महात्मा जी। विश्वविद्यालयीय मान्यता के लिए प्रार्थना करना या संस्था-संचालन के लिए सरकारी अनुदान लेना आदि सब महात्मा जी अपनी शान के खिलाफ मानते थे। परिणामत: समय आने पर डी.ए.वी. कॉलेज की मान्यता सरकार को स्वत: ही देनी पड़ी। क्या यह आर्य सामाजिक नेता का कम गौरव था? यद्यपि आर्यसमाज एक सरकारी राज-द्रोही माना जाता था क्योंकि आर्यसमाज स्वदेश के लिए स्वाधीनता-संग्राम की अगली पंक्ति में सर्वत्र खड़ा था। -19.4.64 आर्य जगत—' प्रि. भगवान दास जी का 'हंसराज जन्मदाता नामक लेख से।

उसी पत्र के 10.1.1965 में प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु का एक लेख निकला 'इतिहास में हंसराज, जिसके अनुसार महात्मा हंसराज जी एवं डी.ए.वी कॉलेज के अन्य प्राध्यापक भी स्वदेशी वस्तुओं व वस्त्रों का

प्रयोग करते थे। 1906 में आर्य कुमार सभा के छात्र ने जिसके मंत्री लाला देशराज जी भूत् पूर्व मंत्री आर्य प्रादेशिक सभा, जालन्धर थे, स्वदेशी वस्त्रों की आर्यसमाज अनारकली लाहौर में एक दुकान खोली थी जो पूरे पंजाब में अपने ढंग की एक ही थी। वहाँ एक दिन अंग्रेजी साबुन का प्रचार करते हुए एक एजेंट ने साबुन की टिकिया छात्रों को मुफ्त बांटने लगा। पर उस आर्य कुमार ने उस साबुन को लेकर फेंक दिया और सामने से देशी साबुन खरीदकर नहाया। उस आर्यकुमार ने स्वदेशी वस्तुओं का मान किया। यह उसका स्वदेश का प्यार और त्याग ही तो था। ऐसे स्वदेशी स्वाभिमानी से हमारा सिर ऊँचा उठ जाता है।

कॉलेज के परिसर में क्रांतिकारी प्रो. भाई परमानन्द जी व आर्य नेता लाला लाजपत राय का आना-जाना बना ही रहता था जिनवें कारण वहाँ के छात्रों व अध्यापकों में राष्ट्रीयता गहरा छाप रहना स्वाभाविक ही था। निम्न प्रकरण इसकी पुष्टि के लिए पर्याप्त होगा।

कॉलेज का छात्रावास व पाठशाला पास-पास ही होने से छात्र कक्षा के लिए पैदल ही पंक्तिवद्ध होकर अनुशासन में जाया करते थे। उन्हें यह पसन्द नहीं था कि उनकी पंक्ति के बीच कोई तांगा वाला या अंग्रेज घुड़सवार आ जाए और पंक्तिवद्धता-अनुशासन को भंग करे। पर एक अंग्रेज बरिस्टर का बेटा जिनका घर भी सामने की गल्ली में ही था, घोड़े पर सवार होकर अपने घमंड में चूर पंक्ति के बीच आ गया जिससे पंक्ति भंग हो गई और घोड़े के डर से कुछ छात्र भी इधर-उधर बिखर गए। उस अवस्था को बरिस्टर एच. देख कर इठला रहे थे तब छात्रों द्वारा अधिष्ठाता से मॉनिटर की लापरवाही की शिकायत की कि इसकी लापरवाही से हमें आज अपमान सहना पड़ा तो मॉनिटर भी स्वदेश के लिए स्वाभिमानों से भरा था, उसने अपना दोष स्वीकार कर के कहा कि हमें एक मौका और दिया जाए। दूसरे दिन फिर वही घटना बरिस्टर के लाडले ने दुहराई। मॉनिटर द्वारा उसे ऊँच्च स्वर सी मना किया गया फिर भी वह अपने घोड़े को तेज दौड़ाते आगे बड़ा। उसने छात्रों को अपशब्द भी कहे। बस क्या था, उस आर्ययुवा मॉनिटर ने अपना लोहे जड़ी एड़ी व तलवे वाले गामाशाही जुता उतारा तथा बिना किसी डर के उस बरिस्टर के बच्चे के मुँह पर जोर से जुता जड़ दिया जिससे उसके गाल में लोहे

वाली एड़ी का अर्द्ध वृत का निशान पड़ गया। बांका बनता सवार रोता हुआ अपने बाप के पास पहुँचा। बरिस्टर भी उस केस को बगल में रहते आर्य नेता व वकील लाला लाजपत राय के पास शिकायत लेकर आया। लाला जी ने कहा कि जाँच करके ही बाताऊँगा और आश्वासन दिया कि आक्रमणकारी को उचित दंड मिलेगा। सायंकाल लाला जी छात्रावास जाकर पूरा विवरण लिया और जब जाना कि पहली बदमाशी बरिस्टर के बेटे की है, साथ में जाना कि हमारे छात्र ने हिन्दुस्तानी जुते से अंग्रेज अपराधी बिगैड़ल बेटे को मारा तो अच्छा किया। मॉनिटर की वीरता पर उसके पीठ थपथपाई और उधर बरिस्टर को कहा कि बात को जाने दिया जाए, पर उसके बच्चे के गाल पर जुते की गहरी चोट को देखकर कहा कि छात्रावासीय मॉनिटर को अपनी गलती के लिए खेद प्रकट करना चाहिये। लालाजी ने चतुराई से माँफी नामा तैयार किया—**'मुझे खेद है कि मैंने तुम पर देशी जुते से प्रहार किया'**। इस पर ही बरिस्टर संतुष्ट हो गया पर पता नहीं कि उसने लाला जी द्वारा तैयार किया हुआ इस प्रतिशोध के व्यंग भरे माँफी नामे को समझा भी या नहीं पर काम बन गया जैसे लाठी भी न टूटी और साँप भी मर गया।--लाला लाजपत राय जीवन चरित्र पृ. 492-93 से लिया हुआ।

कम वेतन पर काम—महात्मा हंसराज ने ऐसा संस्कार चलाया कि कुछ त्यागी व तपस्वी कार्यकर्त्ता डी.ए.वी. से जुड़ें, भाव था कि इसके लिए आजीवन सदस्य बनने तथा अल्प वेतन पर काम करके भी डी.ए.वी. की अच्छी शिक्षा को आगे बड़ाना आदि की प्रेरणा बनी रहे। इससे काफी ऐसे युवक आगे आए जो उच्चे तन्ख्वाह की सरकारी नौकरी छोड़कर भी डी.ए.वी. में कार्य करके अधिक गौरव अनुभव करने लगे। पीएच.डी. की उपाधि वाले भी केवल 75 रुपये मासिक वेतन पर कार्य करने लगे तब सरकारी ऑफिसर ऐसे हिन्दुस्तानी लोगों को अधिक वेतन देने के लिए तैयार रहते व इन्हें खोजते-फिरते रहते थे तब भी आर्यसमाज की मजबूत संस्कार से संस्कारित देशवासी युवा ऐसी नौकरियों को ठुकरा दिया करते थे। इससे सरकार को अच्छे कर्मचारी नहीं मिलते पर स्वाधीनता अभियान को आगे बड़ाने में हमारे भारतीय ऐसे त्यागी पढ़े-लिखे लोग अपना सर्वस्व सहयोग देने लगे।

1942 के आन्दोलन में डी.ए.वी. कॉलेज लाहौर-इसके अध्यापकों व छात्रों के साथ सरकार ने बहुत ही बुरी तरह व्यवहार किया। अच्छे-अच्छे घरानों के बच्चे भी सरकारी पुलिस से बुरी तरह पीटते रहे। वहाँ होस्टल में पुलिस चली जाती थी और अध्यापकों व छात्रों को खोज-खोज कर पीटना शुरू कर देती थी। एक बार तो प्रो. भगवान दास जी को पीटने के लिए उनकी कक्षा में पुलिस गई पर किसी और प्रोफेसर को भगवान दास समझकर खूब पीटा, यद्यपि वह चिल्लाता रहा कि मैं भगवान दास नहीं हूँ पर निर्मम पुलिस ने कुछ न सुना। कालान्तर में भगवान दास जी अम्बाला डी.ए.वी. कॉलेज के प्राचार्य बन गए थे। सरकारी ऑफिसरों को आर्य समाजियों व डी.ए.वी. के इन सब लोगों से खिज थी क्यों कि ये सब स्वाधीनता के लिए अंग्रेजों के खिलाफ हमेशा आवाज उठाते ही रहते थे। जालिम अंग्रेजों ने तो इन अध्यापक और छात्रों के राष्ट्रीय भावों को दबाने व इनके स्वाभिमानों को कुचलने की बुरी मनसा से मई-जून के महिनों में भी कड़ी तपती रेतों पर मीलों दूर तक नंगे पांव चलाती थी ताकि ये डरें पर तब भी ये आर्य वीर स्वाधीनता के मार्ग को नहीं छोड़ा। कानपुर डी.ए.वी. के अनेक प्राध्यापक व छात्र इस आन्दोलन में मारे गए थे तथा अनेक जेलों में कड़ी यातनाओं के शिकार भी हुए।

पूना में एक राष्ट्रीय भावनाओं को बढ़ाने के लिए बहुत ही प्रसिद्ध 'फर्गूसन कॉलेज' के नाम से प्रसिद्ध संस्था थी जहाँ पर छात्रों को स्वाधीनता की पवित्र राष्ट्रीय भावनाएं दी जाती थी। इसी तरह राष्ट्र वीर लाला लाजपत राय ने अपने साथियों के सहयोग से 'नेशनल स्कूल व कॉलेज' बनाए थे जिनका सरकारी विश्वविद्यालयों से कोई सम्बन्ध न था। इनकी अपनी डिग्रियाँ थी। यहाँ सब क्रांतिकारी भावनाओं से ही पढ़ते थे। यहीं पर पं. जयचन्द्र जी द्वारा राष्ट्रीय संगठन बना जिससे पंजाब, बंगाल, महाराष्ट्र आदि के क्रांतिकारी वीर नेताओं से सम्बन्ध बनाया जाता था। इस कारण यह संस्था अंग्रेजों की क्रूरता का सदैव शिकार रहा। बाद में दुर्भाग्य से अर्थाभाव व अंग्रेजों के दमन के वजह से बन्द हो गई।

लाला लाजपत, पंजाब नेशनल बैंक, भगतसिंह व भगवती भाई का जुड़ना प्रकरण-

लाला लाजपत राय ने सरकारी तिजोरी को कमजोर बनाने व भारतीय लोगों की आर्थिक स्थिति बेहतर करने के ख्याल से 'पंजाब नेशनल बैंक' की स्थापना की थी। इससे भारतीय लोगों को कई दिशाओं में मदद करने की योजनाएं थीं। धीरे-धीरे यह बैंक आर्य समाजियों की संस्था कहलाने लगी। इसके डायरेक्टर म. हंसराज के छोटे पुत्र लाला योधराज जी थे जो इसी बैंक के वजह से करोड़पति बन गए थे। उन्होंने 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' को एक लाख की मोटी धन राशि दान देकर अपनी प्रगाढ़ देश भक्ति का परिचय दिया था।

देश भक्त भगतसिंह ने तो एक बार इस बैंक को लूटने का विचार बनाया था क्योंकि उन्हें स्वाधीनता संग्राम के अभियान के लिए धन की आवश्यकता पड़ी पर इस बैंक की राष्ट्रीय भावनाओं को जानकर अपना विचार बदल लिया। भगतसिंह के शब्दों में ही जानिए—

'**भगवती भाई** ने तो इस योजना का विरोध नीति की दृष्टि से किया था, पंजाब नेशनल बैंक को लाहौर के लोग खासकर आर्यसमाजी जगत् राष्ट्रीय संस्था माने बैठे थे, भगवती भाई का कहना था कि डकैती करनी है तो किसी दूसरे बैंक में की जानी चाहिये।' सिंहावलोक भाग 1 पृ. 156. श्री यशपाल क्रांतिकारी से उद्धृत इस तरह राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए आर्य समाजियों ने जो अपने त्याग, बलिदान व सच्ची निष्ठा का जो परिचय दिया है वह इन सब वृतान्तों से स्पष्ट ही जाहिर होता है। विस्तार ज्ञान के लिए सम्बन्धित इतिहास आदि साहित्य पढ़ सकते हैं।

आर्य समाजियों के साथ ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा खुलंखुला दुर्व्यवहार-यह तो निर्विवाद है कि आर्यसमाज की स्थापना के बाद ही से आर्यसमाज के नेता ब्रिटिश सरकार के विद्रोही बन गए और अंग्रेजी सत्ता को भारत से उखाड़ फेंकने का संकल्प जन मानस में फैलाने लगे। महर्षि दयानन्द के राष्ट्रीय विचारों का प्रभाव सब आर्यसमाज के लोगों पर ही नहीं अपितु प्राय: सभी भारतीयों पर गहरे ढंग से पड़ा। लाला लाजपत राय के भारतनिर्वासन के बाद तो आर्यों के मानो खून खौलने लगा और हर संभव अंग्रेजों से लड़ने को सब तैयार हो गए। स्वामी श्रद्धानन्द जी अपनी पुस्तक ' कल्याण मार्ग का पथिक' पृ.146 पर लिखते हैं—

'गरीब हिन्दुओं को वाग्युद्ध में सदा पछाड़ने के अभ्यासी पादरियों को जब आर्यसमाज में (संस्कारों व सिद्धान्तों में) पले बालकों तक से पटकनी पर पटकनी मिलने लगी तब से वे ओछी करतूतों पर उतर आए और उन्होंने सरकारी अधिकारियों को यह विश्वास दिलाना आरंभ कर दिया कि आर्यसमाज से क्रिश्चियन मत को तो कम भय है, (पर) अधिक भय गवर्मेंट को है।'

स्वामी श्रद्धानन्द का यह लिखना सर्वथा उचित है। आर्यसमाज के विद्वानों पर कार्य कर्त्ता नेताओं के तर्क के सामने तो क्रिश्चियन मत टिक ही नहीं पाता था अपितु आर्यसमाज में पले बच्चों के सामने भी वे मात खाने लगे तो अंग्रेजों को आर्य समाजियों से सीधा डर लगने लगा जिस कारण अंग्रेजी सरकार ने एक सोची-समझी चाल से आर्यसमाजी लोगों को परेशान करना शुरू कर दिया। चाहे आर्यसमाजी किसी भी पद पर नौकरी कर रहे थे, ब्रिटिश सरकार की उन पर कड़ी नजर ही नहीं बल्कि वेवजह उन्हें अपमान जनक तीखे वाणी-रूपी वाणों से भेदने लगे। पर वीर आर्य लोग भी स्वाधीनता संग्राम के लिए कटिवद्ध हो चले थे फलतः अंगेजों के सामने हर कठिनाई का सामना करना अपने कर्त्तव्य का हिस्सा मान लिया था। प्रमाण रूप में कुछ दास्तां यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं—

1. डी.ए.वी. के एक प्रिंसिपल लेखक डॉ. दीवानचन्द एम.ए. ने महात्मा हंसराज की जीवनी 'आर्यसमाज के त्यागी तपस्वी संत' नामक पुस्तक लिखी है। जब वे डी.ए.वी. कॉलेज लाहौर के छात्र थे तब की एक घटना उस पुस्तक के पृ. 32 पर ऐसा लिखा-

'मैं सड़क पर सायंकाल घूम रहा था, सामने से घोड़े पर सवार नाभा के वृद्ध राजा हीर सिंह आ रहे थे। वह अक्सर लहौर आते थे और मैं उन्हें पहचानता था। मैंने हाथ जोड़कर उनका उचित सत्कार किया। उन्होंने कहा -पढ़ते हो ? मेरे उत्तर 'हाँ' में देने पर पूछा कहाँ ? मैंने कहा—दयानन्द कॉलेज में। (राजा) कहने लगे कि हंसराज को कह देना कि अंग्रेजों के साथ उलझना नहीं चाहिये। पर फिर आगे बोला—जितने आर्यसमाजी तुम हो उनके लिए तो (उनकी रक्षा के लिए) मेरी फौज ही काफी है। राजा नाभा ने अपना संदेश एक दूत द्वारा भेजा जिससे यह पता चलता है कि उस समय का राजनैतिक महौल कैसा था।

2. सिख रेजिमेंट के एक सत्यनिष्ठ, कर्त्तव्य पारायण व परिश्रमी लेखक को अंग्रेजी सरकार ने इसीलिये पद से हटाया कि वह आर्यसमाजी था और बड़ी निर्भीकता से अंग्रेजों की गलत बातों का विरोध करता था। जबकि प्रारंभ में वह सबका प्रिय था पर अपनी आर्यवीरता के कारण ही अंग्रेजों की क्रूरता का शिकार बना।

3. जिला करनाल के तीन जेलदारों में एक आर्यसमाजी था तो उसकी डायरी में अंग्रेज अधिकारी ने नोट लिख दिया कि यह आदमी तो अच्छा है पर इसके उपर ध्यान रखना होगा क्योंकि यह आर्यसमाजी है।

4. एक डिप्टिकमीशनर ने एक नगर के प्रमुख पुरुषों को बुलाकर कहा कि यदि तुम्हारे यहाँ कोई आर्यसमाजी रहता है तो उसे निकाल दो। स्वयं उन प्रमुख पुरुषों में ही दो आर्यसमाजी थे, उन्होंने पूछा कि आर्य समाजियों के विरुद्ध क्या किया जाए? डिप्टिकमीशनर ने कहा कि कुछ करो, तुम्हारे विरुद्ध कोई कारवाई न की जाएगी। (फूट नीति)। वे (आर्यसमाजी) बोले कि आप स्पष्ट निर्देश करें तो उनका पालन किया जा सकता है। आप ही स्पष्ट कारवाई करने से डरते हैं तो फिर हममें यह साहस कहाँ? अर्थात् अंग्रेज स्वयं आर्यसमाजियों से डरा करते थे, पर द्वेष भावना पूरी रखते थे तथा कूटनीति व फूट नीति भरे चालों से बाज नहीं आते थे।

5. एक रेजिमेंट में एक आर्यसमाजी जाट थे। उन्हें यज्ञोपवीत उतारने को अंग्रेजों ने कहा। उसने मना कर दिया और जाट सभा में शिकायत की। जाट-सभा ने निवेदन किया कि उसे यज्ञोपवीत उतारने को वाधित न किया जाए, इससे अंग्रेज उस आर्य वीर से खार खाने लगे।

6. एक बड़ी रोचक बात आई कि एक मुसलमान ने यूरोपियन लेफ्टिनेंट को किसी वाद-विवाद में हरा दिया तो लेफ्टिनेंट ने कहा कि तुम आर्यसमाजी हो। उसने कहा- नहीं, मैं आर्यसमाजी नहीं, मुसलमान हूँ तो ऑफिसर ने कहा कि तुम मुसलमान आर्यसमाजी हो।

7. एक बार आर्यसमाज के प्रचारक पं. दौलत राम झांसी गए और वहाँ सिपाहियों को भी उपदेश दिया तथा उनसे अनाथालय के लिए चन्दा भी ले लाए। उन पर अभियोग चला दिया और दंड में कहा कि झांसी या उसके 5 मील के अन्दर रहने वाले जो लोग सरकार को 1000 से 2000

रुपये की आय पर कर देते हैं ऐसे दो पुरुषों की जमानत दिलाओ अथवा एक वर्ष का कठोर कारावास भुगतो। तो उन्हें झांसी में नये होने के कारण कारावास ही भुगतना पड़ा यद्यपि वे आगरा के अच्छे खाते-पीते परिवार से थे पर झांसी में उन्हें कोई साथ न दे सका।

8. एक बार जोधपुर में वायसराय को आना था। रास्ते में आर्यसमाज पड़ता था। पुलिस ने आर्य समाजियों को वैनर और झंडा उतारने को कहा पर आर्य समाजियों ने ऐसा करने से मना कर दिया, पर पुलिस ने ये दोनों चिन्ह अपने बल का प्रदर्शन से उतार दिये।

9. पंजाब के एक ब्रिगेड में आज्ञा दी गई कि सिपाही आर्यसमाज अथवा किसी राजनैतिक सभा में न जाया करें।

10. एक भारतीय रेजिमेंट के डॉक्टर को उसके ऑफिसर ने कहा कि तुम आर्यसमाज से या उसके लोगों से सम्बन्ध न रखो वरणा तुम्हें त्यागपत्र देना होगा। डॉक्टर द्वारा ऑफिसर की बात न मानने पर नौकरी से हाथ धोना पड़ा।

11. रोहतक में किसी ने ढिंढोरा पिटवा दिया कि आर्यसमाज मन्दिर सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया है। जब आर्यसमाज के प्रधान ने पूछा कि यह कैसे और क्यों हुआ? तब डिप्टिकमिशनर के कार्यालय ने लिखा कि ऐसा ढिंढोरा सरकारी आज्ञा से नहीं पीटा गया। फिर भी सरकार ने यह घोषणा तक नहीं किया कि ऐसा किसके कहने से हुआ। इससे यह प्रतीत होता है कि सरकारी पुलिस ने गैरजिम्मेदाराना किसी से ऐसी ढिंढोरा जानबुझ कर पिटवा दिया ताकि आर्यसमाज को घबराहट में डाला जाए।

12. शाहजहांपुर की जिला कचहरी में एक आर्यसमाजी काम करता था जिसका नाम इन्द्रजीत था। बीमार होने पर उसने अवकाश लिया पर सरकार ने उसे आदेश दिया कि या तो वह आर्यसमाज का प्रचार करे या सरकार की सेवा। इस प्रकार सरकारी अधिकारी ने उसे तंग करने का साजिश किया।

13. इन्दौर आर्यसमाज का प्रधान श्री लक्ष्मणराव शर्मा ने एक बार आर्यसमाज की जुलूस की आज्ञा सरकारी पुलिस इंस्पेक्टर जेनेरल से माँगी, जिसके कार्यालय में वह भी एक हैड एकाउंटेंट के पद पर कार्यरत था। इस पर उसे आर्यसमाज छोड़ने को कहा गया, ऐसा न कर सकने के

कारण उसे अपनी नौकरी से हाथ धोना पड़ा।

14. इस प्रसंग में पश्चिमोत्तर प्रदेश के एक प्रसिद्ध आर्य नेता पं. भगवान दास जी एक सरकारी नौकर थे और हमेशा नौकरी कार्य में उनकी प्रशंसा व उनके लिए सदा संतोषजनक बातें होती थीं। परन्तु जब सरकार आर्यसमाजी लोगों से घबराने लगी तब पंडित जी से आश्वासन लेना चाहा कि वह आर्यसमाज का कोई भी काम नहीं करेंगे। पर पंडित जी ने ऐसा कोई आश्वासन नहीं दिया तब उन पर सरकार की ओर से वेवजह अनेक प्रतिबन्ध लगने लगे, यहाँ तक कि जरूरत पढ़ने पर अवकाश भी नहीं दिया गया, इस पर इस आर्य वीर ने असंतुष्ट होकर सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और स्वतंत्र होकर पूर्णरूपेण आर्यसमाज की सेवा का कार्य करना शुरू कर दिया।-आ.स. का इति.भाग 2 पृ. 32-33 के अनुसार-

स्वामी श्रद्धानन्द और कर्नल हाकोर्ट संवाद

एक दिन बातचीत में उन्हें (हाकोर्ट को) यह मालूम हुआ कि मैं आर्यसमाजी हूँ, यह सुनते ही बोले—आप और आर्यसमाजी ? आप तो बड़े धार्मिक आदमी हैं, आप आर्यसमाजी नहीं हो सकते। तब मैंने उत्तर दिया कि मैं केवल आर्यसमाजी ही नहीं प्रत्युत स्थानीय आर्यसमाज का प्रधान भी हूँ। तब साहब बोले—परन्तु लाहौर आर्यसमाज तो एक पॉलिटिकल संस्था है, जालन्धर आर्यसमाज चाहे न हो, तब मैंने कर्नल साहब को आर्यसमाज के मन्तव्य तथा उद्देश्य समझाए और बतलाया कि हम लोग (सबको) आर्य अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष बनाना चाहते हैं, इसका परिणाम यह हो सकता है कि श्रेष्ठों पर उनसे गिरे हुए पुरुष राज न कर सके, इस पर साहब बड़े उदारभाव से बोले—फिर हमें यहाँ ठहरने का कोई हेतु न रहेगा, उन्होंने कहा कि यदि भारत निवासी हमसे अधिक श्रेष्ठ मनुष्य बन जाएं तो फिर हमें स्वयं बोरियाँ बांधना (और उसे) उठाकर चल देना पड़ेगा।—कल्याण मार्ग का पथिक-पृ. 145-146 — इससे स्पष्ट होता है कि उस समय भी गोरे अंग्रेज हाकिम आर्यसमाज को संदेह की दृष्टि से देखते थे। इसमें आगे भी कुछ प्रमाण-प्रकरण देखें-आचार्य सत्य प्रिय जी द्वारा पृ. 148-149 पर प्रस्तुत के अनुसार आगे के

प्रमाण इस तरह हैं—

रोमां रोल्लैंड ने लिखा—'His Arya Samaj whether he wished it or not, prepared the way in 1905 for the revolt of Bengal.' Life of Ram Krishan Paramhans' अर्थात् इस (दयानन्द) के आर्यसमाज ने 1905 में बंगाल की बगावत के लिए रास्ता साफ कर दिया, चाहे उसने चाहा या नहीं पर....। इसमें कोई दो राय नहीं कि आर्यसमाज स्वदेश के लिए मर मिटने को हरदम तैयार रहा। इसका विद्रोह भी हुआ। एक भारतीय व्यक्ति स्वामी आलाराम ने तो आर्यसमाज से चिढ़कर एक पुस्तक लिखी जिसमें महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों के अनेक प्रमाण देकर लिखा कि 'आर्यसमाज एक राजद्रोही संस्था है।'

इसी तरह लाहौर के 'सिविल एण्ड मिलिटरी गजट' जो मानो आधा गोरे का ही पत्र था जिसमें एक भारतीय के नाम से लेख छपा जिसमें यह स्पष्ट लिखा था कि 'आर्यसमाज का प्रधान उद्देश्य अंग्रेजों के शासन को उखाड़कर भारत में हिन्दुराज्य की स्थापना करना है।'

ऐसे वातावरण में एक अंग्रेज वैलण्टाइन शिरोल नामक लेखक ने 1910 में 'इंडियन अनरेस्ट' नामक पुस्तक लिखी और उसमें पंजाब की अशांति का उत्तरदाई आर्यसमाज को बताया। वहाँ लिखा गया—' आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द ने **'आर्यावर्त्त आर्यों के लिए' (है) का नारा लगाकर हिन्दुओं में राजद्रोह के बीज बो दिये, उनका गौरक्षा-आन्दोलन भी सरकार विरोधी है, अधिकरतर आर्यसमाजी अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध भावना रखते हैं, सरकार द्वारा निर्वासित लाला लाजपत राय तथा सरदार अजीत सिंह और लन्दन में 'इंडिया हाऊस' नामक राजद्रोही अड्डे का संचालक श्यामजी कृष्ण वर्मा आर्यसमाजी हैं।**

इन सारे वातावरण में आर्यसमाज के फिलाफ अंग्रेजी सरकार के अन्दर भी क्रोध व अन्याय व्यापक रूप से फैल गया था। आर्य समाजियों को स्वदेश की लड़ाई में नौकरियाँ, मान, परिवार-सुख व सम्पति से हाथ धोना पड़ा। निम्न तरह से आर्यों को यातनाएं सहनी पड़ी—

1. फौज की नौकरी के लिए अयोग्य ठहराया जाना।
2. आर्य उपदेशकों को आवारा घोषित कर उनकी साफ-सुथरी

छवि को धूमिल करने का षडयन्त्र।

3. 109 की धारा पर मुकदमे चलाकर आर्यसमाज के सभासदों को दस नम्बरी बदमाश बताया गया।
4. आर्यसमाज को एक धार्मिक स्थल न मानकर राजविद्रोही राजनैतिक अड्डे बताया जाना और उन्हें बर्बाद करने की कोशिश किया जाना।
5. आर्यसमाज के साप्ताहिक धार्मिक सत्संगों पर सरकार की कड़ी नजर रखा जाना।
6. आर्यसमाज को एक तरह से अंग्रेजी सरकार द्वारा 'आउट लॉ' संस्था ठहराने की कोशिश की गई।

निःसंदेह आर्यसमाज के लिए वह एक अत्यन्त कठिन समय था पर स्वदेश के संग्राम के लिए हर दम उत्साह व नयी-नयी ऊर्जाओं से ओत-प्रोत भी था। इतना होने पर भी आर्यसमाजी कभी अपने पथ से विचलित न हुए। वे अपने धर्म, सिद्धान्त व भावना को ही प्रधान मानकर चलते रहे भीषण काल में आर्यसमाज के स्तंभ स्वामी श्रद्धानन्द का उद्घोष उनके 'सद्धर्म प्रचारक' पत्र व ओजस्वी वाणी द्वारा आर्यों को सदैव मार्ग पर गतिशील बनाए रखने में एक जीवन्त इतिहास का काम किया। सद्धर्म प्रचारक पत्र में स्वामी जी का आर्यों के लिए चेतावनी-उद्घोष-

'आर्य पुरुषों! क्या तुमको परमात्मा पर सच्चा विश्वास है? यदि है तो, फिर दो हाथों वालों की खातिर सहस्त्रबाहु का क्यों अनादर करते हो, दो भुजा वाला जिस रोजी को छीन सकता है, क्या सहस्त्रबाहु उससे बढ़कर रोजी तुमको नहीं दे सकता? इसलिये संसार को धर्म पर न्यौछावर करना ही आर्यत्व है, वैदिक धर्म की सेवा के लिए कायरों के उद्यत होने का क्या काम? अर्थात् अपने धर्म के लिए कभी कायर नहीं होना।

स्वामी जी के इन चेतावनी भरे ओजस्वी शब्दों ने विजली का सा असर किया जिसके परिणामस्वरूप अनेक असह्य कष्ट आने पर भी आर्यसमाजी अपने स्वीकृत मार्ग से विचलित न हुए, यह उस महान एवं अवसर की नाड़ी को पहचानने वाले नेता के नेतृत्व की एक महान सफलता थी।

—आचार्य सत्य प्रिय शास्त्री, हिसार

हम देखते हैं कि आर्यसमाज अंग्रेजों के प्रति विद्रोही आन्दोलन को जन्म तो दिया। इसे सत्य को स्वीकार करने में हम तो गौरव की अनुभूति करते हैं और अंग्रेज भी आर्यसमाज को अंग्रेजी सरकार का विद्रोही मानते थे पर वे आर्यसमाज से डरते थे और आर्यसमाज को ही अपना पक्का दुश्मन समझते थे। अंग्रेज पूरी तरह जानते थे कि भारत में आर्यसमाज की जड़ मजबूत है जो स्वाधीनता संग्राम के लिए कटिबद्ध है, अत: किसी भी तरह मूल और मजबूत जड़ को ही काटो और इसीलिये अंग्रेजी सरकार ने आर्य समाजियों को अगली पंक्ति में अपना निशाना बनाया। काश! आर्यसमाज के इस बलिदान को स्वतंत्र भारत भी समझता या अब भी समझे।

अष्टम अध्याय

स्वाधीनता संग्रामकाल की कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाएं

समय-समय पर कुछ ऐसी घटनाओं का शिकार वीर भारतियों व संगठनों को होना पड़ा जिसमें अंग्रेजी सरकार ने इन पर कहर वर्षायी जो परोक्षरूप से ही सही पर वे अपने सहयोग के लिए ऐतिहासिक हैं, इससे स्वाधीनता संग्राम में अवश्य ही बल मिला है—

1. **'पंजाबी' अखबार लाहौर-मुकदमा**—यह अखबार आर्य युवा व आर्थिक रूप से भी सम्पन्न नेता लाला लाजपत राय द्वारा ही स्थापित था। उसके मालिक भी वे स्वयं ही थे। इसका सम्पादक मि. ए.के. अथोले नामक एक सज्जन व्यक्ति था जो राष्ट्रभक्त था। यह अखबार बंगाल के 'वन्दे मातरम' व महाराष्ट्र के 'केसरी' नामक पत्र की कोटि में मान्य था। इसमें सारे समाचारों के साथ समसामयिक हर राजनैतिक व विशेषकर आर्यसमाज द्वारा चलाई जा रही स्वदेश के लिए विदेश-विरोधी अवश्य छपती थीं। इसका प्रूफ-रिडिंग व अन्य नियन्त्रण-व्यवस्था घटनाएं लाला जी स्वयं अपने हाथ में रखते थे। अंग्रेजी सरकार मौके की तलाश में थी कि कोई ऐसी घटना हो जिसमें इसे या मालिक को गिरफ्त में लें। इतने में उस अखबार में एक पुलिस की रहस्यमयी मृत्यु का समाचार प्रकाशित हुआ जिसे सरकार ने आपत्तिजनक करार दे कर इस अखबार के स्वामी (लाला जी) और सम्पादक दोनों को गिरफ्तार कर लिया। अखबार पर तथा इसके कर्त्ता-धर्त्ता पर मुकदमा चला। जब पुलिस इन्हें जेल ले जाने लगी तो जनता इनके आगे-पीछे उमड़ गई, तालियों व स्वागतभरे नाराओं से जनता ने इनका स्वागत किया। सरकारी पुलिस व अधिकारियों को भी

मारा-पीटा जिससे कई लोगों को गिरफ्तार कर लिया गया और मुकदमा आगे बड़ा। लाला लाजपत राय ने जमानत पर उन्हें छुड़ाया तथा उनकी सजा भी कम करवाई पर फिर भी सरकार जब शेष सजा के लिए कुछ अपराधियों को जेल ले जाने लगी तब भी भारी पुलिस का इन्तजाम था। श्री जशवन्त राय भी उसमें थे। लाला जी ने जेल जाते हुए कैदियों से स्वाभिमान के साथ हाथ मिलाया। जशवन्त राय जी ने लाला जी के चरण छुये। तब भी पुलिस और इकट्ठी जनता में मारपीट हो गई। पुलिस डर से जशवन्त राय को पकड़कर ले जाने में जनता से डर रही थी पर उनकी गाड़ी में ही उन्हें जेल तक सरकारी पुलिस ले गई। जनता का उबाल तेजी से भड़का, यद्यपि लाला जी ने जनता को समझाने की कोशिश की पर वह तो एक बहुत बड़ी मानो क्रांति का रूप बन चुका था। लाला जी साथ तो थे ही। अंग्रेजों ने भी घोषित कर दिया कि इन सब आन्दोलनों की जड़ लाला लाजपत राय ही है। स्वाधीनता संग्राम की वह पहली क्रांति पंजाब में शुरू हो गई। उसी समय लाला जी का दामाद श्री जयचन्द जी अपनी पत्नी व पुत्र को छोड़कर स्वर्ग सिधार गए। उससे लाला जी पर बुरा असर पड़ा। हाला कि लाला जी ने बहुत ही धैर्य के साथ अपने को सम्भाला और बेटी व दोते को भी सम्भाला। उनकी स्नेहमयी विधवा पुत्री ने भी आगे चलकर स्वाधीनता संग्राम में प्रशंसनीय कार्य किया। उस पर भी अपने क्रांतिकारी शेर पिता का राष्ट्रीय प्रभाव की प्रबलता थी। इस पर लाला लाजपत राय का अखबार ' पंजाबी' को तहस-नहस का शिकार होना पड़ा।

2. रावलपिंडी का काण्ड—1907 में पंजाब में सरकार ने 'भूमि-कर' अन्यायपूर्वक अचानक बड़ा दिया। सरकार के विरोध में किसान ने भयंकर 'कर-विद्रोह' में आन्दोलन शुरू कर दिया। उस समय 'भारत माता सोसाइटी' का निर्माण लाला लाजपत राय व सरदार अजीत सिंह ने बना कर लिया था। उसमें पंजाब के आर्य नेता जशवन्त राय भी थे। इस संगठन के माध्यम से लाला जी किसानों के द्वारा किये जा रहे आन्दोलन में कूदकर नेतृत्व दिया। जब अपने साथी जशवन्त सिंह के साथ लायलपुर स्टेशन लाला जी पहुँचे तो जनता ने आप दोनों का जोरदार स्वागत किया। इतिहास के अनुसार यह ज्ञात होता है कि जनता बग्गी से घोड़े खोल कर स्वयं लग गई। भारी जुलूस निकाला गया। बहुत बड़े स्तर पर जन-सभा हुई जिसमें

जनसमूह ने नारा उछाला—'पगड़ी सम्भाल ओ जट्टा' जनता ऐसा कहकर गाने लगी और सबने मस्ती दिखायी। लाला जी, सरदार अजित सिंह और आर्य नेता रामभजदत्त जी ने भीषण भाषण दिये। लाला द्वारा प्राथना पत्र पढ़ा गया कि सरकार कर लगाने का फैसला वापिस ले। रामभज दत्त जी के निवेदन पर अजीत जी ने सरकार के खिलाफ विद्रोही भाषण दिये जिससे सरकार खिजने लगी। इसी तरह रावलपिडी में भी ऐसी ही सभा हुयी जिसमें वहाँ के प्रसिद्ध आर्यसमाजी हंसराज साहनी, गुरुदास साहनी आदि प्रमुख वकीलों ने बढ़चढ़कर भाग लिया। सरकार ने खिज कर इनका लाइसेंस रद्द करने का फैसला लिया जिससे दूसरे दिन कचहरी पर भारी जनसमूह के साथ हंगामा, सरकारी पुलिस व कुछ अधिकारियों के साथ मारपीट और सरकारी दफ्तरों का तोड़फोड़ भी जमकर हुआ। जिलाधीश व जिला जज के ऑफिस में क्रोध्रित जनता ने घूसकर भारी नुकसान पहुँचाया। सायंकाल वहाँ जनसमूह में बड़ी सभा हुयी जिसका नेतृत्व लाला जी ने ही किया। वहाँ पर सारे उत्तरभारत का बहुत बड़ा सरकारी सैनिक अड्डा था जिसे सरकार प्रभावित होने देना नहीं चाहती थी फलत: रावलपिंडी के बरिष्ठ वकीलों के साथ लाला जी व सरदार अजित सिंह को भी सरकार ने गिरफ्तार कर लिया। सरकार तो बुरी तरह डर गई थी, वह जानती थी कि लाला लाजपत राय व सरदार अजितसिंह के कारण सारा पंजाब इस विद्रोह में आ खड़ा होगा। सैनिक अड्डे भी इस आग की लपेट में आ जाएगी जिसकी सरकार और कमजोर पड़ेगी ऐसा समझकर इन दोनों साहसी आर्य नेताओं को सरकार ने गुप्त रूप से अचानक पकड़ लिया और बिना मुकदमा चलाए ही अनिश्चितकाल के लिए माण्डला के किले में बन्द कर दिया। इसी कृषक-आन्दोलन के दौरान लाला जी ने स्वदेशी तथा देशभक्ति के प्रचार में अमृतसर, अम्बाला, फिरोजपुर, लाहौर आदि कई स्थानों पर क्रांतिकारी भाषणों से भारतियों को जागृत किया था। इन सब कारणों से सरकार ने कृषक-आन्दोलन को भी सरकार-विरोधी आन्दोलन करार दिया। निश्चित ही वह आन्दोलन स्वाधीनता संग्राम का पूरक बनकर उभरा। मि. शिरोल ने अपनी पुस्तक में लिखा कि रावलपिंडी के इस राजनैतिक विद्रोहात्मक आन्दोलन में सबसे अधिक आर्यसमाजी लोग ही थे जिसका नेतृत्व भी लाला लाजपत राय आदि आर्यसमाजी के हाथ में था।

3. पटियाला-अभियोग—पटियाला अभियोग क्या था? वस्तुत: एक अंग्रेज 'मि. बार्बटन' नामक ऑफिसर सरकारी सेवानिवृत होकर पटियाला नरेश के पास मुख्य पुलिस अधिकारी बन गया। वह स्वभाव से रुखा एवं उस रियासत के वित्तविभाग में अनेक आर्यसमाजी जो कार्य रत्त थे; उनसे खार खाया हुआ था। पूर्व की नौकरी पर कार्य करते हुए उस ने कई आपत्तिजनक विल पर हस्ताक्षर किये जिसका आर्यसमाजी कर्मचारियों ने विरोध किया। उस बेईमान अधिकारी ने राजा के कान भरे कि ये सब आर्यसमाजी कर्मचारी देशद्रोही हैं और स्वयं राजा के चापलुसी से प्रिय बना रहा। इस तरह राजा ने आर्य समाजियों को गिरफ्तार करने का आदेश दे दिया। एक रात में 85 आर्य समाजियों को जेल में डलवा कर इस दुष्ट अंग्रेज ने इनसे बदला लिया। उधर रियासत के सभी आर्यसमाज मन्दिरों पर भी मोहरबन्दी कर तलाशी करवा दी। उन्हें तलाशी में कुछ तो न मिला तो भी इनके पास से रामायण, महाभारत, वेद, सत्यार्थ प्रकाश आदि तथा स्वामी दयानन्द की तस्वीर उठाकर ले गए और उन्हीं के आधार पर अपनी कागजी कार्यवाही पूरी की। मामला कोर्ट में गया तो सरकारी वकील तो मि. एडवर्ड ग्रे अंग्रेज ही बना और आर्य समाजियों की ओर से अनेक वकील तैयार हो गए पर उनमें महात्मा मुँशी राम(स्वामी श्रद्धानन्द) आलमारी से अपना पुराना वकालत लाइसेंस निकाला और पैरवी के लिए तैयार हो गए। रियासत ने इस केश को एक तगड़ा रूप दे दिया जैसे दक्षिणेश्वर बम काण्ड केश भयंकर रूप से उभारा गया था, उसी तरह इसे भी दिखाया गया। दो-तीन पेशियों तक तो अभियोग पत्र न्यायालय में लाया ही नहीं, काफी टाल-मोटाल चलता रहा। अंग्रेजी वकील को समझ आ गया कि म. मुँशी राम उधर तगड़ा वकील है, बहस मुश्किल होगा। मि. ग्रे का भाषण हुआ जिसमें जानबूझ कर आर्य समाजियों को अभियुक्त बता कर राजद्रोही करने की कोशिश की। अखबारों में भी ऐसा ही समाचार छपवा दिया गया। सब हैरान हुए कि इन कच्चे आधारों पर इतना बड़ा मुकदमा जबर्दस्ती बनाया गया है। म. मुँशी राम व साथियों ने काफी कोशिश की पर अंग्रेजी ताकत के सामने डटे रहे तब रियासत ने शिमला के एक अर्ध गोरे पत्रकार को बीच में रखकर समझौते की बातचीत शुरू कर दी पर वह भी अंग्रेजों की चाल थी। काफी जद्दोजहद के बाद सभी अभियोक्तों के लिये रियासत छोड़ने का फैसला

तय हुआ और भविष्य में सब सावधान रहें, ऐसा आश्वासन लेकर अभियोग वापिस ले लिया गया। अभियुक्तों में मुख्यत: राय बहादुर जी, ज्वाला प्रसाद, लाला नारायण दत्त जी ठेकेदार, लाला नन्द लाल, लाला मुरारी लाल तथा लाला शंकर लाल थे। बाकी लोग छूट गए थे। लाला शंकर लाल नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के साथ मिल कर उनके मित्र बन गए थे, इस कारण ही वे अंग्रेजों को अधिक खटक रहे थे। उपरोक्त अन्य अभियुक्त कारार दिये लोग भी पक्के आर्यसमाजी और सामने से लड़ने वाले थे। फलत: इन्हें भी दु:ख झेलना पड़ा। ये सब पटियाला रियासत जेल में ही सड़ते रहे। एक का तो बच्चा उत्पन्न हुआ था पर उचित देखभाल के अभाव में वह बच्चा मर गया। एक अभियुक्त का बेटा अंधा हो गया। एक की माता की तथा एक की पत्नी की मृत्यु हो गई पर ये अभियुक्त कभी अपने उद्देश्य से पीछे नहीं हटे। यह आर्यसमाज के लिए क्या कम गौरव की बात है ?

4. इलाहाबाद-करांची-केश-सत्यार्थ प्रकाश-अभियोग 1902 सं 1905—यह अभियान सत्यार्थ प्रकाश को लेकर था। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश में जहाँ वैदिक सिद्धान्तों को स्पष्ट किया, वहीं प्राय: सभी मतमतान्तरों के सिद्धान्तों की समीक्षा भी की। कुरान, पुराण व बाइबल आदि सभी अन्य मजहवी ग्रंथों की समीक्षा यानि सत्य को सत्य व गलत को गलत कहा। वेदानुसार आचरण सत्य व वेद-विरुद्ध सब झूठा। सत्यार्थ प्रकाश में राष्ट्रीय प्रेम का उपदेश भी प्राप्त है। स्वदेश, स्वभाषा, स्वराज्य, स्ववस्तु आदि प्रसंगों द्वारा भारतीयों की आत्मपहचान कराई है जिस कारण महर्षि दयानन्द का यह कालजयी ग्रंथ स्वाधीनता संग्राम के लिए आर्यवीरों व अन्य भारतीय वीरों को प्रबल भावना देने में पूर्णतया सक्षम रहा। अंग्रेजी सरकार को इस ग्रंथ से भी चिढ़ थी, क्योंकि उसमें जो राष्ट्रीय भावनाएं व मर्यादाएं उभारी गईं, उसी के आधार पर आर्यसमाजी ब्रिटिश सरकार-विरोधी बन कर स्वदेश के लिए लड़ रहे थे।

जीवन संघर्ष पृ. 66 लेखक पं. सत्य देव जी विद्यालंकार के अनुसार सत्यार्थ प्रकाश को राजद्रोही ग्रंथ घोषित कर इस पर प्रतिबन्ध लगाया गया। इसी तरह आर्यसमाज को राजद्रोही संस्था कहकर अभियोग चलाया गया।

'1902 में इलाहाबाद और 1905 में करांची में ऐसे मुकदमे चलाए गए जिसमें सत्यार्थ प्रकाश को राजद्रोही ग्रंथ और आर्यसमाज को राजद्रोही

संस्था ठहराने के कुचक्र रचे गए। करांची में तो आर्यसमाज की तलाशी लेकर उसके मंत्री के विरुद्ध राजद्रोह का मुकदमा भी दायर कर दिया गया था।'—जीवन संघर्ष -पृ.66

इस अभियोग में भी आर्यसमाज व आर्य समाजियों को काफी यातनाएं सहनी पड़ीं। कुछ जेल गए, कुछ को तलाशी का शिकार होना पड़ा पर आर्य वीरों की निष्ठापूर्ण लड़ाई से सत्यार्थ प्रकाश व आर्यसमाज की जीत हुई।

नेपाल सरकार व आर्य वीर अमर शहीद शुक्रराज शास्त्री— नेपाल के प्रसिद्ध आर्य वीर अमर शहीद शुक्रराज अपने आप में एक प्रबल क्रांतिकारी आर्य नेता व विद्वान् थे। वे गुरुकुल सिकन्दराबाद से स्नातक बने थे। इनके पिता भी आर्यसमाज का कार्यकर्त्ता व प्रचारक थे। पुत्र को आर्यसमाज के गुरुकुल में प्रवेश करा कर स्वयं भी आर्य धर्म का प्रचार करना और सरकार की नीतियों के खिलाफ बोलने में कभी घबराया नहीं करते थे। वहाँ का राजा राणा-वंश से था और घमंडी, मनमानी करने वाला अपना एकाधिपत्य अधिकार रखने वाला तथा अंग्रेजों का पिट्ठू था। सम्पूर्ण स्थानों पर आर्यसमाजी तो अंग्रेज-विद्रोही ही माने जाते थे फलतः शुक्रराज शास्त्री के पिता को भी अंग्रेजों के कहने पर राज विद्रोही बताकर जेल में डाल दिया पर वे जेल में भी कैदियों के सामने आर्य विद्या को आधार बना कर राष्ट्रीय व धार्मिक प्रचार किया करते थे। इधर शुक्रराज जी स्नातक बनकर नेपाल आए तो जोर-शोर से प्रचार किया और अंग्रेजी शासन का घोर विरोध करना शुरू कर दिया। राजा के सामने इनकी बड़ी शिकायतें अंग्रेजी ऑफिसर पहुँचाने लगे बल्कि यूँ कहें कि सरकार घबरा गई तो अतिशयोक्ति न होगी। सरकार ने विचार किया कि इसे किसी तरह रास्ते से हटाया जाए, बहाने ढूँढने लगी और एक दिन उसे धोखे से पकड़ ही लिया। शमशेर सिंह नामक शासक के सामने उन्हें लाया गया, स्वभावतः शुक्रराज जी ने उन्हें नमस्ते की पर उसने क्रोध में बोला कि शास्त्री ? तुमने यहाँ भी शरारत की, एक हाथ से सलाम करने की जगह दोनों हाथ जोड़ कर तुमने नमस्ते की। यह हमारा अपमान है। तुम्हें इसकी सजा शीघ्र ही दी जाएगी। शासक बोलता रहा और बोलते हुए कहा—**'नेपाल के इतिहास में इस भूमि पर यही**

एक व्यक्ति है जो तूफान मचा सकता है तथा उथल-पुथल कर सकता है।'

सरकार को पूरी आशंका ही नहीं अपितु विश्वास था कि इस के कारण नेपाल में क्रांति आ जाएगी फलतः बिना किसी मुकदमा चलाए ही इसे फाँसी की सजा सुना दिया और जनता में विद्रोह पैदा होने के डर से सरकार ने इस युवक को नेपाल से भारत आने की सड़क पर खड़े एक पेड़ से रस्सी बांध कर आधी रात 12 बजे फाँसी पर लटका दिया। आठ घंटे तक इस वीर की लाश लटकती रही तथा क्रूर शासक ने एक तख्ती पर ऐसा लिखा—**'सारे देश को भड़काने वाला क्रांतिकारियों का गुरु आर्यसमाजी होने के कारण ही ऐसे ही दंड का अधिकारी था।'** 'जहाँ इस आर्य वीर को फाँसी पर लटकाया गया था, वह स्थान आज भी भारत-नेपाल की सीमा पर '**पचली घाट**' से प्रसिद्ध है।'

कहते हैं कि जब इसे फाँसी पर लटकाया गया था तो जिन ईंटों पर चढ़कर रस्सी पेड़ में कसी गई थी, इन ईंटों से शुक्रराज का पैर टकरा रहा था, इस वीर ने स्वयं अपने पैर से उन ईंटों को खिसका कर नीचे गिरा दिया और स्वयं साहसपूर्वक गले में लगी रस्सी से लटक कर झूल गया। इस वीरता पूर्ण बलिदान को भला हम कैसे भूल सकते हैं?

शहीद के कलम से-शुक्रराज शास्त्री एवं शेष भाग—वाक्पति राज शास्त्री, आर्यसमाज काठमांडू, नेपाल से उद्धृत।

हैदराबाद-कर्नाटक निजाम की मुक्ति में आर्यसमाज का योगदान

निजाम-राज का इतिहास सदैव छल-कपट पर टिका मिलता है। आबिद कुली खां नामक एक मुस्लिम औरंगजेब के काल में बुखारा से घूमता हुआ भारत आया। राजा की खुशामद व चालाकी से ऊँचे पद पर वह आ गया। मुगलवंश की निर्बलता से वह स्वामी से विश्वासघात व विद्रोह कर शासक बन गया। निजाम इसी का वंशज था जिसने छल पूर्वक अपने ही मित्र का बध करा कर राज्य पर आसीन रहा। इस तरह हम देखते हैं कि निजाम का राज्य विश्वासघात, छल-कपट व विद्रोह नीतियों पर आधारित है। इस निजाम ने सबसे पहले अंग्रेजों की दासता का जंजीर

अपने गले में पहन लिया यानि अंग्रेजों से संधि कर अपने खर्चे से अंग्रेजी सेना रखने लगा। भारतीय इतिहास में इसी निजाम राजा ने गुलामी के जहरीले बीज को सर्वप्रथम अपने राज्य में बोया और फिर सम्पूर्ण भारत में अंग्रेजों की नीतियाँ सभी राज्यों के राजाओं के साथ जकड़ गई।

स्वराज्य का प्रकाश फूटा

यह तो हमें ज्ञात होता है कि मुगल वंश औरंगजेब-काल में ही कमजोर होने लगा। प्रांतीय सूबेदारों की मनमानी चलने लगी और केन्द्रीय शासन ढीला पड़ता गया। औरंगजेब के वंश से एक सूबेदार चिनकुलिच खाँ नामक व्यक्ति केन्द्र का प्रधानमंत्री स्वार्थ का सिक्का जमाता हुआ छल से केन्द्र का प्रधानमंत्री बन गया पर दिल्ली दरबार के सैयद बन्धुओं ने इसे टिकने न दिया। इसी बीच मुबारिक़ खाँ दक्षिण का शासक बन गया था पर दिल्ली से हटकर जब चिनकुलिच खाँ दक्षिण लौटा तो सैन्यबल का प्रयोग करके छल से मुबारिक़ खाँ को भी मार दिया और फिर दक्षिण का सूबेदार स्वयं बन गया। उधर दिल्ली बादशाह ने भी उसकी पुष्टि कर करके एक हाथी, कुछ हीरे तथा आसिरजाह (राजा) की उपाधि देकर सम्मानित कर दिया। इसने अपना वंश को भी आसिरजाह वंश घोषित किया और स्वयं को मुगलवंश से अलग बताना शुरू किया। इस प्रकार आसिरजाह वंश का शासक ही 'निज़ाम' कहलाने लगा। अत: स्पष्ट है कि इतिहास के अनुसार निज़ाम रियासत तो छल और स्वामी-द्रोह पर ही बना मिलता है।

अंग्रेजी राज्य आने पर भी आसिरजाह वंशज निज़ाम पर रियासत पर काबिज़ रहे, अंग्रेजों की तारीफ करते रहे और उनसे अनेक तरह से खिताबें (प्रशंसा-पत्र) पाते रहे। इसी क्रम में 1911 में मीर उस्मान अली खाँ सातवां निज़ाम बना जो अल्लीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से पढ़ा हुआ था। उस्मान अल्ली खां ने 29 अगस्त 1911 से 18 सितम्बर 1948 तक राज्य किया। ईर्ष्या-द्वेश से भरपूर था, अंग्रेजों के तुष्टिकरण भी करता और धीरे-धीरे अंग्रेजी सरकार से अलग होकर अपना स्वतंत्र निज़ाम राज्य कायम करना चाहता था, यह प्रयास 1911 से ही शुरू कर दिया पर अंग्रेजी वॉयसराय लार्ड हार्डिंग से काफी फटकार खाई, तब भी अपने छली व

झूट्ठे प्रयासों में लगा रहा पर दाल न गली। 1919 में भी तत्कालीन वॉयसराय लार्ड चेम्सफोर्ड ने भी फटकार लगाई और उसकी योजना को खारिज कर दिया। वस्तुत: मीर उस्मान अली ने पूर्णतया निज़ाम का 'सर्वेसर्वा' बनने का दावा के लिए 1918 में ही वॉयसराय को एक पत्र लिखा था जिसे लार्ड रीडिंग द्वारा पूरी तरह खारिज कर दिया गया था जिसका पुष्टि निम्न पत्र से होती है—

"Lord Reading, then Viceroy; repudiated the position taken by the Nizam and asserted that the sovereignity of the British crown was supreme in India and that this supremacy was not based only upon treaties and engagements, but that it consisted independently of them. The Viceroy pointed out that it was the right of the British Govt. to intervene in the internal affairs of Indian states. He emphatically repudiated the Nizam's claim that there was equality between the government of Hyderabad and Great Britain, and he added that the Nizam did not stand in a category separate from that of other Indian states." ***—The story of Intigration of Indian states—by V.P. Menon***

इसका सार यही है कि हैदराबाद निज़ाम ब्रिटिश सरकार की बराबरी नहीं कर सकती। अंग्रेजी सरकार को भारत के हर राज्य में हस्ताक्षेप करने का पूरा अधिकार है। अंग्रेजी सरकार ही सर्वोपरि है। निज़ाम अन्य रियासतों से कोई न्यारी नहीं है।

देश-विभाजन और निज़ाम—अंग्रेजों के जाने के बाद भी निज़ाम और उसके समर्थक हैदराबाद को भारत-संघ का हिस्सा नहीं बनाना चाहते थे पर निज़ाम को विश्व राष्ट्रकुल की सूची में रखना चाहते थे। अंग्रेजों के तुष्टिकरण में इनके एक और पत्र का यह अंश भी देखा जा सकता है।

"The way in which my state is being abandoned by its old ally, the British Government, and the ties which have bound me in loyal devotion to the King à emperor are being severed."

—The story of Intigration of Indian states—by V.P. Menon

अर्थात् मेरे राज्य को जिस प्रकार मेरे मित्र (ब्रिटिश सरकार) छोड़कर जा रहे हैं; जिन कड़ियों ने मुझे ब्रिटिश सरकार की भक्ति में बाँध रखा था, आज वे प्रेम की कड़ियाँ तोड़ी जा रहीं हैं।

पाठकवृन्द समझ सकते हैं कि निज़ाम को ब्रिटिश राज की खात्मा, दासता की कड़ी टूटने तथा भारतवर्ष को स्वतंत्र होने का हर्ष नहीं था बल्कि ब्रिटिस सरकार के प्रेम व उनकी भक्ति की कड़ियाँ टूटने का गम अवश्य था।

निज़ाम का भारत-द्रोही प्रयास के कुछ उदाहरण—निज़ाम ने अपना भरसक प्रयास किया कि हैदराबाद भारत-संघ का हिस्सा न बने। कभी रक्तपात की धमकी, कभी हैदराबाद में मुस्लिम आवादी के प्रभाव की धमकी तो कभी पाकिस्तान में मिल जाने की धमकियाँ दिल्ली सरकार तक दी जाने लगीं। कुछ निम्न दस्तावेज प्रमाण के लिए प्रस्तुत किये जाते हैं—

1. दिनांक11.07.1947 को निज़ाम की ओर से एक शिष्टमंडल दिल्ली भेजा गया जिसमें नवाब अलियावर जंग भी थे। ये आगे चलकर 1965 में अलीगढ़ विश्वविद्यालय के उपकुलपति भी बने। दिल्ली आकर शिष्टमंडल का नेतृत्त्व करते हुए दिल्ली सरकार में डर बनाया कि हैदराबाद को अलग ही रखा जाय वरणा वहाँ मुस्लिम-आवादी अधिक है; भयंकर रक्तपात हो जाएगा। भारत के साथ विलय के लिए अधिक दवाब डाला गया तो निज़ाम पाकिस्तान के साथ विलय सोच सकता है ड्ड "If we pressed the Nizam too hard, he might consider joining Pakistan."

—same book by V.P. Menon

2. दिनांक 8.08.1948 को निज़ाम ने एक सक्थ पत्र दिल्ली को लिखा कि भारत-पाक युद्ध अगर हुआ तो निज़ाम तटस्थ रहेगा अर्थात् दिल्ली सरकार को साथ नहीं देगा—"In the even of war between India and Pakistan, Hyderabad would remain neutral."

—same book by V.P. Menon

3. शिष्टमंडल प्रस्ताव में ही अलीयावर जंग ने तो यहाँ तक धमकी दी कि हैदराबाद का भारतवर्ष में विलय हैदराबाद नगर के मुसलमान कदापि सहन नहीं करेंगे वल्कि वे ऐसी परिस्थितियाँ पैदा कर देंगे कि

नियंत्रण असम्भव होगा। यह आग नगर के अन्य जिलों में भी फैल जाएगी—"If Hyderabad acceded the Muslims who made up half the population of Hyderabad city would not tolerate it and that the trouble they would raise would be uncontrollable and would spread to the districts."

—same book page 1-4 by V.P. Menon

4. दिनांक 26.9.1947 के पत्र में निज़ाम सरकार उस्मान अली ने तो इससे भी आगे डर फैलाने की बात की—हैदराबाद-भारत विलय से सारे दक्षिण भारत में रक्तपात होगा—"that Hyderabad's accession to India woul result in vast bloodshed in south India as a whole." 1-4 पृ. द स्टोरी ऑफ इंटिग्रेशन ऑफ इंडियन स्टेट्स—वी.पी. मेनन (ref, पृ. 215-222, प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु लिखित 'क्रांतिवीर पं. नरेन्द्र' से)

''हैदराबाद में राजनैतिक समस्या यह थी कि मुख्यत: अल्पसंख्यक बहुसंख्यक पर अन्याय कर रहे थे। गुगल खोज से पता चलता है कि हैदराबाद-कर्नाटक में तब हिन्दु की संख्या लगभग 81-85% और इस्लाम की संख्या केवल 13% थी। शासक समुदाय के अल्पसंख्यक लोगों ने अपनी मजहबी रुतबा को धर्म-परिवर्त्तन के तरीके से बड़ाना चाहा। बहुसंख्यक से लोगों को धर्म-परिवर्त्तन द्वारा अल्पसंख्यक में लाकर अपनी संख्या को बड़ाना उनके लिए एक सहज साधन था। विचारों के प्रभाव तथा स्वच्छ साधनों के सहारे धर्म-परिवर्त्तन कर अपनी संख्या बड़ाना फिर भी सही मान्य था पर जब इसके लिए गन्दा /अत्यचार, शोषन आदि अन्यायपूर्ण अमानवीय साधन उनके द्वारा अपनाया जाने लगा तो वहाँ की स्थिति भयावह बन गई और तनातनी सी अवस्था पैदा हो गई। वहाँ पर रजकारों की एक अलग पृथक् अपनी बाहुवली सेना थी जो निज़ाम सरकार के लिए काम कर रही थी, उस समय निज़ाम तथा रजकारी सेना के मिली ताकतों द्वारा बहुसंख्यक हिन्दु-जनता अनेक प्रकार के अत्याचारों से काफी हताहत हुई।''

इनसे स्पष्ट है कि निज़ाम रजकारों तथा मुस्लिम लिग से आपसी मेल बनाकर भारत के साथ धोखा देने का पूरा षडयंत्र बना रखा था। सारे

दक्षिण भारत में उनका जाल अन्दर-अन्दर बिछ चुका था। कुछ मुसलमान देश भक्त भी थे पर अधिकांश निज़ाम के प्रभाव में ही थे जो हैदराबाद को पाकिस्तान की तरह अपनी प्रभु-सत्ता में देखना चाहते थे।

उपरोक्त परिस्थिति में जवाहरलाल और गांधी जी की भी हिम्मत नहीं हुई, होती कहाँ से, वे तो खुद मुस्लिम लिग का सामना नहीं कर सकते थे। उनकी कमजोर नीतियों से ही भारत-विभाजन हुआ, ऐसा समझना मुश्किल नहीं है। पर उस समय एक और क्रांतिकारी दल भारत माता की रक्षा में पूर्ण समर्पण से जुड़ा था जिस पर भारत के लौहपुरुष सरदार पटेल की दृष्टि विश्वास के साथ जमी थी। वह क्रांतिकारी दल आर्यसमाज का था। आर्यसमाज के समर्पित व वीरतापूर्ण कार्य से सब हिन्दु भी संगठित होकर भारत की शक्ति बने। सबका सरदार पटेल पर और सरदार पटेल का उन आर्य वीरों पर विश्वास जगा जिसके कारण गांधी जी और नेहरू जी को भी बड़ी कुशलतापूर्वक चुप्प कराकर समय पर ऐतिहासिक मिलिट्री ऐक्शन का अन्जाम दिया। फिर भी नेहरू-गांधी की नीति से विशिष्ट विलय के तहत 370 की धारा लगाई गई, इससे जम्मू-कश्मीर में हिन्दुओं की कितनी हानि हुई; यह किसी से छिपी नहीं है। **यहाँ अब भारत के वर्त्तमान यशस्वी प्रधान मंत्री श्री नरेन्द्र मोदी को इस धारा को हटाने व फिर जम्मू-कश्मीर को नयी खुशियाली देने के लिए धन्यबाद देना होगा।**

हैदराबाद में आर्यसमाज का शुरूआत (1880 में):-यह जानना जरूरी है कि हैदराबाद-क्षेत्र में आर्यसमाज सबसे पहले 1880 में बीड़ जिले के धरुर तालुक ग्राम में स्थापित हुआ था जिसके पहले प्रधान पं. श्री कामता प्रसाद मिश्रा थे। इस आर्यसमाज को ही मुख्य कार्यालय बनाकर निजाम सरकार से लड़ने के लिए आर्य समाजियों ने अपना जि-तोड़ प्रयास किया था। धीरे-धीरे आर्यसमाज आवासीय क्षेत्रों में कार्य शुरू किया। कई आर्यसमाजें बनने लगीं और इस तरह आर्यसमाजी कार्यकर्त्ताओं की निजाम विरोद्ध का जंग तेज गति पकड़ने लगा। 1905 में पं. केशव राव कोरटकर आर्यसमाज हैदराबाद के प्रधान बने जो 1932 तक महर्षि दयानन्द के राष्ट्रीय स्वप्न को आर्यसमाज के माध्यम से पूरा करने में जुड़े रहे। उन्होंने भी कई आर्यसमाजों की स्थापनाएं करायीं तथा

अपने सूझ-बूझ व उत्तम क्रांतिकारी मार्ग दर्शन से आर्यसमाजों में निजाम सरकार से लड़ने की पूरी ताकत डाल दी। उन्होंने हैदराबाद राज्य में अनेक वैदिक पुस्तकालय तथा आर्य स्कूल भी खोले जिससे वैदिक शिक्षा, महर्षि दयानन्द की राष्ट्रवादिता एवं अपनी संस्कृति की रक्षा करने तथा हैदराबाद को निजाम सरकार के चंगुल से बचाने में हिन्दुओं को बहुत बड़ी शक्ति मिली। 1921 में सत्यार्थ प्रकाश का अनुवाद तेलगू में करवाकर सब जगह बँटवाया गया। मालाबार में अनेक प्रभावित लोगों को आर्थिक सहायता तथा निवास की व्यवस्था आर्यसमाज के द्वारा की गई। इस तरह क्रूर निजाम सरकार द्वारा हिन्दुओं की धार्मिक मान्यताओं के अनुसार बने मन्दिरों तथा उनके लोगों को, इतना ही नहीं, उनकी बहु-बेटियों को भी बर्बाद किया जाने लगा, हिन्दु-परिवारों की ये सारी दुर्दशा देखकर ही आर्यसमाज ने निजाम सरकार को उखाड़-फेंकने का संकल्प लिया और इसके लिए सब प्राणपन से जुड़ गए। इस लड़ाई की कारवां बढ़ती गई और फिर अन्ततः आर्य वीरों ने हैदरावाद को निजाम सरकार से बचाकर भारत संघ का हिस्सा बनवा ही दिया। आगे के विवरण में आर्यों के वीरतापूर्ण कुछ सम्बन्धित कार्य जानें-

हैदराबाद का अंतिम निज़ाम-हैदराबाद का अंतिम निजाम अलीगढ़ का स्नातक था जो स्वयं को आधुनिक आलमगीर ही समझता था। उसका नाम उस्मान अली खाँ था। आर्यसमाज की वहाँ पहले ही स्थापना हो चुकी थी जिससे महर्षि दयानन्द के सिद्धान्तों के अनुसार आर्यसमाजी निजाम नीतियों के विरोधी कार्य रत थे। उस्मान अली भी पराधीन मनोवृत्ति का ही था यानि अंग्रेजों के प्रशंसक था। आर्यसमाज के लोग अंग्रेजी राज्य को उखाड़ फेंकने का स्वप्न ले कर स्वाधीनता के लिए आवाज उठाते रहते थे। मतान्ध पुरुष उस्मान अली को भी आर्यसमाजी खटकने लगे। इस तरह निजाम व अंग्रेज दोनों नीतियों व शक्तियों ने मिलकर आर्यसमाज को कुचलने का काम शुरू किया। आर्यसमाजी भी जगह-जगह से इस सत्याग्रह में उतर आए। सम्पूर्ण भारत से आर्यसमाजी वहाँ पहुँचने लगे। इधर सरकार आर्यसमाज तथा आर्यसमाज के लोगों पर झुट्ठा अभियोग, अनेक तरह के षडयंत्र व यातनाएं ढाहने लगी। धीरे-धीरे यह एक विशाल स्तर पर आन्दोलन-निजाम सरकार-विद्रोह व ब्रिटिश

शासन की खात्मे का राजनैतिक अभियान चल पड़ा। सरकार भारतीयों की राष्ट्रीय भावनाओं को दबाने का अनथक प्रयास करने लगी। बेवजह भारतीयों पर खासकर आर्य समाजियों पर नाना प्रकार के अभियोग, लम्बी सजाएं, गुण्डों द्वारा आक्रमण, स्त्रियों का अपहरण आदि कुचक्र चलाने लगी, तथापि ये सारे अपमानों व आपत्ति-विपत्तियों को सहन कर भी आर्य लोग अपनी स्वाधीनता की राष्ट्रीय भावनाओं को प्रोत्साहित करते रहे। इस प्रकार वहाँ सत्यार्थ प्रकाश व आर्यसमाज के प्रचार पर भी बन्धन पड़े। हिन्दुओं को वहाँ जीना मुश्किल हो गया था; निजाम व अंग्रेजों की ऐसी कहर में आर्यसमाज ने सत्याग्रह किया।

पं० बिनायकराव विद्यालंकार का नेतृत्व-वहाँ के आर्य नेता श्री केशवराज के पुत्र बिनायकराव ने गुरुकुल से शिक्षा समाप्त कर लन्दन जाकर बरिस्टरी की परीक्षा पास की तथा वहाँ से लौटकर हैदराबाद ही आकर बरिस्टरी की प्रैक्टिस करने लगे। सरकार जिन आर्यों पर जाली मुकदमा बना कर उन्हें परेशान करती थी, ये महाशय उन आर्यों को निःशुल्क पैरवी कर उनकी रक्षा किया करते थे। वहाँ आपने वकील संघ बनाया और मिलकर अंग्रेजों व निजाम का विरोध किया। उनके अत्याचारों को आधार मानकर अंग्रेजी अदालतों का बहिस्कार किया। इन्हीं कारणों से निजाम के इशारों से वहाँ के लीगी गुंडों ने आपके घर पर भी सशस्त्र आक्रमण किया। 1945 में गुलबर्गा आर्य महा सम्मेलन हुआ जहाँ आपके उपर मजहवी गुंडों ने फिर हमला कर दिया जिससे आप बुरी तरह घायल हो गए। आपने कई वर्षों तक वहाँ आर्यसमाज का नेतृत्व किया। सत्याग्रह के समय आपको आठवाँ सर्वाधिकारी नियुक्त किया गया था। स्वतंत्र भारत में इन्हीं सब सेवाओं के कारण आप वहाँ के मंत्री मंडल में वित्त मंत्री बने थे। इतिहास में आपकी राष्ट्रीय सेवाओं को सदा याद किया जाएगा। आपका पूर्णनाम पं. बिनायकराव विद्यालंकार था और आप गुरुकुल काँगड़ी के स्नातक थे।

पं. नरेन्द्र जी और हैदराबाद निजाम

पं नरेन्द्र जी का जन्म एक कायस्थ परिवार में राम नवमी के दिन 10 अपैल 1907 को हैदराबाद में हुआ। उनके पिता का नाम राय केशवप्रसाद

व माता का नाम श्रीमती गुणवतीजी था। इन्हें इनकी वीरता के लिए सभी आज भी दक्षिण का 'गेरीबाल्डी' कहा करते हैं। गेरीबाल्डी इटली की स्वतंत्रता व वहाँ के विखरे राज्य को एकत्रिकरण में अपना सर्वस्व योग देने वाला एक वीर पुरुष था, हैदराबाद में अन्यायी, क्रूर सामन्ती राजवंश को राज्य से उखाड़ फेंकने में आपका भी वैसा ही पराक्रम था, इस कारण आप को वहाँ सब श्रद्धा से 'गेरीबाल्डी' की उपमा देते हैं।

इनका परिवार मूलत: उत्तर प्रदेश से हैदराबाद जाकर बसे थे जो निजाम राजा के वफादारी से जुड़े थे। भारत में कायस्थ परिवार को मुसलमान काल से ही राजभक्त कहा जाता है, यह परिवार भी इस से अलग न था। पं. नरेन्द्र जी स्वयं आत्म कथा में लिखते हैं— 'उत्तर भारत से निकल कर निज़ामशाही के प्रति वफादारी स्वीकार करते हुए मेरे वंश के पहले बुजुर्ग हैदराबाद पहुँचे। परिवार का हर व्यक्ति सम्पन्न और शिक्षित था।'

पं नरेन्द्र जी का प्रारंभिक जीवन व उनकी शिक्षा—आपकी प्रारंभिक शिक्षा कायस्थ पाठशाला व धर्मवन्त हाई स्कूल में हुई। कॉलेज में जाने का अवसर न मिला। आप में बाल-काल से ही सामाजिक उत्थान की चेतना थी। कुमार अवस्था में 'जगदीश सभा व कायस्थ यूनियन बनाकर बड़े सामाजिक कार्यक्रम व पुस्तकालय का निर्माण किया। आपके मामा राय ठाकुर प्रसाद वैदिक विचारों में श्रद्धा रखते थे, वे एक साहित्यकार व कवि भी थे जिन्हें लोग 'नम' नामक उपनाम से जानते थे। समाज सुधारक व साहित्य चेतना की प्रबल भावना वाले आपके मामा श्री नम जी का प्रभाव आप पर भी बालकाल से ही पढ़ा पर आर्यसमाज की छाया में आते ही वह सब एक राष्ट्रीय स्वदेश की प्रबल चिनगारी आपके भीतर उठी जिसका परिणाम निज़ाम सरकार को पूर्णरूपेण उखाड़ फेंकने में एक मजबूत स्तंभ का कार्य दिखता है।

'मैं एक साधारण परिवार में उत्पन्न हुआ। वर्षों तक इस कुल को निर्धनता, कंगाली व दुर्भाग्य की चक्की में पिसना पड़ा। खाने-पीने की भीषण समस्या ने शिक्षा प्राप्ति की ललक की भूमि पर विजलियाँ गिरा दीं।—मित्रों की कुसंगत का स्वाद चखता हुआ घंटों बुरी आदतों में व्यस्त रहता था। भगवान की कृपा से जैसे तैसे मिडल तक शिक्षा प्राप्त कर ली।'

आत्म कथा-पं नरेन्द्र जी पृ. 24 पर प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु लिखित 'क्रांतिवीर पं. नरेन्द्र' से बचपन में ज्ञान के पिपासु नरेन्द्र अनेक गुरुओं के पास घूमे। गरीबों का आसरा उपासनी बाबा कालान्तर में शिरड़ी के साईं बाबा (कबीर पन्थी मुसलमान उर्फ चान्द मियाँ) मन्दिर में जाकर फिर इसी तरह अन्य स्थानों पर भी भटके पर कहीं मन की प्यास न बूझी। जब हैदराबाद में आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में आए, विद्वानों का सत्संग-प्रवचन सुना तो विचार बनाया कि वह भी आर्यसमाज के विद्वान् बनकर प्रचारक बनेंगे। विद्वानों के सम्पर्क से लाहौर आकर उपदेशक महा विद्यालय में प्रवेश पाकर केवल ढाई वर्ष ही वैदिक शिक्षा ली। पिता की बिमारी 'प्लेग' की खबर सुनकर अवकाश लेकर पिता से मिलने आए। सेवा आदि के बल पर ईश्वर की कृपा से पिता जी तो स्वस्थ हो गए, कुछ महिने लग गए पर जब वे वापस लाहौर पहुँचे तो परीक्षा की सूची बन चुकी थी जिसमें इनका नाम न था। आचार्य से सम्पर्क करने पर भी नियमानुसार इन्हें आदेश न मिल सका। थोड़े निराश हुए पर वे अपने आचार्य स्वामी स्वतंत्रतानन्द जी के अत्यन्त प्रिय थे। मेधावी तो थे ही। उसी समय पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महा सचिव महाशय कृष्ण ने पास बुलाकर हौसला दिया और कहा कि तुम किसी उपाधि के अब मुहताज नहीं हो। तुम्हारे अन्दर राष्ट्र सेवा की पूरी योग्यता है। तभी 1930-31 का सत्याग्रह आन्दोलन पंजाब में चल रहा था। आप की सहभागिता उस आन्दोलन में जुड़ गई। काफी अनुभव के साथ आप 1933 में लाहौर से हैदराबाद आए और निजाम राज्य के खिलाफ आन्दोलन में कूद पड़े।

जब उपदेशक महा विद्यालय लाहौर में दीक्षान्त समारोह हो रहा था तो उसमें उपस्थित होने व आचार्य से आशीर्वाद लेने का शुभासर आपको नहीं प्राप्त हुआ था पर जब आप सर्दियों के दिन धूप में एक तख्तपोश पर बैठे आचार्य के पास गए और उनके चरणों में शिर नवा दिया तब आचार्य समझ गए कि नरेन्द्र अब घर जाना चाहता है। शिष्य बोला—आपका आशीर्वाद मेरी जीवन-यात्रा की निधि होगा। उसके लिए प्रार्थी हूँ। राष्ट्र प्रेमी महर्षि दयानन्द का प्रतिविंब स्वामी स्वतंत्रतानन्द जी महाराज ने आपके शिर व पीठ पर हाथ फेरते आशीर्वाद दिया और कहा—'**जाओ,**

ईश्वर सब भला करेंगे। लेकिन एक बात याद रखना। खाना घर का खाना, काम दयानन्द का करना और गालियाँ आर्य समाजियों की खाना।' शब्दों को नरेन्द्र ने अपना दीक्षान्त आशीर्वाद समझ कर हैदरावाद की ओर चल दिया। *—जीवन की धूप-छांव—पृ. 28 प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु*

पं. नरेन्द्र जी का 1932 में हैदराबाद आना—स्वामी स्वतंत्रता नन्द जी के आदेश से 1932 में जब विद्यालय के चार अन्य ब्रह्मचारियों के साथ पंजाब के सत्याग्रह में शामिल हुए तभी 144 धारा तोड़ते हुए लाहौर चौराहे पर पं. नरेन्द्र ने ब्रिटिश सरकार के विरोध में क्रांतिकारी भाषण दिया जिसके चलते उन्हें पहली बार जेल जाना पड़ा। कष्ट भी हुए पर इस घटना से उन्हें पक्का अनुभव हुआ। बस स्वामी जी का उद्देश्य भी यही था कि नरेन्द्र अभी कुछ ऐसे राजनैतिक आन्दोलनों में आने वाली कठिनाइयों का अनुभव ले जो कालान्तर में इसे और मजबूत बनाए।

आपने हैदराबाद जाकर आर्यसमाज में वहाँ के मंत्री श्री चन्दुलाल जी आर्य और सर्वेसर्वा आर्य नेता पं. बिनायक जी विद्यालंकार को स्वामी स्वतंत्रतानन्द जी द्वारा प्रमाण-पत्र दिखाया तो पं. बिनायकराव ने सहर्ष अपने मंचीय उद्बोधन में बोला कि **'अंधा क्या चाहे, दो आँखें'** अर्थात् नरेन्द्र जी को हृदय से स्वीकार करते हुए आर्यसमाज से जोड़ लिया और मिलकर आर्यसमाज का कार्य तथा आर्यसमाज के माध्यम से स्वाधीनता संग्राम का कार्य प्रारंभ कर दिया।

हैदराबाद में नरेन्द्र और निज़ाम की लड़ाई

सत्याग्रह में पंडित नरेन्द्र व आर्यसमाज की वीरता के कुछ प्रेरणाप्रद विवरण—पंडित बिनायकराव के बाद दूसरे कर्मठ आर्य नेता दक्षिण केसरी श्री पं.नरेन्द्र जी थे। लाहौर से हैदराबाद आकर सीधे निज़ाम विरोधी आन्दोलन में जुड़ कर प्रण किया कि जब तक निज़ाम के अत्याचारों को मिटा नहीं देंगे तब तक विवाह भी नहीं करेंगे। एक सुयोग्य व सुन्दर देवी ने आपसे विवाह का प्रस्ताव स्वीकार करने को कहा तो आपने यही जबाब दिया-**'जब तक मेरा हैदराबाद गुलाम है, तब तक मैं विवाह कर ऐशो आराम की जिन्दगी कैसे बसर कर सकता हूँ ?'** *—आचार्य सत्य प्रिय हिसार की पुस्तक-पृ. 155.*

पं.नरेन्द्र जी ने हैदराबाद आकर गाँव-गाँव, जिल-जिला घूमकर आर्यसमाजों के माध्यम से स्वाधीनता के लिए निजाम सरकार के अन्याय के विरुद्ध अपूर्वजागृति पैदा की जिससे निजाम सत्ता के हाथ-पैर फूल गए। हैदराबाद कर्नाटक के क्षेत्रों में उस समय भी लगभग 22 आर्यसमाजों का गठन हो गया था जिससे इन्हें सब आर्य समाजियों को जोड़ना आसान हो गया था। निज़ाम इनसे चिढ़ तो गया ही था, बुरी तरह से डर भी गया था। इससे कारण बिना अनेक झूठे लाँछन लगाकर जुबांबन्दी/ बोलने पर रोक और कारावास का दण्ड दे दिया।

गुलबर्गा सम्मेलन के अवसर पर गुंडों ने आप के उपर हमला कर दिया जिससे पाँव की हड्डी टूट गई; इलाज के दौरान डॉक्टरों ने बकरे की हड्डी चढ़ा दी। वह भी ज्यादा अनुकूल न रहा पर आप अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते रहे। राष्ट्रीय कार्यों में तत्पर रहते हुए इस आर्य वीर को डर से निज़ाम सरकार ने अचानक पकड़ लिया और बिना मुकदमा ही हैदराबाद के कालापानी मन्नानूर में बन्द कर दिया जहाँ आस-पास के कई-कई मील तक भयंकर जंगल था और हिंसक जन्तुओं के सिवाय कोई आवादी न थी। वहाँ आप डेढ़ वर्ष रहे पर काफी दु:ख उठाना पड़ा जिसे बहादुरी से आपने सहा। महिना में केवल एक बार ही परिवार को मात्र समाचार के लिए पत्र लिखने की आज्ञा थी। न कोई अखबार, न कोई पुस्तक, न कागज, न कलम। केवल पत्र लिखने के समय ही आवश्यक वस्तु प्राप्त कराई जाती थी।

इस कारावास के दौरान आपकी माता जी सख्त बीमार हो गई। खबर मिलने पर मिलने की अन्तर्वेदना जागी, अवकाश माँगने पर निज़ाम ने शर्त रख दिया कि सरकार से माँफी माँगो तब जीवन की अंतिम घड़ी में आई हुयी अपनी माता से मिलने की इजाजत मिल सकती है पर, साथ में बहुत सारा धन भी देने का प्रस्ताव सरकार ने रखा पर इस आर्य वीर ने चाहे माता को पुत्र-विछोह में घुल-घुल कर मरते छोड़ दिया पर अन्यायी निज़ाम के आगे गिड़गिड़ाना स्वीकार न किया। यह थी उनकी राष्ट्रीयता। राष्ट्र धर्म के कारण विवाह नहीं किया, अंतिम सांस लेती हुयी माँ से भी वे मिल नहीं सके, क्या इस आर्य पर हमें गर्व न होगा?

15 अगस्त 1947 को राष्ट्रीय स्वतंत्रता की खुशी में दिल्ली में

राष्ट्रीय ध्वज फहराने का जश्न चल रहा था तब भी यह वीर क्रूर निज़ाम के जंजीरों में जकड़े तंग व गन्दी कारावासीय कोठरियों में विवस पड़ा था, जिसके लिए लड़ता रहा, निज़ाम को घुटने टिका दिये, अंग्रेजों को भारत छोड़ने पर मजबूर कर दिया और यह कार्य हो जाने पर भी इस वीर को वह राष्ट्रीय जश्न का सुख न मिल सका, ऐसे जवाँदिल आर्य श्रेष्ठ को काश स्वतंत्र भारत में कोई विशेष सम्मान मिल पाता!

निज़ाम उस्मान द्वारा पं. नरेन्द्र से क्षमा-याचना—आपकी वीरता का सम्मान हम यहाँ देख सकते हैं, यद्यपि भारत सरकार ने नहीं ध्यान दिया पर निज़ाम के मरते काल में आप जो निज़ाम के नजरों में सम्मानित हुए उसका कोई तोड़ नहीं हो सकता। इस वीर ने निज़ाम से तो कभी क्षमा नहीं माँगी पर मरते समय निज़ाम ने इनसे क्षमा माँगी—राजेन्द्र जिज्ञासु—पृ. 37–पुस्तक 'क्रांति वीर पं. नरेन्द्र' निज़ाम उस्मान मृत्यु शय्या पर पड़ा था। उसे अपराध बोध सता रहा था। उसने पं. नरेन्द्र से मिलने की उत्कट इच्छा प्रकट की। उसका संदेश पाकर महामानव कोमल हृदय पं. नरेन्द्र उसे मिलने को तैयार हो गए। पास बैठे एक भक्त ने रोका। मत जाइए। क्या पता उसका प्रयोजन कुछ अनिष्टकारी हो। नरेन्द्र नहीं रुके। वह भक्त प्रेमी भी साथ चल पड़ा। नरेन्द्र जी निज़ाम के महल में पहुँचे। निज़ाम ने कर जोड़कर उनका स्वागत व अभिनन्दन किया।

ठीक वैसे ही सिर झुकाकर पंडित जी का स्वागत किया जैसे कभी लौहपुरुष सरदार पटेल का किया था। उसकी पाप से लदी गर्दन उस समय झुकी हुयी थी। उसकी भाव-भंगिमा उस घड़ी उसके अपराध-बोध का परिचय दे रही थी।

निज़ाम ने कहा—'**हमने आपको दबाने, सताने व मिटाने का हर संभव प्रयास किया, परन्तु हमारा राज्य ही मिट गया। मेरे अपराध क्षमा करते हुए मेरे लिये अल्लाह से दुआ माँगें।**'

दयालु ऋषि दयानन्द के उदार हृदय शिष्य नरेन्द्र ने उत्तर में कहा—'**मैंने जो कुछ किया, अपने देश व जाति के प्रति अपना कर्त्तव्य निभाने के लिए किया। मेरे मन में न तब कोई दुर्भावना थी और न अब है। ईश्वर आपका भला करे। मेरी प्रभु से यही प्रार्थना है।**

निज़ाम के अंतिम समय पंडित जी की उस भेंट के प्रत्यक्षदर्शी

साक्षी श्री पंडित ओम् प्रकाश जी वर्मा (यमुना नगर-हरयाणा—आर्य जगत के एक सुप्रसिद्ध लब्धप्रतिष्ठित भजनोपदेशक थे), वे वहाँ उपस्थित थे। 'काश कि पण्डित जी उस समय एक फोटो भी खिंचवा लेते।'

विदित हो कि आर्यसमाज द्वारा चलाया हुआ मंगल हिन्दी रक्षा आन्दोलन के तहत सन् 1957 में पं. ओम प्रकाश वर्मा ने अम्बाला सेंट्रल जेल में 3 मास जेल की यातनायें काटीं। अभी विगत वर्ष ही 25.5.2021 को 90 वर्ष की अवस्था में आपकी मृत्यु हो गई।

उपरोक्त विवरण से ही आप पंडित श्रेष्ठ नरेन्द्र जी के विशाल चरित्र का अन्दाजा लगा सकते हैं।

पं. नरेन्द्र जी की सम्पत्ति जब्त

परेशां हाल हर सूरत परेशानों से मिलता है।
जो खुद होता है दिवाना, वो दिवानों से मिलता है॥

पं. नरेन्द्र जब हैदराबाद के एक स्थान हल्लीखेढ़ में राज्य मुक्ति समारोह पर कार्य कर रहे थे तो वहाँ आर्यसमाज के बड़े-बड़े प्रवक्ता पहुँचे। श्री चन्दुलाल जी के कहने से पं. नरेन्द्र और वहाँ पर दिल्ली से महान् आर्य शास्त्रार्थमहारथी पं. रामचन्द्र देहलवी भी पहुँचे। भाई श्याम लाल, पं. हरिश्चचन्द्र सुपुत्र स्वामी श्रद्धानन्द आदि अनेक आर्य नेताओं का योगदान दक्षिण की स्वाधीनता के लिए त्यागपूर्ण कार्य मिलता है। सबने मिलकर निज़ाम के होश उड़ा दिये पर झुके नहीं।

उपरोक्त कारणों से हल्लीखेढ़ अभियोग में पं. नरेन्द्र सरकार के निशाने पर थे। पंडित जी स्वयं लिखते हैं कि निज़ाम के वफादार मेरे परिवार के सब वरिष्ठ सदस्य थे। निज़ाम ने मेरे परिवार के लोगों को मनसबदारी/सम्पत्ति के हिस्सेदार दी हुयी थी। पिताजी की मृत्यु के बाद उनके बड़े भाई राय राजेन्द्र प्रसाद को सम्पत्ति का आधा हिस्सा दे दिया पर इन्हें इस फरमान के साथ पैत्रिक सम्पत्ति से भी वंचित कर दिया गया यानि इनके हिस्से की सम्पत्ति निज़ाम सरकार द्वारा जब्त कर ली गई।

निज़ाम और मीर उस्मान अली खां ने एक आदेश के द्वारा मनसब को बन्द करने की आज्ञा दी। उस आदेश पत्र में लिखा था-

तुमको मुसलसिल हिदायद देने के बावजूद हकूमत हुकमराने-वक्त के खिलाफ (तुम) बेवफाई बरतते रहे हो, जो बफादारी नामे वक्त के मुगायर (विरुद्ध) है। तुम्हारे मनसब के हक को जब्त किया जाता है। अर्थात् बार-बार निरन्तर समझाने पर भी तुम राज्य व समय के शासक के विद्रोही और बेवा ही रहे हो। ऐसा व्यवहार निज़ामे-वक्त के प्रति निष्ठा के विरुद्ध-शत्रुतापूर्ण है अतः तुम्हारा मनसब/सम्पत्ति-हक छिना जाता है। ***जीवन के धूपछाँव—पं. नरेन्द्र—मनसब प्रसंग से उद्धृत***

तट पर खड़े जो लोग थे, वे देखते रहे।
नदिया में हम जो उतरे तो नदिया उतर गई।

यह विचार पंडित नरेन्द्र के त्यागी व वीरतापूर्ण जीवन का ज्वलन्त उदाहरण है। इनकी कृति, कीर्ति और शौर्य सब बेमिशाल थे। सच में इस रणबाँकुरे के लिए यह कहना सार्थक होगा—

धरती भी डोलती थी, पग जब कभी उठाया।

इस आर्य राष्ट्र वीर की शौर्य गाथा युगों तक गाई जाएगी—**स्व. पी. वी. नरसिंह राव (भूतपूर्व प्रधान मंत्री, भारत सरकार) की दृष्टि में पंडित नरेन्द्र जी** (-इंगलिश) लेख का हिन्दी रूपान्तर—द्वारा प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु -पृ. 70, क्रांतिवीर पंडित नरेन्द्र

'पंडित नरेन्द्र जी स्वाधीनता संग्राम की उपज हैं। मुझे आज भी भली प्रकार से स्मरण है कि 1930 के बाद के व 1940 की दशाब्दी के आरंभिक वर्षों में जब हम स्कूल व कॉलेज के विद्यार्थी थे तो पंडित जी के जोशीले बलबलापूर्ण भाषणों को सुनकर हम कैसे उत्तेजित और प्रेरित होते थे। तब से मैं सदैव पंडित जी को अपना और अपने जैसे सहस्रों व्यक्तियों का प्रेरणास्रोत समझता हूँ। आपका समर्पित जीवन, आत्मोत्सर्ग, सर्वथा निःस्वार्थ भाव, सरलता और दुःसाहसपूर्ण शौर्य युगों तक बेजोड़ माने जाएंगे तथा सहस्रों युवकों के लिए आप आराध्य रहेंगे। हम सब के लिए पंडित जी सर्वोत्कृष्ट मानव मूल्यों के प्रतीक हैं।'

पं. नरेन्द्र को जेल यातनायें—1939 का सत्याग्रह सब सत्याग्रह से बड़ा था। यह सत्याग्रह का कारण साफ था—हिन्दुओं व आर्यसमाज पर निज़ाम का अत्याचार। कहीं आर्यसमाज को गिराना, कहीं आर्यों की हत्या तो कहीं आर्य व हिन्दु-परम्परा पूजा आदि और पर्वों को मनाने में

बाधा। चारों ओर केवल अल्ला हू अकबर की ध्वनि ही सुनाई पड़ती थी। निज़ाम समझने लगा कि उनके इन सब कार्यों से हिन्दु व आर्य सब काँप रहे हैं और उन पर विजय पा लेंगे। निज़ाम का उद्देश्य तो इंडिया को दीनिया अर्थात् दीनों का घर बनाना था पर गुंजोटी में पं. वेद प्रकाश की हत्या, गुलबर्गा के निर्दोष आर्यों को जेल में ठूँसना, श्याम भाई आर्य नेता को विष देकर बीदर जेल में मार देना आदि अनेक आर्यसमाज व आर्य वीरों को बेकसूर अनेक प्रकार से क्रूरता व बरबर्तापूर्ण यातनाएं देना बस निज़ाम सरकार की दिनचर्या सी बन गई थी। 1938 में हैदराबाद के **शेर पं. नरेन्द्र को मनान्नूर जेल में बन्दी** बनाकर रखा जाना आदि आर्यों का त्याग व बलिदान खाली नहीं गया। निज़ाम को आर्यों के सामने घूटने टेकने ही पड़े।

पं. गंगा प्रसाद उपाध्याय के शब्दों में—सब की तपस्या और साधना ने रंग दिखाया—'लगातार आठ मास भूगोल पर का कोई आर्य परिवार नहीं सोया और न निज़ाम और उसके कर्मचारियों को सोने दिया।' जीवन चक्र–पृ. 139–140

हैदराबाद के आर्य नेता श्री घनश्याम जी और देशबन्धु गुप्त के नेतृत्व में आर्य सभायें—हैदराबाद के आर्य नेता श्री घमश्याम जी व देशबन्धु गुप्त आदि के नेतृत्व में एक सभा हुई और अभियान भी चला कि पं. नरेन्द्र जी निजाम छोड़ दें वरणा दूबारा सत्याग्रह शुरू किया जाएगा। निज़ाम अड़ा हुआ था कि उन्हें मनान्नूर जेल में ही रखा जाएगा पर आर्यों के लिए पं. नरेन्द्र हैदराबाद ही नहीं स्वाधीनता की इस लड़ाई में पूरे दक्षिण के प्राण थे। आर्यों के उपरोक्त उद्घोष से अन्त में निज़ाम को झुकना पड़ा और सब आर्यों के धड़कन वीर नरेन्द्र को तीन महिनों में ही रिहा कर देने का आश्वासन देना पड़ा। इसी प्रसंग में यह बताना उचित होगा कि श्री देशबन्धु गुप्त को आर्यों का प्रतिनिधि बनकर एक्सन कमिटि की मिटिंग में भाग लेने जाना था तो गुप्त जी हैदराबाद सत्याग्रह में भाग लेने आए थे। वहाँ निज़ाम आर्यों की नरेन्द्र जी की रिहाई व कुछ अन्य शर्त मान नहीं रहा था, फलतः बहस में तीन घंटों का विलंभ हुआ और जब तक निज़ाम झुक नहीं गया तब तक तीन घंटों तक हैदराबाद से नागपुर जाने वाली ट्रेन आर्यों द्वारा रोक दी गई। **'रेल का इस प्रकार का रुका**

रहना हैदराबाद के इतिहास में अपने ढंग की एक अनोखी घटना है।' नरेन्द्र जी जेल से जब पत्र अपने घर या मित्रों को लिखते थे तो उन्हें निज़ाम के कर्मचारी दबा देते थे। केवल तीन ही पत्र परिवार को मिले। एक भांजी सरला को और दो पत्र उनके भाई को। अपने भाई को लिखे अंतिम पत्र में पंडित जी ने लिखा कि मेरी रिहाई की चिंता न करें। निज़ाम ने आर्यसमाज की सारी शर्तें मान ली है तो रिहा भी करना पड़ेगा। मुझे खुशी है। **'देर आयद दुरुस्त आयद'** अर्थात् देर आया दुरुस्त आया-आदि। इस वीर की अनेक ऐसी साहसिक गाथाएं हैं पर इतने प्रमाणों से ही हमें समझ लेना चाहिये कि निज़ाम को झुकाने में सर्वाधिक श्रेय इस आर्य वीर को ही जाता है।

पं. नरेन्द्र के विभिन्न संस्थाओं से सम्बन्ध—इस प्रकार सम्पूर्ण दक्षिण में निज़ाम के खिलाफ प्रचार किया। 1946 में स्टेट काँग्रेश के मंत्री, 1949—अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन में राष्ट्र-भाषा परिषद के स्वागताध्यक्ष, 1950—आर्य प्रतिनिधि सभा मध्य दक्षिण के प्रधान, 1952—हैदराबाद राज्य विधान सभा के सदस्य, 1953—अखिल भारतीय कांग्रेस के हैदराबाद अधिवेशन के स्वागत मंत्री, 1954—अष्टम आर्य महासम्मेलन हैदराबाद के स्तंभ, 1956—हैदराबाद में दक्षिण की प्रथम संस्था प्राच्य महाविद्यालय के संस्थापक व अध्यक्ष, 1957—पंजाब हिन्दी रक्षा सत्याग्रह के सूत्रधार, 1959—महर्षि दीक्षा शताब्दी मथुरा के संयोजक, 1964—भाई श्यामलाल बलिदान रजत महा सम्मेलन के सूत्रधार, 1965—हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद के अध्यक्ष मनोनित, 1966—हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद की रजत जयन्ती महोत्सव के स्वागताध्यक्ष, 1966—गो-रक्षा आन्दोलन में कारावास दण्ड, 1967—आन्ध्र प्रदेश हिन्दी सम्मेलन के स्वागत मंत्री, 1968—दशम आर्य महासम्मेलन हैदराबाद के स्वागताध्यक्ष, 1971—आर्यसमाज स्थापना शताब्दी समारोह संयोजक बने, 1973—मॉरिशस में आर्य महासम्मेलन को सफल बनाने के लिए मॉरिशस प्रचार यात्रा, 1975—आर्यसमाज स्थापना शताब्दी महोत्सव दिल्ली के लिए अथक कार्य मुख्य संयोजक के रूप में, **1976—श्री स्वामी सत्य प्रकाश जी से हैदराबाद में संन्यास दीक्षा लेकर स्वामी सोमानन्द सरस्वती बने और 1976 ई. 24**

सितम्बर को हैदराबाद में ही आपका महाप्रयाण हुआ। आपका जीवन अंतिम क्षण तक आर्यसमाज व राष्ट्रीय भावनाओं को बढ़ाने में ही लगा रहा। आपके प्रति हम सदा ही नतमस्तक रहेंगे।

अमर हुतात्मा भाई श्याम लाल तथा भाई बंशी लाल

हैदराबाद के सत्याग्रह वीरों में ये दोनों भाई अपने मामा के वजह से आर्यसमाजी बने और सत्याग्रह में बलिदान हुए जिनकी चर्चा कुछ हम पहले ही कर आए हैं। इन दोनों ने स्थान-स्थान पर व्यायाम शाला तैयार कर नौजवानों को बलवान बनाने का प्रयास किया और विविध सम्मेलनों द्वारा निज़ाम का विरोध किया। निज़ाम जब हिलने लगा तो डर से इन पर भी मुकदमा का जाल फेंका और भाई श्यामलाल जी को तो जेल में दवाई के बहाने विष देकर मार दिया गया। अपने पाप को छिपाने के लिए निज़ाम इनका शव नहीं दे रहा था पर उसी समय चतुर आर्य पं. रुचि राम ने एक बड़े अधिकारी का नकली आदेश तैयार कर जेलर को दिखा दिया और उक्त शव बरामद कर लिया। -वीर संन्यासी-प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु पृ. 61-62

भाई श्याम लाल जी के दाह संस्कार पर अनेक आर्य नेता जैसे महात्मा नारायण स्वामी, स्वामी स्वतंत्रतानन्द सरीखे उपस्थित थे। उस समय भाई श्याम लाल जी की वृद्धा नानी बाल विखेरकर हृदयविदारक स्वर में रोने लगी जो सब उपस्थित आर्यों के दिल को दहला दिया। यद्यपि महात्मा नारायण स्वामी धैर्यशाली थे तथापि उस दारुण क्रंदन से वे भी रो पड़े और घोषणा कर दी कि 'आर्यसमाज के धीरज का बांध टूट गया है। अब आर्यसमाज अन्याय के प्रतिकार के लिए सत्याग्रह करेगा। इनका बलिदान बंगाल के यतीन्द्रनाथ दास, टिहरी के देवसुमन और कश्मीर के लिए श्यामा प्रसाद के बलिदान से कम नहीं है।' इतिहास के अनुसार आर्यसमाज के इस सत्याग्रह ने निज़ाम की पाताल तक पहुँची हुई जड़ों को एक जोरदार झटका देकर उखाड़ दिया। निज़ाम जैसे मजबूत सत्ता थर्रा उठी, डॉ. मुंज्जे के शब्दों में कहें तो **'पर्वत अपने स्थान से हिल गया।'** इस प्रकार इस सत्याग्रह को सफल बनाने में सबसे अधिक बलिदान भाई श्यामलाल और भाई बंशी लाल का है।

बंशी लाल ब्यास ने गुरुकुल घटकेश्वर की स्थापना कर आर्य चेतना जगायी। दक्षिण में स्वाधीनता संग्राम में इस गुरुकुल का अत्यधिक योग दान रहा है। गुरुकुल प्रकरण में हम इसकी चर्चा कर आए हैं। निज़ाम ने इन पर भी काफी कहर ढाहा। 1945-46 के बंगाल के साम्प्रदायिक दंगों में भाग लिया। वहाँ रात्रि में कहीं सोने की जगह नहीं मिली तो शांति-प्रस्ताव को लेकर वहाँ महात्मा गांधी गए थे तो साम्प्रदायिक संगठन के लोगों द्वारा तो रोका गया कि गांधी जी के पास कोई और नहीं रह सकता पर गांधी जी ने यह स्थिति भाँप ली और विश्वासपूर्वक कहा कि ये आर्यसमाजी स्वाधीनता कार्यकर्त्ता हैं, इन्हें यहीं मेरे पास ही आने दो और यहीं सो जाएंगे।

मिलिट्री एक्शन आजादी के बाद

स्वतंत्र भारत का पहला राष्ट्रीय ध्वज जब दिल्ली के लालकिले से लहराया गया तो एक बार फिर हिन्दु-मुसलमान की कतलयामी स्थिति बन गई। मानव जाति में यह अत्यन्त शर्मनाक, जघन्य व कलंक रूप कांड हुआ माना जायेगा। दोनों पक्ष एक दूसरे के जानलेना हो गए। आर्यसमाज को इसका भान पूर्व से ही हो रहा था—1942 ई. में ही आर्यजगत् के मूर्धन्य संन्यासी स्वामी स्वतंत्रतानन्द ने लाहौर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर आर्यों व समस्त हिन्दुओं को सचेत किया था—**'लड़ाई तुम्हारे द्वार पर आ गई है, तैयार हो जाओ, नहीं तो घाटे में रहोगे।'** यहाँ उनका ही अंतिम भाषण था जिसमें उपरोक्त उद्बोधन दिया गया।

स्वामी जी के इस भाषण से अन्य प्रचारक भी सजग हो आर्यसमाज को जगाने लगे। तैयारियाँ भी होती रहीं। शांति, सहिष्णुता, धैर्य, भाईचारा आदि का उपदेश जो महात्मा गांधी का था, वह धरा का धरा रह गया और पंजाब, हैदराबाद आदि चारों दिशाओं में कतलयाम शुरू हो गया। यद्यपि आर्यसमाज भी शांति व प्रेम ही चाहता था। लेकिन लीगी मतांध गुंडों द्वारा जब बेगुनाह हिन्दुओं व आर्यों की हत्याएं शुरू कर दी गई तो आर्यसमाज ने भी सब स्थानों पर इसके बदले में कठोर कदम उठाया और मुसलमान गुंडों का डटकर सामना किया। मुसलमानों के दलों में यह नारा **'लड़कर**

किया है पाकिस्तान, हंसकर लेंगे हिन्दुस्तान' गुँजता था। पंजाब में मुस्लिम नवाब मुस्लिम वर्ग में हथियार बाँटते खुश दिखते थे। उनका उद्देश्य बन गया था कि पेशावर से दिल्ली तक हिन्दुओं का सफाया कर दो और हिन्दुस्तान को अपना बना लो। भीतर-भीतर सुरंग बना कर उसमें बारूद बिछाया जाना और यमुना पुल को उड़ाने की योजना बना लेना, यह सब कार्य गुप्तरूप से वे कर रहे थे।

उपरोक्त भीषण परिस्थिति में आर्य वीर दल, आर्यसमाज व आर्यनेताओं ने जो साहसिक कार्य किया वह अपने आप में एक इतिहास है। आर्य नेता रामगोपाल शालवाले व श्रीयुत् ओम् प्रकाश त्यागी ने मुसलमानों के गुप्त राज भारत सरकार तक पहुँचाकर हिन्दुओं की अपूर्व रक्षा की। पंजाब से आने वाले हिन्दुओं को खाना, वस्त्र, आवास आदि व्यवस्था, दवा, सेवा आदि कार्य सब कुछ चुनौतिपूर्ण आर्यसमाज द्वारा किया गया। आर्यसमाज की तत्कालीन राष्ट्रीय सेवा हिन्दुजगत् के लिए मानो अमृततुल्य थी, मुसलमानों ने तो उन्हें भयंकर दुःख रूप विष दे ही रखा था। समुद्र मंथन में अमृत सुख और दुःख रूप विष भी मिला था- ऐसी पौराणिक भान्यता है, यहाँ भारत के उस भीषण काल में आर्यसमाज की सेवा ही अमृत सुख था और मुसलमनों द्वारा दिया दुःख विष। भारत वर्ष ने मानो शिव की भाँति अपने कंठ में विभाजन रूपी विष न चाहते हुए भी देशहित में स्वीकार कर लिया। अस्तु!

अखण्ड भारत और सरदार पटेल-उतरभारत जैसे-तैसे थोड़ा सम्भला तो अंग्रेज तो छोड़ गए पर हैदराबाद के निज़ाम फिर से शिर उठाने लगा और अपने गुंडों के सहारे सारे दक्षिण में अपना साम्राज्य स्थापित करने के मन्सुवे पालने लगा। तब भारत 60 रियासतों में बँटा था। तब लौहपुरुष सरदार पटेल अखंड भारत के निर्माता बने और अपनी चतुराई से सब रियासतों को विलय कर एक राष्ट्र के सूत्र में भारत को बांध दिया। 'भारतसंघ' का निर्माण करके सम्पूर्ण भारत एक सूत्र में मिल गया पर तब भी निज़ाम हैदराबाद भारत संघ में मिलने से इन्कार कर अलग मुस्लिम राष्ट्र की घोषणा कर दी। उसके लिए निम्न योजनाएं बनाई।

1. बरार, उत्तर प्रदेश और आन्ध्र प्रदेश के जिलों पर अपना अधिकार जताना शुरू कर दिया।

2. गोवा को पुर्तगाल से खरीदने का प्रयास।
3. संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता लेने का विचार।
4. अंग्रेजों के तलवे चाटकर और इस बल पर हैदराबाद को ब्रिटिश कॉमन्वेल्थ में सम्मिलित करने की योजना।
5. निज़ाम द्वारा 'मजलिस इत्तेहादुल मुसल्मीन' नामक धर्मान्ध संस्था का निर्माण कर उसके सैनिकों के रूप में तीन-चार लाख रजकारों की प्राइवेट सेना बनाना।
6. भारत सरकार से टक्कर लेने की योजना सफल बनाने के ख्याल से कासिम रजवी को सेना का नेतृत्व सौंपना।
7. कॉम्युनिष्ट पार्टी से गठजोड़ कर भारतीय जनता को कुचलने का कार्यक्रम का शुरुआत कर देना।
8. इस तरह पुलिस, सेना, रजकार तथा कॉम्युनिष्टों की ताना शाही के विरुद्ध सिर उठाने वालों को बिना पूछे गोली से उड़ा देने का निज़ाम द्वारा खुला आदेश दिया जाना।

पं. नरेन्द्र द्वारा रजकारों की भीड़ पर बम फेंका जाना—निज़ाम द्वारा यह सब स्वाधीनता दिवस मनाने से पूर्व ही योजनाएं बनाई गई। पर इन सब विपरीत परिस्थिति में भी स्वाधीनता दिवस वहाँ के आर्य समाजियों द्वारा मनाया गया। इस कारण हिन्दुओं की तबाही और विशेषकर आर्य समाजियों की बर्बादी जी-जान से निज़ाम द्वारा की जाने लगी। पर इस भीषण काल में भी आर्यसमाजी पीछे नहीं हटे और निज़ाम की चाल को सफल न होने दिया। एक बार रजकार सेना हिन्दुओं का नरसंहार करने के लिये एक स्थान पर आ रहे थे तब वीर आर्य नेता नरेन्द्र को पता चल गया तो अपनी चतुराई से रजकारों की भीड़ पर छिपकर बम फेंक दिया जिससे रजकार सेना छितर-वितर होकर टूट गई और बहुत बड़ा नरसंहार टल गया। फिर भी निज़ाम के उपरोक्त षडयंत्र के शिकार आर्यसमाजी यत्र-तत्र होने लगे।

आर्यसमाज द्वारा सेवा-शिविर—तत्कालीन क्रूर निज़ाम द्वारा आर्य समाजियों व हिन्दुओं पर अनेक तरह से हमला शुरू हो गया। चोटी के आर्य नेताओं को बिना वजह (मुकदमा बिना ही) जेलों में ठूँस दिया गया। सरे आम हिन्दुओं का लूटपाट, हत्या व अपहरण जैसे कुकृत्य का बाजार

गर्म हो गया। 'परकाल' नामक स्थान पर ध्वज दिवस के लिए आए जन समूह पर निर्ममता से गोली चलाई गई जिसमें 150 हिन्दु घायल हुए तथा 250 को गिरफ्तार कर लिया गया। पीड़ित लोगों की सेवार्थ आर्यसमाज ने शिविर खोला। शिविर के दौरान धारूर जिला वीड में हिन्दु-स्त्रियों की निज़ामी गुंडों से रक्षा करते आर्य वीर काशी राम को लीगी बदमाशों ने सूखी घास डालकर अग्नि में जीन्दा जला दिया। घोड़े वाज वीर गोविन्द राव आर्य को जिला बीदर में रजकारों ने जीवित ही अग्नि में डाल दिया। उस्मानबाव के 'ईंटे' नामक गाँव के एक दम्पति कृष्णराव व उसकी पत्नी को मकान पर ओ३म् ध्वज लगाने के अपराध में लीगी गुंडों ने जान से मार दिया। यह सब इसलिये कि आर्यसमाज भारत सरकार का समर्थन कर रहा था बल्कि हैदराबाद का नेतृत्व आर्यसमाज ने ही ले लिया क्योंकि निज़ाम ने स्टेट कांग्रेस को अवैध घोषित कर दिया था तो मुकाबले में आर्यवीरों का आगे आना ही उनके खून में था।

अनेक आर्यवीरों द्वारा बम फेंकना—उपरोक्त स्थिति में श्री शेषराव बाघमारे हैदराबाद के नरशार्दुल सशस्त्र क्रांति का संगठन आर्य युवकों को जोड़कर बनाते हुए आगे आए। श्री ए. बाले रेड्डी ने बम फेंककर सशस्त्र क्रांति को आरंभ कर दिया। 65 हथगोलों के साथ आपको पोचमपल्ली तालुका मेडिचल में गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया गया और फिर वे 14 मास के बाद रिहा हो गए। तभी निज़ाम के 40मील प्रति घंटा जाते हुए मोटर पर आल्सैंस स्कूल के पास श्री नारायण राव पवार ने बम फेंक कर मोटर का पिछला हिस्सा नष्ट कर दिया। रास्ते में आगे श्री जगदीश नामक आर्य वीर ने बम लिया हुआ था जो मैथेडिस्ट स्कूल के गंगाराम मोड़ उर्फ गण्डैया तथा बुगलकुंडागली के मोड़ से वह स्थान प्रसिद्ध था। जगदीश के पास बम पिस्तौल सब था जिससे निज़ाम डरकर पुन: वापस घटना स्थल पर ही आ गया। निज़ाम तो बच गया पर ये बम फेंकने वाले और साथी सब पकड़ लिये गए तथा 20-20 वर्ष का कारावासीय सजा उन्हें मिल गई। इस क्रम में पं. नरेन्द्र जी पथर दिल-सरकार, नाना पाटील और उनके सेनापति से मिले। वस्तुत: निज़ाम पर बम इसलिये फेंका गया था कि निज़ाम के मरने पर उसके बेटों में फूट पड़ता और वे अवश्य ही भारत सरकार से सहायता माँगेंगे तब हैदराबाद

को भारत में विलय का मार्ग खुल सकता।

कुछ और भी इसी प्रकार घटनाओं का आर्यसमाजी वीरों द्वारा अन्जाम दिया गया। विजयवाड़ा से आने वाली माल गाड़ी पर श्री पं. रुद्रदेव जी उपदेशक आर्य प्रतिनिधि सभा हैदराबाद, श्री राम कोट्या और सूर्या जी ने युरपालम व गनगेरी के बीच बम फेंककर उसका नष्ट कर दिया। दूसरे दिन समीस्थ गाँव को लीगी गुंडों ने जलाकर भस्म कर दिया तो फिर पं. रुद्रदेव ने विजयवाड़ा से लौट रही गाड़ी को ड्राइवर समेत जलाकर भस्म कर दिया। इस कार्य में विनय कुमार, सत्यनारायण सिंह और मदनमोहन जी श्री बिनायकराव की गुप्त सामग्री इन वीरों तक पहुँचाते रहे। भारत सरकार के प्रतिनिधि रूप कार्य करते हुए हैदराबाद में श्री के. एम. मुंशी को निज़ाम की सब चालों की सूचना भी आर्य जन ही पहुँचाते रहते थे। इसमें श्री रामचन्द्र राम 'बन्देमातरम्' और उनके बड़े भाई श्री वीरभद्र जी, साथ ही कर्ण सिंह और उनके दल का हाथ पूरा था। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली व महात्मा खुशहाल चन्द (म. आनन्द स्वामी जी महाराज) का भरपूर सहयोग सीमा पर कार्य कर रहे आर्य वीरों को आवश्यक सहायता पहुँचाने में पूरा सहयोग मिलता था। इस आन्दोलन में महात्मा जी तो दो हजार रुपये मासिक भी सहायता करते रहे। आर्यसमाज के प्रसिद्ध उपदेशक पं. रुचिराम जी निज़ाम की सारी गुप्त योजनाओं को भारत सरकार तक सूचना रूप पहुँचाने में साहसपूर्ण लगे रहे।

आर्यसमाज के नेता भाई बंशी लाल का दिल्ली में सरदार पटेल से मेल—उपरोक्त प्रस्तुत वीरों के नामों में सब आर्यसमाजी ही थे। ऐसी भयंकर स्थिति में भी गांधी जी की नीति 'अहिंसा परमो धर्म' का राग अलापने वाली भारत सरकार शान से डटी थी। आर्यसमाज के नेता भाई बंशी लाल जी तंग आकर दिल्ली आए और सरदार पटेल से मिले तथा बोले कि **'भारत सरकार ने अगर कुछ भी न करना हो तो हमें सीधा कह दिया जाए या हमें शस्त्र बाँट दिये जाएं जिससे हम कम से कम अपनी रक्षा तो कर सकें।' इस पर स. पटेल जी ने कहा कि आप अपना संघर्ष जारी रखें, हम शस्त्र तो नहीं बाटेंगे परन्तु समय आने पर कोई प्रभावशाली कार्रवाई अवश्य करेंगे।**

—हैदराबाद का स्वाधीनता संघर्ष और आर्यसमाज—पृ. 22—पं. नरेन्द्र जी

मिलिट्री एक्शन पूरा हुआ

जब सरदार पटेल ने भी समझ लिया कि अब निज़ाम ऐसे नहीं परास्त होगा। 'सीधी उंगली से घी न निकलेगा तो उंगली टेढ़ी तो करनी ही होगी' ऐसा विचार कर हैदराबादी आर्यों के कार्य व उत्साह पर स. पटेल को विश्वास था तो उनसे पहले बातें कर ली और बिना किसी शर्त भारतीय सेनाओं को निज़ाम को उखाड़ फेंकने के लिए आदेश देकर उन्हें 'मिलिट्री एक्शन' का पूरा अधिकार दे हैदराबाद की ओर भेज दिया। स. पटेल ने कहा कि आर्यों पर पूरा विश्वास करके ही हमने ऐसा कदम उठाया है। उधर हजारों की संख्या में आर्यसमाजी वीरों ने भी भारतीय सेना को सशस्त्र साथ दिया और निज़ाम को धर दबोजा। यह 100% सत्य है कि हैदराबाद में निज़ाम को उखाड़ फेंकने के इस आन्दोलन को सफल बनाने में भारतीय सेना के साथ हैदराबाद के आर्य समाजियों के साहसिक कार्य व सहयोग का ही सफल परिणाम है। इस ढाई सौ साल की अंग्रेजों की गुलामी व क्रूर निज़ाम राजा के अन्याय, अत्याचार व बर्बरतापूर्ण शासन का अन्त हुआ।

तब वहाँ के वातावरण में सुख व शांति की सुखद हवा चलने लगी। हम यह कह सकते हैं कि निज़ाम सत्ता तो आर्यसमाज के द्वारा चलाया गया सत्याग्रह पर ही खत्म हो गई थी, आर्य समाजियों ने निज़ाम सत्ता के वृक्ष की जड़ों से मिट्टी तो हटा ही दी थी; मिलिट्री एक्शन से केवल वायु का एक झोंका ही दिया गया जिससे निज़ामी सत्तारूपी वृक्ष पूर्णतया धराशाई हो गया, इसमें भी समस्त हैदराबादी आर्य नेताओं व कार्यकर्त्ताओं की वीरता शत प्रतिशत सम्मिलित है।

सरदार पटेल के साहसिक कदम के उदाहरण

भारतमाता के वीर सपूत सरदार बल्लभभाई पटेल ने कैसी चतुराई पूर्वक पुलिस ऐक्शन का आदेश दिया। दिल्ली सरकार ने 15 सितंबर 1948 में निज़ाम पर पुलिस ऐक्शन का आदेश दे दिया। यह सूचना निज़ाम तक पहुँच गई। निज़ाम सरकार ने भी दिल्ली सरकार की इस ऐक्शन को

नाकाम करने की तैयारी दो-तीन दिन पहले से ही करने में जुड़ गई। नलदुर्ग से हैदराबाद तक की सब पुलों को उड़ाने के ख्याल से जीप भरकर गोला-बारूद विस्फोटक सामान शोलापुर से हैदराबाद की ओर निज़ाम ने 13 सितंबर को ही भेजा। उधर सरदार पटेल जी ने भी 13 सितंबर को ही दिल्ली से अपनी पुलिश सेना को निज़ाम पर आक्रमण के लिए रवाना-आदेश दे दिया। तब सेनापति कोई अंग्रेज था, वह कई कानूनी दाव-पेच का हवाला देते हुए श्री पटेल जी के आदेश का आना-कानी करने लगा पर दृढ़संकल्पी वीर पटेल एक न सुनी। इस क्रम में एक और दिलचस्प बात उभरी। अंग्रेज सेनापति ने अंतिम चाल चली कि 13 तारीख हिन्दु-ज्योतिष में अशुभ माना जाता है अत: हमें इसे टालना चाहिये। सरदार पटेल जी ने साफ कह दिया कि **'मैं गुजराती हूँ और गुजरात में 13 का अंक शुभ माना जाता है** अत: यह ऐक्शन 13 को ही होगा। अंग्रेज सेनापति को 13 सितंबर 1948 को ही जाना पड़ा। पटेल जी का यह निर्णय बिल्कुल सही था वरणा निज़ाम ने तो हैदराबाद तक जाने वाली सभी पुलों को उड़ाने की योजना बना रखी थी। भारतीय सेना ने शोलापुर से हैदराबाद की आती हुई बारूद भरी जीप को धर दबोचा और निज़ाम की मनसा को असफल कर दिया। जरा विचार करें-अगर अंग्रेज सेनापति की बात सुनकर पटेल मान जाते तो 15 सितंबर से पहले ही निज़ाम सभी पुलों को नष्ट कर देता और यह लड़ाई काफी कठिन हो जाती। श्री पटेल जी को शायद निज़ाम की इस धूर्तता का कोई आभास था, कुछ भी हो श्री पटेल जी अपने आप में एक अपने निर्णय पर बहादुरी से अडिग रहने वाले नेता थे।

प्रसंगवश यह लिखना उचित ही होगा कि हिन्दुओं में यह अंधविश्वास तो पाया जाता है कि 13 का अंक अशुभ है। इस कारण काफी महत्त्वपूर्ण कार्य भी लोग इस तारीख में छोड़ देते हैं। आज भी चण्डीगढ़ में 13 सेक्टर का अभाव देखा जा सकता है। इसी अंधविश्वास का परिणाम सम्भावित है। आर्य सिद्धान्त इस अंधविश्वास का समर्थन नहीं करता। इससे देश का भारी नुकशान होता देखा गया और वैदिक संस्कृति पर इसे एक अंधविश्वास का दाग भी कहा जा सकता है।

हैदराबाद सत्याग्रह के वीर बलिदानी सुनहरासिंहआर्य

(बुटाना, सोनीपत) 8 जून 1939

उसे तेज बुखार थी, शरीर में विष फैला हुआ था, जेल में उसे लाठियों से पीटा गया लेकिन वह अंतिम सांस तक भारत माता और सनातन धर्म के जयकारे लगाता रहा—

सुनहरा सिंह हरियाणा के सोनीपत जिले में बुटाना गांव का एक गाभरु नौजवान था। वह हंसमुख, स्वस्थ, सुंदर एवं बलिष्ठ शरीर का धनी था। वह मल्ल युद्ध (कुश्ती) का शौकीन अपने माता-पिता का एकमात्र पुत्र था। वह बहुत धार्मिक एवं देशभक्त था।

सुनहरा सिंह जी का जन्म जिला सोनीपत के गांव बुटाना में एक कुलीन जाट परिवार में चौधरी जगराम सिंह जी के घर हुआ था। पिता जी सम्पन्न थे। माता के बाल्याकाल में ही देहान्त हो जाने पर पिता ने अपना समस्त स्नेह इन पर उडेल दिया। लालन-पालन बड़े प्रेम से होने एवं घर के एकमात्र लाडले चिराग होने के कारण इन्हें पाठशाला में बैठाने की बजाय घर पर ही हिंदी भाषा की योग्यता प्राप्त करवायी।

1938-39 में अंग्रेजों का अत्याचार चरम सीमा पर था। हैदराबाद के निजाम से सांठ-गांठ करके हिंदुओं की पूजा अर्चना पर रोक लगा दी थी। तब आर्यसमाज ने सरकार व निज़ाम के विरुद्ध सत्याग्रह छेड़ दिया था। इस घड़ी में धर्मभक्त सुनहरा कैसे पीछे रह सकते थे? वे भी भारत माता और सनातन धर्म के जयकारे लगाते हुए आंदोलन में कूद पड़े। उस समय इनके गौने शादी के बाद (मुकलावा) के दिन निश्चित हो चुके थे। ये उससे पहले ही सत्याग्रही जत्थे में भर्ती होकर हैदराबाद के लिए तैयार हो गए। कई सम्बन्धियों ने एकलौता पुत्र होने के कारण रोकना चाहा पर देशभक्ति से ओत-प्रोत सुनहरा ने किसी की एक न सुनी। वे हमेशा अपने विचारो पर दृढ़ रहते थे। जो निश्चय किया उस पर वह पूरा करके ही दम लेते थे।

श्री महाशय कृष्ण जी के साथ 5 जून को इन्होंने औरंगाबाद में सत्याग्रह किया और सत्याग्रह से डरकर सरकार ने इन्हें व इनके साथियों को गिरफ्तार कर लिया। जेल में इन्हें तेज बुखार हो गया और उस बुखार ने शीघ्र ही भयानक रूप धारण कर लिया था। उनकी बगल में एक फोड़ा भी

निकल आया। ज्वर 105-डिग्री तक पहुंच चुका था और उनकी इस स्तिथि में उन्हें खाना तक न दिया गया। 30 घण्टे बाद मात्र ज्वार की आधी रोटी दी गई और उनके शरीर पर लाठियों से अनेक प्रहार किए गए,, अनेक यातनाएं दी गई लेकिन वे यह सब सहते हुए भी सनातन धर्म और भारत माता के जयकारे लगाते रहे। बाद में लोक दिखावे के लिए इन्हें सिविल अस्पताल भेजा गया। सरकार ने अपनी निर्दयता छिपाते हुए बताया कि फोड़े का विष शरीर में फैल गया और उनको सन्निपात हो गया और रोग दानवी गति से बढ़ गया। अस्पताल में 8 जून 1939 को सुबह 7 बजे सुनहरा सिंह जी देश व धर्म हेतु वीरगति को प्राप्त हो गए। महाशय कृष्ण जी तथा अन्य सत्याग्रहियों को उनकी मृत्यु की सूचना कई घण्टो बाद दी गई।

माननीय श्री अणे ने औरंगाबाद जेल में हुए लाठी चार्ज पर वक्तव्य देते हुए लिखा था कि—5 जून को महाशय कृष्ण के साथ 70 सत्याग्रही गिरफ्तार हुए थे। इतने व्यक्तियों के एकाएक आ पहुंचने से जेल के अधिकारी घबरा गए और उनके लिए रहन-सहन और भोजन की व्यवस्था करना कठिन हो गया। गिरफ्तार हो जाने के 30 घण्टे के बाद उनको ज्वार की सिर्फ आधी रोटी दी गई। इसके विरुद्ध असन्तोष होना स्वभाविक था। असन्तोष फैला तो जेलर ने मुंह बन्द करना चाहा। उसे सफलता नहीं मिली। इस पर वह झल्ला उठा। उसने पुलिस को लाठी चलाने की आज्ञा दी। पुलिस ने हाथ खोलकर लाठियाँ चलाई और बाद में घायलों को घसीट कर कोठरी में बन्द कर दिया।

इसके आगे लिखते हैं हैदराबाद सरकार को कुछ सलाह देते हुए लिखते हैं—कि मैने देखा कि—'श्री सुनहरा जी की मृत्यु बड़ी सन्दिग्ध अवस्था में हुई है। उनके शव पर गम्भीर चोटों के चिन्ह थे।'

जिस समय नगर औरंगाबाद में सुनहरा की मृत्यु का पता लगा तब बहुत से प्रतिष्ठित पुरुष वहां पहुंच गए। उनकी इच्छा थी कि हम शव को शहर में से ले जाएगें। कर्मचारी इससे सहमत न थे। अन्त में यह समझौता हुआ कि जिस मार्ग से कर्मचारी चाहते हैं, महाशय कृष्ण और सत्याग्रही उसी मार्ग से शव को श्मशान भूमि में ले जाएं। नगर निवासी पुनः अन्तिम दर्शन के लिए श्मशान भूमि में आए। वहाँ प्रबन्ध ऐसा ही किया गया। श्मशान भूमि के सहस्त्रों नगर-निवासी उस वीरात्मा की अंत्येष्टि में

उपस्थित हुए। सुनहरा के शव को विभावसु की शिखाओं को भेंट करके सत्याग्रही अपने साथी के भाग्य के साथ ईर्ष्या करते हुए जेल वापिस आ गए। हुतात्मा श्री सुनहरा को शत-शत नमन।

आज इन्हें और कहीं तो छोड़िए, इनके गांव तक में कोई न जानता। न ही इनका कोई स्मारक है। हमें शर्म आनी चाहिए कि बलिदानियों के कर्ज को खाते हुए उन्हें स्मरण भी न करते।

प्रस्तुतकर्ता—अमित सिवहा, चौधरी जयदीप सिंह नैन

इन सब आर्य वीरों की जय हम गाते रहेंगे और भारतमाता की शान बढ़ाते रहेंगे।

गोवा सत्याग्रह—यह एक स्वतंत्र भारत का महत्त्वपूर्ण सत्याग्रह है। फरवरी 1954 में शुरू हुआ और अप्रैल 1955 तक चला। नेशनल कांग्रेस के नेतृत्व में जब पुर्तगालि सरकार के सामने प्रस्ताव रखा कि गोवा को भारत का हिस्सा बनाया जाए तो वह सरकार नहीं मानी तो भारत सरकार ने इसके लिए आन्दोलन छेड़ा। जुलाई-अगस्त होते-होते आन्दोलन तेज हो गया और सत्याग्रह के लिए जब घोषणा हुई तो लगभग 30 लोग गोवा में सत्याग्रह के लिए जमा हुए जिसमें दिल्ली व दक्षिण भाग से आर्यसमाजी भी काफी उत्साह से उस सत्याग्रह के भागीदार हुए। कहते हैं 2567 लोग गिरफ्तार हुए जिसमें आर्य वीरों की संख्या अधिक थी। हर आन्दोलन की तरह आर्यसमाजी इसमें भी पीछे नहीं रहे और जी-जान से अपनी सहभागिता दर्ज करायी। कई आर्य वीर तो पुर्तगालि सिपाहियों के हंटर खाए और कई उनकी गोलियों से शहीद भी हो गए। कई हजार आर्य वीर दल के सैनिक सत्याग्रह के लिए जत्थाबन्दी तैयार कर ली थी और गोवा जाकर पुर्तगालि सरकार के खिलाफ आन्दोलन में शामिल होने के लिए मचल रहे थे पर परिस्थितिवस सत्याग्रह स्थगित हो गया तो जहाँ के तहाँ आर्य जन थम गए। उक्त सत्याग्रह के दौरान आर्यसमाज के लोग सत्याग्रहियों की सेवा व अन्य सुविधाओं के लिए आर्थिक सहयोग देने में भी किसी से पीछे न रहे। गोवा राज्य 1961 में पुर्तगालियों से मुक्त होकर पूर्णतया भारत सरकार का हिस्सा बन गया। यहाँ भी आर्यसमाज का त्याग व बलिदान हम भूल नहीं सकते।

कश्मीर समस्या व जस्टिस मेहरचन्द महाजन

कश्मीर क्षेत्र की समस्या और न्यायमूर्ति मेहर चंद महाजन द्वारा निभाई गई भूमिका-भारतवर्ष के विभाजन और स्वतंत्रता के बाद, जम्मू और कश्मीर के राजा महाराजा सर हरि सिंह अपने राज्य को एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में रखना चाहते थे। वह एक हिंदू राजा थे लेकिन उनके राज्य के अधिकांश निवासी मुसलमान थे।

पाकिस्तान में नई सरकार के प्रोत्साहन के साथ, कबाइली (आदिवासी) नामक क्षेत्र के स्थानीय लोगों ने जम्मू के क्षेत्र में अक्टूबर 1947 में महाराजा सर हरि सिंह के राज्य पर हमला किया। पाकिस्तान ने 22 अक्टूबर 1947 को उत्तरी पश्चिम-सीमा क्षेत्र (NWFP) (North West Frontier Province Pakistan) से आदिवासियों को लामबंद करके 'ऑपरेशन गुलमर्ग' शुरू किया। लगभग 20 आदिवासियों, पूरी तरह से आधुनिक हथियारों से लैस और पाकिस्तानी सेना के जनरलों के सीधे नियंत्रण में मोटर बसों और पैदल ही मुजफ्फराबाद में प्रवेश किया।

जैसे ही आक्रमणकारियों ने महाराजा की सेना के न्यूनतम प्रतिरोध के साथ उरी और बारामूला पर कब्जा कर लिया, तब श्रीनगर का पतन आसान लग रहा था।

इसलिए 24 अक्टूबर 1947 को महाराजा हरि सिंह ने आक्रमण को रोकने के लिए भारत से सैन्य सहायता की अपील की।

लॉर्ड माउंटबेटन की अध्यक्षता में और नेहरू, पटेल, बलदेव सिंह, पोर्टफोलियो के बिना मंत्री गोपालस्वामी अय्यंगार और सेना, वायु सेना और नौसेना के ब्रिटिश कमांडरों-इन-चीफ समेत भारत की रक्षा समिति की बैठक में 25 अक्टूबर को इस अनुरोध पर विचार किया गया था। समिति ने निष्कर्ष निकाला कि 'सबसे तात्कालिक आवश्यकता कश्मीर सरकार द्वारा पहले से ही अनुरोध किए गए हथियारों और गोला-बारूद को पहुंचाना था, जिससे स्थानीय आबादी हमलावरों के खिलाफ कुछ

बचाव कर सके।' —लेफ्टिनेंट जनरल के.के.नंदा की पुस्तक 'वॉर विद नो गेन्स' के अनुसार।

रक्षा समिति ने राज्यों के मंत्रालय के सचिव वी.पी.मेनन को उसी दिन मौके पर अध्ययन करने के लिए श्रीनगर भेजा। वह अपने छापों के साथ अगले दिन नई दिल्ली लौट आए और 'कश्मीर को हमलावरों से बचाने के लिए सर्वोच्च आवश्यकता' की ओर इशारा करते हुए कश्मीर में सेना भेजने का सुझाव दिया।

महाराजा को सरकार के दृष्टिकोण के बारे में सलाह देने के लिए मि. मेनन को ही जम्मू भेजा गया था, और जब महाराजा ने अंतत: 26 अक्टूबर 1947 को विलय के दस्तावेज पर हस्ताक्षर किए, तो मेनन पीएम महाजन के साथ दिल्ली लौट आए। पाकिस्तानी सेना द्वारा समर्थित कबायली आक्रमण को खदेड़ने के लिए भारतीय सेना को हवाई मार्ग से श्रीनगर ले जाया गया।

महाजन ने सितंबर 1947 में महाराजा के निमंत्रण पर कश्मीर का दौरा किया और उन्हें जम्मू-कश्मीर का प्रधान मंत्री बनने के लिए कहा गया, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया।

15 अक्टूबर 1947 को, जस्टिस महाजन को जम्मू और कश्मीर का प्रधान मंत्री नियुक्त किया गया और उन्होंने राज्य के भारत में विलय में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जम्मू और कश्मीर का 26 अक्टूबर 1947 को भारत में विलय हो गया और महाजन इस प्रकार भारतीय राज्य जम्मू और कश्मीर के पहले प्रधान मंत्री बने, जो 5 मार्च 1948 तक उस पद पर कार्यरत रहे। इसके बाद वे भारत के सर्वोच्च न्यायालय में न्यायाधीश बने और 3-4 जनवरी 1954 से 22 दिसंबर 1954 तक भारत के मुख्य न्यायाधीश रहे। भारत के मुख्य न्यायाधीश के रूप में, उन्होंने वर्ष 1954 में सुप्रीम कोर्ट परिसर की आधारशिला रखी। उन्हें उनके काम की अंतरराष्ट्रीय पहचान मिली और उनका चित्र संसद में लगा—जहाँ लिखा गया—''**हाउस ऑफ यूके और न्यूयॉर्क के लाइब्रेरी ऑफ वर्ल्ड के जाने-माने जज**''। उन्हें भारत में जेल सुधारों के लिए भी जाना जाता है।

महाजन उस समय आर्यसमाज आंदोलन के जाने-माने नेता थे। उन्होंने जम्मू-कश्मीर के पीएम का पद संभालने के लिए पूर्वी पंजाब

उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के पद से इस्तीफा दे दिया।

वह डीएवी के अध्यक्ष थे। (वर्ष 1938 से वर्ष 1943 तक प्रबंधन समिति-काल)। हिसार के आचार्य सत्यप्रिय शास्त्री द्वारा लिखित पुस्तक पृष्ठ 164-65 के अनुसार।

'स्थानीय कबाइली लोगों के हमले के बाद, पाकिस्तानी सेना के पूर्ण समर्थन के साथ, प्रधान मंत्री मेहर चंद महाजन भारत के प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू और उप प्रधान मंत्री और भारत के गृह मंत्री श्री वल्लभ भाई पटेल से मिलने के लिए दिल्ली आए और इससे निपटने के लिए मदद माँगी। पाकिस्तान की आक्रामकता पर भारत सरकार ने महाराजा सर् हरि सिंह को भारत के डोमिनियन में शामिल होने के लिए विलय कानूनी दस्तावेज पर हस्ताक्षर करने के लिए कहा।'

जब महाराजा हरि सिंह सहमत हो गए और 26 अक्टूबर 1947 को आवश्यक दस्तावेज पर हस्ताक्षर कर किए तब इस प्रकार भारत सरकार के लिए जम्मू और कश्मीर की रक्षा हेतु अपनी सेना भेजने का मार्ग प्रशस्त हो गया।

जस्टिस मेहर चंद महाजन एक महान देशभक्त थे, जिनकी बुद्धि से जम्मू-कश्मीर भारत का हिस्सा बना।

—कोर्ट्स ऑफ जम्मू न्यूज दिनांक 12/25/2020

फिरोजपुर और गुरदासपुर समस्या हल—पंजाब क्षेत्र भारत का हिस्सा बनाने की स्वीकृति-धर्म के आधार पर भारत के विभाजन के लिए दो सीमा आयोग बनाए गए। पंजाब आयोग का प्रतिनिधित्व जस्टिस मेहर चंद महाजन और तेजा सिंह ने किया, जबकि पाकिस्तान का प्रतिनिधित्व दीन मोहम्मद और मोहम्मद मुनीर ने किया। जस्टिस सी.सी.बिस्वास और बी.के. मुखर्जी ने बंगाल आयोग में भारत का प्रतिनिधित्व किया, जिसमें अबू सालेह मोहम्मद अकरम और एस.ए.रहमान पाकिस्तान की वकालत कर रहे थे। सर सिरिल रैडक्लिफ दोनों आयोगों के सामान्य अध्यक्ष थे।

न्यायमूर्ति मेहर चंद महाजन ने जम्मू-कश्मीर क्षेत्र के साथ सीधा सड़क और रेल संपर्क बनाए रखने के लिए भारत को फिरोजपुर और गुरदासपुर देने के लिए अपना तर्क रखा। रैडक्लिफ आयोग के अधिकांश

सदस्य महाजन के विचार से सहमत नहीं थे लेकिन वायसराय माउंटबेटन ने उन्हें आश्वस्त किया कि वह अपनी बातों पर फिर से विचार करेंगे और इसके बारे में कुछ करेंगे।

माउंटबेटन ने रैडक्लिफ को फिरोजपुर और गुरदासपुर भारत को देने के लिए मना लिया।

'ज्यादातर पाठकों को शायद इस बात की जानकारी नहीं होगी कि पहले पूरा फिरोजपुर और गुरदासपुर पाकिस्तान को दिये जाने की कल्पना की गई थी। अगर ऐसा होने दिया जाता, तो भारत और जम्मू-कश्मीर के बीच कोई रेल और सड़क संपर्क नहीं होता और पाकिस्तान आसानी से पूरे राज्य पर कब्जा कर लेता। यह राज्य में रहने वाले लाखों हिंदुओं और सिखों के लिए बिनाशकारी साबित होता।

रैडक्लिफ आयोग में सभी धर्मों और दलों के प्रतिनिधि थे और फिरोजपुर और गुरदासपुर के विभाजन में महाजन की भूमिका भारत के साथ शेष क्षेत्र के एक बड़े हिस्से को मिलाना अत्यन्त प्रशंसनीय है।'यह सही है कि अधिकांश सदस्य एकमत नहीं थे और लॉर्ड माउंटबेटन को हस्तक्षेप करने और फैसला देने के लिए मजबूर होना पड़ा। ऐसा लगता है कि महाजन के तर्कों ने माउंटबेटन को प्रभावित किया और उन्होंने मेहर चंद महाजन के द्वारा रखे गए प्रस्ताव और यथोचित तर्क को महत्त्व देते हुए ही भारत को फिरोजपुर और गुरदासपुर का एक हिस्सा दे दिया।

—द्वारा डेली एक्सेलसियर दिनांक (23.12.2013)

श्री मेहरचंद महाजन के जीवन का सामाजिक और आध्यात्मिक पहलू

न्यायमूर्ति मेहर चंद महाजन एक धर्मनिष्ठ आर्यसमाजी थे। वह आर्यसमाज के संपर्क में आए और उसकी गतिविधियों में गहरी दिलचस्पी लेने लगे। उन्होंने महर्षि दयानंद सरस्वती की इच्छा के अनुसार वैदिक दर्शन की सच्ची शिक्षाओं के प्रचार के लिए अथक प्रयास किया।

श्री जस्टिस मेहर चंद महाजन ने आर्यसमाज के पुरोहितों और उपदेशकों (प्रचारकों) के महत्त्व को समझा और इसलिए उन्होंने टंकारा में उपदेशक विद्यालय शुरू किया।

वर्ष 1966 में, उन्होंने श्री सत्य देव विद्यालंकार को टंकारा भेजा ताकि वे उपदेशक विद्यालय शुरू कर सकें। उन्होंने ने कहा- **'टंकारा उपदेशक विद्यालय तभी सफल होगा जब वह आर्यसमाज के लिए उपदेशक बनाएगा। आर्यसमाज को और अधिक पुरोहितों और प्रचारकों की जरूरत है।'—टंकारा की वेबसाइट, स्वामी दयानंद जी का जन्मस्थान।**

टंकारा में उपरोक्त विद्यालय के लिए, न्यायमूर्ति महाजन ने दान में लाखों भारतीय रुपये जुटाए। महाजन आर्यसमाज टंकरा के अध्यक्ष थे।

मेहर चंद महाजन ने अखिल भारतीय महाजन शिरोमणि सभा के अध्यक्ष के रूप में शपथ ली। यह हर्ष का विषय है कि जम्मू में महाजन सभा ने गांधी नगर में महाजन साहिब की स्मृति में **एक अस्पताल खोला** है जहाँ रोगियों को जाति, पंथ और रंग के बिना भेदभाव मुफ्त इलाज और दवाएं उपलब्ध हैं।

—रवि रोहमेत्रा, लेखक—सामाजिक कार्यकर्ता और लेखक
—ई-पेपर दैनिक एक्सेलसियर द्वारा दिनांक 23/12/2013

रविवार 31 दिसंबर 2017 को, भारत सरकार के वित्त मंत्री श्री अरुण जेटली ने केंद्रीय मंत्रियों डॉ जितेंद्र सिंह और मनोज सिन्हा के साथ न्यायमूर्ति मेहर चंद महाजन की स्मृति में **डाक टिकट** जारी किया। इस अवसर पर बोलते हुए श्री अरुण जेटली ने महाजन के बहुमुखी व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला और कहा—'शायद ही कोई ऐसा उदाहरण हो जहां इस तरह के असाधारण क्षमता के कानूनी विद्वान ने देश में सर्वोच्च न्यायिक पद हासिल किया हो, जिनका योगदान केवल कानूनी पेशे तक ही सीमित नहीं रहा।' जेटली ने जम्मू-कश्मीर के प्रधान मंत्री के रूप में और भारत के साथ राज्य के विलय को पूरा करने में न्यायमूर्ति महाजन के योगदान की सराहना की। उन्होंने सामाजिक जीवन में उनके एक साथ योगदान, विशेष रूप से आधुनिक भारत में आर्यसमाज आंदोलन को आगे बढ़ाने के लिये उनकी भूमिका पर भी टिप्पणी की।

—डेली एक्सेलसियर द्वारा दिनांक 01/01/2018 के ई-पेपर, होम-जम्मू समाचार से लिया गया

महाराजा हरि सिंह द्वारा न्यायमूर्त्ति मेहरचन्द महाजन को जमीन-दान

अपनी मृत्यु से पहले महाराजा सर हरि सिंह ने कश्मीर में न्यायमूर्ति मेहर चंद महाजन को जमीन का एक बड़ा टुकड़ा दान में दिया था। वर्तमान में इसी जमीन पर एक बड़ा कॉलेज चल रहा है।

उल्लेखनीय है कि श्री मेहरचन्द महाजन का जन्म 23 दिसम्बर सन् 1889 में पंजाब के काँगड़ा जिला (अब हिमाचल प्रदेश में) नगरौटा ग्राम में हुआ। आपके पिता लाला बृजलाल एक वकील थे जिन्होंने धर्मशाला में एक प्रतिष्ठित कानूनी प्रथा स्थापित की। इनकी धाय माँ का नाम रंगटू था जिसने इन्हें बचपन में अपना दूध पिलाया और देखभाल किया। कहा जाता है कि जब बालक मेहरचन्द का जन्म हुआ तो उनके पिता ने ज्योतिषियों से उसका भाग्य जानने का यत्न किया परन्तु ज्योतिषियों ने बालक को अशुभ घोषित कर दिया। इसी बात से दु:खी होकर पिता श्री बृजलाल जी द्वारा इस बालक को एक राजपूतानी रंगटू नामक आया को सौंप दिया गया और उसको दूध पिलाने एवं देखभाल रखने की जिम्मेवारी भी इसी आया को दी गई। पर वह बालक अपने पुरुषार्थ और वैदिक संस्कार से इतना महान् बनेगा-किसे पता था! यह सब उस बालक की विलक्षण बुद्धि एवं समय-प्रवाह में उस पर महर्षि दयानन्द की शिक्षाओं के प्रभाव का ही परिणाम है कि वे भारतवर्ष के न्यायादि सर्वोच्च पदों पर सुशोभित हुये। इनका देहावसान 5 अप्रैल 1967 को हुआ। वे अपने जीवन में अनेक महत्त्वपूर्ण पदों पर रहे।

राजा हरिसिंह का जन्म 21 सितम्बर 1895 जम्मू में हुआ जबकि इनकी मृत्यु 26 अप्रैल 1961 मुंबई में हुई।

श्री मिश्रीलाल आर्य

5 अक्टूबर 1903—28 दिसम्बर 1990

नवम अध्याय

इतिहास के नये पन्ने

संसार में बहुत ऐसे महापुरुष होते हैं जो नि:स्वार्थ भाव से जीते हैं और इसी पवित्र भावना की पवित्र छाया में समाज व राष्ट्र के लिए काम भी करते हैं। उन्हें यह परवाह नहीं होता कि दुनियाँ हमारी प्रशंसा करे पर वे तो अपनी धुन में लगे रहते हैं और ऐसे लोग निश्चित ही समाज के लिए कुछ विशेष कर जाते हैं। प्राय: देखा जाता है कि ऐसे कर्मठ व श्रेष्ठ व्यक्तित्व के धनी, समाज व राष्ट्र के उन्नायक इतिहासकार की दृष्टि से ओझल रह जाते हैं। वेशक ऐसा हो, तथापि कर्मठ पुरुष अपने ध्येय से कभी पीछे नहीं हटते और बिना रुके, थके वस निरन्तर उद्देश्य की चरम सीमा तक पहुँचने में सततप्रयत्नशील ही रहते हैं। ऐसे में ही हमें एक उदात्त चरित्र व व्यक्तित्व के मालिक मिले- 'उत्तर प्रदेश (भारत) के टाण्डा निवासी स्वतंत्रता सेनानी स्वनाम धन्य स्व. बाबू मिश्री लाल आर्य।' आप स्वाधीनता संग्राम के कार्यक्रमों में अपनी चढ़ती जवानी के लगभग सोलह वर्षीय अवस्था से ही अत्यन्त रुचि पूर्वक भाग लेने लगे थे। इसका विस्तार हम आगे पढ़ेंगे।

बाबू मिश्री लाल का व्यक्तित्व—

प्रदानं प्रच्छन्नं गृहमुपगते सम्भ्रमविधिः
प्रियं कृत्वा मौनं सदसि कथनं चाप्युपकृतेः।
अनुत्सेको लक्ष्म्यां निरभिभव साराः परकथाः
सतां केनोद्दिष्टं विषममसि धाराव्रतमिदम् ॥

नीति शतक—64—भर्तृहरि

गुप्तदान, घर आए हुए का आदर करना, उपकार करके चुप रहना, दूसरों द्वारा किये उपकार को सभा में कहना, सम्पत्ति रहते हुए गर्व न

करना, दूसरों के कथा-प्रसंग में उसके परभाव अर्थात् निन्दा का भाव न दिखाना आदि सज्जनों का यह कठोर असिधारा (तलवार की धार) पर चलने के समान इस व्रत को किसने कहा? आर्थात् श्लोकगत् बताए ये गुण महात्माओं के स्वाभाविक ही होते हैं।

भीमं वनं भवति तस्य पुरं प्रधानं
सर्वोजनः सुजनतामुपयाति तस्य।
कृत्स्ना च भूर्भवति सन्निधिरत्नपूर्णा
यस्यास्ति पूर्वं सुकृतं विपुलं नरस्य॥

नीति शतक— 103 भर्तृहरि

जिस मनुष्य ने पूर्व जन्म में अत्यधिक पुण्य किया है, उसके लिए भयंकर वन भी राजधानी बन जाता है, समस्त लोग सज्जन हो जाते हैं और सारी पृथिवी खजानों व रत्नों से भरी पूरी हो जाती है।

श्री मिश्री लाल आर्य का भी व्यक्तित्व बस ऐसा ही था। तन-मन-धन से समाज व राष्ट्र की सेवा महर्षि दयानन्द द्वारा स्थापित आर्यसमाज के सिद्धान्तों के अनुसार वैदिक उपदेशों का महत्त्व देते हुए आर्य राष्ट्र निर्माण योजनाओं में ही अपना सारा समय बिताया। अपना व्यापार व परिवार का देखभाल करते हुए भी दिनरात उनका मन का सर्वाधिक चिन्तन समाज के विकास में ही मग्न व व्यस्त रहा करता था। आर्यसमाज टाण्डा, आर्य कन्या इंटर कॉलेज (अब मिश्री लाल आर्य कन्या इंटर कॉलेज नाम से विभूषित) और इनसे जुड़ी अनेक शिक्षण संस्थाओं से आपका जीवन जड़ से जुड़ा होने के कारण हमें उन्हीं संस्थानों द्वारा आपके उदार, त्यागी, परोपकारी व राष्ट्रीय भावनाओं से युक्त उज्ज्वल व्यक्तित्व का सत्य ज्ञान होता है जो अपने आप में एक सबके लिए प्रेरक इतिहास है।

उनका जन्म और जीवन

आपका जन्म श्री रग्घूराम जी के चतुर्थ पुत्र श्री गयाप्रसाद आर्य के घर उनकी तीसरी संतान के रूप में माता श्रीमती झिनका देवी की गोद में उत्तर प्रदेश के टांडा नगर में सायं 4 बजे दिन सोमवार आश्विन शुक्ला त्रयोदशी सम्वत् 1960 तदनुसार दिनांक 5 अक्तूबर सन् 1903 को हुआ।

श्री मिश्री लाल आर्य ने अपनी जीवनी के कुछ महत्त्वपूर्ण पन्ने स्वयं लिखे हैं जिससे वंशानुक्रम और स्वजीवन का संक्षिप्त परिचय मिलता है, वह 'जीवन ज्योति' के नाम से परिवार व आर्यसमाज टाण्डा द्वारा प्रकाशित पुस्तक पाठक गण के लिए सचमुच ही जीवन ज्योति भरने वाली है।

आप एक सफल व्यापारी, जिम्मेदार गृहस्थ व समाज व राष्ट्र के सच्चे सेवक थे। 14-15 वर्ष की उम्र में ही आप राजनीति में कूद गए थे जिसका कारण विदेशी बेड़ियों में जकड़ा गुलाम भारत माता की सिसकती दुर्दशा ही थी। अपने आर्य पिता से संस्कारित तो आप थे ही, उपर से आपकी धर्मपत्नी श्रीमती राम प्यारी देवी भी आर्या ही मिली जिसने आपको जीवन के सभी आयामों में निष्ठापूर्वक साथ दिया। आपके बड़े साले साहब मोतीहारी जिला चम्पारण निवासी श्री जगन्नाथ चौधरी एक प्रतिष्ठित जमींदार, समाजसेवी, स्वतंत्रता संग्राम सेनानी व आर्य नेता थे। ये सारी स्थितियाँ आपको भारतमाता के लिए स्वाधीनता-लड़ाई में उतरने के लिए प्रबल प्रेरणा लेकर आपके जीवन में आयीं।

'सन् 1916 में शिक्षा समाप्त होने के उपरान्त सन् 1917 में देश की परतंत्रता के विरुद्ध हृदय में क्रांतिभाव व क्रांतिकारी विचार उत्पन्न हो गया, और मैं राजनीति में प्रविष्ट हो गया। पिताजी आर्यसमाजी थे ही इसीलिये महर्षि दयानन्द तथा वैदिक सिद्धान्तों से प्रेम तथा उसमें निष्ठा होना स्वाभाविक था। मैंने सन् 1917-18 में ऋषिकृत अमरग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश का अध्ययन किया तथा अपने जीवन को उसके अनुरूप ढालने का व्रत लिया।'

—जीवन ज्योति (आत्मकथा)—पृष्ठ-24-लेखक श्री मिश्री लाल

विवाह काल में ब्रिटिश सरकार द्वारा गिरफ्तारी का वारंट—तत्कालीन स्वाधीनता संग्राम में सक्रिय हो जाने के कारण आपको अपने विवाह-काल में भी टाण्डा से सीधा बारात के साथ ब्रिटिश आदेश के कारण चम्पारण बिहार जाना न हो सका था तो आप अपनी बहन श्रीमती शांति देवी के पास बलिया चले गए और वहीं से चम्पारण पहुँचे। तब आपके पिताजी ही टाण्डा से बारात लेकर चम्पारण चले गए।

निर्वासन काल-वृतान्त—हुआ ये कि क्रांतिकारियों पर ब्रिटिश

सरकार की कड़ी नजर थी अत: आपको टांडा में एक मास आवास नहीं कर सकने का आदेश ब्रिटिश सरकार ने दिया हुआ था और इसी तरह मोतीहारी छोड़कर श्री जगन्नाथ चौधरी जी भी कहीं बाहर नहीं जा सकते थे। ऐसी स्थिति में आपको बाहर ही बाहर से विवाह स्थान पर जाना पड़ा और फिर वापिस भी टांडा न आकर सीधा बलिया ही जाना पड़ा जबकि विवाहोपरान्त बारात व पुत्रवधू के साथ आपके पिताजी टांडा आ गए। क्रांतिकारिता के कारण ही राष्ट्र के लिए विवाहोपरान्त अपने परिवार से दूर रहने का कष्ट आपको सहना पड़ा। तब आप मात्र 29 वर्ष के युवा थे। बलिया से आसाम तक व्यावसायिक यात्राएं आपकी चलती रहती थीं और नियमित व्यावसाय के कारण लम्बे समय के बाद ही आपको टांडा आकर परिवार के साथ रहने का सुअवसर प्राप्त हो सका। अर्थात् निर्वासन अवधि के बाद ही टांडा वापिस आए।

अर्थागमो नित्यमरोगता च, प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च।
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या, षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन्।।

विदुरनीति

महात्मा विदुर ने एक नीति में अपने राजा से कहा—

हे राजन्! संसार के 6 सुख हैं—

1. धन की प्राप्ति होते रहना,
2. सदा स्वस्थ रहना,
3-4. प्रिय एवं मधुर बोलने वाली पत्नी,
5. आज्ञाकारी पुत्र और
6. धर्मार्थकाममोक्ष रूपी मानव लक्ष्य की पूर्ति कराने वाली विद्या।

उपरोक्त श्लोक में वर्णित छ: नीतियों के अनुसार श्री मिश्री लाल जी अपना जीवन पूर्ण मानते थे। आर्थिक सम्पन्नता, अच्छा स्वास्थ्य, गृहस्थ में धर्मपत्नी का सब ओर से प्रियता व मधुरतापूर्ण सानिध्य, आज्ञाकारी सारे पुत्र और इस तरह जीवन के पुरुषार्थ/लक्ष्य चतुष्टय की पूर्ति में मेरी शिक्षा व संस्कार ये सब ईश्वरकृपा से मेरे जीवन के सोपान थे—ऐसा वे मानते थे। उन्होंने लिखा कि उनकी धर्म पत्नी भी अपनी मातृभूमि से राष्ट्रीय सेवा के संस्कार लेकर आई थी। एक क्रांतिकारी राष्ट्र-प्रेमी क्रांतिकारी की छोटी बहन जो थी, इतना ही नहीं, स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्र

प्रसाद एवं महान योद्धा राष्ट्रभक्त बाबू कुँवर सिंह की जन्म स्थली से वह थी जिनके उच्चे चरित्र व वीरता की गाथा बचपन से सुन-सुन कर बड़ी हुयी थी। वही साहस व देश-प्रेम उसके जीवन का भी आधार बना। वह सदा निर्भीक रहती थी और अपने बच्चों को भी ऐसे ही संस्कार दिया करती थी। अपने घर के उन सब जिम्मेवारियों को अत्यन्त निष्ठा से पूरा करना, आए-गए अतिथियों का ख्याल रखना तथा बच्चों का देखभाल आदि सब व्यवस्था पूरी सजगता से करना अपना धर्म व कर्त्तव्य समझती थी और ऐसा ही करती थी। घर में प्राय: मेहमान, मित्र, साधु-संन्यासी आदि आर्य विद्वानों का आना-जाना बना ही रहता था पर उन सबका सत्कार बड़ी श्रद्धा से करती थी। पति-पत्नी दोनों संध्योपासना व अग्निहोत्र नित्य ही किया करते थे और समय-समय पर सुविधानुसार बच्चे भी साथ बैठकर उक्त कार्य किया करते थे।

सब संतानें-आर्यसमाजी—ईश्वर की कृपा से उन्हें 5 संतानें (तीन पुत्र व दो पुत्रियाँ) प्राप्त हुईं। वे इस प्रकार हैं—

1. श्री आनन्द कुमार उपनाम-नन्दू बाबू
2. श्री राजेन्द्र कुमार
3. डॉ. नरेन्द्र कुमार
4. श्रीमती विद्योत्तमा देवी
5. श्रीमती राजकुमारी गुप्ता

बच्चों के परिवार भी सब विकसित, आज्ञाकारी, आर्यसमाज की मान्यताओं में श्रद्धा रखते हुए पिता की सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक व स्वदेश प्यार भावनाएं आई हैं। सब अपनी-अपनी जगह आर्यसमाज की सेवाओं में संलग्न हैं, यही तो एक श्रेष्ठ आर्य पिता की संस्कारित संतानों की असली पहचान है।

श्री आनन्द कुमार जी—टांडा आर्यसमाज व सम्बन्धित मिश्रीलाल आर्य इंटर कॉलेज टांडा के आजीवन प्रधान हैं और साथ ही आर्य सार्वदेशिक सभा नई दिल्ली के कार्यकर्ता प्रधान रहकर 86 वर्ष की अवस्था में भी सक्रिय हैं। आपके ही प्रयास से कलकत्ता बड़ा बाजार आर्यसमाज की भूमि प्राप्त हुई। आर्य प्रतिनिधि सभा, बंगाल के मंत्री आदि कई पदों पर रहे। डायमंड हार्वररोड कलकत्ता में डी.ए.वी.

पब्लिक स्कूल का निर्माण में आपकी सक्रियता व दक्षता सम्मिलित है। अयोध्या में वह भूमि भी आर्य संस्था के लिए आपके अनथक प्रयास से खरीदी गई जहाँ महर्षि दयानन्द ने बैठकर ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका लिखी थी। आपके नेतृत्त्व में वहाँ भवन-निर्माण की योजना भी बनाई गई है।

दूसरे पुत्र श्री राजेन्द्र कुमार—आपने अपने परिवार के साथ दक्षिण के सालेम नगर में अपना व्यसाय चलाते हुए भी अपनी दुकान में ही आर्यसमाज का सत्संग चलाना शुरू किया और इस तरह वहाँ हिन्दी व आर्य सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार किया।

तीसरे स्थान के डॉ. नरेन्द्र कुमार जी—आप तो जब से बर्मिंघम आए तभी से (लगभग 36 वर्षों से) आर्यसमाज वेस्टमिड्लैंड्स की सेवा में जुड़े हैं। पूर्व भी सन् 2000 से सन् 2004 तक प्रधान रहे और अब भी विगत 8-9 साल से आप ही बोर्ड ऑफ ट्रस्ट के प्रधान पद पर रहकर आर्यसमाज की अनथक सेवा कर रहे हैं। आप आर्य प्रतिनिधि सभा यू.के. के भी प्रधान रहे और अब भी उक्त सभा के कार्यकारिणी अन्तरंग सभा के सदस्य हैं। लेखक (आचार्य उमेश) साक्षी है कि कार्य करते हुए अनेक तरह से अनेक बार अपने पिता की कार्यक्षमता याद कर-कर आप भी आर्यसमाज के विकास में लगे रहते हैं। उल्लेखनीय है कि श्री मिश्री लाल आर्य ने **अपने पिता का अंतिम संस्कार भी** वैदिक आर्य विधि से किया था और तब से उनके घर में आज तक सब बच्चों के समसामयिक नामकरण, यज्ञोपवीत, विवाह आदि सारे संस्कार भी आर्यसमाज के विद्वानों के पौरोहित्य में ही सम्पन्न होते हैं। पारिवारिक विस्तृत जानकारी के लिए उनकी लिखी पुस्तक 'जीवन ज्योति' पठनीय है। यह आत्मकथा भी उन्होंने अपनी 88 वर्षीय अवस्था में लिखी, उनकी सक्रियता का अन्दाजा पाठक वृन्द स्वयं लगा सकते हैं।

श्री मिश्री लाल जी की सभी संतानों के विकसित परिवार से पौत्र, पौत्रियाँ, नाती, नतिनियाँ आदि 14 ग्रैंडचिल्ड्रेण्स और फिर उनसे भी आगे प्रपौत्र, प्रपौत्रियाँ आदि 20 ग्रेटग्रैंड चिल्ड्रेण हैं जो लगभग सारे आर्यसमाज के ही संस्कारों में पल-बढ़ रहे हैं। निःसंदेह सब गुणवान व गुणवती हैं। एक आर्य पुरुष के लिए इससे बड़ा गौरव पारिवारिक स्तर पर और क्या हो सकता है ?

श्री मिश्री लाल जी अपने अंतिम साँस तक भी सामाजिक कार्य में सक्रिय रहे, बहुत ही सुखद व संतोष की अवस्था में प्रभु का नाम लेकर अपने प्राण छोड़े और सदा के लिए अपने बच्चों, मित्रों व समाज को अपने प्रेम का अमिट छाप दे गए। उनकी लिखी जीवनी 'जीवन ज्योति' उनकी मृत्यु के लगभग 6 मास के बाद सभी बच्चों के सौजन्य से प्रकाशित हुई।

श्री मिश्रीलाल जी का स्वाधीनता संग्राम में योगदान व जेल यात्रा

यह हम जान चुके हैं कि श्री मिश्रीलाल जी आर्य ने मिडिल स्कूल की शिक्षा के बाद ही अपनी किशोरावस्था में ही राजनीति से सम्बन्ध बना लिया। तब सब जगह भारत को अंगेजों से मुक्त करने का विगुल बज गया था। महर्षि दयानन्द द्वारा सत्यार्थ प्रकाश में उद्धृत मनुस्मृति का यह श्लोक पढ़ने और समझने पर उन्होंने तत्कालीन राजनीति में आकर राष्ट्र की सेवा का मन बना ही लिया।

सर्वं परवशं दुःखं, सर्वात्मवशं सुखम्।
एतद्विद्यात् समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः॥

अर्थात् पराधीनता सबसे बड़ा दुःख और स्वाधीनता सबसे बड़ा सुख है। उपर से महर्षि दयानन्द का विचार सत्यार्थ प्रकाश में ही पढ़ा कि विदेशी राज्य हर हालत में त्याज्य है, चाहे माता की तरह प्यार दे, पक्षपातरहित न्यायपूर्वक व्यावहार करे तब भी अपने देश के राज्य की तुलना नहीं कर सकता। मुस्लिम व ब्रिटिश राज्य के चंगुल ने भारत की उत्तम शिक्षा प्रणाली, संस्कृति व संस्कार सब कुछ बदल दिया जिसे जानकर भारतीयों में भी जागृति की लहर उठने लगी। 1985 में मि. एम.ओ. ह्यूम के सौजन्य से भारतीयों को न्याय देने के बहाने कांग्रेस की स्थापना हुई पर इसमें अंग्रेजों का काला मन ही प्रकट हुआ। यद्यपि भारतीय नेता इस ख्याल से कांग्रेस के साथ जुड़े कि वे मिलकर इस पार्टी के माध्यम से अपने देश की भावना जगाएंगे और भारत को स्वाधीनता दिलाने में इसे कड़ी बनाएंगे पर अंग्रेजों

के कुत्सित चाल भारतीय वीर आर्य नेता सब समझ गए और सबने एक जुट होकर सम्पूर्ण भारत में स्वाधीनता की आवाज बुलन्द कर दी, स्थान-स्थान पर आन्दोलन, सत्याग्रह आदि का आयोजन शुरू हो गया। उसी दौड़ में श्री मिश्रीलाल भी 1919 ई. में जालियावाला बाग की घटित हिंसात्मक घटना से व्यथित होकर बस आन्दोलन में साक्षात् रूप से सक्रिय हो गए। लगभग 16-17 वर्ष की अवस्था में ही आप अमृतसर, लाहौर आदि अनेक स्थानों पर घूम-घूम कर विभिन्न आन्दोलनों में भाग लेने लगे। टांडा नगरी में भी महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, सरोजनी नायडू, श्री पुरुषोत्तम दास टंडण, आचार्य नरेन्द्र देव, आचार्य कृपलानी आदि महान कांग्रेसी नेता 1920 से 1928 तक बराबर आते रहे जिनका सम्पर्क आपकी राजनैतिक जोश को कई गुणा बढ़ाता रहा। 1928 में आपने महात्मा गांधी को आर्यसमाज टांडा में बुलाया और उनका राष्ट्रीय मूल्यों पर भाषण भी करवाया।

1930 होते-होते तो देशहित व आर्यसमाज के कार्यों में आपकी पूरी लगन हो गई। ब्रिटिश सरकार के लिए आर्यसमाजी सदैव खटकते थे क्योंकि निश्चित रूप से 70% आर्यसमाजी नेता से लेकर कार्यकर्त्ता सब स्वाधीनता संग्राम में लग गए थे। आर्यसमाज के लोगों पर छापे डालना, उनकी सम्पत्ति को जब्त करना, उन्हें गिरफ्तार करना और नाना प्रकार से आर्य समाजियों को खासकर बिना वजह भी तंग करना तो ब्रिटिश सरकार की दिनचर्या बन गई थी। आर्यसमाजी उक्त सरकार द्वारा बागी ही समझा जाता था।

मिश्रीलाल आर्य की जेल-यात्रा

1930 के मद्य-निषेध आन्दोलन में श्री मिश्रीलाल आर्यसमाज की ओर से सक्रिय भाग ले रहे थे तभी सरकार ने इन्हें ब्रिटिश धारा 4 के अन्तर्गत 23 दिसम्बर 1930 को बन्दी बना लिया जिसमें 6 मास का कारावास और एक सौ रुपये का दंड भुगतना पड़ा। श्री मिश्रीलाल जी के अनुसार यह ज्ञात हुआ कि उन्हें पहले फैजाबाद कारागार और फिर गोंडा कारागार में रखा गया। उन्हें श्री सीताराम वर्मा (फतेहपुर), श्री लल्लन बाबू (टांडा) और मौलवी मो. वशीर (पुंथर) आदि उनके तत्कालीन साथी भी जेल की सजा भोगते हुए मिले। इनमें अधिक आर्यसमाजी साथी थे। यद्यपि उस समय हिन्दु-

मुसलमान जो भारत की आजादी चाहते थे, मिलकर आन्दोलन में भाग ले रहे थे, जेल भी जाते और सजा भी समानरूप से ही भोग रहे थे जिनके बलिदान व त्याग से देश 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्र हुआ पर स्वतंत्र भारत की स्थिति साम्प्रदायिक अवस्था में बदल गई। धर्म और राजनीति को सही न समझकर धर्मनिरपेक्षता शब्द के आड़ में बस हिन्दु-मुस्लिम का झगड़ा शुरू हुआ जिसका असर आज भी है। उधर कश्मीर, हैदराबाद, गोवा, बंगाल आदि की समस्या खड़ी हुई। राजनैतिक नेताओं ने अपने स्वार्थ की गोटियाँ खेलते हुए जातिवाद, आरक्षण, भाषाविवाद, मन्दिर-मस्जिद आदि के झगड़े बनाए ही रखा।

श्री मिश्रीलाल जी स्वतंत्र भारत के बाद की बढ़ती राजनैतिक बुराइयों से खुश नहीं थे, महात्मा गांधी, विनोवा भावे आदि सबने गोहत्या बन्द करने का बादा किया था, राष्ट्रभाषा हिन्दी घोषित करने की बात थी, सबके लिए कानून-व्यवस्था एक रहेगी पर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। गोहत्या अब तक नहीं रुकी, कानून भी हिन्दुओं के लिए अलग और मुसलमानों के लिए अलग कई विन्दुओं पर आज भी विचार करने की आवश्यकतायें हैं जो समय-समय पर साम्प्रदायिक वैमनस्य को बढ़ावा देने के कारण हैं। भाषाभेद के कारण आज भी कभी पंजाब, कश्मीर या दक्षिण राज्यों में यह विवाद उठ खड़ा होता है। अस्तु! श्री मिश्रीलाल जी आर्य का यही प्रभु से प्रार्थना रहती थी कि ईश्वर स्वतंत्र भारत के नेताओं को सद्वुद्धि दे।

जेल की सज्जा काटकर वापस टांडा आने पर टांडा आर्यसमाज में आपका स्वागत हुआ तब से आजीवन अत्यन्त सच्चाई व निष्ठा से आर्यसमाज टांडा व सम्बन्धित सभी आर्य शिक्षण संस्थाओं व संगठनों को अपनी मेहनत व सूझबूझ से मजबूत बनाते हुए महर्षि दयानन्द के संदेश को जन-जन तक फैलाते रहे। आर्यसमाज टांडा से जुड़े सभी विद्यालयों में बिना भेद-भाव के सभी वर्गों के बच्चे पढ़ते हैं, चाहे वे हिन्दु हों या मुसलमान। कालान्तर में उनकी मृत्यु के बाद आर्य कन्या उच्च माध्यमिक विद्यालय को 'श्री मिश्रीलाल इंटर कॉलेज' नाम उनकी प्रतिष्ठा में दिया गया। आज उनके इस विरासत को उनके बड़े पुत्र श्री आनन्द कुमार जी देखते हैं।

श्री मिश्रीलाल आर्य की मृत्यु व उनका अंत्येष्टि कर्म

श्री मिश्रीलाल जी की इहलौकिक जीवन लीला 28 दिसम्बर 1990 प्रात: 11 बजे बिना किसी कष्ट के अकस्मात समाप्त हुई। वे एक 'सादा जीवन उच्च विचार' के महान व्यक्तित्व के धनी महापुरुष थे। 30 दिसम्बर 1990 को 1 बजे दोपहर टाण्डा नगर में ही **बड़ी जन समूह व अनेक वैदिक विद्वानों की उपस्थिति में वैदिक रीति से अंत्येष्टि कर्म एक राजकीय सम्मान बन्दुकों की गड़गड़ाहट भरे सलामी द्वारा सम्पन्न हुआ।** हजारों की जनसंख्या में शवयात्रा में सब ओर 'ओ३म् नाम सत्य है, सत्य बोलो मुक्ति है' की ही आवाज गूँजती रही। उनकी आर्यत्व निष्ठा का अन्दाजा पाठक स्वयं लगा लें। इस कर्मवीर मनीषी को आर्य जगत् के उच्चस्तरीय विद्वानों ने इनके उच्चे सामाजिक, धार्मिक, शिक्षा-क्षेत्रीय कार्यों से जुड़े व राजनैतिक पहलुओं की प्रशंसा मुक्त कंठ से की है। **भारत के प्रधान मंत्री चौधरी चरण सिंह** आपके करीबी मित्रों में थे। जब भी टाण्डा वे आए, आपके घर पर ही भोजन स्वीकार लिया। श्री मिश्रीलालजी मनसा-वाचा-कर्मणा एक भाव और व्यवहार शील महात्मा तुल्य जीवन विताने वाले सत्य मार्ग के अनुगामी एक आदर्श पुरुष थे। इस कारण चौ. चरण सिंह उन्हें बहुत पसन्द किया करते थे।

स्वाधीनता संग्राम के तहत प्राय: सभी आन्दोलनों में उन्होंने भाग लिया, जालियाँवाला बाग अमृतसर का स्वामी श्रद्धानन्द की अगुवाई में हुआ अधिवेशन, पंजाब के कतिपय अन्य सत्याग्रह, हैदराबाद के सत्याग्रह आन्दोलन, नमक आन्दोलन (चम्पारण) आदि और उत्तर प्रदेशीय तमाम स्वाधीनता सम्मेलनों में वे सक्रियता से भाग लेते रहे।

निम्न शिक्षा संस्थानों के साथ उनका सीधा जिम्मेदारी मूलक सम्बन्ध था—

1. आर्य कन्या उच्चतर माध्यमिक विद्यालय टांडा (फैजाबाद)- संस्थापक व प्रबन्धक। अब यही 'श्री मिश्रीलाल आर्य कन्या इंटर कॉलेज' के नाम से अलंकृत हुआ जो इनके सम्मान का द्योतक है।
2. दयानन्द बाल विद्या मन्दिर, टांडा (फैजाबाद)-प्रबन्धक।

3. हॉवर्ट त्रिलोकनाथ इंटर कॉलेज, टांडा—संस्थापक सदस्य।
4. त्रिलोकनाथ महाविद्यालय टाण्डा—संस्थापक सदस्य।
5. जनता जूनियर हाईस्कूल टाण्डा—संस्थापक सदस्य।
6. श्री रामनारायण उच्च माध्यमिक विद्यालय, फूलपुर (टाण्डा) —कार्यवाहक प्रबन्धक।
7. कामता प्रसाद सुन्दरलाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, साकेत (फैजाबाद)—संस्थापक सदस्य।
8. गुरुकुल वानप्रस्थाश्रम रजोर, टाण्डा—मुख्याधिष्ठाता

श्रद्धांजलि-प्रकरण

बड़े पुत्र श्री आनन्द कुमार द्वारा व्यक्त भाव—

वे मानते हैं कि उनके ऊपर जो भी वैदिक संस्कार बने, वह सब उनके आदर्श, ऋषि दयानन्दभक्त, नियमित जीवन व सदैव खादी वस्त्र धारी स्वदेशप्रेमी, अमर सेनानी, आर्यसमाज व वैदिक शिक्षा के प्रबल विकासगति देने वाले पूज्य पिता के कारण ही है।

सन् 1980 की घटना—आर्यसमाज बड़ा बाजार कलकत्ता की न. 1 मुंशी सदरुद्दीन लेन स्थित की कुछ अंश-भूमि में स्थानीय आततायियों ने शिवमन्दिर बना लिया और बाकी भूमि में अराजक तत्वों ने अपना कब्जा बना लिया था। कलकत्ता रहते हुए आर्यसमाज की भूमि की ऐसी स्थिति से बाबू मिश्रीलाल आर्य अत्यन्त व्यथित हुए। श्री आनन्द कुमार जी के साथ बातचीत से जताया कि इस भूमि को फिर से आर्यसमाज को वापस दिलाना होगा। उस कठिन कार्य को बाबू जी का अन्तर्मन जानकर इस कार्य को अपने हाथ में लिया और उसे अपने परिश्रम व शाख से उस भूमि को 23 दिसम्बर 1983 को आर्यसमाज बड़ा बाजार/हावड़ा को वापस दिलाने में सफलता प्राप्त कर ली। इस सफलता पर बाबू जी अत्यन्त प्रसन्न हुए और अनेकश: आशीर्वाद दिये।

सन् 1982 में बाबू जी का आर्यसमाज कलकत्ता में भव्य अभिनन्दन हुआ। स्व. श्री पूनमचन्द इस कार्यक्रम की प्रेरणा बने थे। उस अभिनन्दन में उक्त आर्यसमाज की ओर से आर्य कन्या विद्यालय टाण्डा को 5 सिलाई मशीन और 3100 रुपये (तीन हजार एक सौ) उपहार प्राप्त

कराया गया जिससे टांडा स्थित उस विद्यालय में गृह-विज्ञान का निर्माण हुआ। श्री पूनमचन्द को सदा इस अवसर के साथ बाबू-जी याद किया करते थे और प्रसन्न होते थे। 1985 में 19 विधान सरणी, आर्यसमाज कलकत्ता के शताब्दी समारोह में पिता जी उपस्थित हुए और उनके विद्यालय के छात्राओं द्वारा प्रस्तुत सांस्कृतिक कार्यक्रम से आन्तरिक रूप से अत्यन्त प्रसन्न हुए। इस प्रकार पूज्य पिता जी का सम्बन्ध आर्यसमाज कलकत्ता से बना रहा।

कलकत्ता रहते हुए आर्यसमाज भवानीपुर की 61 न. डायमंड हार्वर रोड कलकत्ता -37 स्थित विशाल भूमि में डी.ए.वी. स्कूल निर्माण करने की प्रेरणा भी ली और इस योजना को बाखूबी श्री आनन्द कुमार जी ने निभाया। सर्वसम्मति से उस स्कूल का प्रबन्धक भी इन्हें बनाया गया।

उनके निधन पर विभिन्न भावपूर्ण श्रद्धांजलियाँ—मेरे पिता जी कर्त्तव्य के प्रति कितने जागरुक, दृढ़व्रती, सत्य मार्ग पर अडिग होकर चलने वाले और विपत्ति में भी धैर्य व साहस के प्रतिमूर्ति थे।—उनके वे सारे गुण भविष्य में मेरी धरोहर रहेंगे और उसी से प्रेरणा प्राप्त कर मैं अपने कर्त्तव्य का निश्चय करता रहूँगा।

'जीवन ज्योति-संस्मरण-प्रकरण—पृ. 80'-आनन्द कुमार

आनन्द कुमार जी अपनी सब कार्य सफलता का मूल आधार प्रेरणास्रोत अपने पिता को ही बताते हैं। उनका मानना है कि उनके पिता हर पल उनकी प्रेरणा शक्ति बनकर उनके साथ ही हैं।

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के दूसरे समुल्लास में कितना सच लिखा—'वह कुल धन्य है, वह संतान बड़ी भाग्यवान हैं जिनके माता-पिता धार्मिक और विद्वान् हों।'

श्रीमती गुणवती ग्रोवर—'श्री मिश्री लाल जी इतने सच्चे, ईमानदार राष्ट्रवादी तथा कठोर कर्त्तव्य परायण थे कि उनकी यह कर्त्तव्य-परायणता मेरे लिये प्रेरणास्रोत बन जाती।'

एक बार 15 अगस्त, स्वतंत्रता दिवस पर अविरल मूसलाधार वारिश से चिन्ता बनी हुई थी कि राष्ट्रीय ध्वज गगन में कैसे फहरेगा? मुस्कुराते हुए प्रबन्धक महोदय (बाबू मिश्रीलाल जी आर्य) बोले कि इसमें घबराने की बात क्या है—वह (बादल) अपना कर्त्तव्य कर रहा है,

तुम अपना कर्त्तव्य करो, बस क्या था, मेरा उत्साह दूना हो गया और कार्य प्रसन्नतापूर्वक सम्पन्न हो गया। जब 1984 में मुझे भारत के राष्ट्रपति श्री ज्ञानी जैल सिंह से प्रधानाचार्योचित श्रेष्ठ कार्य के लिए राष्ट्रीय पुरस्कार मिला तो इसमें बाबू जी का प्रसाद था। पूरे फैजाबाद में इस विद्यालय की गरिमा से मुझे सम्मान मिला जिससे वे सदा प्रसन्न होते दिखते थे।

'ऐ मानव तू संसार देख, कुछ अपनी ओर निहार देख।
मानवता का वह केन्द्र विन्दु जिसमें बरसाता अमृतविन्दु,
विषयों के चक्कर में पढ़कर तू पीता है अंगार देख।'

यद्यपि वे हम लोगों के बीच में नहीं हैं पर वह अमर हैं, उनकी स्मृति रेखाएं हमारे हृदय पटल पर सदा अंकित रहेंगी। 'ऐसे त्यागी, तपस्वी, मनस्वी महामहिम को मेरा कोटिशः प्रणाम है—

श्रीमती गुणवती ग्रोवर एम.ए. बी.एड. पूर्व प्रधानाचार्या
—आर्य कन्या इंटर कॉलेज टांडा-संस्मरण भाग जीवन ज्योति-84

डॉ. ऋषिदेव विद्यालंकार—'बाबू मिश्रीलाल जी आर्य ऋषि दयानन्द के सच्चे अनुयायी, समाज सुधारक, कुप्रथा निवारक, शिक्षा प्रचारक, राष्ट्रवाणी हिन्दी के प्रबल सम्पोषक, सदैव जनहित के कार्यों में संलग्न सादा जीवन उच्च विचारवाले एक आदर्श व्यक्ति थे।'

डॉ. शांतिदेव बाला—समाजसेविका-लखनऊ—श्री मिश्री लाल आर्य द्वारा संचालित विद्यालय में हिन्दु-मुसलिम की छात्राओं का संगम रहता है। सब बिना भेदभाव गायत्री मंत्र का पाठ करने में हर्ष व गौरव की अनुभुति करते हैं। बाबू मिश्री लाल आर्य एक ऋषिभक्त, विद्वानों के आदर करने वाले, हर सांस आर्यसमाज व समाज सेवा को समर्पित थे। उन्होंने अपना जीवन निष्ठा की पूर्णता से जिया, एक सच्ची निष्ठा-मानव मात्र की सेवा की निष्ठा।

पं. शांति प्रकाश—आर्य विद्वान् और सुप्रसिद्ध शास्त्रार्थ महारथी—'मुझे आन्तरिक दुःख है कि अब उन महापुरुष के दर्शन न होंगे। मैं एक प्रकार से इस दुःखद समाचार को सुनते ही होश खो बैठा। क्या था और क्या हो गया। वह मेरे सर्वस्व थे, आयु समान होते हुए भी उनको मैं उनके प्यार भरे व्यवहार के कारण पिता समान मानता हूँ।'—पंडित जी

पं. शान्ति प्रकाश जी के अनुसार वे उनके सम्बल, आश्रयदाता एवं

शुभ प्रामर्शदाता थे। परस्पर अपार स्नेह था। टाण्डा के विद्यालय के उत्सव पर विद्यालय के एक कमरे का आधार पंडित जी के हाथ से रखवाकर उस पर उनका नाम भी लिखवाया। प्रतिवर्ष टाण्डा में शास्त्रार्थ हुआ करता था जिसकी अध्यक्षता बाबू जी किया करते थे और इनके फैसलों पर हिन्दु-मुसलमान दोनों को विश्वास हुआ करता था। वे प्राय: सबके प्रिय थे।

'मैं इस प्रसंग के साथ पूर्ण विश्वास से घोषणा करता हूँ कि पूज्य बाबू मिश्री लालजी आर्यजाति के **'महतो' महान महापुरुष थे। उनका जीवन पवित्र था और यह पवित्र जीवन आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द के लिए समर्पित था**'—पंडित शांति प्रकाश जी

प्रोफे. उमाकान्त उपाध्याय, कलकत्ता—बाबू मिश्री लाल साधारण पड़े-लिखे होने पर भी प्रतिभा के धनी थे। धोती-कुर्त्ता-टोपी सब खादी और हिमश्वेत पूर्ण परिधान में हाथ में छड़ी के साथ शोभायमान भव्यता, ओजस्वीता, तेजस्वीता और वैदिक सिद्धान्तों में दृढ़ता एवं कटरता आदि जीवन मूल्य उनकी शोभा थी। स्वाध्यायशील होने से चाहे संस्कृत का ज्ञान कम था पर आर्य सिद्धान्तों में परिपक्व थे। उनके सम्मान में सब उन्हें उनके नाम न लेकर प्रधान जी ही कहा करते थे। वे एक आर्यसमाज के सच्चे व आदर्श प्रधान थे। टांडा फैजाबाद मुस्लिम बाहुल्य क्षेत्र में आर्यसमाज का विस्तार, धार्मिक सद्भाव, परस्पर स्नेह और वैदिक सिद्धान्तों में कोई समझौता न करना बाबू मिश्री लाल आर्य की ही योग्यता थी। आर्यसमाज के सम्मेलनों में आर्यविद्वानों व इस्लामी मौलवियों में शास्त्रार्थ आयोजन से दोनों पक्षों की जनता में सुनने की उत्सुक्ता होने के कारण पंडाल भरा रहता था, कभी-कभी शास्त्रार्थ-प्रकरण में नोक-झोक भी हो जाए तो बड़ी चतुराई व न्यायपूर्वक महौल सम्भालकर सबमें प्यार व स्नेह स्थापित किये रखना तो प्रधान जी का ही कार्य था। शास्त्रार्थ में प्राय: आर्यसमाज की ही जीत होती थी तब भी गर्म महौल को अपनी प्रियता से सबको सामान्य बनाना तो कोई बाबू मिश्रीलाल निर्भीक व्यक्तित्व से सीख सकता है।

'नगाड़ा सत्य का बजता है,
आजमाए जिसका दिल चाहे।'

बाबू मिश्रीलाल जी स्वयं संस्कृत के विद्वान न थे किन्तु प्रतिवर्ष 'संस्कृत-संस्कृति-सम्मेलन' करवाते थे। यह उनकी निष्ठा का प्रत्यक्ष स्वरूप था जिसकी बदौलत टाण्डा के मुसलमान व्यवसायियों की लड़कियाँ भी सहर्ष संस्कृत पढ़ती थीं।'—प्रो. उमाकन्त

बाबू मिश्री लाल जी का सम्बन्ध कलकत्ता आर्यसमाज से भी था क्योंकि उनके अनुज श्री हीरालाल, बड़े पुत्र आनन्द कुमार तथा श्री सीताराम जी आर्य, तत्कालीन प्रधान आर्यसमाज कलकता इन सबका कलकत्ता रहते हुए यहाँ के आर्यसमाज से गहरा जिम्मेदारी पूर्ण सम्बन्धों के कारण बाबू जी का भी आना-जाना रहता था। उनके आर्यसमाज व ऋषि-भक्ति को देखकर आर्यसमाज कलकत्ता द्वारा उनका **'भव्य अभिनन्दन'** समारोहपूर्वक सभाकक्ष में किया गया और उन्हें सम्मानपूर्वक एक **'अभिनन्दन पत्र'** भी समर्पित किया गया। उनके व्यक्तिगत, सामाजिक व राष्ट्रीय श्रेष्ठ विचारों के सब मुक्त कंठ से प्रशंसक रहे हैं। वह महापुरुष सदैव कर्त्तव्य पारायण रहा चाहे परिवार को देखना हुआ, आर्यसमाज को या कोई राजनीति के तहत राष्ट्रीय प्रकरण रहा, सर्वत्र उनके व्यवहारों से कर्त्तव्य परायणता ही प्रकट हुई।

'बाबू मिश्री लालजी की याद आने पर उनकी गुणावली व आदर्श व्यक्तित्व सामने चमक उठता है। वे संगठन के आदर्श तो थे ही, हम लोगों (आर्य विद्वानों) के लिए भी प्रेरणा के स्त्रोत थे। ऐसे आदर्श प्रिय व्यक्ति संसार की मधुर स्मृति का मधुर धरोहर है।'—प्रो. उमाकान्त जी

श्री सुरेन्द्र नाथ कपूर, प्रबन्धक, त्रिलोक नाथ महाविद्यालय टांडा—श्री कपूर जी के अनुसार बाबू मिश्री लाल जी आर्य और प्रधानजी टांडा (फैजाबाद) में पर्यायवाची शब्द लगभग 60 वर्षों तक रहा। गांधीवादी खद्दरधारी व गो-रक्षक। जूतों से सज्जित रहते हुए एक क्षीणकाय पर तेजस्वी, कर्मठ, निष्ठावान, आर्यसमाज के कट्टर उन्नायक तथा निष्ठावान् समाजसेवी व्यक्ति के रूप में सबके बीच जाने गए। अपने व्यवसाय के वजह से आसाम, नेपाल व बंगाल के अनेक शहरों में उनका जाना होने से उन क्षेत्रों में भी उनका मित्रों के बीच ऐसी ही छवि झलकती रही। आर्यसमाज टांडा की स्थापना सन् 1890 में हुयी जिसके मंत्री स्व.

बाबू बच्चूलाल आर्य रहे। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद आर्यसमाज का कार्य शिथिल पड़ गया पर लगभग 20-22 वर्षों का नवयुवक महर्षि दयानन्द का अनन्य भक्त व राष्ट्र प्रेमी श्री मिश्री लाल ने आर्यसमाज को प्रधान के रूप में सम्भाला और आजीवन वही प्रधान रहे तथा इस संस्था को वेद-प्रचार व शिक्षा के अनेक पहलुओं से जोड़ते हुए एक पुष्पित व फल्लवित विशाल वृक्ष की तरह बढ़ाया। आपके उपर आजादी के जंग में जुड़े लाला लाजपत राय, स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा हंसराज, भाई परमानन्द, लाला हरदयाल आदि तमाम आर्य राष्ट्रीय नेताओं का सीधा प्रभाव पड़ा। महात्मा गांधी भी तभी राजनीति में आए थे जिनकी सादगी का प्रभाव आपके उपर सारा जीवन रहा। वे 88 वर्ष तक सक्रिय रहे और रामजन्म भूमि अयोध्या के हक में यज्ञों द्वारा ईश्वर से प्रार्थना किया करते थे। उन्होंने महात्मा गांधी को दो बार टांडा बुलवाया और उनके भाषण करवाए। स्वयं भी 1951 के असहयोग आन्दोलन में भी जेल गए तब लखनऊ के गोंडा जेल में कांग्रेस के बड़े-बड़े नेताओं से मेल हुआ। वहीं उन्हें मौलाना आजाद, पुरुषोत्तम दास टंडन, आचार्य नरेन्द्र देव जी आदि नेता भी मिले। उत्तर प्रदेश के जाने-माने नेता व शिक्षाविद प्रो. जयराम वर्मा, प्राचार्य देवी प्रसाद मिश्र आदि सब आपके घनिष्ठ मित्रों में थे।

श्री सुरेन्द्र नाथ कपूर के पिता स्व. त्रिलोक नाथ कपूर को आप अपना मार्ग दर्शक मानते रहे, फलतः श्री सुरेन्द्र जी से भी आप बहुत प्यार करते थे। इस तरह शहर के अनेक सम्बन्धित शिक्षा संस्थानों से जुड़कर काम करते रहे। उस समय कन्यायों की शिक्षा के लिए आगे की सुविधा नहीं थी फलतः प्रधान जी ने आर्य कन्या प्राइमरी स्कूल खोला फिर वही बढ़कर सबके सहयोग से इंटर कॉलेज बना और अब वही 'मिश्रीलाल आर्य इंटर कॉलेज' के नाम से टांडा शहर की शोभायमान और एक सक्रिय शिक्षा संस्था विद्यमान है।

इस तरह हम श्री मिश्री लाल जी आर्य के बहु आयामी जीवन देखते हैं। वे 1930 'में भी जेल गए, 1951 में भी जेल गए और इस तरह राष्ट्रीय भावनाओं से प्रेरित होकर जेल की सज्जा भुगतने के बाद समाज सेवा में आजीवन रहकर दयानन्द आयुर्वेदिक औषधालय, दयानन्द शिक्षा मन्दिर, वानप्रस्थाश्रम व गुरुकुलों के संचालन को गति देकर टांडा के साथ

मुबारकपुर, मकदूमनगर, फूलपुर, जहाँगीरगंज, वसरवारी, रामनगर आदि तमाम क्षेत्रों में आर्यसमाज का प्रचार जी-जान से किया। मधुमेह से पीड़ित होकर भी नियमित दवा, परहेज, टहलना व कार्य में उत्साह की निष्ठा से सारा जीवन युवा की तरह कार्य करते रहे। उन जैसे निःस्वार्थ सज्जन हमें सदैव याद आएंगे।

सियाराम निर्भय 'कवितोपदेशक' के अनुसार श्री मिश्रीलाल आर्यसमाज टांडा के 'कीर्तिस्तंभ' थे। आर्यसमाज टांडा का सौवें साल के समारोह की खुशी कवि की इन पक्तियों से स्पष्ट होती है और बाबू मिश्री लाल के प्रति कवि की श्रद्धा भी—

'फूले-फले सदा विकसित हो, आर्य वाटिका रहे आबाद,
जन मानस को याद रहेगा, नगर मनोहर फैजाबाद,
आर्यसमाज टांडा अब अपना, पार कर गया सौंवा साल,
मरकर भी अमरत्व पा गए, 'निर्भय' होकर मिश्रीलाल।'

सच में कवि की ये पंक्तियाँ श्री मिश्रीलाल जी के उच्चे व्यक्तित्व की परिचायिका हैं।

सीताराम आर्य, प्रधान, आर्यसमाज कलकत्ता के अनुसार—श्री मिश्री लाल जी आर्य एक आदर्श पुरुष थे। उनकी मृत्यु का समाचार जानकर अत्यन्त विह्वल हो उठे और आनन-फानन में जैसे-तैसे रेल, बस आदि बदलते टांडा पहुँचे तो मन और अधिक वेचैन हुआ। साथ ही श्रद्धालुओं की भीड़, शवयात्रा में 'ओ३म् नाम सत्य है, सत्य बोलो मुक्ति है।' के भजन गूँज, सर्वत्र उनकी कृति व कीर्ति की महिमा-गान सुनकर उस महापुरुष के लिए हृदय मान से फूलता रहा। मन में उनके लिए गौरव भर गया।

विधिवत् अंत्येष्टि कर्म—सरयू तट पर विधिवत् यज्ञकुंड (7 फीट लम्बा, 4 फीट चौड़ा और 4 फीट गहरा) का निर्माण हुआ जिसमें प्रधान जी का शव रखा गया, स्वतंत्रता सेनानी का सम्मान सरकारी पुलिस की बन्दुकों की गड़गड़ाहट के साथ 10 मन आम की लकड़ी, पर्याप्त मात्रा में चन्दन की चैली (जितनी टांडा में मिल पायी), एक बस्ता/बोरी सामग्री, 21 किलो घी और ओ३म् लिखित चादर से श्री मिश्री लाल जी को श्रद्धासमर्पण के साथ जब वेदमंत्रों

के उच्चारण के साथ अनेक विद्वानों के दल द्वारा शवाग्नि भेंट कराई गई तो वह भी उस आदर्श पुरुष के सम्मान का एक अनुपम ही दृश्य था। विशाल जन समूह को वर्बस वैदिक चेतनाओं की ओर सहज ही प्रेरित कर रहा था। बाबू जी से उनका परिचय 1938-39 से ही टांडा विद्याध्ययन काल से ही था जो आजीवन बना रहा। आर्य कन्या विद्यालय की बाउंडरी निर्माण में और उसके विकास में बाबू जी के वचन पर वे हमेशा दान देते रहे, बाबू जी का वचन कभी टाला नहीं वस्तुत: उनका व्यक्तित्व ही ऐसा था। बाबू मिश्री लाल आर्य एक चरित्रवान व्यक्ति थे जिनके आगे किसी को भी कन्याओं के लिए अभद्र नजर या छिटाकसी करने की हिम्म्त नहीं होती थी। महर्षि दयानन्द का अज्ञातवास की कहानी, राष्ट्रसेवा की प्रबल भावनाएं, वीर भगतसिंह का आर्यसमाज कलकत्ता से जुड़ना और वहाँ राष्ट्र रक्षा हेतु बम बनाना आदि क्रांतिकारी कार्यों ने उन्हें भी क्रांतिकारी व निष्ठावान समाजसेवी बना दिया।

सन् 1975 में आर्यसमाज स्थापना शताब्दी दिल्ली के समारोह में टांडा और अकबरपुर से अधिक आर्यसमाजी लोग दिल्ली गए थे। उसमें बाबू राजेन्द्र प्रसाद (प्रथम राष्ट्रपति, स्वतंत्र भारत) रामलीला मैदान में पुस्तकों का स्टाल देख रहे थे। एक स्टाल पर आर्य महापुरुषों का चित्र बिक रहा था। मेरी नजर एक ऐसे चित्र पर पड़ी जिस पर लिखा था ' आर्यसमाज के 205 सितारे', गौर से देखने लगा। उन 205 सितारों में बाबू मिश्री लाल जी आर्य का भी चित्र बना हुआ था। मेरा मन खुशी की तरंगों में लहराने लगा कि हमारे बाबू मिश्री लाल आर्य की कीर्ति (कितनी बड़ी) है।'—सीताराम आर्य, कलकत्ता-जीवन ज्योति से उनकी कीर्त्ति-स्तंभ संस्था आर्यसमाज टांडा और मिश्री लाल आर्य कन्या इंटर कॉलेज की सतत् सेवा ही इस महापुरुष के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

श्रीमती मीना आर्य (पुत्रवधू)—'जब भी वटवृक्ष के विशाल-विराट स्वरूप को देखती हूँ (तो) बाबू जी याद आ जाते हैं। हाँ बाबूजी यानि कि मेरे श्वसुर जिन्होंने अपने बहुओं को बहुत ही ज्यादा स्नेह एवं सम्मान दिया। बहुओं के लिए अस्वीकार या आपत्ति जैसा शब्द उनके शब्द-कोश में था ही नहीं। कोई भी कार्य हो बाबू जी आगे बढ़कर हमारी हिम्मत बढ़ाते; उत्साहित करते। भले ही परिवार अथवा समाज के लोग

आना-कानी करें, काना-फूसी करें, आपत्ति करें, पर वे हमें हमेशा ही प्रेरित करते रहे।'

मृत्यु का पूर्वाभास—मीना जी लिखती हैं कि उन्हें बेसन की सब्जी बहुत पसन्द थी। मैं उनके मन-पसन्द सब्जी बनाकर खुश होती और वे भी। आखिरी बार जब कलकत्ता आए और टांडा वापस जाने के समय बाबू जी ने कहा—बहू, आज आखिरी बार मुझे बेसन की सब्जी बना कर खिला दो।—यह सुनकर मन को बहुत धक्का लगा था, मैंने कहा भी कि—बाबू जी आप ऐसा क्यों कह रहे हैं? पर लगता था उन्हें अपने अंतिम समय का पूर्वाभास हो गया था। उस दिन उन्होंने पटना से उनसे ही मिलने आए हुए मीना जी के पिताजी को भी कहा कि—आइये आज तो हम-आप एक साथ खाना खा लें, बाद में किस्मत में साथ खाना बदा है या नहीं। सचमुच में कलकत्ता से जाने के 13 दिन बाद ही हमें उनकी मृत्यु का हृदय-विदारक समाचार मिला।—मीना जी।

टांडा नगर के छोटे-बड़े हिन्दु-मुस्लिम स्त्री-पुरुष आदि सब के वे अत्यन्त प्रिय थे। सबने उनके लिए जो महसुस किया-' उनकी नेकी, अच्छाइयाँ जैसे लोगों के हृदय के फफक और हिचकियों में बन्ध गई हो। और तो और बुर्का पहने कई औरतें अपनी संवेदना प्रकट करने कई-कई दिनों तक आती रही थीं।'

कर्म के प्रेरक—'खुद ही को कर बुलन्द इतना कि हर तकदीर के पहले खुदा बन्दे से खुद पूछे, बता तेरी रजा क्या है?'—इकबाल

मन वचन कर्म से एक, कुरीतियों व आडम्बरों से बिल्कुल दूर, नारी सम्मान के पक्षधर, समरसता के धनी, सादा जीवन उच्च विचार, स्वभाषा व संस्कृति के प्रयोगी, दहेज-प्रथा के कटु आलोचक और स्त्री-शिक्षा के पक्के समर्थक बाबू जी ने सदैव जन्मपत्री को नही अपितु कर्मपत्री में विश्वास किया। बाबू जी ने स्वयं भी बिना दहेज विवाह किया और बच्चों का भी। कट्टर आर्यसमाजी, सच्चा आर्य और सच्चा जीवन, बस वे ही थे। घरेलु पारस्पारिक व्यवहारों पर्दा को खत्म करके स्वतंत्रता व स्वच्छंदता देकर व बिना दहेज माँगे मीना जी का उनके पिता से अपने बड़े पुत्र के लिए हाथ माँग विवाह को सार्थक रूप देने के कारण पहले दिन से ही बाबू जी उनके लिए सर्वाधिक आदरणीय बन गए थे। परिवार

में पूर्व की पर्दा आदि की कुप्रथाओं को बाबू जी ने जड़ से मिटा दिया और हमें बिना किसी झिझक साथ बैठाकर राय-सलाह आदि देकर हर समस्या का निदान करना उनका स्वभाव था जो सबको बहुत भाया करता था।

कलकत्ता से दार्जलिंग तक पदयात्रा-गोरखालैंड—आन्दोलन के कारण परिवार के लोग इस यात्रा में जाने की सहमति नहीं दे रहे थे पर बाबू जी ने सहर्ष स्वीकृति दी और उत्साहित भी किया। यह पद यात्रा लायनेस क्लब, कलकत्ता द्वारा आयोजित थी जिसकी मीना जी सक्रिय सदस्य व अध्यक्षा भी थीं। एक निर्धनों की बस्ती 'बागुईहट्टी' में मीना जी के अध्यक्षता-काल में ही अवैतनिक प्राथमिक विद्यालय ' प्राइमरी स्कूल रवीन्द्र पाली' के नाम से था, उसमें एक कक्षा का निर्माण उन्होंने बाबू जी के नाम सन् 1986 में बनवाया जिसे देखकर बाबू जी ने मन से बहुत शांति की अनुभूति की कि उस गरीब बस्ती में यह कार्य अत्यन्त आवश्यक और संतोषजनक है। इस कार्य के पीछे मीना जी को पूज्य बाबू जी की ही प्रेरणाओं ने उत्साहित किया। परिवार, समाज व मित्रों के लिए बाबू जी निःसंदेह एक 'ज्योति पीठ' बन चुके थे और आगे भी उनकी प्रेरणा-ज्योति सब के अन्दर जलती रहेगी।

डॉ. नरेन्द्र कुमार आर्य (तृतीय पुत्र), ब्रिटेन—डॉ. नरेन्द्र कुमार आर्य के अनुसार उन्हें अपने पिता में 'एक पूर्ण व्यक्ति' की अनुभूति हुई। उन्होंने परिवार, व्यवसाय (छीट-कपड़े की छपाई जिसका व्यापार आसाम, नेपाल आदि क्षेत्रों तक होता था), समाज व शिक्षा जगत् में निःस्वार्थ सेवा से अपने जीवन को पूर्णतया संतुलित व व्यावहारिक स्वच्छता के साथ बेदाग जिआ। सच्चाई, तेजस्विता, साहस, निर्भयता, नियमित संयमित जीवन व निरन्तर आलस्यहीन समाज व राष्ट्र के प्रति समर्पित जीवन के साथ वे तो मानों मानवोचित गुणों के भंडार थे।

हिन्दु-मुस्लिम की बड़ी ताव-तनाव युक्त अवस्था को वे अपनी स्नेहभरी प्रेरणा व चतुराई से चुकटी में हल कर देते थे। आर्य कन्या इंटर कॉलेज जो अब बाबू जी के नाम पर उनके प्रशंसकों के कारण ही चल रहा है, इसका जीता-जागता प्रमाण है।

स्वतंत्रता संग्राम में कांग्रेस के पक्ष में रहे, काम भी किया, देश के लिए अनेक बार जेल भी गए, जेलगत् अनेक कठोर यातनाएं सहीं, पर

कांग्रेस की सदस्यता नहीं ली। साक्षात् त्यागमय पर समाज सेवी जीवन ही उन्हें भाया। स्वतंत्र भारत के बाद की देश में बिगड़ती नैतिकता आदि भ्रष्टाचार से वे दुःखी थे। राजनीति में रहते हुए चौ. चरण सिंह (उ.प्र. के मुख्य मंत्री व कालान्तर में भारत के प्रधान मंत्री भी बने), प्रो. जयराम वर्मा (मुख्य मंत्री), प्रि. देवी प्रसाद मिश्र आदि सब उनके घनिष्ठ मित्र थे, पर उन्होंने अपने लिये कभी भी किसी से कोई राजकीय सम्मान आदि उपाधि न चाही, न प्रयास किया। यद्यपि एक बार उन्हें उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री बनने का निवेदन भी आया था पर उन्होंने इसे ठुकरा दिया।

सन् 1927 में जो उन्होंने आर्यसमाज का चार्ज प्रधान के रूप में लिया, अत्यन्त लगन के साथ समाज के सब पहलुओं को आगे बढ़ाते हुए आजीवन आर्यसमाज के प्रधान ही रहे, केवल नाम के नहीं अपितु काम के 'एक जीवन्त निष्ठावान' प्रधान रहे। वे तो जीवन भर 'प्रधान जी' के नाम से ही नगर-डगर सब जगह बुलाए जाते थे, अब भी उनका नाम उनके सम्मान में वैसा ही लिया जाता है।

बाबू जी को जब से समझना शुरू किया, बचपन से ही देखा और जाना कि समाज के लिए वे हर मुश्किल कार्य को करने की चुनौति रखा करते थे। ट्रेन, तार, डाक, टेलिफोन आदि सुविधाओं की कमी होते हुए भी आर्यसमाज के बड़े-बड़े शताब्दी जैसे समारोह वे स्वयं के पुरुषार्थ से सम्पन्न करवाया करते थे। सारी व्यवस्था वे अपने हाथ में रखकर सबका उचित सहयोग लेना उनकी कार्य-कुशलता थी।

27 मई 1976 से ब्रिटेन रहता हुआ भी नरेन्द्र जी अपने पिता के हस्तलिखित पत्र बराबर पाते रहे, अत्यन्त भाव, स्नेह, उचित परामर्श व आशीर्वाद पूर्ण पत्र। मृत्यु से पहले भी अंतिम पत्र उन्हें 22 दिसम्बर 1990 को मिला जबकि 28 दिसम्बर 1990 को बाबू जी की मृत्यु का समाचार उन्हें मिला। सारे पत्रों का जबाब भी नरेन्द्र जी पत्र पढ़ते ही लिखा करते। अपने पिता की अंत्येष्टि कर्म पर स्थान-दूरी, समय की प्रतिकूलता आदि के कारण उपस्थित नहीं हो सकने के कारण सारा जीवन उन्हें इसका दुःख रहेगा, ऐसी उनकी अनुभूति है।

आज भी यह पुत्र अपने पिता के पत्रों को याद करता हुआ उनकी कमी को महसुस करता है पर आर्यसमाज वेस्टमिड्लैंड, बर्मिंघम के

प्रधान रहते हुए अपने पिता के उत्साह को याद कर-कर समाज की सेवा में आगे की ओर अग्रसर है। लेखक (आचार्य उमेश) इनकी इस अनुभूति से परिचित है। ईश्वर इन्हें भी सदा अपने पिता वाली ही आत्म शक्ति से विकट कार्य को भी सम्भालने का हौसला देता रहे। **साहसी पिता के साहसी पुत्र हैं डॉ. नरेन्द्र जी।**

पं. सत्यमित्र शास्त्री वेदतीर्थ, शास्त्रार्थ महारथी, बढ़हलगंज, गोरखपुर उ.प्र. के अनुसार—शास्त्रार्थ प्रेमी होने के कारण श्री मिश्री लाल आर्य से अत्यन्त प्रेम था। टांडा आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर प्राय: शास्त्रार्थ होते थे। टांडा कॉलेज के प्राचार्य की मध्यस्थता में पौराणिक गपोड़ी श्री रामनरेश त्रिपाठी, व्याकरणाचार्य को शास्त्रार्थ में हराकर आर्यसमाज को विजयी बनाया। इसी तरह अनेक बार मुस्लिम व ईसायियों के साथ भी हुआ और हर बार आर्यसमाज की जीत होती रही। बाबू मिश्री लाल आर्य सिद्धान्तों में निपुण, आदर्श, निर्भीक और साहसी थे।

टांडा आर्यसमाज के एक उत्सव पर जुलूस निकला जिसकी अगुवाई ओ३म् के झंडे के साथ श्री कन्हैया लाल मंत्री जी और श्री मिश्री लाल आर्य, प्रधान जी कर रहे थे। पंडित जी तब वानप्रस्थाश्रम में अध्यापक थे, वे जुलूस में आए तो देखा कि जुलूस को यवनों (मुस्लिम लोग) मस्जिद पर रोक रखा है पर निर्भीक प्रधान जी अंग्रेजों के शासन में भी डटे रहे तब सरदार जिलाधीश ने वहाँ आकर जुलूस को आगे बढ़ाया।

वे अपने धन से ही जिला के अनेक गांवों में विद्वान् वक्ताओं व आर्य भजनोपदेशकों की व्यवस्था कर वेद-प्रचार करवाते थे। इससे सब ओर प्रधान जी के आदर्शमय जीवन का प्रभाव था। पंडित जी स्वयं उनकी प्रेरणाओं की देन बताते हैं। प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी की मृत्यु के बाद भी पूर्ण कर्फ्यू की धारा के होते हुए भी आर्यसमाज टांडा का वार्षिकोत्सव सफल हुआ, मुस्लिम समुदाय के लोगों ने कोई एतराज नहीं किया, हिन्दुओं द्वारा पूछे जाने पर कि आर्यसमाज के प्रचार को ऐसे हालात में मुस्लिम वर्ग ने क्यों नहीं रोका तो मुस्लिम वर्ग ने कहा कि आर्यसमाज साम्प्रदायिक नहीं है। यह सब प्रधान जी का ही निष्पक्ष व स्पष्ट प्रभाव था। पंडित जी को आर्यसमाज टांडा के शताब्दी समारोह से

पहले ही बाबू जी का चले जाना काफी खल रहा था।

आर्य संन्यासी पूर्ण त्यागी स्वामी सर्वदानन्द जी, स्वामी त्यागानन्द जी और स्वामी ओमानन्द जी उनके प्रेमी थे और ऐसे ही पंडित जी ने बाबू जी को फैजाबाद में पं. जवाहरलाल नेहरू, सुभाष चन्द्र बोस आदि नेताओं से और अजमेर अर्थ शताब्दी पर महात्मा हंसराज, भाई परमानन्द आदि आर्य नेताओं से मिलते देखा। आर्य प्रतिनिधि सभा लखनऊ में भव्य यज्ञशाला का निर्माण उन्होंने करवाया। वे तो राष्ट्र व समाज के एक नक्षत्र थे जो सबको प्रकाश देकर चले गए।

'स जातो येन जातेन, याति वंशः समुन्नतिः,
अद्य टांडा निराधारानिरालम्बा सरस्वती,
पंडिताः खंडिताः सर्वे मिश्रीलाल दिवंगते,
शूरा कृर्ताविद्योऽसि, धर्मपुत्रोऽसि वेदप्रचारकः,
यत्र वंशे सम्मुत्पन्नः, मिश्रीलाल महोदयः।

—सत्यमित्र शास्त्री

मान्य पंडित प्रवर ने अपने उपरोक्त छन्द में बाबू मिश्री लाल के गुणों की प्रशंसा की है।' जिसके जन्म से वह वंश सम्मुन्नति को प्राप्त हुआ, आज श्री मिश्री लाल आर्य के दिवंगत होने पर टांडा ज्ञान और आश्रय विहीन हो गया, सारे पंडित विद्वान् भी टूट गए। जिस वंश में आप ने जन्म लिया, वहां आप शूरवीर, धर्मवीर और वेद प्रचारक रहे।' मान्य पंडित जी ने ठीक ही कहा, बाबू मिश्री लाल जी न केवल अपने घर-परिवार के गौरव थे अपित आर्यजगत् की शान थे। पूरे टांडा के नाज थे।

श्री विज्ञमित्र शास्त्री—श्री शास्त्री जी तब आर्यसमाज के मंत्री थे और श्री मिश्री लाल जी प्रधान। मंत्री जी ने अपने संस्कृत भाषा की कविता रूप छन्दों में अपने प्रधान जी को अत्यन्त श्रद्धा से याद किया है। जिसका सामान्य अर्थ इस प्रकार है—'यशस्वी, दिव्य, सबमें श्रेष्ठ, सम्पन्न, ज्ञानी तथा स्त्री-शिक्षा के पोषक, कन्याओं की शिक्षा के लिए विद्यालय चलाने वाले, भेद-भावरहित व्यवहारशील, मधुर भाषी, महर्षि दयानन्द के परमभक्त, सत्यवादी, दृढ़व्रती, आजीवन खादीवस्त्र धारण करने वाले, ब्रिटिश सरकार के अधीन पीड़ित भारत को मुक्त कराने के लिए विभिन्न यत्नों के साथ निज घर-वार व भौतिक सुखों को छोड़कर

अंग्रेजों के शासन में जेल में रहने वाले जिनकी कीर्ति आर्यसमाज टांडा है, ऐसे धर्मानुरक्त महर्षिभक्त महान् श्री मिश्रीलाल आर्य जी के शुद्ध निर्मल चरणकमल को हम सब नमन करते हैं।' पूरी कविता का कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत है—

आरतं भारतं दृष्ट्वा चैतो नित्यमुद्यतः,
बन्धनान्मातरं मोक्तुं विविधं यत्नमाचरत्।
भौतिकं च सुखं त्यक्त्वा निजं वै पैत्रिकं गृहम्,
आङ्लानां शासने चासौ कारागारमसेवत।।
टांडार्य समाजस्य वर्तते यच्च विश्रुतिः,
मिश्रीलालो महाभागोऽस्य मूले प्रवर्तते।
आर्यधर्मानुरक्तस्य महर्षेरनुयायिनः,
नमामो वयमेतस्य निर्मलं पाद-पङ्कजम्।।

—विज्ञमित्र शास्त्री, मंत्री,आर्यसमाज, टांडा, फैजाबाद

आचार्य देवी प्रसाद मिश्र—इन्होंने अपने घनिष्ट मित्र श्री मिश्री लाल आर्य को ' हिन्दु समाज का एक सजग प्रहरी' माना और लिखा है। आपने उन्हें करीब से देखा और जाना क्योंकि उनके समय में ही आप त्रिलोकनाथ महाविद्यालय टांडा के प्राचार्य बने और उनके सानिध्य में कार्य किया। जुलाई 1930 के नमक सत्याग्रह का समय आन्दोलन का विकट काल आया, तभी देवी प्रसाद मिश्र भी प्राचार्य रूप में वहाँ आए। अपनी आँखों से देखा कि श्री मिश्री लाल आर्य अपनी कच्ची गृहस्थी (गृहस्थ का युवा काल) का परवाह न करके नमक कानून टोड़ते हुए नमक सत्याग्रह को सफल बनाने के लिए जेल गए।

टांडा में धोबी और चमार परिवारों की संख्या अधिक थी, वे सब रोटी कमाने के लिए मजदूरी करते थे पर कभी-कभी वे अपहरण व बलात्कार के शिकार हो जाते थे, श्री मिश्री लाल जी ने साहस पूर्वक उनकी रक्षा की, वहाँ विद्यालय खोला, कन्याओं को शिक्षा दी। काँग्रेस समर्थक होकर भी उन्होंने काँग्रेस की सदस्यता नहीं ली, उन्हें समझ थी कि उनके प्रिय कार्य आर्यसमाज की शिक्षा, स्त्री-शिक्षा विकास मूलक सामाजिक शिक्षा व वेद प्रचार आदि में काँग्रेस की सदस्यता बाधक बनेगी, अत: लोगों के चाहने पर भी बड़े पदों को भी ठुकराते हुए काँग्रेस

की सदस्यता से अलग ही रहे और अपने जीवन के व्रतों के अनुसार सामाजिक सब कार्यों में पूरी तरह सफल रहे।

टांडा और निकटवर्त्ती स्थानों में आर्यसमाज का विकास का श्रेय उन्हीं को जाता है, ऐसा उदाहरण अब शायद न मिले। उनकी कमी हमेशा खलेगी।

'बुराइयों को दूर करने की आग उनके हृदय में सदैव धधकती रहती थी, इस कारण उनके शब्द कभी-कभी कटु और कठोर हो जाते थे।'—देवी प्रसाद मिश्र।

डॉ. श्रीकान्त उपाध्याय एम.ए. पी.एच.डी.—आपने उन्हें 'निर्धूम जीवन ज्योति' कहते हुए लिखा कि उनका परिचय कलकत्ता आर्यसमाज में हुआ, उनके बड़े भाई स्व. आचार्य पं. रमाकान्त के छोटे भाई जब उन्हें बताया तो उनका प्रेम उनके प्रति और उमड़ आया। आर्यसमाज के कार्य में ऋग्वेद का संगठन सुक्त 'संगच्छध्वं संवदध्वम्' के अनुसार मिलकर चलने और कार्य करने का परामर्श दिया। स्वयं को एक आर्यसमाज का प्रहरी बताया। इस तरह वे एक व्यक्ति नहीं अपितु संस्था थे जिसकी शिक्षा व संस्कार धारा में उन्होंने स्वयं को ही नहीं वल्कि अपने पूरे परिवार, बच्चों व यहाँ तक कि मित्रों को ढालने का जीवन भर भरसक प्रयत्न किया। '**कीर्तिर्यस्य स जीवति**' साहित्य-वचन के अनुसार वे एक कर्तिमान् महापुरुष श्री मिश्रीलाल आर्य टांडा वाले के नाम से स्वनाम धन्य थे। 'उनकी कीर्ति चिरस्थाई बने रहे' की पवित्र भावना के साथ डॉ. श्रीकान्त उपाध्याय ने अपनी श्रद्धांजलि भेंट की।

पं. महेन्द्र पाल आर्य—आप (पं. म. पा. आर्य) पहले मेरठ में 'इमाम' थे और महर्षि दयानन्द की शिक्षाओं से प्रभावित होकर आर्यसमाज के प्रचारक बने। एक वार्षिकोत्सव में आप जब टांडा गए तो आप श्री मिश्री लाल आर्य, प्रधान जी से परिचित हुए। उनके व्यवहार व कार्य से आप अत्यन्त भावुक हो उठे। श्री मिश्री लाल आर्य ने उनके वेद-कुरान के तुलनात्मक सैद्धान्तिक प्रवचन पर प्रसन्न होकर कहा कि 'मेरा खोया बच्चा वापस आया, आज से टांडा आर्यसमाज श्री महेन्द्र पाल जी का पैत्रिक समाज है।' इस तरह प्रधान जी द्वारा प्राप्त आतिथ्य सत्कार, स्नेह सब पैत्रिकभावपूर्ण पाकर महेन्द्र पाल जी स्वयं को धन्य समझते हैं।

कागज-कलम चाहे समाप्त हो जाए पर पिता श्री का गौरव शाली प्रभाव कभी खत्म नहीं होगा। श्री मिश्री लाल जी आर्य के जाने से वे स्वयं को रिक्त जैसा महसुस करते हैं मानो वे पहले ही अनाथ थे और दूसरी बार भी अनाथ हो गए। अस्तु!

ममता आर्य (पौत्री)—ममता आर्य मानती है कि उनके यशस्वी दादा जी के विशाल अस्तित्व का जड़ इतना बड़ा है जिसका कोई ओर-छोर नहीं है। ममता जी की भावना को एक वाक्य में लिखा जाए तो उनके दादा श्री मिश्री लाल सच में मिश्री ही थे, जिधर से चखो, मिठास ही मिठास था।

स्वदेश के लिए अनेक बार जेल गए। फिरंगियों की कोई भी वस्तु छूना तक नहीं चाहते थे। दूसरों के लिए जिया, अंग्रेजी दवाई से भी नफरत थी उन्हें। कहते थे कि अंग्रेजी दवाइयाँ समय से पहले ही जान ले लेगी पर अंतिम समय में मुस्किल तो होती थी पर प्यार से उन्हें ममता अपने दादा जी को दवाइयाँ खिलाने में सफल होती रही। क्यों नहीं दादा-पोती का जो प्यार था, कहावत सही है—सूद मूल से ज्यादा प्यारा होता है। वैसे लेन-देन के व्यवहार में वे सूद/व्याज के खिलाफ थे। जरूरतमंद गरीबों को मदद करना उनका स्वभाव था। ममता को दादा जी के क्रिकेट -गेंदवाजी के योग्य खिलाड़ी होने में आश्चर्य लगता है, पर यह सच था कि कई बार वे अपने युवाकाल में इन खेलों में अव्बल रहे तभी वे क्रिकेट कमेंटरी हमेशा रुचिपूर्वक देखा करते थे।

दादा जी के साथ छुट्टियाँ बिताना घर के सब बच्चे अपना सौभाग्य समझते थे। वे सबको आर्यसमाज से जुड़े रहने की प्रेरणा देते रहे। आज भी दादा जी की याद में आँसू निकल आते हैं। ममता इस प्रार्थना के साथ अपने दादा जी को हमेशा याद रखने का भाव रखती है—

'हे ईश्वर! मुझे इतनी शक्ति दो कि मैं 'दादा की पोती' बन कर दिखा सकूँ, उनकी भावनाओं के अनुकूल महान् एवं कर्त्तव्यनिष्ठ बन सकूँ और मेरे देव तुल्य श्रद्धास्पद दादा जी की पवित्र आत्मा को भगवान सद्गति प्रदान करे।'

डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री—(अब सेवानिवृत संस्कृत-प्राध्यापक, वैदिक सिद्धान्तों पर आधारित अनेक पुस्तकों का लेखक, सुप्रसिद्ध

वैदिक वक्ता व महर्षि दयानन्द के भक्त आर्य विद्वान्) ने श्री मिश्री लाल जी आर्य को 'श्रद्धेय बाबू जी' कहकर आदरणीय सम्बोधन से अलंकृत किया। बाबू जी के जीवन के अंतिम 5-6 वर्षों के समय में उनका परिचय हुआ जब बाबू मिश्रीलाल आर्य द्वारा उन्हें वहाँ आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर बुलाया गया। शैक्षणिक व्यस्तता के कारण टांडा को शास्त्री जी अधिक समय चाहते हुए भी नहीं दे पाते थे पर टांडा में उनकी माँग हमेशा बाबू जी द्वारा बनी रहती थी। काशी आदि उत्तरप्रदेश व बिहार तक के आर्यसमाज के उत्सवों में डॉ. ज्वलन्त कुमार जी के महत्त्वपूर्ण सैद्धान्तिक सारगर्भित व्याख्यान आज भी होते रहते हैं। उनका मानना है कि टांडा में बड़े-बड़े शास्त्रार्थयुक्त समारोह, हिन्दु-मुस्लिम प्रेम, संस्कृत सम्मेलन, नारी-सम्मेलन, वेद सम्मेलन आदि अनेक विचित्रताओं के साथ सफल सम्मेलनों का पूरा श्रेय स्व. बाबू जी को ही जाता है। पूरे भारत से वक्ता व भजनोपदेशक चुन-चुन कर आमंत्रित करना तथा उन सबका भोजन, शयन आदि की व्यवस्था स्वयं करके ही बाबू जी संतुष्ट व प्रसन्न होते थे। वार्षिक उत्सव की तिथि निश्चित हो जाने पर चाहे कुछ भी वाधा आए, उत्सव निर्धारित तिथि पर ही हुआ करता। एक बार एक आमंत्रित विदुषी महिला ने समय तो दिया पर उत्सव काल में कहलवा भेजा कि तिथि बदल दें तो वह आ सकेंगी पर पक्के इरादे के स्वामी श्रद्धेय बाबू जी ने उत्तर भेजा कि आप आएं या न आएं पर हमारा वार्षिक उत्सव निर्धारित तिथियों में ही होगा।

शंका-समाधान का समय हर उत्सव में रखा जाता था। जानबूजकर एक महोदय ने स्वामी दयानन्द की 'जन्म तिथि' के बारे में पूछा, बाबूजी थोड़े परेशान होकर खड़े हुए और कहा कि हमें उनकी जन्म तिथि नहीं मालूम है अत: हम उनका हर शिवरात्री पर बोधदिवस मनाते हैं पर डॉ. ज्वलन्त कुमार वहाँ उपस्थित थे, उन्होंने कहा कि वे उसका उत्तर देंगे और सटिक उत्तर देते हुए स्वामी दयानन्द की जन्मतिथि 'फाल्गुन कृष्णा दशमी, दिन शनिवार विक्रमी 1881 'बताया जिसे सार्वदेशिक धर्मार्य सभा खोज के बाद घोषित किया। इसमें ज्वलन्त कुमार जी ने तर्क और प्रमाण भी दिये। तब बाबू जी की प्रसन्नता देखते बनती थी। विगत कई वर्षों से इस प्रश्न का समाधान नहीं हो पा रहा था। बाबू जी ने ज्वलन्त जी को

बताया—'यह प्रश्न यहाँ 3-4 साल से पूछा जा रहा है, किसी उपदेशक ने इस सम्बन्ध में पूरी बात की जानकारी नहीं प्राप्त की। आपने इस पर अच्छा अध्ययन किया है।' जीवन ज्योति—पृ. 125

टांडा आर्य कन्या इंटर कॉलेज में बाबू जी ने 50 से अधिक छात्राओं के लिए आवासीय व्यवस्था भी की जहाँ मुस्लिम कन्याएं भी रहती हैं। वहाँ गुरुकुल की तरह रहने, खाने, सोने व जागने की व्यवस्था है। सब के द्वारा प्रात: जागरण पर ओ३म् प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं-—आदि वेद मंत्रों का तथा शयन काल पर ओ३म् यज्जाग्रतो दूर मुदैति दैवं-—आदि 'शिवसंकल्पम् 'वेद मंत्रों के उच्चारण की वहाँ परम्परा है। भड़काऊ कई मुस्लिम लोगों ने मुस्लिम परिवारों को रोका कि अपनी लड़कियाँ वहाँ न भेजें, वे सब हिन्दु बन जाएंगी पर उन परिवारों का जबाब होता था कि जब-तक बाबू मिश्रीलाल आर्य हैं तब, तक हमें उन पर पूर्ण विश्वास है, यह उचित नहीं कि केवल आर्य पाठशाला होने से वहाँ अपनी लड़कियाँ न भेजें। वहाँ उनकी पढ़ाई और अन्य सब तरह की सुरक्षा अच्छी है। अन्य मत वालों का श्रद्धेय बाबू जी पर ऐसा विश्वास क्या एक श्रेष्ठ आर्य की पहचान नहीं है?

बाबू जी का सम्बन्ध राजा रणञ्जय, मंत्री जयराम वर्मा आदि से था, उन्हें भी वार्षिकोत्सव में बुलाया जाता था। ज्वलन्त जी से उनका परिचय बाबू जी ने करवाया। बाबू जी से टांडा के अलावे भी हिन्दु-मुस्लिम सब बहुत प्यार रखते थे। उनकी मृत्यु पर शहर की सभी दुकानें चाहे हिन्दु की हो या मुसलमान की, बन्द हो गई थीं और सब लोग उनकी शवयात्रा पर विशाल जन समूह के साथ उपस्थित हुए थे। क्या यह उनके जीवन का उच्च आदर्श नहीं था?

एक बार लोकदल के चुनाव में जनता दल के प्रत्यासी महात्मा गांधी के पौत्र श्री राजमोहन गांधी के प्रचार में व्यस्त होने के कारण टांडा आर्यसमाज के उत्सव में अपने दोस्त पं. दीनानाथ जी को ज्वलन्त जी ने भेज दिया, बाबू जी ने फिर भी ज्वलन्त जी की तारीफ की कि उन्हें विरोधी दल के समर्थन के लिए कोई एतराज नहीं है। उनके लिए उनके सम्मान के लिए व्यवस्थित खादी वस्त्र गमछा आदि पं.दीनानाथ के साथ भेजवा दिये। ऐसे ही एक वार ज्वलन्त जी बिना दक्षिणा के वार्षिकोत्सव

की समाप्ति पर राजी-खुशी विदा हो गए, बाबू जी को बाद में ध्यान आया कि दक्षिणा तो दी नहीं, तो बाद में और अधिक प्रसन्नता और सम्मान पूर्वक दक्षिणा देते हुए बाबू जी ने अपना स्नेह जताया और हर वर्ष यहाँ आते रहने का निवेदन किया चाहे एक ही दिन के लिए वे आएं पर आया करें जरुर।

बाबू जी का अपने पुत्र आनन्द कुमार पर पूर्ण विश्वास था कि इनके धरोहर को वे अच्छी तरह संभालेंगे और आनन्द जी सम्भाल भी रहे हैं—

'आज के युग में एक आर्य पिता के परिवार में पूर्ण आर्यत्व और उसके बाद भी आर्यत्वपूर्ण उत्तरदायित्व का दृढ़विश्वास एक सच्चे आर्य के सार्थक जीवन का इससे बढ़कर उदाहरण क्या होगा ?' *—डॉ. ज्वलन्त—संस्मरण-प्रकरण-जीवन ज्योति-पृ. 127*

पद्मश्री डॉ. कपिलदेव द्विवेदी-ज्ञानपुर वाराणसी—डॉ. द्विवेदी संस्कृत के उत्तम विद्वान् थे। उन्होंने संस्कृत व्याकरण रचनानुवाद कौमुदी आदि अनेक पुस्तकें लिखीं जिनका सम्बन्ध बाबू मिश्रीलाल से सीधा था। वे लिखते हैं कि टांडा तो श्री मिश्री लाल आर्य का ऋणि है ही, वहाँ की मुस्लिम कन्याएं तक भी उन्हें पिता मानती रहीं। समाज, परिवार व अन्य समुदायों में भी उनके आर्य आदर्श व्यक्तित्व का प्रभाव तो था ही, उनके सानिध्य व व्यक्तित्व का प्रभाव मुस्लिम परिवार अपने ऊपर भी समान रूप से मानते हैं।

'आदरणीय श्री मिश्री लाल जी एक महान व्यक्ति थे। उनका सारा जीवन आर्यसमाज व देश की सेवा में व्यतीत हुआ। वे स्वार्थ-त्याग की मूर्ति थे। कर्मठता उनके रग-रग में भरी हुयी थी। वे एक स्वतंत्रता सेनानी थे। आजीवन राष्ट्रीय प्रेम की भावना से ओतप्रोत रहे और जो भी उनके सम्पर्क में आया, उसे उन्होंने राष्ट्रभक्त बनाया। मुझ पर उनकी विशेष कृपा थी। उनके निधन से मुझे व्यक्तिगत रूप से क्षति पहुँची है।' *—डॉ. द्विवेदी, जीवन ज्योति पृ. 128*

श्रीमती राजकुमारी गुप्ता (कनिष्ट पुत्री)—अपने पूज्य आदर्श आर्य परिवार-समाज-राष्ट्र समर्पित पिता को बड़ी ही साहित्यिक व काव्यात्मक भावमुद्राओं में संस्मरण की शोभा बनाई है जो पिता के लिए पुत्री का अभिव्यक्त ये सम्पूर्ण भाव समिचिन ही है। उनकी अभिव्यक्ति-

भावों की किञ्चित झलक जीवन ज्योति पृ. 129 संस्करण भाग से प्रस्तुत की जाती है—

'हे तपः पूत, हे वेददूत, हे यज्ञज्ञान ज्योतित् प्रकाश, जिन्हें आपने हाथ में कलम थमाकर लिखना सिखाया, उँगली थाम कर चलना सिखाया, उस योग्य कहाँ कि हिमालय जैसे आपके विराट व्यक्तित्व का गौरव गान कर सके। लेकिन गर्व है इस बात का कि मैं अकिञ्चन विराट व्यक्तित्व का एक अणु हूँ, ऐसा अणु जिसे आपकी सबसे छोटी पुत्री होने का गौरव प्राप्त हुआ।

'मैं शून्य किन्तु फिर भी विराट,
मैं ऋचापूत की पुत्री हूँ।'

इस गौरव के साथ राजकुमारी जी कहना चाहती हैं कि उनके पिता साधारण नहीं अपितु विशेष व्यक्तित्व के धनी थे जिन्होंने अपने जीवन को पूर्ण मानवमूल्यों के साथ जीया।

शरीर, मन व बुद्धि को स्वस्थ रखने का उन्होंने यथोचित शाकाहारी, आयुर्वेद युक्त भोजन तथा वैदिक विचारों से संस्कारित सामाजिक पाखंड, अन्धविश्वास, मिथ्याचार से अलग एक स्वच्छ जीवन-छवि के महान् व्यक्ति व समाज सुधारक थे। सक्रिय पिता की सामाजिक चेतनता का वर्णन इस पुत्री ने कुछ ऐसा किया—

मैं सविता का स्वर्णिम प्रकाश, प्राणों में बहता हुआ श्वास,
जन-जन अणु-अणु में विद्यमान, चेतनता का ही मेरा प्रमाण।

—राजकुमारी गुप्ता

तुलसी की 'परहिताय', सूर की 'भावविमलता' व कबीर की ' खरापन' की स्पष्ट भावना उनमें उभरी थी पर इन सबका आधार महर्षि दयानन्द की ' जगोपकार' की पवित्र भावना ही प्रेरणाकेन्द्र बनी।

चाहे कोई कुछ भी कहे भला या बुरा, मान या अपमान आदि हर स्तिथि में समाज-सुधार करना ही उनका जीवनोद्देश्य था। महर्षि दयानन्द को भी समाज-सुधार के लिए ही विषपान करना ही पड़ा। किसी ने ठीक ही कहा—

'सुधा बीज बोने से पहले, कालकूट पीना होगा।
पहिन मौत का मुकुट, विश्वहित मानव को जीना होगा।'

उनका पूर्ण जीवन स्वावलम्बी, स्वदेशी, नारी-शिक्षा के विशेष पक्षधर, सभी वर्गों का हितैषी (हिन्दु-मुस्लिम भाईचारा), पुत्र-पुत्रियों में सदैव समानता का प्रेमभाव, विदेशी स्वेटर तक नहीं पहनने वाले, बच्चों के साथ खुलकर बातें करने वाले, आत्मबल के स्वाभिमानी और पक्के ईश्वरभक्त थे।

पिताजी को अपने सब बच्चों के श्रेष्ठ व्यावहारिक व आर्योचित कर्त्तव्यों पर सदा गर्व व संतोष था। टांडा नगर उनका मोह था। अपने मूल जन्मस्थान व कार्यक्षेत्र से सबको स्वाभाविक लगाव होता है; उन्हें भी था। अंतिम सांस भी कलकत्ते से 10-12 दिन पूर्व टांडा में ही आकर लिये। मौन भाव से मानो अपनी धर्मपत्नी को भी यही कहते चले गए—'न एकाकी कभी तुम थी, न एकाकी अभी हो' अर्थात् ईश्वरकृपा से परिवार-बच्चों का हरभरा बाग छोड़कर गए।

राजकुमारी जी द्वारा पिता के कार्य-वसीयत को आगे बड़ाने की संकल्पात्मक अभिव्यक्ति से भला कौन अभिभूत नहीं हो पाएगा—

'पड़े न रह जाएं मेरे ये ब्रह्म बीज बिन बोये,
मैं इन्हें कलेजे में रखा, जीवन भर हैं टोये,
मेरे हो तो इन बीजों को तुम बो देना,
कुछ तो मेरा भार घटाने को तुम भी ढो लेना,
कहीं न ऐसा हो पछताऊँ क्योंकर कमल खिलाया,
मैंने जीवन भर त्याग किया तप में सतत् गलाया'

पिता की उस परावाणी को भीतर भाव से समझ लेने वाली सुपुत्री राजकुमारी की व्रत-चुनौति से भला कौन पिता गौरवान्वित नहीं होगा?

'साहस है तो मेरे पदचिन्हों पर चलकर देखो,
जो जूझ सकें मझधारों से, वे (ही) साथ चलें।'

—राजकुमारी गुप्ता

ऐसे थे राष्ट्रप्रेमी स्वतंत्रता सेनानी, अनेक बार जेल जाकर कठोर यातनाएं सहने वाले, समाज व परिवार के जनक गौरवशाली व्यक्तित्त्व टांडा के भाल हमारे पिता आर्य श्री मिश्री लाल।

श्री रामबहोर मौर्य—आपके पिता बाबू जी के सुपरिचित थे, आपके बड़े भाई बाबू जी की दूकान में मुनीम थे। भाई साहेब के साथ

बाबू जी के मकान में ही रहते हुए 1957 में इंटर पास कर लेने पर बाबू जी ने आर्य कन्या इंटर कॉलेज में पुस्तकालयाध्यक्ष और फिर लगन व अच्छा काम देखकर प्रधान लिपिक बाबू जी द्वारा ही उनकी नियुक्ति 1964 में कर दी गई। तब से अंतिम समय तक बाबू जी का प्यार पुत्र की भाँति मिला। समाज के सच्चे सुधारक, राष्ट्रप्रेमी, बिनाभेदभाव सब स्टाफ के साथ सद्व्यवहार, नियमितता के लिए सक्त व प्रधानाचार्यसमेत सबकी समस्याओं को सुनकर यथोचित सुलझाने वाले थी आदरणीय बाबू जी। अब उसी इंटर कॉलेज का नाम 'श्री मिश्रीलाल आर्य कन्या इंटर कॉलेज' रखा गया जिसके वे संस्थापक सदस्य थे और उसके आजीवन प्रधान भी रहे।

'माता पिता ने मुझे जन्म दिया परन्तु बाबू जी ने जीवन प्रदान किया। उनके द्वारा सौंपे गए उत्तरदायित्व के प्रति मैं उनकी अनुपस्तिथि में उतना ही जागरुक हूँ और अपने जीवनपर्यंत रहूँगा।'

—रामबहोर मौर्य—जीवन ज्योति—पृ. 134.

रामबहोर मौर्य की यह अभिव्यक्ति भी बाबू मिश्रीलाल आर्य के एक अति श्रेष्ठ जीवन का परिचय है।

श्री राजेन्द्र कुमार आर्य, सालेम नगर (द्वितीय पुत्र)—राजेन्द्र जी भी अत्यधिक दूरी के कारण काफी कोशिश के बाद भी अपने पिता की अंत्येष्टि पर नहीं पहुँच पाने से परिवारसमेत दु:ख की अनुभूति करते हैं। आर्यसमाज टांडा के 99वें वार्षिकोत्सव पर पिताजी को सक्रिय देखकर प्रसन्न थे और ऐसा कुछ नहीं लगता था कि उनका अंत इतना निकट है, हांलाकि उनके आचार-विचार में निराशा के लक्षण दिखलाई पड़ रहे थे।

अपने पिता के आदर्श, समाज व राष्ट्रसमर्पित, सबके प्रति समरस भाव और टांडा की सब जनता को अपना भाई और पुत्रतुल्य प्यार बाँटने वाले, सादाजीवन उच्च विचार प्रवृतिमूलक, खद्दरधारी, हिन्दु-मुस्लिम में मेल-मिलाप की सद्भावना युक्त व्यक्तित्व के लिए सदैव गौरवान्वित महसुस करते हैं।

सच्चाई व न्यायपथ के अनुगामी पिता जो स्वयं में भी आत्मसंयम

व अपने हर श्रेष्ठ सामाजिक कार्य के दृढ़व्रत का पालन करने वाले पिता के सिख को राजेन्द्र जी भी अपने जीवन में उतारने की भावना रखते हैं। जिनकी संतानें ऐसी उत्तम भावनाएं रखती हों, भला वह पिता धन्य क्योंकर न हो ?

मनोहर लाल वर्मा—श्री मिश्री लाल आर्य को आप ने अपनी 10-11 साल की अवस्था में ही तब देखा जब वे असहयोग आन्दोलन के तहत फैजाबाद जेल से गोंडा जेल आ गए थे। 15 वर्ष में नमक कानून तोड़ने के कारण श्री मनोहर लाल जी भी जेल गए और इस तरह वे भी स्वतंत्रता संग्राम सेनानी बने। मनोहर लाल जी ने उन्हें 'पूज्य मामा' कहा।

वे दोनों खद्दरधारी थे पर मामा जी अधिक सादे खादी वस्त्र पहनते थे जबकि मनोहरलाल जी थोड़े सिल्क खादी, रंग-विरंगे खादी कुर्ता व मसलिन खादी की धोती। मामा जी हमेशा उन्हें प्यार से उनके मनपसन्द वस्त्र ही भेंट करते, बहुत प्यार था दोनों में, कालान्तर में मनोहर लाल वर्मा का विवाह भी श्री मिश्रीलाल जी आर्य की भांजी से हो गया। इसी कारण वे उन्हें मामा जी कहा करते थे। सारा जीवन उनका प्यार, सानिध्य व मार्ग दर्शन मिला। मनोहर लाल जी लिखते हैं कि पूज्य मामा जी के त्यागमय जीवन को लेखनी द्वारा प्रदर्शित करना असम्भव है।

शुभ्रा उपाध्याय—शुभ्रा उपाध्याय जी ने अपनी श्रद्धा सुमन अत्यन्त भावनापूर्ण भेंट किये। साहित्यिक अंदाज में आपने उन्हें मानवमूल्यों के चरमोत्कर्ष पर रखा। त्याग, सेवा, अध्यात्म, प्रेम व कर्त्तव्यपूर्त्ति में आपने श्री मिश्रीलाल जी आर्य को एक **'यज्ञाग्नि की सुगन्धि'** से तुलना की जो बिनाभेदभाव सबको समानरूप से सुवासित करती है। देखने में वे साधारण थे पर गुणों में असाधारण, **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** और **'कृण्वन्तो विश्वमार्यम'** का समन्वितरूप आपके जीवन में सबके सामने उभर कर आया।

शुभ्रा जी की दृष्टि में अपने वेदानुकूल जीवन जीने की गरिमा लिये वे महान आत्मा सिद्ध हुए। शुभ्रा जी मानती हैं कि-

'हवन-अग्नि बुझ चुकी, गन्ध से, वायु अभी भी आती है,
जो भीनी-भीनी महक प्राण-प्राण में, मादकता पहुँचाती है।'

शुभ्रा जी इस महा मानव से जीते जी तो नहीं मिल पाई पर उनके बड़े पुत्र श्री आनन्द कुमार द्वारा 'जीवन ज्योति' की पांडुलिपि पढ़ने का सु-अवसर प्रदान करवाए जाने पर इसका आद्योपान्त रुचिपूर्वक पढ़कर ही उन्हें इन्हीं भावनाओं से उनसे मिल लेने जैसी मानसिक तृप्ति की एक अनुभुति इस तरह करती हैं—

'मेरा मन इस सुवासित सुमन के समक्ष नत हुआ। मेरा हृदय अपने अंक में इस भावना का वरण कर कृतार्थ हुआ। मैं अपने इस अपरिचित-परिचित चित्र का प्रत्यक्ष दर्शन न कर पाने की असमर्थता को, श्रद्धाऽभिभूत मन का भावार्पण करती हूँ। आर्य जगत् की इस अपूरणीय क्षति और रिक्तता को इन शब्दों में महसूस करती हुई लिखती हैं—

मनुजता का नया नेता उठा है,
जगत से ज्योति का जेता उठा है।

—शुभ्रा उपाध्याय, जीवन ज्योति पृ. 138

श्री मिश्रीलाल जी आर्य शुभ्रा जी के मानसपटल पर हमेशा 'पूज्य-श्रद्धेय—जैसे विशेषणों से ही मंडित रहेंगे।

अमिताभ आर्य (पौत्र)—स्वाभाविक रूप से एक अच्छे आदर्श दादा के प्यार से अभिभूत पौत्र अमिताभ भी सर्ववत् श्रद्धानत है। विशेषकर छुट्टियों में दादा-पोते का अधिक मेल, उस पर बच्चों की रुचि के अनुरूप दादा जी द्वारा खाने-पीने का ख्याल किया जाना, आर्योचित संस्कार डालना, आर्यसमाज में ले जाना और सदा प्यार से बातें करना सब कुछ पौत्र अमिताभ को खूब भाता था।

दादा जी की अंत्येष्टि पर कलकत्ते से टांडा पहुँचकर शामिल होते हुए दादा जी के मृतक शरीर को उठाने का मौका पाना, व चिता पर आहुति देना अमिताभ जी अपना सौभाग्य व इश्वर की कृपा मानते हैं।

अमिताभ जी यह मानते हैं कि पूज्य दादा जी की पावन स्मृतियाँ ही अब हमें प्रेरणा व उत्साह देने के लिए अवशिष्ट हैं। वे सब भाई-बहन अपने दादा जी के बताए मार्ग पर चलने की शक्ति के लिए सदैव ईश्वर से प्रार्थना करते हैं।

आर्यसमाज कलकत्ता द्वारा—अभिनन्दन पत्र

श्रेष्ठिप्रवर, कर्त्तव्यनिष्ठ, सेवाव्रती

श्री मिश्रीलाल जी आर्य

की सेवा में

अभिनन्दन पत्र

आर्यवर,

आज की इस पावनपुण्य आनन्दमयी वेला में आपको अपने मध्य पाकर हम धन्य हो रहे हैं। आपका जीवन, आपकी कर्त्तव्यनिष्ठा, समाजसेवा, महर्षि के प्रति आपकी भक्ति, आपकी उदारता, सूझ-बूझ, हमारा सम्बल है; हमारा मार्ग दर्शक है।

महर्षि भक्त,

आप ऋषि मुनियों की शिक्षा और संस्कृति-भक्त हैं। महर्षि स्वामी दयानन्दजी के सिद्धान्त और आर्यसमाज का मिशन आपके जीवन के लक्ष्य रहे हैं। आर्यसमाज का यह नियम : 'प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से संतुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये' आपके जीवन का मार्ग दर्शक रहा है। आर्यसमाज के प्रचार में आपका जीवन सेवामय रहा है।

स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी,

स्वतंत्रता संग्राम के समय आपने अपने व्यवसाय, सम्पत्ति आदि की चिन्ता न करके देश का साथ दिया, पर्याप्त समय तक कारागार का कष्ट झेला। आपकी सरलता, सादगी, स्वदेशी (खादी व्रत,) आदर्शमय है।

शिक्षा प्रेमी,

आपका शिक्षा प्रेम सर्वविदित है। आप 'आर्य कन्या महाविद्यालय, टांडा (फैजाबाद)' के संस्थापक ही नहीं, कुशल संचालक भी हैं। आपके कार्य, आपके व्यवहार, आपकी संचालन क्षमता, सर्वत्र आपकी योग्यता प्रमाणित होती रहती है। हिन्दु, मुसलमान सभी बिना भेदभाव के आपकी उदारता और क्षमता के प्रशंसक हैं।

आदर्श चरित्र,

आप आदर्श हैं, आपका चरित्र आदर्श है, आपकी कट्टर नियमानुवर्तिता सर्वथा आदर्शमय है। आपका निर्लोभ व्यक्तित्व स्वार्थ से सदा ऊपर रहता है।

आप हमारे सम्मान हैं, आप हमारे आदर्श हैं। परम प्रभु जगदीश्वर आपको स्वस्थ, प्रसन्न एवं चिरायु करें, हम सबका सादर अभिनन्दन स्वीकार करें।

रविवार, माघ शुक्ला, 14, 2038 — हम हैं आपके आदर्श जीवन मुग्ध

आर्यसमाज कलकत्ता के सदस्य गण

श्री राम आर्य, कलकत्ता—आप आर्यसमाज कलकत्ता के कई विशेष पदों पर कार्य करते हुए आजकल आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल के प्रधान हैं। बहुत लम्बे समय तक यह सभा बिहार और बंगाल के लिए एक ही थी पर बिहार को अलग सभा मिल जाने के कारण अब यह सभा केवल बंगाल के लिए है। खरगपुर, रांची, कलकत्ता में बंगाल व अन्य प्रान्तों के आर्यसमाजों को मिलाकर गत वर्ष कई 3-4 दिवसीय बड़े-बड़े सम्मेलन आपके प्रधानत्व में सम्पन्न हुआ ताकि ईसाई बाहुल्य क्षेत्रों में आर्यसमाज और अधिक सक्रिय होवे। विगत् फरवरी में आपने और अधिक तेज गति से बंगाल व निकटवर्त्ती क्षेत्रों में सम्मेलनों द्वारा कार्य करने का संकल्प लिया पर दुर्भाग्यवश विश्वव्यापी करोना महामारी के कारण लौकडाऊन हो जाने पर यह कार्य अभी रुक गया है पर अनुकूल समय आने पर यह अभियान फिर से तेज करने का आपका विचार जीवन्त है। नि:संदेह आजकल इस करोना काल में स्कूल आदि संस्थानों में भी प्रचार कम है, वी.डी.ओ. कॉन्फ्रेन्सिंग के द्वारा यत्र-तत्र थोड़ा प्रचार जारी है पर कभी इंटरनेट समस्या, विजली समस्या और प्रबन्धन समस्या की मुश्किलें आने से यह प्रचार की पद्धति अधिक सफल नहीं हो पा रही है। आर्यसमाज कलकत्ता के भी आजकल प्रधान आप ही हैं जहां अमर शहीद भगतसिंह दो बार जाकर रुके थे। वहाँ बम आदि के निर्माण में आर्यसमाज के तत्कालीन पदाधिकारियों द्वारा उन्हें सहयोग भरपूर मिलता था। यह चर्चा विस्तार से हम वीर भगतसिंह के प्रसंग में कर आए हैं।

मिश्रीलाल आर्य इंटर कॉलेज विवरण—यह हम जान चुके हैं कि आर्य कन्या इंटर कॉलेज का अब नाम 'मिश्रीलाल आर्य इंटर कॉलेज' उनके ही सम्मान में परिवर्तित कर दिया गया जो पूर्णतया न्यायसंगत है। यहाँ उस महाविद्यालय की कुछ विशेषताएं बताना उचित ही होगा—

निम्न चार्ट के माध्यम से जानें—

1. विद्यालय का नाम व पता—मिश्रीलाल आर्य कन्या इंटर कॉलेज टांडा, अम्बेडकर नगर
2. कार्यरत स्टाफ—प्रधानाचार्य-1, प्रवक्ता-4, सहायक अध्यापक-अध्यापिकाएं-27, लिपिक-5, परिचारक-16, वित्तविहीन

अन्तर्गत—अध्यापक-4, प्रबन्धकीय व्यवस्था के अन्तर्गत सहायक अध्यापक/अध्यापिकाएं-25, इस प्रकार कुल-82

3. कुल छात्राएं—2022
4. हाई स्कूल परिषदीय परीक्षा का परीक्षा—फल-विगत 3 वर्ष का
   वर्ष 2018—पंजीकृत छात्राएं—307, उत्तीर्ण—285, 92.82%
   वर्ष 2019—पंजीकृत छात्राएं—263, उत्तीर्ण—229, 87.7%
   वर्ष 2020—पंजीकृत छात्राएं—281, उत्तीर्ण—271, 96.44%
   इंटरमिडीयेट परिषदीय परीक्षा का परीक्षाफल—
   वर्ष 2018—पंजीकृत छात्राएं—290, उत्तीर्ण—285, 98.28%
   वर्ष 2019—पंजीकृत छात्राएं—256, उत्तीर्ण—244, 95. 31%
   वर्ष 2020—पंजीकृत छात्राएं—293, उत्तीर्ण—261, 90%
5. कार्य कारिणी समिति के प्रधान—श्री आनन्द कुमार आर्य (पिता के विरासत को संभाला), आजीवन प्रधान मनोनित हैं।
6. छात्राएं पूर्ववत्—हिन्दु-मुस्लिम मिलाजुला
7. गायत्री मंत्रोच्चारण से सामूहिक प्रार्थना युक्त विद्यालय का आरंभ-दिनचर्या
8. अन्य शहरों से प्रविष्ट होने वाली छात्राओं के लिए आवासीय छात्रावास जिसमें प्रात: कालीन जागरण वेद-मंत्रों व शयन कालीन वेद-मंत्रों का उच्चारण सभी छात्रायें बिना भेदभाव करती हैं और सभी बहनें प्यार से रहती हैं। विद्यालय के इस व्यवस्था से बच्चों के माता-पिता/अभिभावक परिवार आदि भी सब प्रसन्न रहते हैं। वे समझते हैं कि वहाँ उनकी बेटियाँ अच्छे संस्कारों के साथ अच्छी शिक्षा भी ले रही हैं। मुस्लिम कन्याएं भी गायत्री मंत्र आदि वेद मंत्रों का उच्चारण बहुत ही चाव से करती हैं, कार्यक्रमों में मंचों पर भी वे वेद मंत्रों का पाठ करके प्रसन्न होती हैं। बिना भेद भाव उन्हें भी पारितोषिक/उत्साहवर्धन के साथ समानरूप से अधिकारियों द्वारा आशीर्वाद दिया जाता है।
9. हर वर्ष बड़े धूम-धाम से विद्यालय का वार्षिकोत्सव किया जाता है जिसमें अनेक अतिथिगण, विद्वानों का उद्बोधन व बच्चों का अनेकविध सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये जाते हैं।

10. हर वर्ष स्वतंत्रता दिवस तथा गणतंत्रता दिवस भारत के राष्ट्रीय पर्व मनाये जाते हैं।
11. वहाँ छात्रायें नगर वा अन्य प्रान्त स्तर के विभिन्न सांस्कृत्तिक कार्यक्रमों में भी यदा-कदा प्रस्तुति के लिए भेजी जाती उन्हें बहु-आयामी प्रतिभा विकसित करने में मदद मिलती है।
12. विद्यालय का अपना प्रायौगिक विज्ञान शाला है जहाँ छात्रायें विज्ञानमूलक प्रयोग (प्रैक्टिकल्स) बाखूबी सिखती हैं।
13. विद्यालय का अपना खेल क्षेत्र है जहाँ छात्रायें विभिन्न खेलों द्वारा अपना शारीरिक, मानसिक व आत्मिक विकास करते हैं।
14. समय-समय पर अनेक विद्वानों का सामूहिक गेस्ट-लेक्चर भी करवाए जाते हैं ताकि सभी छात्राओं का वौधिक विकास में मदद मिले।
15. विद्यालय से जुड़े आर्यसमाज टांडा की गतिविधियों में भी यहाँ की छात्रायें समसामयिक सत्संगों व बड़े आयोजनों में भाग लेकर आध्यात्मिक विकास में अनुकूलता महसूस करती हैं।

इस प्रकार अन्य आवश्यक सुविधाएं भी विद्यालय परिसर में उपलब्ध हैं। इस विद्यालय से हिन्दु के साथ मुस्लिम कन्याओं ने भी संस्कृत भाषा की उच्ची उपाधि प्राप्त की और हैदराबाद आदि अनेक स्थानों पर संस्कृत की प्राध्यापिका बनी। कलकत्ता तक आर्यसमाज के शताब्दी समारोह में जाकर सुरक्षा व मान-सम्मान के साथ वेद मंत्रों के गायन से मुस्लिम कन्याओं ने भी सबको मुग्ध कर दिखाया। दिल्ली में आयोजित आर्य शताब्दी समारोह में भी इन क्न्याओं ने समानरूप से अपनी प्रतिभा दिखायी। अभी भी इस विद्यालय की यह स्वस्थ परंपरा जारी है। यह विद्यालय इंटरमिडिएट स्तर की शिक्षा के लिए टांडा शहर में एक अनोखा महत्त्व रखता है जो स्वनाम धन्य बाबू मिश्रीलाल जी आर्य की देन है।

आर्यसमाज टांडा का स्वतंत्रता संग्राम में योगदान

शताब्दी समारोह (1892-1991ई.) आर्यसमाज टांडा का एक अपना इतिहास है। इसमें आदरणीय भाई डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री द्वारा प्रस्तुत

आर्यसमाज टांडा का संक्षिप्त इतिहास को पढ़ने से हमें इस आर्यसमाज की सामाजिक, राष्ट्रीय व पारिवारिक अध्यात्म, मानवीय सभ्यता व संस्किति मूलक महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है ; उसके कुछ सन्दर्भित विन्दु यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं।

आर्यसमाज टांडा की विशेषताएं

1. स्थापना–ऋषि दयानन्द के अनन्य भक्त मेरठ निवासी वैदिक विद्वान् आर्योपदेशक पं. तुलसी राम जी एवं आगरा निवासी पं. भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर द्वारा आर्यसमाज के प्रचार-क्रम में टांडा आने पर सम्वत् 1949 तदनुसार सन् 1892 में टांडा के कुछ बुद्धिजीवी लोगों को इकट्ठा कर वहाँ आर्यसमाज की स्थापना कर दी गई। प्रारंभ में समाज की अपनी भूमि न होने से मुबारकपुर निवासी पं. बद्री प्रसाद द्वारा प्राप्त मकान में ही आर्यसमाज कार्यक्रम चलना शुरू हो गया।

2. भूमि,भवन व अथितिशाला—प्रारंभिक प्रधान पं. शीतल प्रसाद व मंत्री श्री बच्चू लाल ने अपने साथ श्री शिवनारायण व श्री झिनकू राम जी आर्य को लेकर सन् 1911 में आर्यसमाज की भूमि खरीदी और इसमें भवन बनाना प्रारंभ किया और 1912 में यह बनकर तैयार हो गया। श्री बच्चू लाल जी की धन राशि से अतिथिशाला बनी जबकि श्री रामदास जी आर्य के रु.100- के दान से पहले भवन बनना शुरू हुआ। 14 अप्रैल 1921 में इसका सम्बन्ध आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र. से हुआ। वार्षिक अधिवेशन तो पहले से ही होने लगा था, 26.12.1922 में श्री मिश्रीलाल आर्य इसके मंत्री बने जबकि श्री झिनकूलाल जी प्रधान थे। तब से श्री मिश्री लाल जी इस आर्य समाज के साथ जीवन भर पूरे उत्तरदायित्व के साथ जुड़े रहे।

3. यज्ञशाला व सत्संग भवन विस्तार-सन् 1960 में श्रीमती भाग्यवती देवी धर्मपत्नी स्व. श्री कन्हैया लाल जी आर्य की आर्यनिष्ठानुसार उनकी स्मृति में वहाँ यज्ञशाला बनवाई तो आर्यसमाज की शताब्दी समारोह पर आर्यसमाज के वर्त्तमान प्रधान श्री आनन्द कुमार द्वार सत्संगभवन का विस्तार आधुनिक सुविधाओं से पूर्ण तथा उसे और सुन्दर बनाया जिसका उद्घाटन शताब्दी समारोह पर ही किया गया।

4. पुस्तकालय—सन् 1933 में श्री कन्हैया लाल जी की प्रेरणा से पुस्तकालय का विस्तार हुआ। नगर के लोगों ने भी पुस्तकें दान दीं, आर्यसमाज के हीरकजयन्ती तक वहाँ लगभग रु. 100 मूल्य की पुस्तकें प्राप्त थीं, कालान्तर में इसका विकास हुआ जिससे ईसाइयत व अन्य मतों से सामना करने का ज्ञान व आत्म बल पाने में वे किताबें अत्यन्त सहायक सिद्ध हुई, खासकर श्री कन्हैया लाल जी को। आर्यसमाज में तब से ही अनेक आर्य पत्र-पत्रिकाएं भी आया करती थीं जिससे सैद्धान्तिक ज्ञानवर्द्धन सबको होता था।

5. वानप्रस्थाश्रम—श्री बच्चूलाल आर्य के संकल्प से श्री जीवनदास रईस द्वारा सरयूनदी के तट पर अयोध्या जाने वाली सड़क के पास उपलब्ध कराई गई, 5 बीघा से ऊपर जमीन में वानप्रस्थाश्रम बनवाया गया जिसमें सुन्दर वाटिका, दो कुयें, यज्ञशाला, पुस्तकालय, कार्यालय, भोजनालय आदि श्री बच्चूलाल जी के व्यय से ही बनाए गए। इसका उद्घाटन आर्य सार्वदेशिक सभा के तत्कालीन प्रधान श्री महात्मा नारायण स्वामी द्वारा पुस्तकालय, स्वामी भाष्करानन्द जी द्वारा वानप्रस्थाश्रम और स्वामी वत्सलानन्द जी द्वारा यज्ञशाला का उद्घाटन 6 मई 1927 को किया गया। यह आश्रम् सभा के अधीन है जिसकी रजिस्ट्री 16 जनवरी 1931 को हुई। प्रारंभिक समय में कई वर्षों तक श्री दुर्गा प्रसाद जी वानप्रस्थी इसका संचालन करते रहे। आर्य सिद्धान्तों का प्रचार, सच्चे वानप्रस्थियों को यथावत् सहयोग देना, विद्यार्थियों को विद्यादान एवं वैदिक धर्म की ओर प्रेरित करना, धर्मार्थ औषधालय खोलना आदि ही इस आश्रम का उद्देश्य निर्धारित हुआ। यहाँ के लिए एक कार्यकारिणी समिति बनाई गई। प्रथमा, मध्यमा व उत्तर मध्यमा तक सम्पूर्णानन्द संस्कृत वि.वि. की परीक्षाएं होती थीं। बच्चे प्राइमरी से ही पढ़ते थे। 200 छात्रों के लिए निःशुल्क शिक्षा की यहां अब भी व्यवस्था है।

6. इस आर्यसमाज ने आर्य वीर दल, महिला आर्यसमाज, दयानन्द बाल विद्यामंदिर आदि अनेक संकाय बनाया और सब अब भी सुचारुरूप से चल रहे हैं जिससे नगर और निकटवर्त्ती स्थानों के बच्चों, परिवारों व समाज के लोगों को पूरा लाभ मिल रहा है।

स्वतंत्रता संग्राम और आर्यसमाज टांडा

यह विषय इस पुस्तक का मुख्य भाग है जिसकी चर्चा करना अत्यन्त आवश्यक है। चारों ओर जब ब्रिटिश राज्य को उखाड़ फेंकने का विगुल बज गया तो आर्यसमाज टांडा भी इसमें आगे आकर भाग लेने से पीछे न रहा। जब महात्मा गांधी स्वतंत्रता की अग्नि जलाने टांडा आए तब उनके स्वागत तक के लिए कोई आगे न आया पर आर्यसमाज टांडा के लोगों ने आगे आकर उनका स्वागत ही नहीं किया अपितु उन्हें आर्यसमाज टांडा में रुकवा भी। उनके भाषण हुए। क्रांतिकारी विचार सब ओर मानो गूँजने लगा। इसी तरह सरोजिनी नायडू का भी आर्यसमाज में स्थान देकर स्वागत किया और उनके विचार सुनाए गए जबकि पूरे टांडा में उन्हें रुकने की जगह तक न मिली थी। महर्षि दयानन्द के दिवाने आर्य लोगों ने ही इन क्रांतिकारी कांग्रेसी नेताओं को वहाँ सम्भाला और आर्यसमाज टांडा के सदस्य गण स्वतंत्रता संग्राम में भाग भी लेने लगे। बाबू मिश्रीलाल जी आर्य तब युवा ही थे पर भारत माता की अंग्रेजी बेड़ियों को काटने के लिए पंजाब, हैदराबाद जैसे दूर प्रान्तों में भी विभिन्न आन्दोलनों में भाग लिया। असहयोग आन्दोलन, नमककानून-तोड़ आन्दोलन और मद्यनिषेद आन्दोलन में तो श्री मिश्रीलाल जी युवाकाल में ही अनेक वार जेल गए पर मद्यनिषेद आर्य आन्दोलन में आप गिरफतार होकर छः मास कठिन यातनाएं भी जेल में काटीं, 100 रु. जुर्माना भी भरा जिसका विस्तार वर्णन पूर्व भी आपकी जीवनी में वर्णित है। इस आर्यसमाज के एक और सदस्य श्री जगत् नारायण उर्फ टिकू बाबू भी सत्याग्रह आन्दोलन में जेल गए और वहाँ भीषण कष्ट सहा।

इस आर्यसमाज ने स्वतंत्रता संग्राम के नेताओं का सदैव आदर किया। जब मोती लाल नेहरू का निधन हुआ तो बहुत ही श्रद्धा से इस आर्यसमाज में शोक प्रस्ताव पारित कर 8 फरवरी 1931 में सम्बन्धित अनेक स्थानों में भेजा गया। महात्मा गांधी पर जब भी कुछ भड़काऊ सनातनियों ने अनुचित आक्रमण किया तो आर्यसमाज टांडा ने उन्हें बचाया और सम्मानित किया।

पंजाब में जब हिन्दी सत्याग्रह जोरों पर था, अनेक आर्य वीरों ने

जान तक गंवा दी तब भी आर्यसमाज टांडा के सभासद ने पूज्य आर्य भिक्षु श्री रामजी प्रसाद जी के साथ जत्था में अपने योग्य सदस्य महाशय श्री जोखूराम और महाशय श्री जगदेव प्रसाद जी को भेजा।

इस प्रकार आर्यसमाज टांडा ने भारत माँ को स्वतंत्र कराने में अपनी निष्ठा को पीछे न रखा और महर्षि दयानन्द के ऋण को चुकाने में भी यह कभी पीछे न रहा। इन सब कार्यों में स्वतंत्रता सेनानी क्रांतिकारी आर्य वीर स्व. श्री मिश्रीलाल आर्य की सर्वाधिक प्रेरणायें मिश्रित हैं। आज भी उनका परिवार तन-मन-धन से आर्यसमाज टांडा को आगे बढ़ाने में सक्रिय है।

नोट-तपोनिष्ठ आर्य बाबू मिश्रीलाल के जीवन को पढ़कर प्रेरित होकर ही मैंने विचार बनाया कि उनके व्यक्तित्व के सभी आयामों को छूते हुये क्यों न एक नया अध्याय लिखा जाये ताकि पाठकवृन्द में इस आदर्श देशप्रेमी स्वतंत्रता सेनानी की प्रेरणाप्रद जीवनी से समाज व राष्ट्र-सेवा की निष्काम चेतना आये।

बस उपरोक्त भावाभिव्यक्ति के साथ ही यह "इतिहास के नये पन्ने" नामक इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक का नवम अध्याय लिखकर ऋषिभक्त, शिक्षाप्रेमी आर्यश्रेष्ठ श्री मिश्रीलाल आर्य को मैंने अपनी श्रद्धा सुमन भेंट की है। इसमें भी जगोपकार-दृष्टिकोण निहित है।

—आचार्य डॉ. उमेश यादव

महर्षि दयानन्द सरस्वती के बारे में कुछ अन्य महापुरुषों का मन्तव्य

—**अमेरिकन पादरी एण्ड्र्यू जैक्सन**—मैं उस प्रचण्ड अग्नि को देख रहा हूँ जो संसार की समस्त बुराइयों को जलाती हुयी आगे बढ़ रही है। वह आर्यसमाज रूपी अग्नि जो स्वामी दयानन्द के हृदय से निकली और विश्व में फैल गई।

—**श्रीमती एनी बेसेंट**—स्वतंत्रता सेनानियों का एक मन्दिर खड़ा किया जाए तो उसमें महर्षि दयानन्द मन्दिर की चोटी पर सबसे ऊपर होंगे। स्वामी दयानन्द पहले व्यक्ति थे जिन्होंने 'भारत भारतीयों के लिए' घोषणा की।

—**रोमा रोलां** (फ्रेंच लेखक)—स्वामी दयानन्द राष्ट्रीय भावना और जन-जागृति को क्रियात्मकरूप देने में प्रयत्नशील थे।

—**रिचर्ड** (फ्रेंच लेखक)—ऋषि दयानन्द का जन्म लोगों को कारागार से मुक्त कराने और जाति-बन्धन तोड़ने के लिए हुआ था। उनका आदर्श है—आर्यावर्त्त! उठ, जाग, आगे बढ़। समय आ गया है, नये युग में प्रवेश कर।

—**लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक**—स्वामी दयानन्द स्वराज्य का प्रथम संदेशवाहक रहे।

—**पंडित मदन मोहन मालवीय**—आर्यसमाज दौड़ता रहेगा तो हिन्दू समाज चलता रहेगा। आर्यसमाज चलता रहेगा तो हिन्दू समाज बैठ जाएगा। आर्यसमाज बैठ जाएगा तो हिन्दू समाज सो जाएगा। और यदि आर्यसमाज सो गया तो हिन्दू समाज मर जाएगा।

—**सर सैयद अहमद खाँ**—महर्षि दयानन्द इतने अच्छे और विद्वान् आदमी थे कि प्रत्येक मत के अनुयायियों के लिए सम्मान के पात्र थे।

—**अटल विहारी वाजपेयी**—अगर आर्यसमाज न होता तो भारत की क्या दशा हुई होती, इसकी कल्पना करना भी भयावह है। आर्यसमाज का जिस समय काम शुरू हुआ था तब कांग्रेस का कहीं पता ही नहीं था। स्वराज का प्रथम उद्घोष महर्षि दयानन्द ने ही किया था। यह आर्यसमाज ही था जिसने भारतीय समाज की पटरी से उतरी गाड़ी को फिर से पटरी पर लाने का कार्य किया। अगर आर्यसमाज न होता तो भारत भारत न होता।

—**रवीन्द्र नाथ टैगोर**—मेरा सादर प्रणाम है उस महान गुरु दयानन्द को जिसके मन ने भारतीय जीवन के सब(राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक) अंगों को प्रदीप्त कर दिया। मैं आधुनिक भारत के मार्ग दर्शक उस दयानन्द को आदरपूर्वक श्रद्धांजलि देता हूँ।

—**मैक्समूलर**—स्वामी दयानन्द एक विद्वान थे। उनके धर्म नियमों की नींव ईश्वरकृत वेदों पर थी। उन्हें वेद कंठस्थ थे उनके मन और मस्तिष्क में वेदों ने घर किया हुआ है। वर्त्तमान समय में संस्कृत व्याकरण का एक ही बड़ा विद्वान् साहित्य का पुतला, वेदों के महत्त्व को समझने वाला अत्यन्त प्रबल नैयायिक और विचारक यदि भारत में हुआ है तो वह महर्षि दयानन्द सरस्वती ही था।

—**अमर क्रांतिकारी भगतसिंह**—डी.ए.वी. यानि दयानन्द ऐंग्लो वैदिक स्कूल में हम सब भाइयों को सत्यार्थ प्रकाश पढ़ने का अवसर मिला। हमारे विचारों और मानसिक उन्नति के निर्माण में सबसे बड़ा हाथ आर्यसमाज का ही है। हम सब इसके लिए आर्यसमाज के ऋणी हैं।

—**योगी अरविन्द घोष**—स्वामी दयानन्द दिव्य ज्ञान वेद का सच्चा सैनिक, विश्व को प्रभु की शरण में लाने वाला योद्धा, धर्म तथा देश की स्वतंत्रता के लिए मनुष्य व संस्थाओं का शिल्पी तथा प्रकृति द्वारा आत्मा मार्ग में उपस्थित की जानी वाली बाधाओं का वीर विजेता था।

—**अमर क्रांतिकारी रामप्रसाद बिस्मिल**—महर्षि दयानन्द के क्रांतिकारी विचारों से युक्त सत्यार्थ प्रकाश ने मेरे जीवन के इतिहास में एक नया पृष्ट जोड़ दिया।

—**स्वातंत्र्य वीर सावरकर**—महर्षि दयानन्द स्वाधीनता संग्राम के सर्वप्रथम योद्धा व हिन्दू जाति के रक्षक थे। स्वतंत्रता के संग्राम में आर्य समाजियों

का बड़ा हाथ रहा है। महर्षि जी का लिखा अमर ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश हिन्दू जाति की रगों में क्रांतिकारी (उष्ण रक्त) का संचार करने वाला है। सत्यार्थ प्रकाश की विद्यमानता में कोई विधर्मी अपने मजहब की शेखी नहीं बघार सकता।

—**ग्रास ब्रोण्ड** (एक अंग्रेजी अधिकारी)—स्वराज्य आन्दोलन के प्रारंभिक कारण स्वामी दयानन्द की गिनती भारत के निर्माताओं में सर्वोच्च है। वे भारत के कीर्त्ति-स्तंभ थे। जहाँ-जहाँ आर्यसमाज है वहाँ-वहाँ क्रांति (विद्रोह) की आग है।

—**पंजाब केसरी लाला लाजपत राय**—स्वामी दयानन्द मेरे गुरु हैं, मैंने संसार में केवल उन्हीं को गुरु माना है। वे मेरे धर्म के पिता हैं और आर्यसमाज मेरी धर्म की माता है, इन दोनों की गोद में मैं पला हूँ, मुझे इस बात का गर्व है कि मेरे गुरु ने मुझे स्वतंत्रता का पाठ पढ़ाया।

—**लाल बहादुर शास्त्री**—महर्षि दयानन्द महान नायक और क्रांतिकारी महापुरुष थे। उन्होंने स्वराज्य और स्वदेशी की ऐसी लहर चलाई कि जिससे इंडियन नेशनल कांग्रेस के निर्माण की पृष्ठ-भूमि तैयार हो गई।

—**अनन्त शयनम् आयंगर**—महर्षि दयानन्द सरस्वती राष्ट्र के पितामह थे। वे राष्ट्रीय प्रवृत्ति और स्वाधीनता के आन्दोलन के प्रथम प्रवर्त्तक थे।

—**नेताजी सुभाष चन्द्र बोस**—महर्षि दयानन्द सरस्वती उन महापुरुषों में से थे जिन्होंने स्वराज्य की प्रथम घोषणा करते हुए आधुनिक भारत का निर्माण किया। हिन्दू समाज का उद्धार करने में आर्यसमाज का बहुत बड़ा हाथ है।

—**सरदार बल्लभ भाई पटेल**—यदि हम महर्षि दयानन्द की नीतियों पर चलते तो देश कभी नहीं बँटता। आज देश में जो भी कार्य चल रहे हैं उनके मार्ग स्वामी जी ने वर्षों पूर्व बना दिये थे। भारत की स्वतंत्रता की नींव वास्तव में स्वामी दयानन्द ने डाली थी।

—**पट्टाभिसीता रमैया**—गांधी जी राष्ट्र-पिता हैं लेकिन स्वामी दयानन्द राष्ट्र-पितामह हैं।

इस प्रकार विश्व का हर जागरूक महापुरुष
महर्षि दयानन्द सरस्वती के
सामाजिक, राष्ट्रीय व आध्यात्मिक क्रांतिकारी विचारों का कृतज्ञ है।

सहायक साहित्य-सूची

1. आर्यसमाज का इतिहास, भाग 1-2 श्री पं. इन्द्र जी विद्यावाचस्पति
2. मेरे पिता—पं. इन्द्र जी विद्यावाचस्पति
3. भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम का इतिहास—पं. इन्द्र जी विद्यावाचस्पति
4. मैं इनका ऋणी हूँ—पं. इन्द्र जी विद्यावाचस्पति
5. आर्यसमाज का इतिहास—भाग 1-7, डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार तथा प्रो. हरिदत्त वेदालंकार, डॉ. भवानी लाल भारतीय आदि
6. सिंहावलोकन—भाग 1-3 श्री यशपाल क्रांतिकारी
7. भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन का इतिहास—श्री मन्मथ नाथ गुप्त क्रांतिकारी
8. भारत के क्रांतिकारी—श्री मन्मथ नाथ गुप्त
9. वेद भाष्य—महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत
10. सत्यार्थ प्रकाश— " " "
11. आर्याभिविनय— " " "
12. महर्षि दयानन्द सरस्वती का पत्र व्यवहार भाग 1-2 सम्पादक—श्री वेदपाल जी
13. राष्ट्रवादी दयानन्द—पं. सत्यदेव विद्यालंकार
14. जीवन संघर्ष— " "
15. शहीदों की टोली—प्रकाशक-कबीर शांति मिशन
16. नीति शतक—भर्तृ हरि कृत
17. नेताजी सुभाष चन्द्र बोस—शंकर सहाय सक्सेना
18. क्रांतिकारी भाई परमानन्द—श्री पं. धर्मवीर एम.ए. डी.ए.वी. प्रकाशन
19. मेरे भाई शहीद सुखदेव—श्री मथरादास थापर (सुखदेव जी के छोटे भाई)
20. नेताजी सुभाष चन्द्र बोस—लघु नाटक—मास्टर वेचैन' देहलवी
21. आर्यसमाज के बीस बलिदानी—डॉ. भवानी लाल भारतीय
22. क्रांतिवीर पं. नरेन्द्र—प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु
23. लाला लाजपत राय—श्री अलगुराय शास्त्री
24. आत्म कथा—अमर शहीद राम प्रसाद विस्मिल
25. कल्याण मार्ग का पथिक—अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज
26. हमारा राजस्थान—श्री पृथ्वी सिंह मेहता विद्यालंकार

27. वे क्रांति के दिन—श्री महावीर जी त्यागी
28. बलिदान—आचार्य भगवान देव जी
29. माझी जन्मठेपे (मराठी)—स्वातंत्र्य वीर बिनायक दामोदर सावरकर—
30. 1857 का भारतीय स्वातंत्र्य समर— " " "
31. आजीवन कारावास-भाग 1-2-3— " " "
32. मेरी आत्म कथा—लाला लाजपत राय
33. सरफरोशी की तमन्ना रामप्रसाद विस्मिल भाग चार—क्रांतिकारी जीवन—संकलन—मदन लाल वर्मा 'क्रांत'
34. गदर पार्टी का इतिहास—श्री प्रीतम सिंह पंक्षी
35. बन्दी जीवन—श्री शचिन्द्र नाथ सान्याल
36. चन्द्रशेखर आजाद—श्री पूर्णचन्द्र सनक
37. अट्ठारह सौ सत्तावन—श्री निवास बालाजीराव हर्डीकर
38. आर्यसमाज के त्यागी तपस्वी संत—प्रिं. दीवानचन्द जी एम.ए.
39. स्वामी विरजानन्द चरित—प्रोफेसर राजेन्द्र जिज्ञासु
40. वीर संन्यासी—स्वामी स्वतंत्रतानन्द जी
41. जीवन ज्योति—श्री खण्डेराव जी तथा कृष्णदत्त जी
42. जीवन ज्योति—श्री मिश्रीलाल आर्य (टांडा वाले)
43. युगद्रष्टा भगतसिंह और उसके मृत्युञ्जयपुरखे—श्रीमती डॉ. वीरेन्द्र सिन्धु (भगतसिंह की भतीजी)
44. अमर शहीद चन्द्र शेखर आजाद—श्री विश्वनाथ वैशम्पायन
45. कांग्रेस का इतिहास—1-2-3 भाग—श्री पट्टाभि सीतारामैय्या
46. आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश का इतिहास (यू.पी. सभा का इतिहास) —पं. शिवदयालु जी
47. न्यायकुसुमाञ्जलि -दर्शनाचार्य पं. जगदीश चन्द्र जी शास्त्री
48. शहीद के कलम से—शहीद पं. शुक्रराज शास्त्री तथा वाक्पति राज शास्त्री
49. भारत सन् 57 के बाद—शंकरलाल तिवारी
50. हैदराबाद का स्वाधीनता संघर्ष और आर्यसमाज—पं. नरेन्द्र जी
51. महर्षि दयानन्द संसार की नजरों में—श्री उलफत राय जी
52. जिनका मैं ऋणी हूँ—राहुल सांकृत्यायन
53. रामकृष्ण परमहंस का जीवन (अंग्रेजी)—संत रोमा रोल्यां
54. भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम में आर्यसमाज का योगदान—(आचार्य) सत्य प्रिय शास्त्री, हिसार, सम्पादक-प्रो. उमाकांत उपाध्याय, कलकत्ता (मेरे लिये सर्वाधिक उपयोगी पुस्तक—आचार्य डॉ. उमेश यादव)
55. वीक्की पिडिया-सम्पर्क/ओपेन एंड सी

58. वेदों में राजनीतिक सिद्धान्त-1-2-3—वेद मार्तण्ड आचार्य प्रियव्रत वेद वाचस्पति
59. संक्षिप्त सत्यार्थ प्रकाश-स्व. जगदीश्वरानन्द सरस्वती
60. नये युग की ओर आर्यसमाज—प्रा. डॉ. चन्द्रशेखर लोखण्डे
61. पिलग्रिम्स प्रोसेस—एडिडेड बाई श्री प्रबोध चन्द्र, पृ.30—माई फादर—निबन्धकार—श्रीमती आशा चावला
62. स्मारिका-शताब्दी समारोह (1892-1991)—आर्यसमाज टांडा, फैजाबाद

इनके अतिरिक्त निम्न पत्र-प्रत्रिकाओं के समसामयिक अंक

1. वैदिक सार्वदेशिक साप्ताहिक नई दिल्ली
2. आर्योदय साप्ताहिक नईदिल्ली
3. आर्यजगत् (पुराना) साप्ताहिक जालन्धर नगर
4. धर्मयुग साप्ताहिक बम्बई
5. वीर अर्जुन दैनिक नई दिल्ली
6. वीर प्रताप दैनिक जालन्धर नगर
7. नवभारत टाइम्स दैनिक दिल्ली
8. हिन्दुस्तान दैनिक दिल्ली
9. विप्लव मासिक लखनऊ -1936, पृष्ठ-58-59
10. आर्यमर्यादा साप्ताहिक नई दिल्ली
11. द इन्डियन सोशियोलोजिस्ट-बुलेटिन—लन्दन—पं. श्यामजी कृष्ण वर्मा
12. उर्दू भाषा में 'प्रताप'अख्बार-पहला संस्करण—अप्रैल 1, 1919 दिनांक

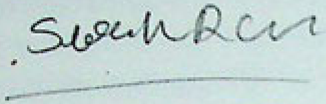

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में आर्य समाज का विशेष (80%) योगदान

निश्चित रूप से ब्रिटिश शासन से भारतवर्ष की स्वतंत्रता के लिए आर्य समाज आंदोलन के सदस्यों द्वारा प्रमुख (80 %) भूमिका निभाई गई।

यह पुस्तक आर्य समाज के उन वीर सैनिकों को समर्पित है, जिन्होंने आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानंद सरस्वती की राष्ट्रीय प्रेरणाओं का अनुसरण करते हुए स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लिया और तत्कालीन आर्य समाज के वीर पुरुष और महिला व सदस्यों ने अपने जीवन का बलिदान दिया। इन्होंने अपनी आजीविका और पारिवारिक सुखों को छोड़कर अंडमान द्वीप में सेलुलर जेल (काला पानी जेल) सहित विभिन्न जेलों की यातनायें सहीं, जिन्हें अपनों के कल्याण की कोई चिन्ता नहीं थी।

कोई भी देश अपने नागरिकों के व्यापक समर्थन के बिना इतनी बड़ी स्वतंत्रता प्राप्त नहीं कर सकता। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी, अखिल भारतीय मुस्लिम लीग और अन्यों ने शेष 20 %के लिए काम किया लेकिन ऐसा लगता है कि अल्पसंख्यक (20 %) ही भारत की स्वतंत्रता का पूरा श्रेय लेते रहे हैं और आर्य समाज आंदोलन के बहुमत (80 %) प्रतिभागियों का कोई उल्लेख ही नहीं किया जाता है। यह कितना उचित है?

हमने आर्य समाज द्वारा निभाई बहुमत की भूमिका को स्थापित करने के लिए अब तक के उपलब्ध महत्त्वपूर्ण तथ्यों को एकत्र किया है।

हम ईमानदारी से भारत की वर्तमान सरकार से अनुरोध करते हैं कि इस लंबे समय तक अनदेखे सत्य-तथ्य को उचित मान्यता दें और आर्य समाज आंदोलन के सदस्यों को उपकृत करें।

क्या भारत सरकार से हमारी यह मांग उचित नहीं है?

-आचार्य डॉ. उमेश यादव

ISBN 978-81-7077-312-2
9 788170 773122

गोविन्दराम हासानन्द

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में
आर्य समाज का विशेष (80%) योगदान

www.vedicbooks.com

C-11'

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में आर्य समाज का विशेष (80%) योगदान

सह-लेखक
डॉ० नरेन्द्र कुमार (प्रधान)
आचार्य डॉ. उमेश यादव (मिनिस्टर ऑफ रेलिजन)
आर्य समाज (वैदिक मिशन) वेस्ट मिडलैंड्स,
यूनाइटेड किंगडम